खड़ीबोली का लोक-साहित्य

[प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० सत्या गुप्त

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रकाशक

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
१९६५
मूल्य : पन्द्रह रुपया

मुद्रक
लीडर प्रेस
इलाहाबाद

स्वर्गीया माँ को
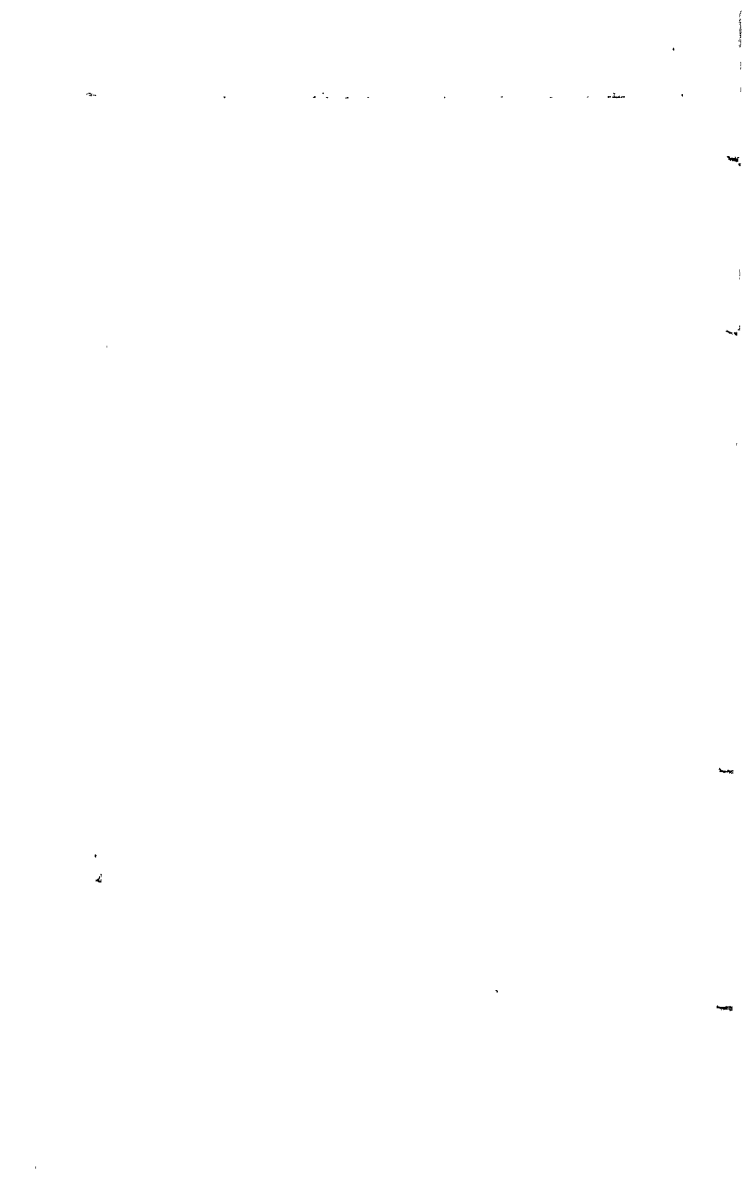
प्रकाशकीय

संक्रमण काल में जब संस्कृति नवरूप धारण कर रही है तब अपने अपौरुषेय वाङमय से परिचित हो लेना अत्यन्त आवश्यक है। इसे मुड़कर पीछे देखा जाना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लोक-जीवन और उसकी सहज अभिव्यक्ति नित्य नवीन और चिर-सामयिक है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने पिछले वर्षों में लोक-साहित्य सम्बन्धी कई ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। प्रकाशन की उसी परम्परा में डॉक्टर सत्या गुप्त का यह शोध-ग्रन्थ "खड़ीबोली का लोक-साहित्य" है जिस पर लेखिका को प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल्० की उपाधि मिली है।

डॉक्टर सत्या गुप्त ने बड़े मनोयोग से, संग्रह सम्बन्धी अनेक असुविधाओं को झेलते हुए इस शोध-ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इस महत्वपूर्ण शोध-कार्य के लिये वह हिन्दी जगत् की बधाई की पात्र हैं।

खड़ीबोली आज हमारे साहित्य की भाषा है। किंचित् आश्चर्य होता है कि इस बोली के लोकरूप पर पहले किसी का ध्यान क्यों नहीं गया ? किन्तु ऐसा होता रहा है। साहित्य-भाषा के रूप में समादृत भाषा को विकासोन्मुख करने की चिन्ता में, उसके मूल रूप और उसमें निहित अभिव्यक्तियों को हम कभी-कभी विस्मृत कर जाते हैं। वह विस्मृत अंश आज प्रस्तुत है, डॉक्टर सत्या गुप्त ने उसे जागृत किया है। विदुषी लेखिका ने लोक-साहित्य के स्वीकृत सभी अंगों पर सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया है। निश्चित ही उनके इस प्रयास से खड़ीबोली और प्रदेश की भाषा तथा संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में जानकारी प्राप्त होगी। विश्वास है, यह ग्रन्थ लोक-साहित्य के अध्येताओं, जिज्ञासुओं तथा भाषाविज्ञों को अपने-अपने प्रयोजन के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद
दिनांक, ३१ दिसम्बर, १९६४

विद्या भास्कर
सचिव तथा कोषाध्यक्ष

विषय-सूची

परिचय

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंदी प्रदेश में सांस्कृतिक जागरण उत्तरप्रदेश के पूर्वी भाग में प्रारंभ हुआ––प्रारंभ में मुख्य केन्द्र काशी और प्रयाग थे तथा बाद को लखनऊ, आगरा और गोरखपुर में भी कार्य प्रारंभ हुआ। सबसे अधिक उपेक्षित भाग खड़ीबोली प्रदेश, अर्थात् मेरठ-बिजनौर का भूमिभाग, तथा उसके पश्चिमी और पूर्वी सीमान्त प्रदेश हरियाना और रोहिलखंड, रहे। इसका एक मुख्य कारण कदाचित् यह था कि इस प्रदेश का प्रधान आधुनिक नगर मेरठ दिल्ली के इतने अधिक निकट है कि वह स्वतंत्र सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में विकसित नहीं हो सका––दिल्ली ने उसे हर तरह से दबा दिया।

उपर्युक्त स्थिति के परिणाम स्वरूप हिंदी साहित्य से संबंधित अध्ययन भी अवधी भाषा और साहित्य से प्रारंभ हुआ, शीघ्र ही भोजपुरी (काशी-गोरखपुर प्रदेश की बोली) की ओर विद्वानों का ध्यान गया और उसके बाद ब्रजभाषा साहित्य का प्रकाशन और आलोचनात्मक अध्ययन प्रारंभ हुआ। यह विचारणीय है कि हिंदी के दो प्रमुख मध्यकालीन महाकाव्यों में रामचरित मानस के तो अनेक वैज्ञानिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, किंतु सूरसागर का वैज्ञानिक संपादन अभी प्रारंभ भी नहीं हो पाया है। फलत: मेरठ-बिजनौर की खड़ीबोली भाषा और उसके प्राचीन साहित्य का अध्ययन अत्यंत उपेक्षित रहा। यह प्रसन्नता की बात है कि हिंदी प्रदेश की इस महत्वपूर्ण भाषा खड़ीबोली तथा उसके लोकसाहित्य और मध्ययुगीन नागरिक साहित्य की ओर अब धीरे-धीरे विद्वानों और विद्यार्थियों का ध्यान जा रहा है। यह ग्रंथ भी इसी प्रवृत्ति का एक प्रमाण है।

प्रस्तुत अध्ययन लेखिका ने प्रयाग विश्वविद्यालय के डी० फिल० थीसिस के लिये तैयार किया था। मुझे प्रसन्नता है कि अब यह पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रहा है और हिंदी प्रेमी इससे लाभ उठा सकेंगे। ग्रंथ का मुख्य विषय खड़ीबोली प्रदेश के लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य तथा लोकोक्तियों, मुहावरे आदि प्रकीर्ण सामग्री का अध्ययन है। प्रथम अध्याय विषय की भूमिका स्वरूप है तथा अंतिम आठवें अध्याय में इस जनपद की लोक-संस्कृति पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। लेखिका ने यह आशा दिलाई है कि इस अध्ययन की मूल सामग्री,

अर्थात् खड़ीबोली प्रदेश के लोकगीत, लोककथाएँ तथा लोकशब्दावली आदि, शीघ्र ही स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित होगी ।

अपने देश में वैदिक ब्राह्मण तथा उपनिषद् काल में कुरु-पंचाल, हिंदी प्रदेश के चौदह महाजनपदों में अग्रणी थे । आज यह मेरठ-बरेली कमिश्नरियों का प्रदेश सांस्कृतिक विकास में सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है । खड़ीबोली प्रदेश में स्थित नगर दिल्ली, प्रादेशिक न होकर अखिल भारतीय क्या अन्तःराष्ट्रीय केन्द्र बन गया है । आगरा पश्चिमी उत्तरप्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में अवश्य विकसित हो रहा है किन्तु वह ब्रज प्रदेश में स्थित है तथा शूरसेनजनपद की प्राचीन राजधानी मथुरा नगरी को एक तरह से स्थानापन्न कर रहा है । फिर मुगलकालीन स्मारकों तथा ताजमहल किले आदि के महत्व के कारण दबा जा रहा है । विदेशी यात्रियों के लिये तो आगरा और ताजमहल एकार्थवाची से हो गये हैं । पश्चिमी हिंदी प्रदेश में दिल्ली-आगरे के महत्व के कारण मेरठ-बरेली का भाग अत्यंत उपेक्षित रहा—न यहाँ कोई विश्वविद्यालय बन सका है, न कोई अच्छी साहित्यिक संस्था है, न उच्च स्तर के दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्र आदि ही यहाँ से निकलते हैं, न प्रथम श्रेणी के राजनीतिक नेता हैं और न बड़े उद्योग केन्द्र ही स्थापित हो रहे हैं ।

किंतु इस प्रदेश में अब जागरण के चिह्न दिखलाई पड़ रहे हैं । डॉ० सत्या गुप्त का खड़ीबोली प्रदेश के लोक साहित्य का यह अध्ययन भी इस नव जागरण की ओर ही एक कदम है । इसके लिये मैं सुयोग्य लेखिका को हार्दिक बधाई देता हूँ । प्रस्तुत अध्ययन अत्यंत संतुलित और नवीन सामग्री से पूर्ण है । मूल सामग्री से संबंधित इसके परिशिष्ट ग्रंथ की हम लोग अत्यंत उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे ।

सागर विश्वविद्यालय,
सागर
२०-१२-६४

धीरेन्द्र वर्मा

पूर्व-भूमिका

'खड़ीबोली का लोक साहित्य' शीर्षक शोध-प्रबन्ध का स्वागत करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। इसमें सुश्री डा० सत्या गुप्त ने बहुत परिश्रम-पूर्वक प्राचीन कुरु-जनपद की छानबीन की है। कौरवी बोली को ही आजकल खड़ीबोली कहा जाता है। इस बोली ने ही अधिकांश राष्ट्रभाषा एवं अर्वाचीन हिन्दी का साहित्यिक रूप ग्रहण किया। इस बोली का एक छोर ब्रजभाषा से और दूसरा हरियाना की बाँड्डू-भाषा से मिला है। इसका शुद्ध रूप मेरठ जनपद के गाँवों में पाया जाता है। वहाँ से उसकी शुद्ध व्याकरण शब्दावली एवं लोक-साहित्य का सर्वांगीण संग्रह अभी नहीं हो पाया है। मेरा अपना जन्म भी मेरठ जिले के एक गाँव में हुआ है, जो हापुड़ और गाजियाबाद के बीच में पिलखुआ से लगभग १॥ मील पर है। अतः मुझे विदित है कि कौरवी बोली के शुद्ध रूप में वर्णों को द्वित्व करने की परिपाटी नहीं है, वहाँ के निजी उच्चारण में शुद्ध रूप 'लोटा' है लोट्टा नहीं; किन्तु हमें यह भी न भूलना चाहिये कि इस जनपद के बीच-बीच में ऐसे गाँव भी हैं जिनकी बोली पर जाटू या बाँड्डू-भाषा का प्रत्यक्ष प्रभाव है। ज्ञात होता है कि कुरु-जनपद में वहाँ की जन परिपाटी और बोलियों पर किसी समय जाट जाति या उनकी बोली का विशेष अनुप्रवेश हुआ और दोनों परस्पर घुल मिल गया। किन्तु जाटों और ठाकुरों द्वारा प्रयुक्त मातृभाषाओं में आज भी अन्तर बना हुआ है जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है जिससे कि खड़ीबोली के शुद्ध रूप का उद्धार किया जा सके। मेरठ की भाषा और साहित्य सम्बन्धी कार्य करने वाली किसी केन्द्रीय संस्था की अभी तक कमी है। मेरठ जनपद से बाहर रहने के कारण मैं स्वयं इस विषय में कार्य न कर सका और फिर मेरा कार्य क्षेत्र संस्कृत भाषा के महान् साहित्य की ओर मुड़ गया। श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी से मैंने इस संबंध में विस्तृत बात चलाई थी किन्तु उनके हाथ में भी अन्य कार्य होने से वे इस ओर ध्यान न दे सके। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की कल्पना और कार्यशक्ति विलक्षण थी, उन्होंने अवश्य इस ओर ध्यान दिया। 'आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत' ऐसा ही संग्रह था जिसने अनेक लोगों का ध्यान खींचा। मुझे ज्ञात हुआ है कि डॉक्टर कृष्णचन्द्र शर्मा ने एक शोध-प्रबन्ध के रूप में मेरठ जनपद के लोकगीतों पर सुन्दर कार्य किया है, किन्तु वह अप्रकाशित है और उसे मैं देख नहीं पाया हूँ।

अपने एक विशिष्ट लेख 'गाहा पल्हाया' (जनपद, जनवरी १९५३ पृ० ७०-७४) में मैंने कुरु-जनपद को एक ऐसे लोकसाहित्य का परिचय दिया था जिसकी परंपरा वैदिक युग से आजतक सुरक्षित रही है और जिसका संग्रह श्री गौड़ ने अपने एम० ए० के शोध-निबन्ध के लिये किया था । इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ के पृ० २३ पर किया गया है । अपने परिचय के आधार पर मैं यह निश्चय से कह सकता हूँ कि मेरठ जनपद गीतों, कहानियों और कहावतों की खान है। लेखिका सत्या गुप्त ने गीतों एवं कहानियों के प्रति पर्याप्त ध्यान दिया है। बच्चे के जन्म के समय छटी पूजन मेरठ जनपद का विशेष उत्सव है। उस समय जाजमातृ (पृ० ४२) का पूजन किया जाता है । वह प्राचीन काल की जातहारिणी देवी मालूम पड़ती है । इसका विस्तार से वर्णन काश्यप संहिता के खेती कल्प में आया है। यह बच्चों की अधिष्ठात्री देवी थी और उसके सैकड़ों नाम और भेद थे किन्तु इसकी सर्वसामान्य संज्ञा जातहारिणी थी । मेरठ जनपद में नामकरण संस्कार को दसूटन (दशोत्थान) कहते हैं। उस अवसर के गीत बहुत ही रोचक होते हैं । किन्तु मेरठ जनपद की सबसे बड़ी विशेषता विवाह संस्कार है, उसके अनेक अंग दोनों पक्षों में मनाए जाते हैं जैसे——सगाई, छेई बान, हलदतेल, मढ़ा-भात, घुड़चढ़ी आदि। इन अवसरों के गीत बन्ने कहलाते हैं। बारात के जाने के बाद वर-पक्ष के घर की स्त्रियाँ खोड़ियाँ बनाती हैं और उस समय धूम-धाम के साथ नाचना-गाना किया जाता है । उन गीतों में फूहड़ गीत भी होते हैं । ज्ञात होता है, इस प्रकार के खोड़ियों के गीतों के नमूने अथर्ववेद के २० वें काण्ड में संग्रहीत बच गए हैं । व्याह के समय अनेक देवी-देवता पूजे जाते हैं, जैसे ऊत पितर, माता, चामड़ देवी, जाहर पीर, भूले-बिसरे, मीराँ और इनमें से हरएक के अलग-अलग गीत हैं। कजैतन या हथ लगिन जो मंगल-मारी के रूप में व्याह संबंधी सब मांगलिक कृत्य करती है, वह बीध उठाती है अर्थात् उड़द की पिट्ठी पीस कर खाट पर दो बीध रखती है और दूध, हल्दी, चावल, रोली से छींटे मारकर उसकी पूजा करती है । फिर और हथलगी खाट पर, पीढे पर टोकरे पर पंखे पर और चटाई पर उड़दी तोड़ती हैं। देव-पितरों के नाम के चावल पिट्ठी लेकर पिसे जाते हैं । चूल्हे पर जोत अर्थात् देवताओं की हँडिया रहती है । हँडिया में सज्जी का पानी औटाया जाता है। उससे पापड़ बनाने की पिट्ठी माड़ी जाती है, फिर पापड़ की लोई मिंसी जाती है तब पापड़ बनते हैं जो छकड़ें नामक विशेष हण्डों में (छाक या भोजन सामग्री के हण्डे) लड़की के ससुराल भेजे जाते हैं । बान छेई के समय गौरी-पूजन बतासों से और गुड़ की भेली से किया जाता है । एक चलती बरात की ओर

दूसरी आवती बरात की गौर अच्छा सा दिन देख कर खेत में संदाई जाती है। सात बन्दनवार बनाने की रीति है—कपड़े की, रेशमी जाल की, फुन्दन की, फल की, गिंदोड़ो की, मेवे की, पान की और फूल की। ये तोरण या द्वार पर मण्डप में और कोठार में बाँधी जाती हैं। व्याह में आठ गोद भेजने की प्रथा है। दो लगन पर (एक लगन की, एक बान की), दो पहुँचते ही गौरी-पूजन के समय, दो पैरों पर और दो कंगने पर। उनमें से एक खाली और एक भरी होती है। और भी बरी पुरी, सोहगी, दिखावा, भात, कुआपूजन, चाकपूजन ,सखर माँट, छकँडा तियल आदि के अनेक रिवाज़ हैं। इन में भात के गीत बहुत ही रोचक होते हैं। कन्या के भात में मामा चुंदरी और आँछू बटवे लाता है। इनमें सभी अवसरों पर गीत गाये जाते हैं। भात की रीति को बहुत मांगलिक मानते हैं। एक ब्राह्मण पीले कागज में बंधे हुए खाँड के गिंदोड़े को, जिसे सुहागपूडा भी कहते हैं, मण्डप में बाँध कर लटकाता है। मामा के यहाँ से कन्या के लिये पाँचगजी धोती आती है, जिससे सात सुहागिनें कन्या का चोला उसी समय फेरों से पहले सीती हैं। वर-पक्ष की ओर से सात सुइयाँ फेरों से पहले भेजी जाती हैं, उसे सुई का सगुन कहते हैं। उसी सगुन के साथ रोली-मेंहदी, छड़े-पैंडे, लाल-चूँदरी, सुगन्धित तेल, सिन्दोर -सिन्दोरी, लखा और दो गोद भी भेजी जाती हैं। इन सब लोकप्रथाओं के पीछे अनेक प्रकार के गीतों का भण्डार भरा हुआ है। मण्डप में वर को चौकी पर बैठा कर उसकी पूजा की जाती है। उससे पहले जनवासे में ही फेत बट-हरी या बैसाखी वर पक्ष को दी जाती है, फिर चढ़त के समय द्वारचार होता है। वर-कन्या के अलंकरण को हल्द-बान, तेल और ईंछ कहते हैं। स्त्रियों की दृष्टि में इनका महत्त्व गीतों के रूप में ही होता है। थापा लगाकर देवता की स्थापना करते हैं। मण्डप के नीचे कन्या का पूजन किया जाता है, जिसे पैर-पुजी भी कहते हैं। कन्या से बड़े स्त्री-पुरुष व्रत-उपवास रख कर मण्डप के चारों ओर घूमते हुए धान बोते हैं, उसे धान बोआई कहा जाता है। मण्डप में विवाह से पूर्व कन्या का पूजन ही वास्तविक गौरी-पूजन है। कन्या की सिर-गुंदी भी महत्त्वपूर्ण है। वर, सिन्दूर से उसे टीका लगाता है और माँग-भरता है, इसे सुमंगली प्रथा कहते हैं जिसका उल्लेख ऋग्वेद में भी आया है। इनके अतिरिक्त व्याह की और भी छोटी-मोटी प्रथाएँ हैं जिनमें भँवर सप्तपदी अश्वा-रोहण, अरुन्धती दर्शन और छायादान मुख्य हैं। छायादान का संबंध कृत्या-निवारण से है जिसका उल्लेख ऋग्वेद के विवाह सूक्त (१०-८५) में आया है। वहाँ यह कल्पना की गई है कि स्त्री एक चलती-फिरती कृत्या है जिसके दो रूप हैं—एक अशिव और दूसरा भद्र। जो भद्र रूप है, वही वर के नूतन गृहस्थ में

प्रविष्ट होना चाहिये। छायादान के द्वारा लोक में इसी भावना की पूर्ति की जाती है। थापे या देवता के आगे वर को वैदिक छन्द पढ़ने होते थे किन्तु आज कल उसका केवल विकृत रूप रह गया है। सम्भव है, इस अवसर पर कुछ लोक-गाथाएँ सुनाई जाती हों।

ऋग्वेद में विवाह के अवसर पर गायी जाने वाली गाथाओं या गीतों का उल्लेख है---१--रैभी २---अनुदेयी ३---न्योचनी नाराशंसी। आजकल के जो व्याहुले गीत हैं उनमें इन तीनों प्रकारों को इस प्रकार पहचाना जा सकता है। रैभी वे गाथाएँ हैं जो भंवर या फेरों के अवसर पर गीत गाए जाती हैं। अनुदेयी गाथाएँ विदा के गीत हैं, इस समय कन्या के पिता की ओर से बहुत सा दान दहेज दिया जाता है। इसी से अनुदेयी शब्द सार्थक होता है। तीसरी न्योचनी नाराशंसी के गाथाएँ हैं जो बहु लेने या बधावे के गीत कहे जाते हैं। जब बहू अपनी ससुराल में आती है तो उस क्रिया को न्योचनी समझनी चाहिये। उस अवसर पर समझा जाता है कि वर, कन्या की विजय करके वापस आया है और उसके पूर्वजों या बड़े बड़ेरों के साथ उसका भी यशोगान किया जाता है। उन्हीं गाथाओं के लिये प्राचीन काल में नाराशंसी न्योचनी शब्द का प्रयोग संभवतः किया जाता था। अब वे ही बधावे के गीत हैं। प्रत्येक संग्रह-कर्त्ता को उचित है कि वे इन तीन प्रकार के गीतों का अलग-अलग संग्रह करके उनकी विशेषताओं का अध्ययन करें। संभव है, इससे उनकी प्राचीन रूढ़ियों एवं विशेषताओं का कुछ उद्धार किया जा सके।

दूसरी रोचक प्रथा मेरठ जनपद में प्रचलित 'बहों' की है। विवाहित कन्या के जीवन को नयी परिस्थिति के अनुकूल बनाने की एक प्रथा है जिसे बहों कहते हैं। ससुराल के नए संसार में कन्या किस प्रकार अपना निभाव करेगी और कैसे सबसे हिल-मिल कर रह सकेगी, यही बहों के इन बोलों का तात्पर्य है। कुछ बहों के नाम इस प्रकार हैं:---

१. राह उजाला---ब्याह के साल कन्या अपने घर पर ही रहती हुयी एक दिया रोज जला कर बाहर मार्ग में रख आती है जिससे रास्ता चलतों को उजाला हो जाय। ३६५ पेंड़े बनाकर लड़की ससुराल भेजती है।

२. बाट सिलाना---कन्या एक लोटा पानी और थोड़े दाने लेकर बाट सिलाती हुयी जाती है---

सिलवर सिलवर बाट सिलाऊँ।
सासू नन्द कू चीर उढाऊँ।

३. **सूरज भंवारा**—कन्या नित्य नहाकर एक लोटा जल सूरज को चढ़ाती है।

४. **दांतन कन्या**—चार बजे (ब्राह्ममुहूर्त में) उठ कर दाँतन करके तब बोलती है और ऐसा ही साल भर नियमतः करती है।

५. **कौड़ी गल्ला**—एक छोटा सा घर (चाँदी का) बनाकर और एक पुतली चाँदी की बनाकर ससुराल भेजी जाती है। कन्या प्रतिदिन एक कौड़ी या पैसा डालती थी और साल के बाद वह ससुराल को भेज दिया जाता था।

६. **चिड़िया चुगाई**—कुछ दूर में धरती लीप कर उस पर बाजरा बखेर कर चिड़िया चुगाई जाती हैं और नन्द के लिये वर्षान्त में इजार ओन्नी चिड़िया चुगाने की निशानी भेजी जाती है।

७. **फूफस के थुआ देना**—निम्न पद्य कह कर वहू फूफस को गुड़ की भेली देती है—

ससुरे बहन बलम की फुआ।
मेरे लेखे मट्टी की थूआ॥

८. **सासू की रुँसाई**—कड़ी बात कह कर सासू को रुष्ट करना।

९. **सासूं जिमाई**—सासूं को जिमाकर प्रसन्न करना।

१०. **ससुर जिमाई**—ससुर के कन्धे पर दुशाला डाल कर मेवा भर देते हैं और दो चार रुपये डाल देते हैं—

ससुर मेरा बाला भोला।
भर मेवा का झोला।

११. **ससुर को पिन्नी देना**—'दमकन पिन्नी चमकन सुसरा' यह कहा जाता है।

१२. **लेले पिया मिसरी, मेरे मन से कभी न बिसरी।**

१३. **जेठ जिठानी का बहा**—

आयत यापत धरी मिठाई।
जेठ जिठानी रिल मिल खाई।

१४. **भंगन का बहा**—

चार कचौड़ी ऊप्पर जीरा।
कदी ना बनू मोरी का कीरा॥

१५. **जेठ का बेटा**—

चार कचौरी ऊपर दही।
जेठ के बेटे ने चाची कही॥

१६. देवर—

थाली भरे बदामा ।
देवर भाभी का गुलामा ।।
थाली भरे बतासे ।
देवर करे तमासे ।।

१७. खुंती चीर—बहन-भाई जब उपस्थित हों तब एक चादर तानकर नवागता बधू ऐसा कहती है और वह चादर चावल और रुपये बहिन को देती है—

आले चावल खुंटी चीर ।
चिर जीवे नन्दी तेरा बीर ।

१८—सासू का बहा—

ले सासू गठरीं
दिखा अपनी गठरी ।

इस बहे में बहू सास की गठरी देख कर झकझोर लेती है । इन बहों में कन्या के लिये मनोरंजन और शिक्षण की सामग्री रहती है और छोटी-मोटी गृहस्थियों में सुखद अवसर उपस्थित करते हैं । यहाँ तक कि घर की भंगन का भी सत्कार-सम्मान करना नई बहू के लिये आवश्यक था ।

लेखिका ने धार्मिक गीतों का भी अच्छा संग्रह और अध्ययन किया है । इनमें गणेश और तुलसी पूजा के गीत हैं, जो प्राय: सभी जनपदों में गाये जाते हैं । इनमें सावन के गीत सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं । मेरठ जनपद में कुछ लोकगाथाएँ भी गायी जाती हैं । इनमें चँदना, चन्द्रावल, निहालदे, गुग्गा पीर, गोपीचन्द भरथरी आदि की लोककथाएँ बड़े रस से गायी जाती हैं । फाल्गुन में गाये जाने वाले होली के गीत भी आकर्षक होते हैं, जब कच्ची इमली गदराती है अर्थात् युवती स्त्री में मस्ती छा जाती है । ज्ञात होता है कि ये प्राचीन काल से चले आते हुए चाँचर या चर्चरी के गीत थे जिन्हें गाती हुई युवती कन्या अपनी सखियों के साथ शिवपूजन के लिये निकलती थी । 'काँटा लागों रे देवरिया मोपै गैल चलो ना जाय'—यह मेरठ जनपद का प्रसिद्ध बोल है जो गाँव-गाँव में सुनाई पड़ता है । चक्की पनघट और खेती के गीत भी स्त्रियों में प्रचलित हैं । इसी प्रकार पुरुषों में कोल्हू और कुआँ चलाते समय मल्होर और पल्हाए नामक गीत हैं जिनका कुछ संग्रह इस ग्रन्थ में (पृ० ९३-९४) आया है । मल्होर को 'बावली मल्होर' भी कहा जाता है. क्योंकि इनके गाने वाले ऐसे दोहे कहते थे जो अनबूझ पहेली-सी जान पड़ती थी, मानो कोई बावला निर्गुणिया व्यक्ति

अपना अनुभव सुना रहा हो। लड़के-लड़कियों के बालगीत, टेसू के गीत, साँझी के गीत, जिनमें साँझी या गौरी पार्वती का वर्णन आता है, किसी समय बड़े उमंग से गाये जाते थे। खड़ीबोली के इन लोकगीतों में सामाजिक चित्रों का भी अध्ययन किया गया है।

मुझे यह देख कर प्रसन्नता है कि शोध-प्रबन्ध में कौरवी की लोककथाओं के अध्ययन पर भी पर्याप्त सामग्री एकत्रित की गयी है। जो लोकसाहित्य अब शनैः शनैः नई शिक्षा की कूँची के पोत से मिट रहा है उसे समय रहते लिपिबद्ध कर लेना और यान्त्रिक उपायों से सुरक्षित कर लेना आवश्यक है। अतः पहली दृष्टि से यह अध्ययन सर्वथा स्वागत योग्य है। यदि इसके फलस्वरूप मेरठ जनपद में लोक-वार्ता संबंधी अध्ययन की कोई प्रेरणा मिल सकी तो सब के लिये प्रसन्नता की बात होगी।

वासुदेवशरण अग्रवाल

१८।१२।६४
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी—५
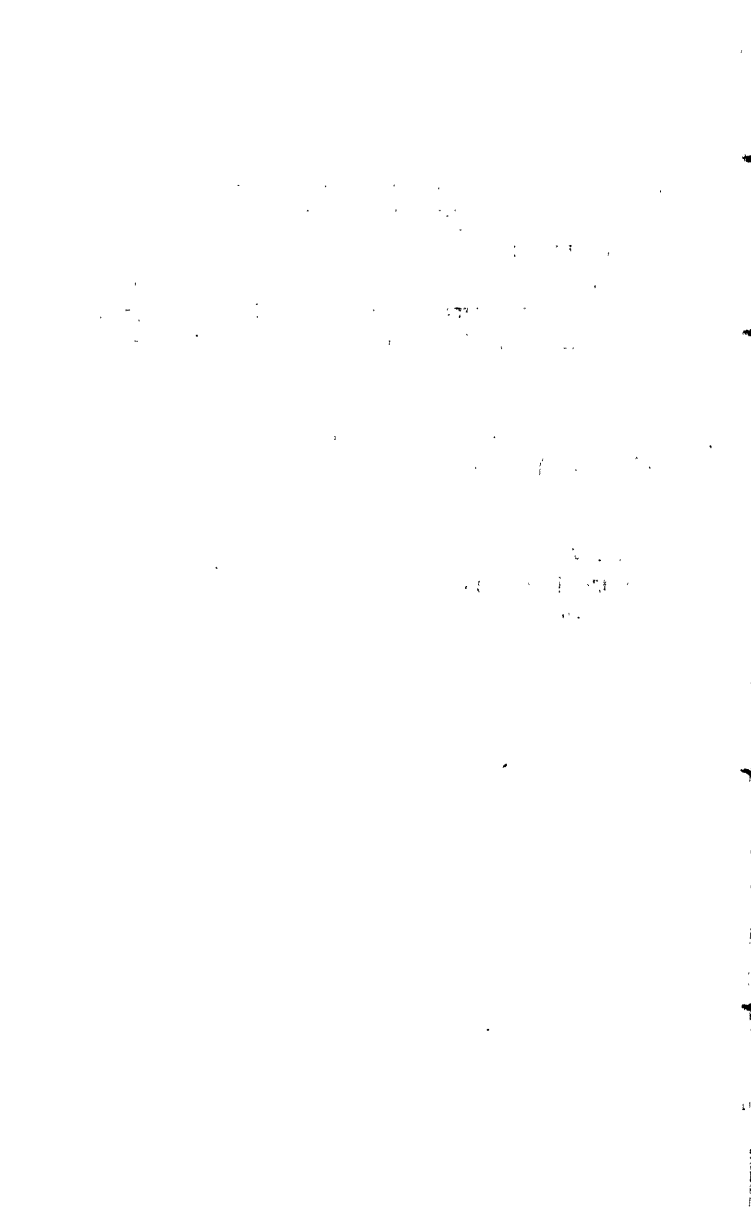
भूमिका

खड़ीबोली-प्रदेश मेरी जन्मभूमि है। इसी कारण यहाँ का लोकसाहित्य मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। अवस्था के अनुरूप इससे मेरा सम्पर्क दिन-प्रतिदिन घनिष्ठ होता गया और एम० ए० के बाद जब मैंने 'ब्रज-लोकसाहित्य' तथा 'भोजपुरी-लोकसाहित्य का अध्ययन' प्रबन्ध देखे तो मेरे मन में अपने प्रदेश के लोकसाहित्य पर कार्य करने की आकाँक्षा हुई। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के द्वारा भी मेरी इस इच्छा को बल मिला। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि तुम तो इस प्रदेश की लड़की हो, सामग्री का संकलन करना तुम्हारे लिए कठिन कार्य नहीं। तत्पश्चात् जब मैंने अपने मन की बात पूज्यवर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा से कही तथा इस सम्बन्ध में पथ-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना की तो डॉ० साहब ने अपनी स्वीकृति देकर मेरी इस इच्छा को संरक्षण प्रदान किया।

उस समय मैंने पर्याप्त संकलन कर लिया था परन्तु संकलन वैज्ञानिक ढंग पर न होने के कारण, बहुत सी भूलें रह गयी थीं जिसका निराकरण करने में मुझे अतिरिक्त श्रम करना पड़ा। वह संकलन वैसे भी इतना नहीं था कि उसके आधार पर यह अनुसंधान-कार्य किया जा सकता। मैंने और उत्साह से संकलन कार्य करना आरम्भ कर दिया परन्तु बीच-बीच में अत्यन्त अस्वस्थ्य हो जाने के कारण व्यवधान पड़ते रहे। संकलन कार्य में भले-बुरे कितने ही अनुभव हुए जिनकी ओर संकेत कर देना यहाँ अनुचित न होगा। इस काल में ऐसे भी क्षण आये जब अपनी अस्वस्थता तथा कार्य का विस्तार देख कर हताश हो जाना पड़ा परन्तु गुरुजनों के सतत प्रोत्साहन से पुनः-पुनः कार्यरत होती रही।

जो सबसे बड़ी कठिनाई मेरे मार्ग में आयी, वह थी विषय की व्यापकता तथा मेरी सीमाएँ। मुझे गाँव-गाँव तथा घर-घर सामग्री एकत्रित करने जाना पड़ता था। ग्राम की महिलाएँ कभी-कभी मुझे प्रश्नभरी दृष्टि से देखती थीं। उनकी समझ में नहीं आता था कि मैं गीतों, कहानियों को बेचूँगी या तवे (रेकार्ड) भरवा कर जगह-जगह सुनाती फिरूँगी। कई बार पुरुषों से बात करते हुए देख कर उन्हें मेरी लज्जाहीनता पर क्षोभ भी होता था। मुझे ऐसी स्थिति का भी सामना करना पड़ा जब मेरे मेज़बान हँस कर (बगड़) आँगन में घुस गये और मैं बाहर ही

खड़ी रह गयी। उस समय मेरी सुरक्षा के लिए घर के पुरुष ही आये और उन्होंने महिलाओं को मेरे संबंध में आश्वस्त करके मेरा काम करवाया। कई स्थानों पर आशीर्वचन के साथ भी मुझे सामग्री प्राप्त हुई। सबसे अधिक कठिनाई मुझे पुरुष-वर्ग से सामग्री एकत्रित करने में हुई। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि यदि स्त्रियाँ परदा नहीं करतीं तो वहाँ के पुरुष पर्दा कर लेते हैं। इसका कारण यह भी था कि पुरुषों से संबंधित लोकसाहित्य का बहुत-सा भाग अश्लील भी है। पल्हाये, गीत तथा कुछ सांग इसी प्रकार के साहित्य में आते हैं। इस समय मुझे अपने पुरुष संबंधियों से सहायता लेनी पड़ी। उनकी अपनी सीमाएँ थीं, इसीलिए मैं उनकी सहायता से इतनी ही सामग्री प्राप्त कर सकी जितनी स्त्री होने के कारण मेरे लिए अप्राप्य थी। दानों की कहानियाँ, विक्रमादित्य से संबंधित कहानियाँ, शेखचिल्ली की कहानियाँ, स्थानीय लोक-कथाएँ, लोकोक्तियाँ, लोकगाथा, लोकनाटय, मंत्र, रीति-रिवाज, अनुष्ठान तथा जोगियों के गीत आदि—यह सब मैंने स्वयं ही पुरुष जाति से एकत्रित किए। इसीलिए पुरुष वर्ग की सामग्री अधिकांश मात्रा में तो उपलब्ध नहीं हो सकी, लेकिन उस सामग्री से आवश्यकतापूर्ति हो गयी। बालकों से संबंधित सामग्री प्राप्त करने में अपेक्षाकृत अधिक सरलता रही। प्रारंभ में तो बालक झिझके और शरमाये परन्तु बाद में उनमें बताने के लिए होड़-सी लग गई। अधिक आनन्द इन्हीं की सामग्री एकत्रित करने में आया। अपने तथा सामग्री संकलन के सम्बन्ध में इतना सब कुछ कह देने पर विषय का परिचय देना भी अत्यन्त आवश्यक है।

डॉ० ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक[1] में सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर, मेरठ, बिजनौर तथा बुलन्दशहर के कुछ भाग को खड़ीबोली-प्रदेश का क्षेत्र माना है। इसी प्रदेश को कुछ विद्वानों ने कौरवी'[2] प्रदेश भी कहा है। खड़ीबोली के लोकसाहित्य से हमारा तात्पर्य इसी प्रदेश के लोकसाहित्य से है। इस लोकभाषा का हिन्दी जगत् से बहुत ही घनिष्ठ संबंध है। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी की उत्पत्ति इस भाषा से ही हुई है। इस प्रदेश की लोकभाषा को साहित्यिक हिन्दी का अपभ्रंश रूप भी माना जाता है।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उपनिषदों के विकास में खड़ीबोली का

---

१ Linguistic Survey of India, Vol. 9, Part I, Dr. G. A. Grierson, P. 63.

२—आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें—राहुल सांकृत्यायन।

महत्वपूर्ण योगदान माना है।[१] श्री शितिकंठ मिश्र[२] ने तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए सम्पूर्ण श्रेय खड़ीबोली को ही दिया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने राष्ट्रभाषा खड़ीबोली को ही माना है। वस्तुतः खड़ीबोली को बहुत-सी स्थितियों में से निकलना पड़ा है, तब ही यह इस स्थान तक पहुँच पायी है। यही कारण है कि इसने अनेक भाषाओं के शब्द लेकर उनसे समझौता कर लिया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा[३] के कथनानुसार इसमें फ़ारसी-अरबी के शब्दों का व्यवहार अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक है। यही कारण है कि इस भाषा का प्रसार खड़ीबोली प्रदेश में ही न रह कर देश के अधिकाँश भागों में हो गया है। इस भाषा के महत्व तथा विस्तार को देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि अब तक इसका लोकसाहित्य पूर्णरूप से उपेक्षित रहा है। वैसे यदा-कदा इस पर विद्वानों की दृष्टि जाती रही है परन्तु इस प्रदेश का पूर्णरूप से सिंहावलोकन नहीं हो पाया। खड़ीबोली-प्रदेश तथा इसके लोकसाहित्य का सर्वांग रूप से परिचय तो पहले अध्याय में कराया गया है परन्तु विषय-प्रवेश हेतु मैं यहाँ पर भी परिचय के रूप में कुछ कह देना आवश्यक समझती हूँ।

खड़ीबोली का लोकसाहित्य, उसके अध्ययन की आवश्यकता और महत्व— वस्तुतः किसी भी देश के लोकसाहित्य का अध्ययन उसकी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला एवं साहित्य, सामाजिक जागरण एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक होता है।

साधारणतः लोकसाहित्य के अध्ययन का महत्व अब सभी को ज्ञात है, यहाँ पर मैं सभी भाषाओं के लोकसाहित्य के संबंध में न कहकर केवल खड़ीबोली लोक-साहित्य के अध्ययन के महत्व को ही स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रही हूँ।

खड़ीबोली आज राष्ट्रभाषा के स्थान पर है, अतः उसकी मूलभूमि को और विगत-संस्कृति को जानने की जिज्ञासा स्वाभाविक ही है। यह साहित्य के द्वारा नहीं जानी जा सकती और लिखित साहित्य अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है, जो लिखा भी गया है उसका रूप-रंग केवल उपलब्ध साहित्य संबंधी सामग्री ही के माध्यम से समझा जा सकता है।

इसी कारण विविध जनपदों के लोकसाहित्य का अध्ययन किया जा रहा है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बघेली, गढ़वाली, हरियानी तथा राजस्थानी आदि लोक-

---

१—सम्मेलन पत्रिका, भाग ४०, संख्या ४, आश्विन-सं० २०११ पृ० १५

२—खड़ीबोली का आन्दोलन—शितिकंठ मिश्र, पृ० १

३—ग्रामीण हिन्दी—धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १६-१७

साहित्य पर अनेकों विद्वानों ने कार्य किया भी परन्तु सम्पूर्ण लोकसाहित्य का परिचय प्राप्त करने के लिए यही पर्याप्त नहीं है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण कड़ी खड़ीबोली का लोकसाहित्य, अभी तक अछूता ही रहा है। हाँ, मेरठ जनपद[१] के लोकगीतों पर अवश्य कार्य हुआ है। परन्तु वह भी इस कड़ी को पूर्ण रूप से पूरा नहीं करता।

सत्य तो यह है कि 'ग्रामवासिनी[२] हिन्दी या आदि' हिन्दी के जनसाहित्य का सबसे बहुत पहले संग्रह और प्रचार हो जाना चाहिये था किन्तु इधर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

लोकसाहित्य से संबंधित सामग्री का संकलन तथा उसका अध्ययन विशेषत: इसलिए किया जाता है कि मानव-विज्ञान और जन-संस्कृति के वैज्ञानिक अध्ययन का वह एक महत्वपूर्ण माध्यम बन सके।

समस्त विश्वासों तथा प्रथाओं के पीछे भी जानी-अनजानी कहानी छिपी होती है। संपूर्ण संस्कारों—जन्म, जीवन, मरण आदि पर लोकसाहित्य मुखर है, इसीलिए बिना इस साहित्य का गंभीर अध्ययन किए जन-जीवन और लोक-संस्कृति के मूल तक नहीं पहुँचा जा सकता। इसी से मानव के सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक अध्ययन में सहायता मिलती है। जनजीवन और मानव-विकास के अध्ययन में लोकसाहित्य की इसीलिए अत्यधिक महत्ता है। यह लोककलाओं तथा लोक-संस्कृति में संपर्क बनाये रखने के लिए सेतु है, जिसके सहारे कला तथा संस्कृति विकास के लक्ष्य तक पहुँचती है।

लोकसाहित्य में प्रयुक्त लोकशब्दों, सारगर्भित मुहावरों तथा लोकोक्तियों के द्वारा ही हिन्दी साहित्य अधिक समृद्धिशाली तथा अभिव्यक्ति पूर्ण हो सकता है। लोकसाहित्य में जटिल भावों को व्यक्त करने के लिए सरल, सहज एवं सटीक शब्द भरे पड़े हैं। साहित्यक भाषा को पुष्ट करने के लिए भी लोकसाहित्य की आवश्यकता है। शब्दों की उत्पत्ति एवं परम्परा ज्ञात करने के लिए लोकसाहित्य की सहायता ली जाती रही तथा भविष्य में भी उसकी आवश्यकता है। जिन भावों को साहित्यिक हिन्दी के शब्द व्यक्त करने में असमर्थ रहते हैं उनको लोकशब्द, उक्तियाँ तथा उपमाएँ सहज ही में व्यक्त कर देती हैं।

लोकसाहित्य में विशेषत: जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति ही मिलती है और इसकी सीमाएँ भावों से ही निर्मित होती हैं। इसीलिए लोकसाहित्य के

१—मेरठ जनपद के लोकगीत—डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा (शोध-प्रबन्ध) अप्रकाशित।

२—आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २

अध्ययन में भावभूमि का विशेष महत्त्व है। लोकगीतों की लोकभावना का प्रतिनिधित्व जीवन के स्तर और अवसर, भाव और अभाव में मानव जीवन को प्रभावित करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारा सामाजिक लोकजीवन गीतमय है। मानवीय चेतना के विभिन्न रूपों में राष्ट्रीयता, धार्मिकता, सामाजिकता और साहित्यिकता के आधार पर इनका निर्माण हुआ है।

लोकसाहित्य की भाव-संगति संपूर्ण लोक की मंगलकामना के रूप में ही उद्भासित होती है। लोकसाहित्य लोकमंगल के अतिरिक्त कोई भी मर्यादा नहीं मानता। लोकमानस की इस भावात्मक भावभूमि में जड़-पदार्थ भी चेतन हो उठते हैं तथा पशु-पक्षी भी मानव भाषा में बोलते हैं। लोकसाहित्य में ऐसा समाजवाद है जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सर्वोच्च उदाहरण है। वहाँ जड़-चेतन, देवी-देवता, मनुष्य-दानव—सब ही एक तल पर आ जाते हैं।

मानवोचित सब ही भावनाएँ यहाँ पर साकार हैं। लोकसाहित्य में निकृष्ट से निकृष्ट भावनाओं को भी उतना ही स्थान मिला है, जो उच्च से उच्च भावना को मिला है। लोकसाहित्य, लोक की मंगलकामनाओं की विराट् सौन्दर्याभिव्यक्ति है जिसमें किसी भी प्रकार की विकृति नहीं आ सकती। इस विराट् सौंदर्य को, जो संसार में भी हर लोक मानव तथा लोकसमाज की पृष्ठभूमि में समानरूप से जीवित है, समझने और जानने के लिए इस भावभूमि को समझना अत्यधिक आवश्यक है।

अध्ययन के आधार—खड़ीबोली प्रदेश का लोकसाहित्य अत्यन्त व्यापक विषय है जिसके विस्तार तथा वर्गीकरण के संबंध में उल्लेख किया जा चुका है। अब प्रश्न यह है कि इस प्रदेश के लोकसाहित्य का अध्ययन किस-किस दृष्टि से किया जा सकता है। अध्ययन के दृष्टिकोण के अनुसार मतभेद होना स्वाभाविक है। मेरी दृष्टि से मुख्य दृष्टिकोण निम्नलिखित माने जा सकते हैं जो इस प्रकार हैं:—

सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक पक्ष—सामाजिक के अन्तर्गत कौटुम्बिक संबंध, आदर्श प्रेम, नारी की परतंत्रता तथा रीति-रिवाज आते हैं। जातियों के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य से बढ़कर कोई विषय नहीं। इसके अन्तर्गत सामाजिक आचार-विचार, रीति-रिवाज तथा सामाजिक कुरीतियों आदि का भी उल्लेख मिलता है। इससे मनुष्य के जीवन और उद्गम के संबंध में ज्ञात होता है।

लोकसाहित्य के अध्ययन में हमें नैतिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक तथा भौगोलिक शास्त्र संबंधी तथ्य भी उपलब्ध होते हैं। लोकसाहित्य का अध्ययन

किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला एवं साहित्यिक-सामाजिक जागरण तथा आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक होता है। लोकसाहित्य में प्रस्तुत समाज का नैतिक पक्ष, सामाजिक जीवन के संबंध में भिन्न नैतिक मान्यताएँ, उनसे संबंधित लोककथाएँ व गाथाएँ भी इसी लोक-साहित्य में आती हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन बहुत आवश्यक है। यह सामाजिक रीति-रिवाजों की रीढ़ की हड्डी है।

१. **धार्मिक पक्ष**—लोकजीवन पूर्णतया धर्म के ऊपर ही आधारित है। अपने जीवन-धर्म तथा जीवनदर्शन के अनुरूप ही उनके आचरण भी होते हैं। इसमें देवी-देवताओं की कहानियाँ, अनेक प्रकार के व्रत-उपवास, मंत्र-तंत्र इत्यादि का वर्णन भी मिलता है। पूजा ,अनुष्ठान, व्रत, लोककथाएँ, अंधविश्वास, टोने-टोटके तथा इनसे संबंधित लोककलाएँ सर्वांगरूप से लोकसाहित्य में मुखरित होती हैं जो लोकमानव की कड़ी से कड़ी मिलाती चलती हैं।

२. **भौगोलिक पक्ष**—लोकमानव का वाह्य संसार से अधिक संपर्क नहीं रहता परन्तु वह लोककथाओं, लोकगीतों तथा अनेक लोकोक्तियों द्वारा अपना कार्य चला ले जाता हैं। वह जानता है कि कौन शहर किस स्थान पर तथा किस दिशा में स्थित है और वहाँ कौन-कौन-सी वस्तुएँ होती हैं तथा मौसम कैसा रहता है आदि। स्थान-विशेष की महत्ता और उसके धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष सबको वह जानता-समझता रहता है। लोकगीतों का परदेसी सब दिशाओं में भटकता फिरता है, इसी कारण वह देश-देशान्तरों के गढ़, किले तथा अनेक मुख्य स्थानों से परिचित रहता है।

३. **ऐतिहासिक पक्ष**—लोकसाहित्य इतिहास के पृष्ठों का सबसे बड़ा संरक्षक है। जिन तथ्यों को इतिहास जानता भी नहीं, वह लोकसाहित्य में सुरक्षित रहते हैं। अनेकों ऐसे तथ्य मिल जाएँगे जिनको सुनकर दाँतोंतले उंगली दबानी पड़ती है। ऐतिहासिक कहानियों में 'सिकन्दर' कहानी का उदाहरण है, इस कहानी के आधार पर सिकन्दर को अत्याचारी घोषित किया गया है। जिसका इतिहास में कोई उदाहरण नहीं मिलता।

४. **शैक्षिक पक्ष**—लोककथाओं, लोकोक्तियों तथा लोकनाट्यों का यह पक्ष बड़ा ही सबल है। नीतिकथाओं तथा लोकोक्तियों में मनुष्य के आचरण एवं उसके व्यवहार के प्रति हर स्थान पर शिक्षा मिलती है जिसके प्रति लोक-मानव अत्यधिक आस्थावान् होता है। सभी प्रान्तों के लोकसाहित्य की तरह खड़ीबोली का लोकसाहित्य भी बहुत समृद्ध है तथा गद्य एवं पद्य-मिश्रित गीतों के रूपों में उपलब्ध है।

५. वैज्ञानिक तथा भाषाशास्त्र संबंधी पक्ष—लोकसाहित्य के द्वारा भाषातत्त्व का पता चलता है। भाषाविज्ञान के अध्ययन में यह संग्रह सहायक है। लोकसाहित्य, क्योंकि सहज लोकभाषा में कहा जाता है अतः उसमें कृत्रिमता का अंश नहीं होता। इसमें स्थानीय भाषा का शुद्ध रूप मिलता है जो भाषा-विज्ञान के अध्ययन में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। यह भाषाशास्त्र का अक्षय-भण्डार है।

इस लोकसाहित्य की मौखिक-वार्ता में बुढ़िया पुराण आता है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सबके यहाँ उपलब्ध होता है। इसमें वह यथार्थवादी वस्तुएँ मिलती हैं जो इतिहास को प्रभावित करनेवाली होती हैं। इसमें आदिकाल से लेकर अब तक के इतिहास की सामग्री मिलती है।

लोकसाहित्य से परिचय कराने के लिए हम दो तालिकाएँ नीचे दे रहे हैं। इस प्रदेश के लोकसाहित्य की स्थूल रूपरेखा इन तालिकाओं के द्वारा स्पष्ट हो जायेगी। पहली तालिका में सम्पूर्ण सामग्री का साधारण वर्गीकरण है तथा दूसरी तालिका में व्यक्तियों के अवस्था-भेद के आधार पर वर्गीकरण किया गया है क्योंकि अधिकाँश सामग्री इस अवस्था-भेद से संबंधित व्यक्तियों से ही उपलब्ध हो सकी है।

तालिका नं० १

तालिका नं० २
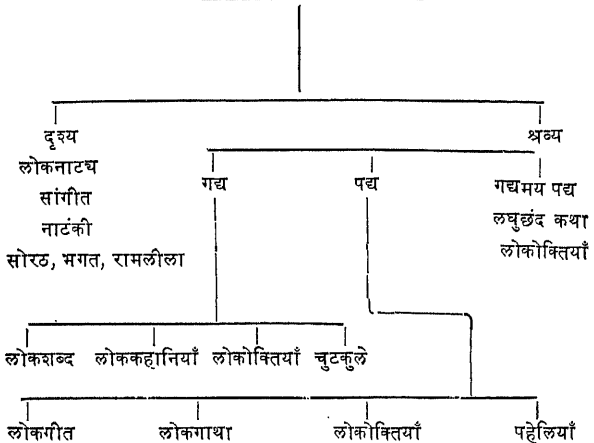
खड़ीबोली का लोकसाहित्य
बाल-लोकसाहित्य
युवक-लोकसाहित्य
वृद्ध-लोकसाहित्य
भजन, गाथाएँ
भरथरी, पूरन
गोपीचन्द
जोगियों के गीत
कहानियाँ
बालकों का
आटे-नाटे
चन्दा-मामा
टेसूँ-पहेलियाँ
बुझौवल
लघुछंद कथाएँ
खेल के गीत
बालिकाओं का
साँझी, गुड़ियों के खेल
व विवाह संबंधी पहेलियाँ
छोटी कहानियाँ
लघु छन्द कथाएँ
युवकों का
युवतियों का
वीररस
लोकगाथाएँ
गीतकथाएँ
क्रियागीत
राष्ट्रीय गीत
साँग
श्रृंगाररस
होली
ऋतुगीत
पल्हायें
गाथाएँ
कहावतें
साँग
करुण रस
प्रेम कथाएँ
पल्हायें
सांग
धार्मिक
अनुष्ठान संबंधी
गीत, व्रत, कथाएँ
कारुणिक
विवाह, सोहर
सावन, होली,
मृत्युगीत, कथाएँ
श्रृंगारिक
विवाह, सोहर
सावन, होली,
कहावतें तथा
कहानियाँ
नीतिसंबंधी
कथाएँ
लोकोक्तियाँ
गीत
फुटकर
गीत
कथाएँ
लोकोक्तियाँ

संपूर्ण प्रबन्ध में लोकसाहित्य के विभिन्न अंगों का उल्लेख है और विभिन्न अध्यायों में क्रम से इनका उल्लेख किया गया है।

अध्याय एक में 'खड़ीबोली' से तात्पर्य, उसका भौगोलिक क्षेत्र, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व, जनसंख्या तथा क्षेत्र का मानचित्र है। अध्याय दो में खड़ीबोली के लोकगीतों का अध्ययन है जिसके अन्तर्गत संकलन के आधार पर वर्गीकरण किया गया है तथा, संस्कार संबंधी, धार्मिक व्रत-त्योहार संबंधी, ऋतु-संबंधी, श्रम-गीत व बालगीतों की विवेचना की गयी है। अध्याय तीन में भी लोकगीतों का ही अध्ययन किया गया है। इसमें लोकगीतों में सामाजिक चित्रण, पारिवारिक संबंधों का उल्लेख, सामाजिकता तथा राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण, आदर्श सतीत्व, राजनैतिक पक्ष, हास-परिहास संबंध और लोक-वाद्यों की आवश्यकता, उनका उल्लेख तथा इसके साथ-साथ संगीत-पक्ष भी संक्षेप में दिया गया है। अध्याय चार में लोककथाओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है, संग्रहीत सामग्री के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया है तथा अभिप्रायों और कथा-शिल्प और भावाभिव्यक्ति का भी अध्ययन करने की कुछ चेष्टा की गयी है। अध्याय पाँच में लोकगाथाओं का अध्ययन किया गया है। लोकगाथाओं की उपलब्ध सामग्री का वर्ण्यविषय, पात्रउद्देश्य तथा प्रकाशित सामग्री का उल्लेख मिलता है।

इसीप्रकार अध्याय छः में लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ तथा स्फुट-सामग्री का अध्ययन है। लोकोक्तियों का वर्गीकरण, और उनका महत्व, मुहावरे और पहेलियों का वर्गीकरण तथा महत्व और स्फुट सामग्री के अन्तर्गत लोकसमाज में प्रचलित मल्हार तथा दोहा-साहित्य का उल्लेख है। अध्याय सात में लोकनाट्यों पर प्रकाश डाला गया है। लोकनाट्यों की स्थानीय विशेषताएँ, वर्ण्य-विषय, प्रसाधन, वेशभूषा, रंगमंच, कथोपकथन, आधुनिक रूप तथा एक स्वाँग-लेखक का उदाहरण सहित विस्तृत उल्लेख है। अध्याय आठ में खड़ीबोली जनपद की लोकसंस्कृति पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है। इसके अन्तर्गत लोक-विश्वासों की व्यापकता, सामाजिक आचार-विचार, धार्मिक स्वरूप, लोककला, लोक-नृत्य, वेशभूषा, खान-पान, लोक-भाषा व शब्द, यहाँ के निवासियों का स्वभाव, मनोरंजन तथा मेलों आदि का उल्लेख किया गया है। अतः संपूर्ण मूल प्रबन्ध आठ अध्यायों में ही है। अंत में सहायक हिन्दी-अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची है।

परिशिष्ट अधिक विस्तृत हो जाने के कारण मूल-प्रबंध से स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें लोकगीत, लोककथाएँ, संकलित लोकशब्दावली है।

अपनी कठिनाई का उल्लेख तथा विषय का परिचय देने के पश्चात् अत्यन्त बहुमूल्य कार्य आभार-प्रदर्शन का बच रहता है। वास्तव में अपने गुरुजनों तथा शुभचिन्तकों के प्रति धन्यवाद के शब्द कहना अपने आप ही को चोर बनाना है; परन्तु शब्दों की सीमाओं और भावनाओं की प्रबलता देख कर अंत में इसी का सहारा लेना पड़ता है।

श्रद्धेय गुरुदेव डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के प्रति जिनके पाण्डित्यपूर्ण पथ-निर्देशन में रह कर तथा जिनकी कृपा से मैं इस प्रबन्ध को प्रस्तुत करने योग्य हुई, मैं आजन्म ऋणी रहूँगी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के अमूल्य परामर्श से मेरी सीमित शक्तियों को सदैव बल मिला, इसके लिए मैं उनकी अत्यन्त आभारी हूँ। डॉ०सत्येन्द्र मेरे गुरुतुल्य हैं, उनके परामर्श तथा समय-समय पर उनकी सहायता के लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल से यद्यपि मैं केवल एक बार ही मिल सकी, परन्तु उनके द्वारा एक ही बार दिए गए सुझावों ने मेरा सदैव जो मार्गप्रदर्शन किया है उसके लिए मैं अपना आभार ही प्रकट कर सकती हूँ।

पूज्यवर प० रामनरेश त्रिपाठी हमारे लोकसाहित्य-परिवार के सबसे वयोवृद्ध व्यक्ति हैं। उन्होंने इस क्षेत्र में अर्जित किये अपने अनुभव-ज्ञान का भाग जो मुझे दिया, उसके प्रति आभार प्रकट करने में अपने आप को असमर्थ पा रही हूँ।

डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा जो इस प्रदेश के लोकसाहित्य पर प्रबन्ध रूप में कार्य करने वालों में अगुआ रहे हैं। इसी नाते उन्हें मैं अपना बड़ा भाई मानती हूँ और इसी आत्मीय संबंध के कारण मुझे उनसे किसी भी समय कोई भी सहायता लेने में कभी कोई संकोच नहीं हुआ और वह भी मुक्त तथा उदार-हृदय से सदैव तत्पर रहे। उनके प्रति मैं आभार ही प्रकट कर सकती हूँ।

डॉ० उदयनारायण तिवारी तथा डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने समय-समय पर पुस्तकों तथा आवश्यक सुझावों के द्वारा मेरा कार्य सरल किया और प्रोत्साहन दिया, उसके लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के अवकाश ग्रहण करने के बाद उनका कार्यभार सँभाला और उस पद पर आने के बाद से उन्होंने मेरे प्रति जो अपना उत्तरदायित्व सहर्ष निभाया एवं सतत कार्यशील रहने की प्रेरणा दी, इससे मुझे अतिरिक्त बल मिला। उनको मैं सादर धन्यवाद देती हूँ।

उन सभी अवस्था के ग्रामवासियों की, जिनके संपर्क में आकर मैंने यह संकलन किया, जिन्होंने अपनी गुप्त-निधि में से हिन्दी साहित्य को अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया, जिनके सदय सहयोग के बिना मैं इस दुरूह कार्य को करने

में सर्वथा असमर्थ ही रहती तथा अपनी आकांक्षा को कार्यरूप में परिणित ही नहीं कर सकती थी——उन सभी व्यक्तियों की मैं बहुत कृतज्ञ हूँ ।

प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग संग्रहालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नेशनल-लाइब्रेरी, कलकत्ता, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा, आगरा-विश्वविद्यालय, आगरा, मेरठ कालेज, मेरठ के पुस्तकालयों के अधिकारीगण धन्यवाद के पात्र हैं जिनसे अध्ययन काल में आवश्यक सहायता व सुविधा प्राप्त हो सकी ।

इनके अतिरिक्त उन सभी ज्ञात-अज्ञात सहयोगियों का, जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में पृष्ठभूमि में रह कर मेरे शुभचिन्तक रहे और पग-पग पर मेरे पथ को सुगम और प्रशस्त बनाने में सहायता की, उन सबका मैं हृदय से आभार स्वीकार करती हूँ ।

इस विषय-काल की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों की भी धन्यवाद के समय उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

अपने विश्वविद्यालय का आभार प्रकट करने के मोह को भी मैं संवरण नहीं कर पा रही हूँ, जिसके महत्वपूर्ण गरिमामय बरगद की एक पत्ती को स्पर्श करने का मुझे भी सौभाग्य मिल सका तथा जिसके ज्ञान मण्डित वातावरण में मैं साँस लेती रही ।

अंत में अपनी सीमित क्षमता तथा बुद्धि के कारण हुई त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ ।

सत्यागुप्त

२३ अगस्त, १९६१
हिन्दी-विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय,
प्रयाग ।
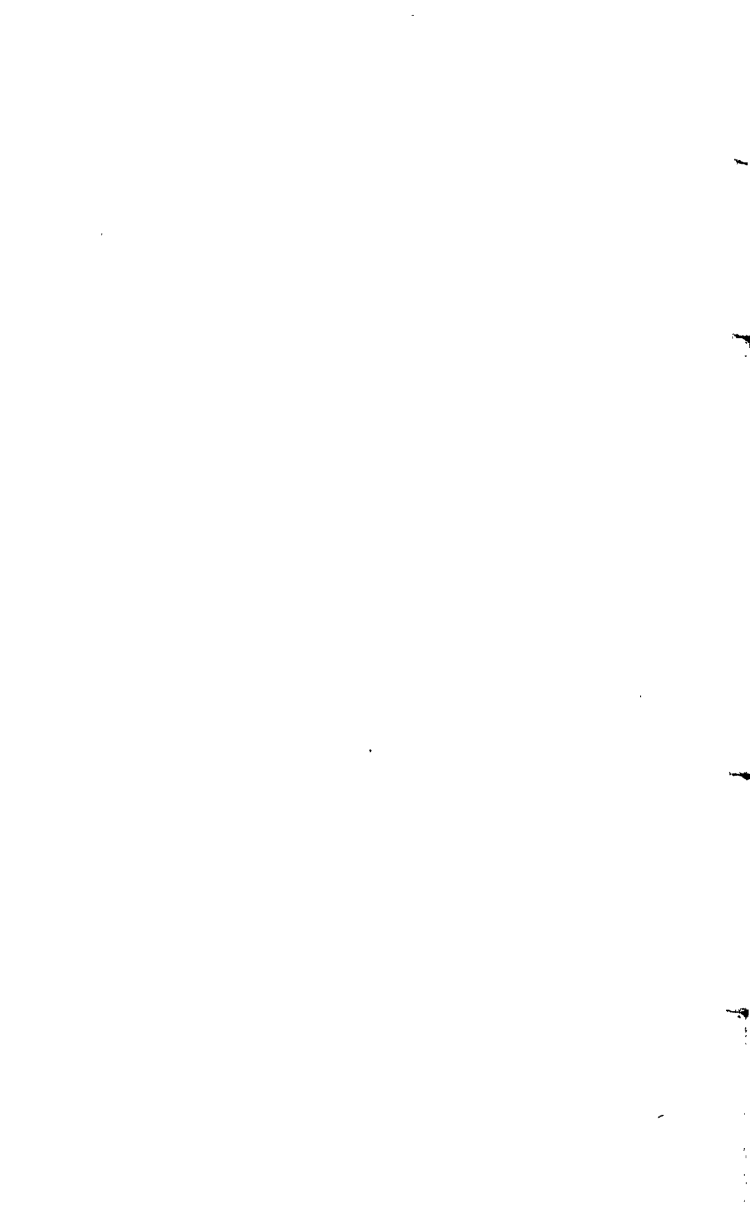
खड़ीबोली-लोकसाहित्य
का
परिचय और पृष्ठभूमि
१
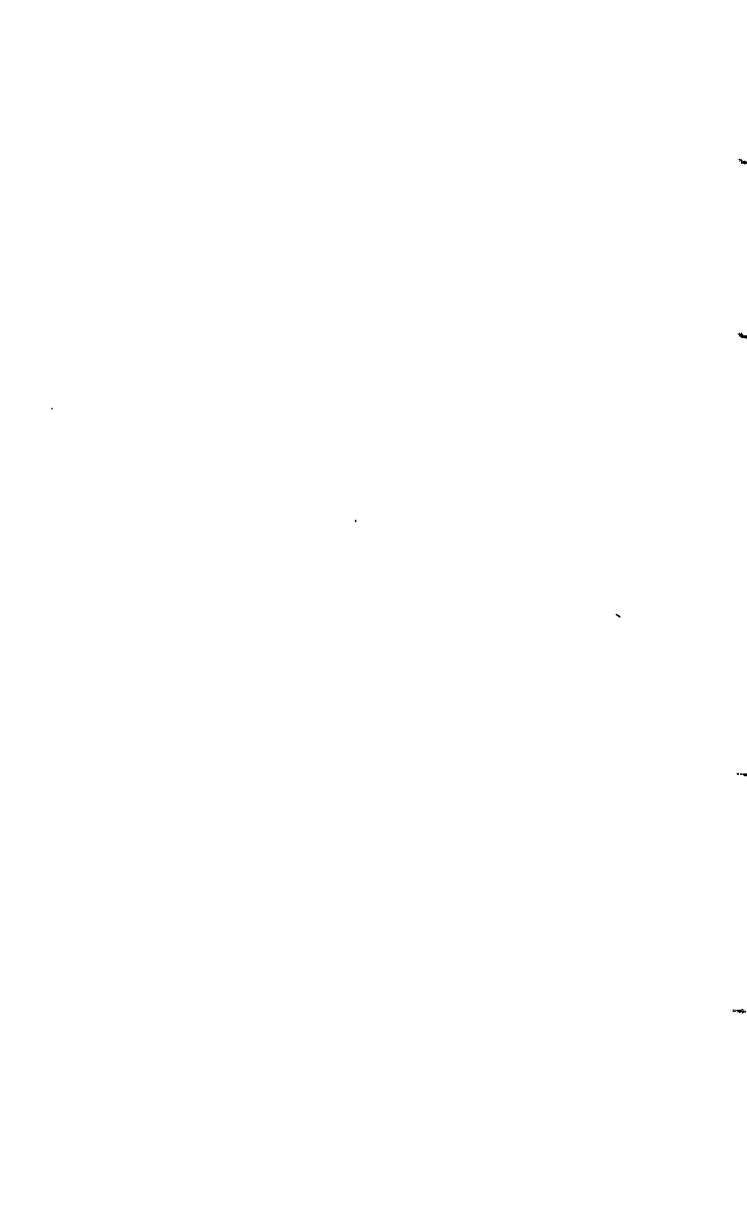
खड़ीबोली का नामकरण—'खड़ीबोली' शब्द से तात्पर्य खड़ीबोली-प्रदेश में बोली जानेवाली जनपदीय लोकभाषा से है। भूमिका में यह स्पष्ट किया जा चुका है।

खड़ीबोली प्राचीन कुरु जनपद में बोली जानेवाली कौरवी का ही अधिक प्रचलित नाम है। मूलत: यह दिल्ली, मेरठ की प्रादेशिक तथा ठेठ बोली है। पश्चिमी हिन्दी की विभाषाओं में खड़ीबोली का विशिष्ट स्थान है।

"खड़ीबोली उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद, बिजनौर, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर और मेरठ—इन पाँच ज़िलों, रामपुर रियासत और पंजाब के अम्बाला ज़िले में बोली जाती है। यह भूमिभाग प्राचीन समय में कुरु जनपद था। यह बात कुतूहलजनक है कि इस बोली का शुद्ध रूप अब भी उसी स्थान के निकट मिलता है जिस स्थान पर कुरु-देश की प्रसिद्ध राजधानी हस्तिनापुर थी। खड़ीबोली हरिद्वार से प्राय: १०० मील नीचे तक गंगा के किनारे की बोली कही जा सकती है।[१]"

हिन्दी के जिस स्वरूप को राष्ट्रभाषा का सम्मान दिया गया है वह न सूरसागर की हिन्दी है न 'मानस' की, बल्कि 'खड़ीबोली' हिन्दी है। गौरव की इस चोटी तक पहुँचने के लिए उसे अनेक संघर्षों से होकर गुजरना पड़ा है। यह तो निर्विवाद हो गया है कि दिल्ली, मेरठ, प्रांतीय विभाषा के आधार पर ही वर्तमान राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास हुआ, परन्तु आरंभ में इसका नाम खड़ीबोली क्यों पड़ा, यह विद्वानों के तमाम प्रयत्नों के बाद भी विवादग्रस्त ही है।

जहाँ तक ज्ञात हो सका है, खड़ीबोली शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग सन् १८०३ ई० में लल्लूलाल जी और सदल मिश्र ने फोर्टविलियम कॉलेज, कलकत्ता में किया। और उसी वर्ष उन्हीं प्रयोगों के आधार पर गिलक्रिस्ट ने भी खड़ीबोली शब्द का चार बार प्रयोग किया। इसके पूर्व इस भाषा का कोई विशेष नाम नहीं था और न नामकरण की आवश्यकता ही समझी गयी। हिन्दुस्तान की बोलचाल की भाषा को बहुत दिनों से 'हिन्दुस्तानी' कहा जाता था। इस बोली

---

१ विचारधारा—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १२

के लिए आवश्यकता पड़ने पर इन्द्रप्रस्थ की बोली, दिल्ली की बोली या हरियानी बोली कहा जाता था और इसका अर्थ भी सहज ही समझ में आ जाता था क्योंकि किसी प्रान्त या देश के नाम पर बहुधा वहाँ की बोली भाषा का नामकरण भी होते देखा गया है जैसे—हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, शौरसैनी, भोजपुरी, बंगला, तामिल आदि। परन्तु खड़ीबोली, प्रान्त या देश का नाम नहीं है, अतः कुरु प्रदेश की बोली के लिए प्रयुक्त यह विशेषण स्थानपरक न होकर गुणपरक ही होगा, क्योंकि विशेष गुणों के आधार पर भी भाषाओं के नाम चल पड़ते हैं। संस्कृत, पाली, अपभ्रंश, रेखता आदि इसी प्रकार के नाम हैं।[1]

इस समय सर्वसम्मत मत यही है कि मेरठ, बिजनौर की खड़ीबोली, उर्दू तथा आधुनिक साहित्यिक हिन्दी दोनों ही की मूलाधार है।'[2]

'खड़ीबोली पश्चिम में रोहिलखंड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अम्बाला जिले की बोली है। खड़ीबोली तथा हिन्दी, उर्दू आदि का संबंध ऊपर बतलाया जा चुका है। मुसलमानी प्रभाव के निकटतम होने के कारण ग्रामीण खड़ीबोली में भी फ़ारसी, अरबी शब्दों का व्यवहार अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक है किन्तु ये प्रायः अर्द्ध-तत्सम अथवा उद्भव रूपों में ही प्रयुक्त करने से खड़ीबोली में उर्दू की झलक आने लगती है।

साहित्यिक कौरवी को हिन्दी, उर्दू और दक्खिनी हिन्दी कहा जाता है। लोकभाषा के रूप में बोली जानेवाली कौरवी के लिए कई नाम प्रचलित करने का प्रयत्न किया गया है। डॉ० ग्रियर्सन ने इस पश्चिमी (हिन्दी) को 'देशज हिन्दुस्तानी' कहा। पंडित राहुल सांकृत्यायन ने जनपद के आधार पर कुरु जनपद की मातृभाषा होने के कारण तथा खड़ीबोली साहित्यिक हिन्दी से पृथक् करने के लिए इसका नामकरण 'कौरवी बोली' किया जो यद्यपि बहुत उपयुक्त प्रतीत होता है पर अधिक प्रचलित नहीं है।

इस प्रबंध में हमने कुरु-प्रदेश के लोकसाहित्य का अध्ययन करते समय इस बोली का नाम 'कौरवी' न लेकर 'खड़ीबोली' ही प्रयुक्त किया है। इसका कारण है इसका सर्वप्रचलित व अधिक परिचित होना। 'खड़ीबोली' नाम से वैसे भी उसकी प्रकृति का परिचय मिलता है।

खड़ीबोली के अन्य नाम—खड़ीबोली के अन्य नाम भी प्रचलित हैं, पर वह खड़ीबोली के पर्यायवाची नहीं कहे जा सकते हैं। उनमें कुछ न कुछ अंतर अवश्य है। जनसाधारण को इनसे भ्रम उत्पन्न हो सकता है। ये नाम इस प्रकार

१ खड़ीबोली का आन्दोलन, शितिकंठ मिश्र, पृ० १-२

२ ग्रामीण हिन्दी डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, १७-१८

हिमाचल प्रदेश

पंजाब

अम्बाला

करनाल

सहारनपुर

देहरादून

मुजफ्फरनगर

मेरठ

बिजनौर

नैनीताल

हिमालय पर्वत

मुरादाबाद

रामपुर

बुलंदशहर

अलीगढ़

बदायूँ

बरेली

पीलीभीत
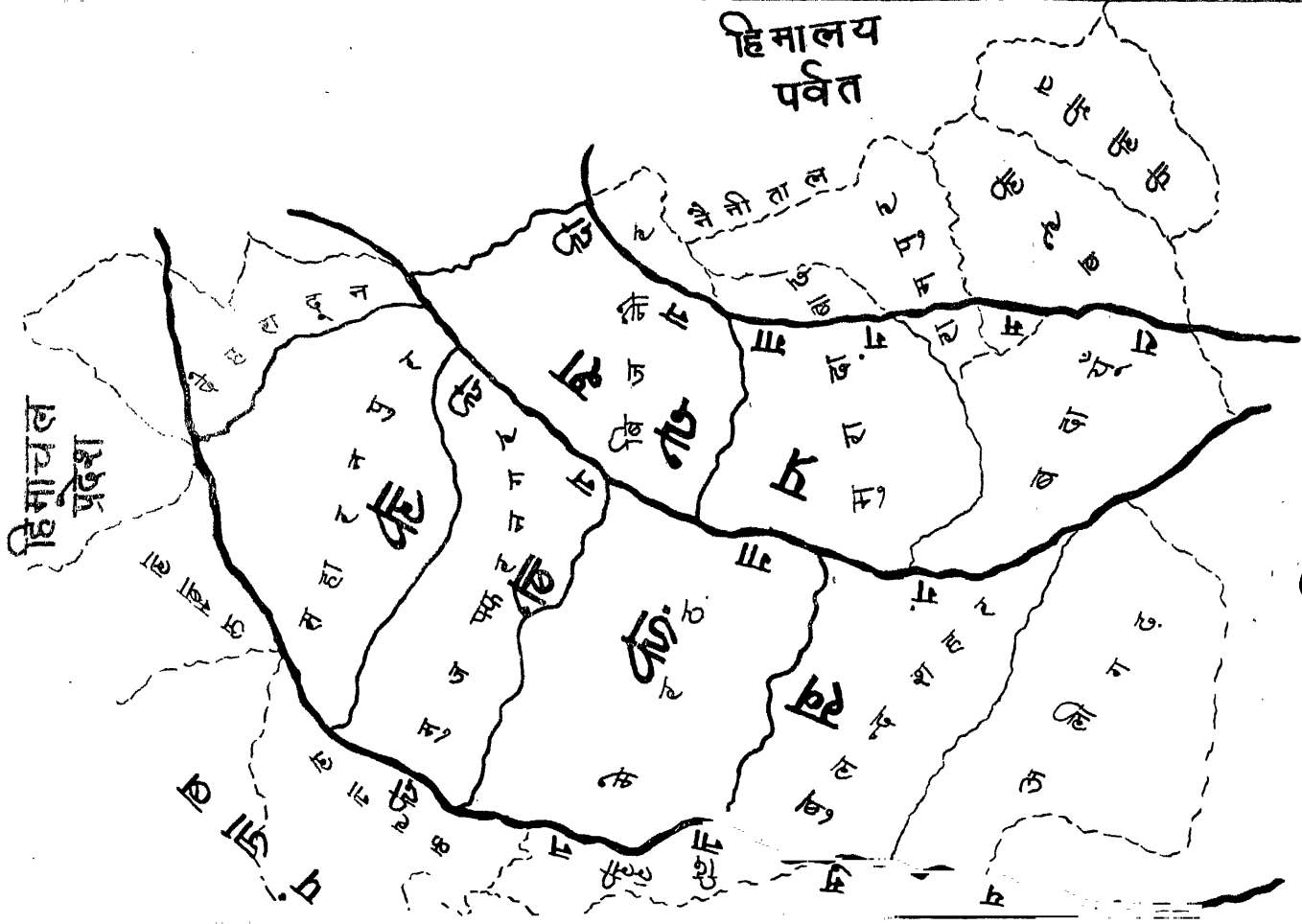
खड़ी बोली प्रदेश

चित्र सं० १

हैं—बांगरू, जाटू, हरियानी, पश्चिमी बोली, वर्नाक्यूलर हिन्दी। खड़ीबोली के भी मुख्य दो भेद हैं— पूर्वी और पश्चिमी। पश्चिमी खड़ी, हरियानी, बांगरू कहलाती है। बांगरू, सरस्वती और यमुना के बीच बसे हुए लोगों की बोली कही जा सकती है। बांगरू और खड़ीबोली की सीमा रेखा यमुना ही है। वास्तव में बांगरू देश कुरुजनपद का ही अंश है और बांगरु खड़ीबोली का रूपान्तर मात्र है। यही बोलीगत अन्तर केवल 'है' और 'सौ' 'हूँ' 'सू' का है। हरियानी गुड़गाँव, रोहतक तथा अम्बाला जिले की बोली है।' हरियानी और बांगरू को पृथक् करने वाली कोई सीमान्त रेखा नहीं है। दोनों ही बोलियाँ एक-दूसरे से प्रभावित मिलती हैं। हरियानी को 'स' और 'ह' के भेद से दो भाग नहीं कह सकते। कुरु-पंचाल के पश्चिमी हिस्से में अब भी 'स' बोलते हैं तथा 'स' जाटों के मुख्य कुरु प्रदेश में भी बोलते हैं।

आदर्श खड़ीबोली—खड़ीबोली का शुद्ध रूप मेरठ, दिल्ली के गाँवों में अब भी सुरक्षित है। यद्यपि मुसलमानों के प्रभावों से उसमें अन्तर आ गया है, पर फिर भी जाट, गूजर, हिन्दू, मुसलमान रांगड़ों में अधिक भेद नहीं है। शहरों की भाषा अवश्य अशुद्ध हो गयी है। यमुना के किनारे की भाषा जटवाड़े के नाम से प्रसिद्ध है। बागपत बड़ौत की बोली शुद्ध खड़ीबोली प्रतीत होती है।

खड़ीबोली क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा का परिचय—यह शक्ति सम्पन्न जाति व प्रदेश की बोली है। इसका प्रत्येक स्वर और व्यंजन इसके बलिष्ट उच्चारण से फूटा पड़ता है। यह अपनी कर्कशता में भी आकर्षक और दीर्घता में भी मधुरता रखती है। खड़ीबोली, पंजाब की तरह आकारान्त बोली है। इसमें द्वित्व की प्रवृत्ति भी बहुत मिलती है। इसी प्रवृत्ति के कारण रोटी, खाती, जीजा, धोती, होता आदि का उच्चारण मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर आदि कुरु प्रदेश के जिलों के मूलनिवासी रोट्टी, खात्ती, जिज्जा, धोत्ती आदि करते हैं। वहीं इसका पूर्ण प्रभाव देखा जाता है।

खड़ीबोली के ध्वनि मध्यवर्ती 'ह' का लोप हो जाता है। उदाहरण के लिए—'सैर कितनी दूर है, 'यहाँ पर शहर शब्द के बीच की 'है' ध्वनि का लोप हो गया। वह 'ए' में परिवर्तित हो गया। 'तुम्हारी' का 'तुमारी' हो जाना भी इसी का उदाहरण है। इसमें महाप्राण वर्णों का अल्पप्राण हो जाना भी साधारण बात है। उदाहरण के लिए 'मुझे दो का 'मुजे दो'।

'ड़' 'ढ़' साहित्यिक बोली से भिन्न रूप में प्रयुक्त होते हैं, यथा—गाड़ी, बड़ा न कह, गाडी, बडा कहा जाता है।

इसमें तद्धित का भी बहुत प्रयोग है। उदाहरण के लिए—जाट के नाई के कू

कहियो। आकारान्त शब्दों का वर्तमान, भूत और भविष्य काल में निम्नलिखित रूप हो जाता है—

आवै — जावै

वर्तमानकाल :	वो जावै	
	हम जावै	
	तू जावै	
	मैं जाऊँ	
भूतकाल :	वो जावै था	: वो जावै थी
भविष्यकाल :	वो जावैगी	
	तुम जइयो	
	मैं जाऊँ क्या	
	हम जावें क्या	
	वो जावें क्या	
	वो जा रह्या	वो जा रा
	वे जा रे	वे जा रये
	हम जा रे	हम जा रये
	तू जा रहा	तू जा रा

खड़ीबोली के क्षेत्र में द्विरुक्ति भी बहुत है। इस पर पंजाब का भी बहुत प्रभाव है। यथा—रोटी-वोटी, खावें-वावें, दाल-वाल, चाय-वाय, लौंडे-लारे। अ और आ के बाद ई के बदले य होता है यथा—आई, जाई के स्थान पर आय, जाय तथा भविष्यत् में आय है, जाय है।

खड़ीबोली में अव्यय के प्रयोग इस प्रकार हैं—अक, मैंका, हैंगे, जद, नू ही, इंघै, तिघें, किघें, उघें आदि। खड़ीबोली में 'ही' का स्थान बहुधा 'ई' ले लेती है। यथा—किसने कही को, किसने कई हो जाता है। खड़ीबोली में स्वरागम, स्वरलोप तथा स्वर-परिवर्तन के उदाहरण भी मिलते हैं। तुम का तम, इकट्ठा का कट्ठा, मिठाई का मिट्ठा, मीठे को भी मिठाई कहते हैं। साहित्यिक हिन्दी का न खड़ीबोली ण में तथा ल—क में परिवर्तित हो जाता है।

मूर्धन्य व्यंजन वर्णों का अत्यधिक व्यवहार होता है। मध्यम तथा अन्यत्र दन्त्य न, व, ल क्रमशः ण और क में परिवर्तित हो जाते हैं यथा—सोहना, सोहणा, मनुष्य-माणस : बरधा-बकध

स्वराघात वाले दीर्घ स्वर के पश्चात् का व्यंजन द्वित्व हो जाता है—व्यंजन

के पूर्व ई, ऊ इ–उ में बदल जाते हैं । आ किंचित् ह्रस्व हो जाता है। उदाहरणार्थ —घीसा, घिस्सा : मीठा-मिठ्ठा : ऊपर-उप्पर : खाता-खात्ता : बोली-बोल्ली ।

संज्ञाओं के विकारी रूप बनाने के लिए ओ या ऊ लगा दिया जाता है । 'घर में-घरौ मां, घर जा रह्या-घरों जा रह्या ।

क्रिया में 'ह' या 'था' की अन्तर्भुक्ति हो जाती है–आवै, जावै, खावै, करै ।

खड़ीबोली में संबोधन इस प्रकार है—री-अरी, अरे, अरी, बोब्बो-मैन्ना, अबे-ओबे ।

खड़ीबोली में संबंधवाची शब्दों के अर्थ स्पष्ट हैं । खड़ीबोली भाषा, शब्दों में व उसके अर्थों में बहुत स्पष्ट है। इसका प्रभाव वहाँ के निवासियों के जीवन पर भी पड़ा है । यथा—भाई-भाभी, बहन-बहनोई, साला-सलहज, साली-साढ़ू, ननद-नन्दोई, ननद-नन्दौत, बहन-भांजा, पूत-पोता, धी-धेवता, मां-मावसी, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, तायसरा, पीतसरा, मौसस, मौलसरा, सास-ससुर, पीहर-मैका, ननिहाल-सासरे ।

खड़ीबोली में प्रयुक्त होनेवाले कुछ सार्थक शब्द जिनका प्रयोग साथ-साथ होता है, उनका निकट सम्बन्ध प्रदर्शित करता है । यथा : बणिये-बाम्मन, जाट-गुज्जर, साग-भाज्जी, गाना-बजाना, रोना-धोना, बुनाई-सिलाई, उठना-बैठना, जीना-मरना, खुशी-गमी ।

स्वराघात युक्त दीर्घस्वर के बाद के व्यंजन का इसमें द्वित्व हो जाता है, तब दीर्घस्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है। यद्यपि इसका उच्चारण भी किंचित् ह्रस्व ही हो जाता है। द्वित्व करने की प्रवृत्ति भी अधिक है। उदाहरणार्थ—बाप-बाप्पू, बासन-बास्सन, गाड़ी-गड्डी, बेटा-बेट्टा, रोटी-रोट्टी, लोगो पै-लोग्गों पै ।

खड़ीबोली का अन्य बोलियों से साम्य तथा पार्थक्य

खड़ीबोली का पंजाबी से बहुत निकट का सम्बन्ध तथा समानता है। पंजाबी से समानता का कारण है 'ग' और 'आ' का प्रयोग। पंजाबी भी आकारान्त है। यह सगी बहनें प्रतीत होती हैं। इनमें द्वित्व तथा द्विरुक्ति में साम्य मिलता है। उदाहरणार्थ—घोड़ा, जब कि ब्रज में ओकारान्त है घोड़ौ ।

खड़ीबोली आकारान्त बहुला है। इसमें मधुरता का भी अभाव है। द्वित्व व टवर्ग का प्रयोग कर्णकटु हो जाता है। इसमें दीर्घान्त पदों की प्रवृत्ति है।

सार्थक के साथ निरर्थक शब्दों का प्रयोग , यह पंजाबी प्रभाव व साम्य है। दाल-दूल, रोटी-वोटी, सैर-सूर, माया-वाया, पानी-वानी ।

खड़ीबोली की भाषागत सीमा, भौगोलिकता तथा ऐतिहासिक परिचय

कौरवी भाषा, उत्तर में सिरमौरी (गढ़वाली), पूर्व में पंजाबी (रुहेली,)

दक्षिण में कन्नौजी तथा ब्रज और पश्चिम में मारवाड़ी तथा पंजाबी भाषाओं से घिरी है। इसके पश्चिम में अम्बाला कमिश्नरी के घग्घर नदी तथा पटियाला और फ़िरोज़पुर ज़िले हैं। उत्तर में हिमालय के पहाड़ और सिरमौर तथा गढ़वाल जिले, पूर्व में रामपुर और मुरादाबाद जिलों के अवशिष्ट भाग तथा बदाऊं ज़िला, दक्षिण में बुलन्दशहर का अवशिष्ट भाग तथा गुड़गाँव और अलवर के कौरवी भाषी अंश हैं।

यह प्रायः सम्पूर्ण अम्बाला और मेरठ कमिश्नरियों की भाषा है। गंगा और यमुना के बीच के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर जिलों का सम्पूर्ण भाग एवं गंगा के पूर्व बिजनौर और यमुना के पश्चिम करनाल रोहतक, हिसार, और दिल्ली कौरवी भाषी हैं। उत्तर में देहरादून और अम्बाला, पूरब में मुरादाबाद और रामपुर, दक्षिण में बुलन्दशहर और गुड़गाँव के बहुसंख्यक लोग यही भाषा बोलते हैं। मेरठ ज़िले की तहसील बागपत को टकसाली कौरवी भाषा का क्षेत्र माना जाता है, जो कौरवी क्षेत्र के प्रायः बीच में पड़ता है।"[१]

खड़ीबोली प्रदेश का ऐतिहासिक महत्व देखने के लिए हम भौगोलिक स्थिति की उपेक्षा नहीं कर सकते। अतः हम दोनों पक्षों का अध्ययन करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

खड़ीबोली प्रदेश विशेषकर सहारनपुर जिला, हरिद्वार में पहाड़ों से घिरा है। बिजनौर ज़िले में भी नजीबाबाद के पास पहाड़ ही हैं। मेरठ, मुजफ्फ़रनगर अवश्य पहाड़ों से कुछ दूर हैं पर फिर भी निकट ही है। अतः यहाँ की जलवायु पर इन पहाड़ी प्रदेशों का प्रभाव है। यहाँ की जलवायु बहुत अनुकूल रहती है। ठंड अधिक होती है तथा गर्मी पूर्वीय ज़िलों की अपेक्षा कम व सहनीय होती है। यहाँ पर गंगा नदी प्रायः हर ज़िलों में या उसके पास बहती हैं। हरिद्वार में तो गंगा पहाड़ों से निकल कर मैदान में प्रथम बार ही आती हैं। सहारनपुर ज़िले में भी गंगानहर रुड़की तक है और मुजफ्फ़रनगर में शहर से लगभग ७ मील दूर पर शुक्रताल नामक स्थान में भी गंगा बहती हैं। मुजफ्फ़रनगर और बिजनौर इन दोनों ज़िलों के बीच की तो सीमारेखा गंगा ही हैं, अतः दोनों ज़िले ही उसके प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित हैं। मोटर के द्वारा मुज़फ्फरनगर से मेरठ जाते समय रास्ते में यमुना नहर जाती है। गंगा बुलंदशहर ज़िले में अनूपशहर से लगभग ८ मील दूर पर कर्णवास नामक स्थान से होकर बहती हैं। मेरठ से २६ मील दूर गढ़मुक्तेश्वर नामक स्थान से होकर गंगा बहती हैं। इसी कारण यहाँ के

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—नागरीप्रचारिणी सभा, सोलहवाँ भाग, पृ० ४८७।

लोक साहित्य में जनता की गंगा के प्रति आस्था गीतों, व्रतों व कहानियों के रूप में व्यक्त हुई है।

खड़ीबोली प्रदेश का सांस्कृतिक परिचय

खड़ीबोली लोकसाहित्य पर यहाँ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का बहुत प्रभाव पड़ा है। पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के लिए हमें सांस्कृतिक इतिहास पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिये।

"यही यमुना और गंगा के बीच कुरुओं की भूमि है जिसमें तथागत ने अनेक गंभीर उपदेश दिए थे। 'प्रतीत्य समुत्पाद' और 'महानिदान' जैसे तथागत के दर्शन सारभूत सूत्र यहीं पर उपदिष्ट हुए थे। कुरु की भूमि से तथागत की जन्मभूमि काफ़ी दूर है। यहाँ से श्रावस्ती, वैशाली, राजगृह और वाराणसी पहुँचने में महीनों लगते हैं। लेकिन सबसे गंभीर उपदेशों को तथागत ने कुरुभूमि में दिया था। इससे इस भूमि का महत्व मालूम होता है। बुद्धिल, हीनयान और महायान, दोनों सूत्रों और विनय के ज्ञाता थे। वह बतलाते थे, पुराने आचार्यों ने इन सूत्रों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि कुरुदेश की भूमि इतनी सुंदर, वहाँ का जलवायु इतना अनुकूल है जिसके कारण यहाँ के लोग बड़े बुद्धिमान् और विद्याव्यसनी होते हैं। यहाँ की पनिहारियाँ भी पनघट पर पहुँच कर गंभीर धर्म और आदर्श की चर्चा करती हैं। उन्होंने यह भी बतलाया कि जिस भूमि में भगवान् ने अपने अनात्मवाद के गंभीर दर्शन का उपदेश किया, उसी भूमि में उनसे कुछ ही शताब्दियों पहिले प्रवाहण और याज्ञवल्क्य ने आत्मवाद का उपदेश दिया था। आत्मवाद (उपनिषद् का तत्वज्ञान) जहाँ से निकला, उसी भूमि में जाकर तथागत ने अनात्मवाद का सिंहनाद किया।"[1]

"मध्यप्रदेश के महाजनपदों में प्राचीनतम कुरु-पंचाल थे। कुरु जनपद की राष्ट्रीय भूमि, गंगा और यमुना की घाटियों के ऊपरी भाग में थी। इस जनपद के मूल संस्थापक कदाचिद् वैदिककालीन 'पुरु' जन थे। ये लोग 'भरत' जन के नाम से भी प्रसिद्ध थे। पुराणों की अनुश्रुति के अनुसार कुरु शासकों का संबंध पुरूरवा द्वारा स्थापित ऐल तथा चंद्रवंश से था। कुरुजनपद की राजधानी मेरठ के निकट गंगा के किनारे हस्तिनापुर या आसंदीवंत थी। बाद को पश्चिमी कुरु या कुरु जांगल की पृथक् राजधानी जमुना के किनारे इन्द्रप्रस्थ हो गयी थी। आधुनिक दिल्ली नगर इन्द्रप्रस्थ के स्थान पर ही बसा है। ब्राह्मणग्रन्थों, महाभारत तथा पुराणों में अनेक प्रसिद्ध पौरव अर्थात् कुरुजनपद के राजाओं के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें

---

१. विस्मृत यात्री—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १०१

नहुष, ययाति, दुष्यन्त, भरत, हस्ती, अजमीढ़, कुरु, शान्तनु, धृतराष्ट्र, परीक्षित तथा जनमेजय प्रधान थे।"[१]

महाभारत में वर्णित युद्ध का मूल कारण कुरुजनपद के चचेरे भाइयों के झगड़े ही हैं। दुर्योधन आदि कौरव धृतराष्ट्र के पुत्र थे। युधिष्ठिर आदि धृतराष्ट्र के छोटे भाई पाण्डु के पुत्र थे। कुरुजनपद के राज्य के लिए इन दोनों में झगड़ा हुआ और अन्त में कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें अनुश्रुति के अनुसार आर्यावर्त के लगभग समस्त जनपदों के राजाओं ने एक—दूसरी ओर भाग लिया था। श्रीकृष्ण ने युद्ध के संबंध में शांति के लिये बहुत यत्न किया था और इस प्रयत्न में असफल होने पर स्वकर्तव्य विमुख मोहग्रस्त अर्जुन को भगवद्गीता के रूप में सुरक्षित कर्मयोग का उपदेश दिया था।

कुरुजनपद आज कल अम्बाला, दिल्ली, मेरठ तथा बिजनौर के आस-पास का भाग खड़ीबोली का प्रदेश है और उसकी बोली रहन-सहन तथा उपजातियों का एक विशेष व्यक्तित्व है। उदाहरण के लिए ब्राह्मणों में गौड़ ब्राह्मण, कुरुजनपद से संबंध रखते हैं। गंगा की बाढ़ के कारण हस्तिनापुर के नष्ट हो जाने पर बाद में कुरु-शासकों ने प्रयाग के निकट यमुना के किनारे कौशाम्बी को अपनी राजधानी बना लिया था। पंचाल, काशी तथा मगध जनपदों के शासक कदाचित् मूल कुरुजन से संबद्ध थे, अतः ये जनपद कुरु-जनपद की शाखाएँ माने जा सकते हैं।

'जनपद काल में 'कुरु'-पंचाल' विशुद्ध भाषा, यज्ञ संबंधी नियम, धर्म, शील और आचार की दृष्टि से आदर्श जनपद माने जाते थे। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि कदाचित् ये प्राचीनतम आर्यजनों के प्रतिनिधि थे।[२]

"पूर्वी पंजाब की सबसे बड़ी भौगोलिक इकाई कुरुजनपद थी। वस्तुतः इसके तीन हिस्से थे। कुरु राष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरु जांगल—ये तीन इलाके एक-दूसरे से सटे हुए थे। थानेश्वर के चारों ओर का प्रदेश कुरुक्षेत्र, हिसार का कुरुजांगल और हस्तिनापुर का कुरु राष्ट्र था। मोटेतौर पर सरस्वती से गंगा तक का प्रदेश कुरु-जनपद के अन्तर्गत था।"[3]

संस्कृत भाषाकाल में जो ६०० ई० पू० से प्रारम्भ हुई और पाली भाषा काल में ६०० ई० पू० से १००० तक रही। यह भारत का सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक

---

१. मध्यदेश : ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १६

२. मध्यदेश : ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १७

३. भारत की मौलिक एकता—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ४७

चित्र सं० २

केन्द्र था । यह न केवल ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड की ही वरन् उपनिषदों के आत्मवाद की भी मुख्य भूमि रही ।

साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में जो प्रदेश अगुआ रहा, वह अन्य आचरण में भी संस्कृति के दूसरे अंशों में भी अगुआ रहा । यद्यपि बुद्ध के समय में यह दार्शनिक विचारों में ही प्रधानता रखता रहा । दूसरी बातों में काशी, कौशल, मगध आदि बढ़ गए, क्योंकि राजनैतिक प्रभुता उधर जा रही थी, राजनैतिकता के केन्द्र मगध ने, सारे भारत का केन्द्रीकरण किया । करीब ई० पू० चौथी शताब्दी से लेकर ईसवी की १२वीं सदी तक इसका कोई महत्व नहीं रहा, फिर जब दिल्ली राजधानी रही, मुस्लिमकाल में इसका भाग्योदय हुआ । यह बोलचाल की भाषा रही । उपेक्षित रहने पर भी बीच में जो प्रकाश पड़ा उससे पता चलता है कि यहीं विद्या की कद्र थी । यद्यपि यह राजनैतिक कारणों से उपेक्षित रहा पर विद्या में उपेक्षित नहीं रहा ।

यहाँ मूर्तिकला विशेष नहीं मिलती और न ही उसका अधिक अध्ययन हुआ है । चित्रकला भी अधिक नहीं मिलती ।

लोकसाहित्य में कुछ ऐसे उद्धरण हैं जिससे वैदिक काल के लोकमानस की समानता हो सकती है । उदाहरणार्थ—'पल्हाये' जिनमें इनका आभास मिलता है । इनका प्रचलित रूप प्रश्नोत्तर ही है—

प्रश्न—ए जी कौन जगत में एक है
बीरा कौन जगत में दोय
कौन जगत में जागता
ए जी कौन रह्या पड़ सोय ।

उत्तर—ए जी राम जगत में एक है
बीरा चन्दा सूरज दोय
पाप जगत में जागता
ऐ जी कोई धरम रह्या पड़ सोय ।[1]

"सप्तसिन्धु की भाषा का सर्वश्रेष्ठ माना जाना स्वाभाविक था क्योंकि यहाँ आर्यों की वह पवित्र भूमि थी, जिसकी नदियाँ तथा कूपों तक का यश पाणिनि के समय ई० पू० चौदहवीं सदी तक गाया जाता था । वेदकाल में सप्तसिन्धु हमारे देश का सब से बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र रहा । कुरु पंचाल सप्तसिन्धु के बहुत

---

१. यह रात्रि के समय कोल्हू चलाते समय प्रश्नोत्तर के रूप में गाये जाते हैं ।

निकट था। सप्तसिन्धु का सबसे पूर्वी भाग अर्थात् यमुना और सतलज के बीच का भाग कुरु या कुरुजांगल के नाम से प्रसिद्ध था।

उपनिषद्काल के सबसे महान् ऋषि प्रवाह् जाबालि, सत्यकाम, याज्ञवल्क्य कुरु-पंचाल के रहनेवाले थे। ब्रह्मज्ञान के अखाड़े में कुश्ती मारने के लिए कुरुपंचाल के मल्ल विदेह तक पहुँचते थे, यह उपनिषद् हमें बतात हैं, कुरुपंचाल उपनिषदों की भूमि थी।"[1]

समाज के विभिन्न स्तर

जनपदों में लोक-जीवन का सामाजिक जीवन, आदर्श जीवन होता है। समाज में रहने वालों के लिए जो भी विशिष्ट गुण आवश्यक हैं, वह सभी इनमें मिलते हैं। इनके जीवन में महान् आदर्श होते हैं और उन्हीं के अनुसार यह आचरण भी करते हैं तथा मर्यादानुकूल होते हैं। इनके जीवन में नैतिकता का विशिष्ट स्थान होता है तथा नैतिक आदर्श भी महान् होते हैं। इनके विचार सरल व शुद्ध होते हैं जिनको वह अपने जीवन में व व्यवहार में भी लाते हैं। यद्यपि लोकजीवन में पुस्तकीय अध्ययन अधिक मिलता है पर उनके जीवन दर्शन का तथा मानवीय हृदय का और अपने दैनिक जीवन से संबंधित व्यावहारिक दर्शन शास्त्र का उनका बहुत सूक्ष्म अध्ययन होता है। यह यद्यपि पढ़ना नहीं जानते हैं पर जीवन में सीखे हुए को गुनना अवश्य जानते हैं जिसका आधुनिक लोगों में नितान्त अभाव मिलता है। यह व्यावहारिक होते हैं इसी कारण इनकी लोकोक्तियों, कथाओं तथा गीतों में एक प्रकार का अनुभव जन्य ज्ञान पाते हैं जो उनका निजी है। उनके जीवन में व्यस्तता होती है। वह अपने कर्मठ जीवन में मानसिक व शारीरिक शिथिलता को स्थान नहीं देते। उनका नियमित जीवन होता है जिसके फलस्वरूप जीवन के प्रति दृष्टि-कोण भी सुलझे हुए ही रहते हैं।

समाज किसी भी देश-विशेष के व स्थान-विशेष के जनसमुदाय की प्रचलित परम्परा व आचार-विचारों के आधार पर ही बनता है। जनसमुदाय से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं है। यहाँ पर खड़ीबोली प्रदेश के समाज के विभिन्न स्तर की व्याख्या हम वहाँ के जनजीवन की विभिन्न जातिगत विशेषताओं, विभिन्नताओं तथा उनके जीवनयापन के आर्थिक साधनों से एवं धार्मिक आचार-विचारों के आधार पर ही कर सकते हैं। लोकसाहित्य का समाज से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। लोकसाहित्य लोक-समाज में होने वाले कार्यकलाओं का लेखा-जोखा है जो यथार्थ व अनुपम है। लोकसाहित्य में हम क्या करते व पाते हैं, इसका

---

१. त्रिपथगा: भाषा का भाग्य—राहुल सांकृत्यायन, १ मार्च १९५६

विस्तृत वर्णन हमको उसके विभिन्न सामाजिक स्तर में स्पष्ट मिल सकता है। सामाजिक स्तर क्या है ? हमारे समाज में वर्ग-विभाजन का एक विशेष महत्व है जिसका परम्परा से चला आता हुआ कारण है। समाज में जो वर्ग-विभाजन है, वह सर्वप्रथम तो जन्म के उपरान्त ही हो जाता है। पर वह दृढ़ जीवनयापन के निश्चित और विशिष्ट साधन अपनाने पर ही होते हैं।

जीवनयापन के साधन—भारत का यह भाग कृषिप्रधान है। यहाँ अधिकतर कृषक हैं और कृषि तथा उद्योग ही उनके जीवन-यापन के साधन हैं। बनियों का आर्थिक स्तर विशिष्ट तथा उच्च है। यह समाज का व्यापारी वर्ग है तथा अन्य निम्न जातियों को रुपये का लेन-देन भी इनके जीवनयापन का माध्यम है।

अधिकतर वैष्णव और शैवधर्म के मतानुयायी हैं, वैसे मेरठ, सहारनपुर, बिजनौर में आर्य समाज का भी बहुत प्रचार है। मुसलमानों की संख्या भी पहले बहुत अधिक थी तथा ईसाई धर्म का अपने समय में प्रचुर मात्रा में प्रचार हुआ था। जैन मतावलंबी भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

यह अपने मत व धर्म के अनुसार धार्मिक आस्था रखनेवाले भी होते हैं तथा अंधविश्वासी व भाग्यवादी भी होते हैं। कर्म में पूर्ण विश्वास होता है। जीवन में विशेष आस्था रखने के कारण ही उनके आचार-विचार श्रद्धायुक्त सच्चे तथा धर्मपरायण होते हैं। यह देश, सुख, सुविधासम्पन्न तथा समृद्धिशाली है जिसके फलस्वरूप यहाँ के लोग स्वस्थ, सुखी तथा सन्तोषी होते हैं।

किसी भी जाति व प्रदेश पर उसके भौगोलिक कारणों का भी बहुत महत्व होता है और वे उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। कुरु-प्रदेश बहुत ही धनधान्य पूर्ण देश है तथा यहाँ की जलवायु बहुत ही स्वास्थ्यवर्द्धक और धरती भी बहुत उपजाऊ है।

अतः हम देखते हैं कि इस प्रदेश के अधिकांश लोग अधिक शक्तिशाली होते हैं और सामर्थ्यवान होते हैं। इनका आर्थिक स्तर भी पूर्वी ज़िलों से अधिक सम्पन्न है, जो उनके रहन-सहन, खान-पान तथा व्यावहारिक लेन-देन, रीति-रिवाजों को देखने से ज्ञात होता है। यह स्वास्थ्य तथा खान-पान का भी प्रभाव होता है कि इस प्रदेश के निवासी अधिकतर प्रसन्न वदन, साहसी, आस्थावान, आत्मविश्वासी प्रतीत होते हैं। ये मन के साफ़ स्पष्टवादी, सच्चे व सरल हृदय होते हैं, इसी कारण ये अक्खड़ प्रकृति के होने के लिए कुविख्यात हैं साथ ही यह व्यवहार कुशल भी हैं। ये स्वतंत्र प्रकृति के होते हैं जिसका मुख्य कारण वातावरण व जलवायु है।

खड़ीबोली के लोकगीतों
का
अध्ययन
२
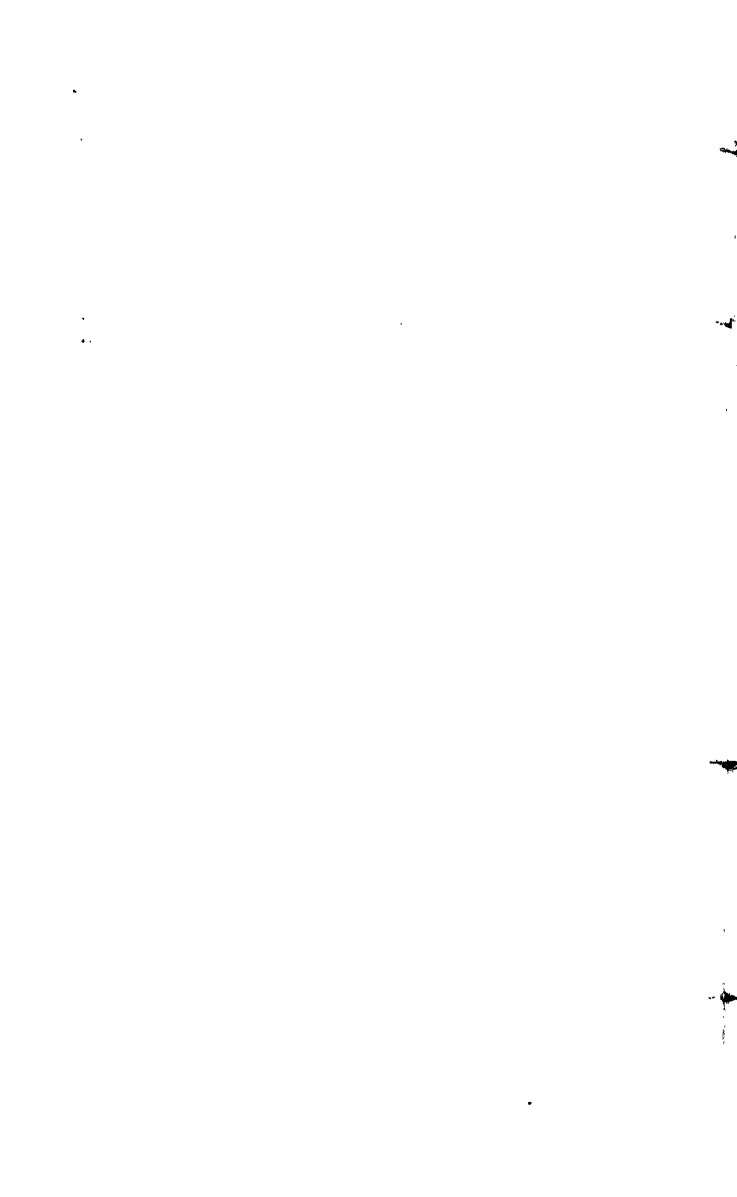
लोकगीत, लोकजन द्वारा, विशेष परिस्थिति, स्थल, कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है। लोकगीत ही लोक-जीवन की वास्तविक भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इनमें मनुष्य मात्र के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सामयिक तथा भावनात्मक चित्रण रहता है। जीवन के सभी पहलुओं व भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के मानसिक तथा शारीरिक व्यापार जैसे भी होते हैं उनका यथार्थचित्रण इन्हीं में मिलता है। लोक-गीतों में सामूहिक चेतना की पुकार मिलती है तथा जीवन में समय-समय पर होने वाली सामयिक क्रान्तियों का आभास मिलता है। लोकगीतों में जनता के जीवन का इतना विशद चित्रण होता है कि उनमें किसी देश की मूल संस्कृति तथा जन-जीवन के दर्शन का पूर्ण चित्रण मिल जाता है। इन लोकगीतों में ही भारत की मूल संस्कृति को लोक संस्कृति का नाम दे कर धरोहर के रूप में सदा संजो कर रखा है।

लोकगीतों के द्वारा हमें जनजीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं और उनके दर्पण में हम विशिष्ट जनसमुदाय की भावनाओं को प्रत्यक्ष देख लेते हैं। हर जाति या जन समाज के अपने गीत होते हैं जिनमें किसी समाज विशेष की जीवनानुभूति की अभिव्यंजना होती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था से, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त लोकगीत अपनी ही प्रकार से प्रेरणा ग्रहण कर समयानुकूल भावनाओं को अभि-व्यक्ति दिया करते हैं।

लोकगीतों से व्यवहारिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है जैसे काम के बोझ को हल्का करना, अत्याचार का विरोध करना तथा सामान्य जनता का मनोरंजन करना।

यह अशिक्षित, सामान्य जनों के उपयोग का कला माध्यम है। उन्हीं के जीवन से इनको विषयवस्तु प्राप्त होती है और वे ही इसमें सक्रिय भाग लेते हैं, श्रोता मात्र नहीं बने रहते। लोकगीतों का शिल्प भी इनके अनुसार ही होता है जो अधिक ग्राह्य और गेय होता है। इन्हीं के द्वारा अनेकों पौराणिक अन्तर्कथाएं भी प्रस्फुटित हुई हैं यद्यपि इनके नामों तथा घटनाओं पर स्थानीय रंग चढ़ा रहता है। इन गीतों में निम्नवर्ग के तत्व ही अधिकांश पाये जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि पर्वों, त्योहारों

तथा विभिन्न ऋतुओं में सामाजिक स्तर भेद को लोकगीत ही मिटाते रहे हैं।

खड़ीबोली के लोकगीतों का वर्गीकरण——खड़ीबोली के लोकगीतों में भी विभिन्न बोलियों के समान बहुमुखी विषयों का समावेश है। लोकगीतों में मानवीय भावों, विचारों तथा परिस्थितियों की समानता दृष्टिगत होती है।

खड़ीबोली प्रदेश के लोकसाहित्य में ऐसे अनेक संकेत मिलते हैं जिनके द्वारा हम उनका संबंध सुदूर अतीत की संस्कृतियों से जोड़ सकते हैं। यह धरती के गीत हैं अतः धरती से भिन्न उनका अस्तित्व नहीं है।

खड़ीबोली के लोकगीतों में जीवन की महान् घटनाओं का समावेश है। मनुष्य के जीवन में मुख्य प्रभावशाली तीन ही घटनाएँ हैं, वे हैं–जन्म, विवाह तथा मृत्यु। इन्हीं तीनों से मानव-जीवन की सभी भावनाएँ ओतप्रोत हैं। वह इन घटनाओं की उपेक्षा किसी भी देश अथवा परिस्थिति में नहीं कर सकता। इसी से अधिकांश लोकगीतों का वर्ण्य-विषय इनसे संबंधित होता है। "लोक एक अविभाज्य संज्ञा है अतः यथार्थ अर्थों में लोकगीतों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है।"[१]

शुद्ध वर्गीकरण के लिए दो वस्तुओं को परस्पर संबंधित नहीं होना चाहिये, पर लोकगीतों में हम ऐसा नहीं कर पाते उनका लोकजीवन के हर पहलू से अन्योन्याश्रित संबंध रहता है अतः उनको एक दूसरे से नितान्त अलग रखना संभव नहीं। लोकगीतों का संबंध मानवीय भावनाओं से होने के कारण वह सर्वत्र समान हैं पर फिर भी वह परिस्थितियों के कारण परिवर्तनशील होते हैं।

लोकगीतों का वर्गीकरण करने में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ आती हैं, अनायास ही वह दुहराये जाते हैं। उदाहरण के लिए——

संस्कार संबंधी गीतों में कुछ गीत केवल एक ही संस्कार विशेष से संबंधित नहीं हैं। उनको दूसरे अवसरों पर भी गाया जाता है। जैसे——पुत्रजन्म पर गाये जाने वाले गीत ही मुंडन, कनछेदन, जन्मदिवस तथा जनेऊ आदि अवसरों पर गाये जाते हैं। उनका इन अवसरों पर गाया जाना उपयुक्त है न कि निषिद्ध।

रसानुभूति की दृष्टि से भिन्न-भिन्न संस्कारों व अवसरों के गीत एक ही वर्ग में समाविष्ट हो जाते हैं। अधिकांश गीतों में एक साथ ही कई रस आ जाते हैं। होली के गीतों में श्रृंगार रस व हास्य रस दोनों ही आते हैं तथा वह ऋतु-गीतों में भी आ सकते हैं, और जातिगत गीतों में भी, क्योंकि अधिकतर चमारों की होली इस प्रदेश में प्रसिद्ध है।

---

१. सत्यव्रत अवस्थी—साहित्यकार, दिसम्बर १९५५

गीतों का जातिगत वर्गीकरण करना भी संभव नहीं है क्योंकि गीतों पर किसी भी जाति का एकाधिकार होना संभव नहीं है। यह अवश्य है कि उनमें किसी भी जाति की विशिष्टता व चेतनता का अपेक्षाकृत अधिक आभास मिल जाता है।

इसी प्रकार श्रम-परिहार के लिए क्रिया गीतों की रचना हुई, कुछ विशिष्ट गीत, विशिष्ट क्रियाओं को करते समय गाये जाते हैं पर उनमें भी कोई नियम नहीं है। क्रियागीतों में बहुत प्रकार के गीतों का समावेश है। व्यवहारिक क्षेत्र में उन्हें, गाने के अवसर के आधार पर, किसी एक विशिष्ट क्रिया से संबंधित नहीं किया जा सकता। प्रायः कुछ विशिष्ट गीत हर अवसर पर भी गा लिए जाने का प्रचलन है। अतः हम इन व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लोकगीतों के अध्ययन के लिये एक निश्चित दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

यहाँ पर हमने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अध्ययम की सुविधा के लिए स्थूल रूप से कुछ विभेद करने का प्रयत्न किया है। जो इस प्रकार है—

१—अनुष्ठानिक गीत—जिसके अंतर्गत संस्कार संबंधी तथा धार्मिक गीत आते हैं।

२—लोकगीतों में ऋतु-वर्णन (होली, सावन)

३—खड़ीबोली के लोकगीतों में स्त्री-पुरुषों के विशेष तथा विभिन्न क्रिया-कलापों का उल्लेख, श्रम-गीत।

४—बाल-गीत—इसके अन्तर्गत लड़के-लड़कियाँ दोनों ही के गीत आते हैं।

अनुष्ठानिक गीत (संस्कार संबंधी लोकगीत)—संस्कार और मानवीय कार्यकलाप, विश्वास तथा दर्शन द्वारा निर्मित दो किनारे हैं जिनसे होकर जीवन-धारा प्रवाहित होती रहती है। यही दो किनारे धारा को मर्यादित संतुलित तथा नियमित होने में सहायता करते हैं। इनका अतिक्रमण साधारण रूप से नहीं होता; यदि होता है तो उसको सामाजिक, धार्मिक तथा ऐसी ही किसी क्रान्ति के नाम से पुकारा जाता है। हिन्दू जीवन सांस्कारिक अधिक है। इसमें भिन्न-भिन्न संस्कार अपने-अपने समय पर आते रहते हैं ये इसी प्रकार के विभिन्न संस्कार हिन्दू जीवन के नियामक का कार्य करते हैं।

पहले ये संस्कार जीवन में पथ-प्रदर्शन का कार्य करते थे तथा जीवन के

अनिवार्य अंग हो गये थे। संस्कारों के द्वारा ही जीवन में नियमितता तथा व्यवस्था आती है।

वास्तव में हमारी भारतीय संस्कृति का मुख्य ध्येय है मनुष्य के विचारों का परिष्कार करना तथा आदर्श बनाना। परिष्कार करने के हेतु ही हिन्दू धर्म में विशेषत: संस्कारों का समावेश है, जो जीवन के प्रथम चरण से आरंभ होते हैं और अंत तक रहते हैं।

"मानव की प्राय: प्रत्येक संस्कृति में व्यक्ति की जीवनयात्रा के विभिन्न संक्रमणकालों का विशेष महत्व होता है। जन्म-विवाह एवं मरण इस प्रकार की तीन मुख्य स्थितियाँ हैं जिनके आस-पास मानव-समूह विश्वासों, रीति-रिवाजों और व्यवहारों का एक ऐसा जटिल ताना-बाना बुन लेता है कि उनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना उस संस्कृति का पूर्ण चित्रण प्राप्त ही नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त नामकरण, वय:सन्धि, रजोदर्शन आदि की स्थितियाँ भी महत्वपूर्ण होती हैं और अनेक संस्कृतियों की समाज-व्यवस्था में उन्हें पार करने से व्यक्ति भी समाजिक स्थिति एवं उसके अधिकारों और कर्तव्यों में मूलभूत परिवर्तन हो जाते हैं। समाज संगठन का यह पक्ष मानव के उत्तरोत्तर परिवर्तित होने वाले उत्तरदायित्वों एवं कार्यों की दिशा निश्चित करता है।"[1]

प्राचीन काल में मनुष्य के जीवन से संबंधित १६ संस्कारों का विधान था जो सभी शास्त्रीय थे जिनका संबंध जीवन के आरम्भ से लेकर अंत तक के काल से था।

"सम्प्रति सर्वाधिक लोकप्रिय संस्कार सोलह हैं, यद्यपि विभिन्न ग्रन्थों में उनकी संख्या भिन्न-भिन्न है। आधुनिकतम पद्धतियों में यह संख्या स्वीकृत कर ली गयी है।[2]

इस समय जन-समाज में यह समस्त संस्कार तो प्रचलित नहीं हैं किन्तु कुछ किसी न किसी रूप में अब भी अवश्य ही पाये जाते हैं। प्रत्येक संस्कार के दो रूप पाये जाते हैं—शास्त्रीय या पौरोहित्य तथा लौकिक। लौकिक संस्कार का संबंध अनुष्ठानिक गीतों से है जिनमें निश्चित विधान नहीं होता और जिसका समस्त कार्य स्त्रियाँ गीतों के द्वारा ही करती हैं। इन गीतों का मंत्रोच्चारण से पृथक्, महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य स्थान है। ये औपचारिक गीत, अपना मांगलिक महत्व रखते हैं।

खड़ीबोली के लोकगीतों में हमें सभी शास्त्रीय संस्कारों का उल्लेख तो नहीं

---

१. मानव और संस्कृति, श्यामाचरण दूबे, पृ० २५६।

२. हिन्दू संस्कार, राजबली पाण्डेय, पृ० २६।

मिलता, किन्तु मुख्य दो संस्कारों का उल्लेख अवश्य है—ये हैं जन्म और विवाह। मृत्यु जो जीवन की मुख्य घटना है, उससे संबंधित गीतों का भी उल्लेख मिलता है पर वह सुखद नहीं है, अतः वह नगण्य है क्योंकि "इसके मूल में यह धारणा थी कि अन्त्येष्टि एक अशुभ संस्कार है और शुभ संस्कारों के साथ इसका वर्णन नहीं करना चाहिये। संभवतः यह तथ्य भी इसका कारण था कि मृत्यु के साथ ही व्यक्ति की जीवन-कहानी का अंत हो जाता है। मरणोत्तर संस्कारों का व्यक्तित्व के परिष्कार पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव प्रतीत नहीं होता ।[१]" इतना होते हुए भी अन्त्येष्टि एक संस्कार के रूप में ही माना गया है ।

मनुष्य जीवन की यह तीन महान घटनाएँ हैं जिनमें प्रथम दो तो मनुष्य-जीवन के विकास, उत्साह व हर्ष से सम्बद्ध हैं तथा अंतिम शोक से। और उसी भावना को व्यक्त करने वाले गीत यथासमय गाये जाते हैं । शुभ अवसरों पर गाये जाने वाले गीत 'शगुन' के गीत कहलाते हैं । संस्कारों की दृष्टि से हम लोकगीतों को इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं :—

जन्म-संस्कार—"यह सिद्धान्त भी प्रचलित था कि उत्पन्न होते समय प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है, अतः पूर्ण विकसित आर्य होने के लिए उसका संस्कार व परिमार्जन करना आवश्यक है।[२]"

जन्म-संस्कार मानव-जीवन का प्रारंभिक संस्कार है। अतः जब से बच्चा गर्भ में आता है उससे कुछ ही महीनों पश्चात् से ही कोई न कोई अनुष्ठान प्रारंभ हो जाता है। गर्भाधान के नौ महीने तक की संपूर्ण अवधि जन्म-संस्कार के अन्तर्गत आ जाती है।

पुत्रजन्म, परिवार तथा पुत्र दोनों के लिए ही एक विशेष-संस्कार होता है। परिवार के लिए तो ये संस्कार उसके जन्म से पूर्व ही प्रारम्भ हो जाते हैं। विभिन्न जातियों तथा प्रदेशों में पुत्र के गर्भ में आने से जन्म तक वैसे तो कई संस्कार होते हैं, परन्तु खड़ीबोली-क्षेत्र में जन्म से पूर्व अधिक संस्कार प्रचलित नहीं हैं—साध पूजना आदि एक दो संस्कार ही ऐसे हैं जो जन्म से पूर्व होने वाले संस्कारों के अंतर्गत आते हैं। जन्म के पश्चात् के लौकिक संस्कारों में 'छठी' और 'दशूटन' विशेष हैं। 'दशूटन' प्राचीन पौरोहित्य नामकरण संस्कार ही है।

---

१. हिन्दू संस्कार—राजबली पाण्डेय, पृ० २६।
२. वही—पृ० ३४।

मुंडन, कनछेदन संस्कार जंन्म के पश्चात् के हैं जो आयु के विशेष-वर्ष में मुहूर्त निकाल कर किए जाते हैं ।

शिक्षारंभ-संस्कार—यह बालक की शिक्षा आरंभ करवाते समय होता था—'गणेशपूजा', 'गुरु-पूजा' आदि मुख्य था, जो लोकभाषा में 'पट्टी पुजना' कहलाता है।

जनेऊ—'यज्ञोपवीत संस्कार' को कहते हैं जो कभी-कभी विद्यारंभ के अवसर पर या १२ वर्ष की अवस्था में स्वतंत्र रूप से या फिर विवाह से पहले किया जाता है ।

विवाह—विवाह के पूर्व तथा बाद में होने वाले संस्कार—कन्यापक्ष तथा वरपक्ष दोनों ही ओर अपनी-अपनी भाँति किये जाते हैं । इन संस्कारों में प्रदेशीय भिन्नता के साथ-साथ जातिगत भिन्नताएँ भी पायी जाती हैं।

मृत्यु-संस्कार—इससे हमारा तात्पर्य यहाँ केवल उसी गीत से है जो वृद्ध की मृत्यु के बाद स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं—यह शोकगान है ।

ऊपर दिये गये चार मुख्य संस्कारों के आधार पर हम लोक-संस्कारों का विशद रूप से अध्ययन करेंगे—

पुत्र-जन्म—मनुष्य में संतान के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। यह मानव-संरक्षण का शास्त्रीय प्रयोजन है । बालक के जन्म के पूर्व दो संस्कार होते हैं गर्भाधान—तथा पुंसवन।

गर्भाधान सबसे पहला संस्कार है। इसके द्वारा माता-पिता अच्छी संतति पाने की कामना करते हैं। इस संस्कार के आरम्भ में वैदिक मंत्रों के द्वारा ध्वनि करके देवताओं का आह्वान किया जाता था और उनसे प्रार्थना की जाती थी कि वे माता के गर्भ में योग्य संतान धारण करा दें। इस संस्कार से माता-पिता के मनोविकारों की शुद्धि होती थी। प्रधान रूप से यह इन्हीं दोनों का संस्कार होता था और उनके द्वारा माता के गर्भ में आने वाले शिशु का संस्कार भी होता था, पर यह अब प्रचलित नहीं है ।

इसके पश्चात् पुंसवन संस्कार है। इस संस्कार का उद्देश्य गर्भ के शिशुओं को पुत्र रूप देने का है । गर्भाधान के दो-तीन माह बाद संस्कार सम्पन्न किया जाता था ।

तीसरा संस्कार है सीमन्तोन्नयन, जो पुंसवन के बाद माँ व बालक की कुशलता के लिए किया जाता है और इसमें माता-पिता पुत्र पाने की अपनी कामना प्रकट करते हैं। स्त्री को आभूषणों व वस्त्रों से सुसज्जित कर उसकी नारियल, सुपारी आदि पंचमेवों से व शुभ वस्तुओं से, गोद भरी जाती है ।

यह प्रथम बार गर्भाधान के सातवें मास में होता है। स्त्रियों में अब भी इसका रूप मिलता है जिसे लोकाचार में 'साध-पूजना' कहते हैं। यह शुद्ध लौकिक रूप है इसे 'साध पहराना' भी कहते हैं। साध-पूजने की प्रथा का प्रचलन अब कम है पर फिर भी कुछ परिवारों में अब भी मिलती है ।

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में पुत्र-जन्म की कामना व्यक्त की जाती है तथा भावी माता को सौभाग्यशालिनी बताया जाता है और पुत्र-जन्म की कामना से ही प्रसन्नता प्रकट की जाती है। यहाँ पर जन्म के साथ पुत्र जोड़ देना आवश्यक है। कारण कि अभी भी भारत की जनता कन्या के जन्म को महत्व तथा प्रसन्नता का स्थान देने को तैयार नहीं। कन्या के जन्म की परिस्थिति पुत्रजन्म की परिस्थिति से विपरीत होती है। कन्या के जन्म के साथ ही विषाद का भी जन्म होता है और कन्या की जननी को अपराधिनी, अभाग्यशालिनी के रूप में ही समझा जाता है। इसी से कन्या के जन्म संबंधी गीतों का उल्लेख साधारणतः नहीं मिलता है—यद्यपि अपवादस्वरूप कुछ उदाहरण अवश्य हैं, लेकिन इनमें भी कन्या की उपेक्षा, कन्या-जन्म की अनिच्छा, तथा उससे संबंधित समाज के विचारों का ज्ञान होता है। यहाँ स्त्री-पुरुष परस्पर वार्तालाप करते हैं जिसके द्वारा कन्या के प्रति उनकी धारणा स्पष्ट होती है—

गूंद ला री मलनियाँ हार,
जच्चा मेरी कामनियाँ
राजा रानी दो जनें री आपस में बद रहे होड़
जो गोरी तुम धीय जनोगी, महलों से करदूं बाहर
जच्चा मेरी कामनियाँ
जो गोरी तुम पूत जनोगी, सब कुछ ले लो इनाम
जच्चा मेरी कामनियाँ

इस प्रकार की भावना अन्य गीतों में भी मिलती है। यहाँ पर वह पूरा न देकर दो पंक्तियाँ ही उद्धृत की जाती हैं—

सास सपूती ने बेटा सिखाया, धमा-चौकड़ी मची
जो गोरी तुम धीय जनोगी, तसैं खैंच दूं गली

इसी प्रकार अन्य गीत हैं जिनमें जन्म से पूर्व की होड़, पति-पत्नी का परस्पर समझौता, तत्पश्चात् उत्तरार्ध में पुत्र-जन्म होने पर, तत्काल उसकी प्रतिक्रिया का बहुत ही सजीव व यथार्थ चित्रण है।

मेरी मालन गूंद लाई हार, जच्चा लचकावनिया
धन पुरुष मसलत बारें मेरे राजा जी

कोई क्या कुछ हमको काज
जो गोरी तुम धीय जनोगी-गोरी जी
कोई सड़कों पै बिछाऊं खाट
कोई सीरे की पिलाऊं पात
कोई जेवर लूंगा काढ़
जो गोरी तुम पूत जनोगी--गोरी जी
कमरों में बिछाऊं तेरी खाट
बूरों की पिलाऊं तुझे पात
पीहर से लूंगा बुलाय
कोई हरदम ताबेदार
कोठे के नीचे उतरी कोई होय पड़े नन्दलाल
कोई बज रहे तबल निशान, जच्चा लचकावनिया
न्हाय धोय ठाढ़ी भयी, कोई लाओ हमारी होड़
जच्चा लचकावनिया ।
होड़ उतारूं तेरी सेज पै
कोई दूजा जनोगी नन्दलाल, जच्चा लचकावनिया

साध पूजने के समय गाये जाने वाले गीतों में स्वप्न से सम्बन्धित गीत भी उपलब्ध हैं—स्वप्न पूर्वाभास कराते हैं तथा प्रतीक के रूप में उनसे अर्थ निकाले जाते हैं। सरल वधू जो स्वयं अनुभवहीन है, अपनी अनुभवी सास से अपने स्वप्नों के संबंध में बताकर शंका-समाधान कराती है—

सपने में जौ का खेत
हरी-हरी दूब लहरे लेय रे
सासू सपने का अरथ बताओ
सपने में हरी-हरी दूब
जौ का खेत लहरे ले रह्या
बहू होंगे तुम्हारे नन्दलाल
जौ का हरा-हरा खेत जो देखिये
सासू किस बिधि होंगे नन्दलाल
इसकू बी हमें बताइये
कोठे में सिर बहू, चुल्ह ही में टांग
आँखों में पट्टी बांधिये

इसी प्रकार एक अन्य स्वप्न है:—

सासु सपने में अंबुआ का पेड़
तो झलर झलर करै
सुनियो मेरी सासु, कंवर जी की अम्मा
ए चतर जी की अम्मा री
सासु सुपने में अंवुवा का पेड़ तो झलर झलर करे
चुपकर बहु मेरी चुपकर, बैरी ना सुने,
दुसमन ना सुनै री
बहु ये बड़े भाग हमारे, ललन जी के सोहले
कंवर जी की अम्मा, चतर जी की अम्मा

साध पूजते समय निम्नलिखित गीत गाये जाने की प्रथा है—

गंगाजल जमुना मैंने बोई थी चौलाई री
अरी सासू तो बूझे बहू कद की तू न्हाई री
अरी पड़वा तो पुन्नों मैं तो दोयज की न्हाई री
अरी ससुरा तो बुझेरी बहू क्या कुछ भावै री
अरी पहली तो साध मेरा सौरा री पुरावैं जी
उच्चे तो नीच्चे मुझे महल चिनावै जी
दूजी तो साध मेरी जेठ पुरावै री
ऊंचे तो री नीचे मुझे परदे चलावै री
मथुरा के पेड़े मुझे लावैं खिलावै री
तीजी तो साध मेरे देवर पुरावैं री
पांचवी चौथी तो साध मेरा राजा पुरावैं जी
अरी इकसठ राज मेरा राजा रजावै री
अरी साध री साध मेरी अम्मा भेंजी री

साध में सात वस्तुएँ होती हैं—मेंहदी, रोली, चूड़ी, आस-आटे की लम्बी मठड़ी, सिन्दूर, (सिमरक) एवं कपड़े व कलावे (लाल डोरी) सूत जो अत्यन्त शुभ माना जाता हैं ।

गर्भिणी स्त्री की उस काल की खान-पान संबंधी सभी इच्छाओं को 'दोहद' कहते हैं। दोहद को पूर्ण करना पति के लिए आवश्यक होता है। इसके संबंध में बहुत-सी लोककथाएँ प्रचलित हैं। किस प्रकार पत्नी की इच्छा दुर्लभ वस्तुओं की होती है और पति अपने प्राण संकट में डाल कर भी पत्नी की इच्छा पूरी करते पाये जाते हैं। साधारणतः इन गीतों में गर्भवती स्त्रियों की खाने में रुचि-

का ही संकेत मिलता है। उदाहरण के लिए एक-दो गीत यहाँ पर देना आवश्यक है जो इस प्रकार हैं—

मेरा मन माँगे ताजी बड़ी, सरस मन माँगे ताजी बड़ी
कचेरी बैठन्ते सौहरे हमारे, लौंग करूं अक बड़ी
मुढ़ले बैठन्ती सास हमारी, लौंग करूं अक बड़ी
मेरा मन माँगे ताजी बड़ी

इसी प्रकार है:—

खट्टी नौरंगिया मन भावै मोरे राजा
मिट्ठी नौरंगिया मन भावै मोरे राजा

साध के गीतों में अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा मेवा की अधिक चर्चा होती है। मेवा का सेवन करने से ही भावी संतान प्रतिभावान होती हैं। इन गीतों का वर्ण्य-विषय साधारणतः तीन प्रकार का होता है —

१—गर्भस्थिति का पूर्वाभास कराने वाले गीत;
२—गर्भ निश्चय प्रकट करने वाले गीत;
३—गर्भिणी की इच्छा व रुचि में परिवर्तन करने वाले गीत।

गर्भिणी के लिए कुछ निषेध इस प्रकार हैं—वह नये कपड़े नहीं धारण कर सकती तथा नई चूड़ियाँ नहीं पहन सकती, मेंहदी नहीं लगा सकती, स्याही, बिंदी भी नहीं लगा सकती। 'साध पहरने' का दिन निश्चित हो जाने पर ५ या ७ दिन पहिले से स्नान व श्रृंगार नहीं कर सकती। इस अवसर पर स्नान करने को मैल छुड़ाना कहते हैं। बहू के मायके से वर-वधू के लिए कपड़ा आता है। 'आस बिराई' में नाना प्रकार के फल व मिठाई आदि होते हैं। जिनके पीहर में साध नहीं चलती उन के लिए माँग कर किसी के घर से 'आस' मँगाई जाती है। इसको 'आस औलाद' कहते हैं।

पुत्रजन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को खड़ीबोली-प्रदेश में 'ब्याही' कहते हैं। यह प्रसन्नता प्रकट करने के लिए जन्म से लेकर दशूटन के दिन तक गायी जाती है। इनमें मुख्यतः गर्भाधान की अवस्था का, शारीरिक व मानसिक स्थिति के परिवर्तन का, प्रसव-पीड़ा का, नेग लेन-देन, गुप्त प्रेम, लड़ाई-झगड़ा आदि से संबंधित तथा प्रसन्नतासूचक गीत मिलते हैं। भारत की आदर्शवादी परम्परा का वास्तविक रूप हमें इन लोकगीतों में दृष्टिगत होता है। धार्मिक वातावरण का भी अमिट प्रभाव मिलता है। इसी से पुत्रजन्म संबंधी गीतों में बालक का

राम-कृष्ण के सदृश होने का उल्लेख मिलता है।[१] पुत्र को जन्म देने वाली जननी को ही धन्य समझा जाता है।[२] इन गीतों में गर्भवती स्त्री के शारीरिक हाव-भाव का बहुत ही सूक्ष्म चित्रण मिलता है।[३] माँ की रुचियाँ भी बड़ी विलक्षण होती हैं।

गर्भवती स्त्री की इच्छा खाने की किसी विशेष-वस्तु के लिए होती है। उसकी इस समय की खाने-संबंधी हर इच्छा पूरी हो जाना आवश्यक समझा जाता है। इसका उल्लेख गीतों में बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से मिलता है।[४] इन गीतों में हास्य समस्या के रूप में दिखाया गया है। दूसरों से इस आपत्ति-काल में सहायता माँगने की समस्या उत्पन्न होती है। उनकी इस असह्य स्थिति का बड़ा सजीव वर्णन मिलता है।

१—'हमरे तो पीड़ उठी, नणदल हंसती डोले'

२—'हो पड़े नन्दलाल कुये पै कौन भिभाले सिर की गगरिया'

पुत्रजन्म के समय हिन्दू-परिवारों में विशेष प्रसन्नता का अवसर समझा जाता है और इस समय गाये जाने वाले गीतों में परिवार के सभी लोगों के प्रसन्न होने का उल्लेख भी मिलता है। पुत्र को जन्म देने वाली माता को सौभाग्यशालिनी की पदवी मिलती है। 'धन है उस मात को जिसने कंवर पैदा किये,' यह एक मनोवैज्ञानिक बात है। यह गीत पुत्र की लालसा से तो प्रेरित नहीं, जितने बंध्यात्व के कलंक से निवृत्त होने की प्रेरणा से। वह भगवान की बहुत कृतज्ञ है और कहती है—

चंदा जैसी चाँदनी, गुलाब जैसा फूल
सूरज जैसी किरन मोहे राम दिया ललना

गीतों में जच्चा का तथा उसके खान-पान का भी वर्णन मिलता है। इस समय जच्चा का और उसके खाने-पीने का विशेष ध्यान रखा जाता है तथा उसको दूध

---

१. अ--जनमें राम खुशी हुई मोरे मन में
ब--अजुध्या में राम भयो, दसरथ घर बाजत वधाये

कृष्ण संबंधी—किशन मथुरा में जाके पैदा हुए।

२. 'धन्य है उस मात को जिसनै कंव. पैदा किये।'

३. ओठ सूखे मुख पीला जी महल में,
मैं पूंछू मेरी गोरी किस गुन मुख पीला महल में।

४. अरी मुझै पहिला री लगा सास्सू
मेरा मन चने के साग में।

हलीरा[1] आदि पौष्टिक-पेय पदार्थ स्वास्थ्यलाभ करने के हेतु दिये जाते हैं। सोंठ, पीपल, हलीरा आदि से संबंधित गीत इस अवसर पर गाये जाते हैं। पुत्रजन्म की सूचना फूल की थाली बजा कर की जाती है।

बालक के जन्म के अवसर पर प्रसूता को अपनी स्त्री-संबंधियों की जिनमें सास ननद, जिठानी आदि की सहायता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इनमें से इस अवसर पर या बाद में भी सभी के कार्य पृथक्-पृथक् होते हैं। सभी स्त्री संबंधियों का, जो ससुराल के द्वारा संबंधित है उदाहरणार्थ—सास, जिठानी, ननद आदि का——अपना-अपना निजी स्थान होता है जहाँ पर वह अपने को महत्व-पूर्ण अनुभव करती हैं। दाई का बच्चे जनवाना, सास का चरुआ[2] रखना, ननद का सतिये[3] रखना तथा जिठानी का पलंग बिछाना आदि कार्यों का भी गीतों में उल्लेख मिलता है। ननद-भावज के बीच होने वाले मनोमालिन्य के प्रमाण भी मिलते हैं। जच्चा की उदारता व अनुदारता के दृष्टान्त भी देखने में आते हैं। ये गीत बहुत रोचक और मनोवैज्ञानिक होते हैं। इन विविध-क्रियाओं के करने पर उनको उचित नेग मिलता है। सब काम प्रसन्नतापूर्वक व कुशलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने पर प्रसन्न होकर जच्चा यथायोग्य तथा सामर्थ्यानुसार पारिश्रमिक व प्रसन्नतासूचक के रूप में आभूषण व वस्त्र देती है, ऐसी प्रथा प्रचलित है, इसी को 'नेग देना' कहते हैं।' 'नेग लेना' और 'नेग देना' दोनों ही प्रसन्नता व सौभाग्य के विषय समझे जाते हैं। ननद तो अपनी भाभी से बालक के जन्म के पूर्व ही प्रतिज्ञा करवा लेती है कि अगर पुत्र होगा तो मैं अमुक वस्तु लूँगी। इनकी 'होड़' बदने का उल्लेख विविध गीतों में विविध रूपों में मिलता है। ननद-भावज के शर्त बदने के गीतों में से एक का उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है—

ननद भवजिया का साथ, झिलमिल चरखा जो काते
भाबो जी होंगे नन्दलाल, हमें क्या दोगी
मेरे हाथ का कंगन है भारी, वो ही तुमैं दूंगी

नेग के गीतों में जच्चा की उदारता और अनुदारता दोनों ही के चित्रण मिलते हैं।

---

१. हलीरा—सौंठ, जीरा, घी, मेवा, गुड़, आदि अनेक वस्तुओं द्वारा बनाया गया पेय-पदार्थ जो इस अवसर पर पुत्रवती माँ को पिलाना आवश्यक समझा जाता है।

२. चरुआ--एक मिट्टी का घड़ा होता है जिसमें अनेक घरेलू औषधियों को डाल कर जच्चा के लिए पानी औटा कर उसके कमरे में ही रखा जाता है। उस पर गोबर से कुछ स्वस्तिक व चक्र भी बनाये जाते हैं।

३. स्वस्तिक बनाना।

अब अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप तथा सुविधानुसार जहाँ पर बालक का जन्म अस्पतालों में होने लगा है, वहाँ पर सास तथा अन्य स्त्री-संबंधी अपने को अपमानित व उपेक्षित अनुभव करती हैं, ऐसा उल्लेख नवीन गीतों में मिलता है—

मेरी छोटी-सी जच्चा ने जुलम किया,
के अंग्रेजी जाप्पा परसंद किया
सास्सु का बुलाना बंद किया,
के अम्मा का बुलाना परसंद किया

समय-समय पर जच्चा के नखरों का वर्णन तथा व्यंग्य मिलता है जिसमें विरोधाभास और अतिशयोक्ति होती है—

जच्चा मेरी लड़ना ना जानै री
सांप मार सिरहाने रक्खा
बिच्छु मार बगल में री
जच्चा मेरी लड़ना न जानै री।

छठी के गीत—बालक के जन्म के छठें दिन जच्चा प्रसूति-गृह से बाहर निकलने लगती है। इस दिन प्रसूता की शुद्धि तथा स्नान होता है और पूजा होती है। छठी से पहिले बच्चे को कपड़े नहीं पहनाये जाते। छठी को 'बै' की पूजा सायंकाल के समय की जाती है। सौर-गृह के द्वार पर एक गोले में थोड़ा नाज, गुड़ व तीहल डाली जाती है और प्रसूता को शिशु समेत बाहर निकाला जाता है। यह कार्य देवर (पति का छोटा भाई) करता है जिसका उसे नेग मिलता है। इस कार्य को 'बाहरी' कहते हैं। इसके पश्चात् जच्चा को फिर सौरगृह में उसकी चारपाई के समीप सिरहाने की ओर पृथ्वी पर बिठा कर 'बै' की पूजा कराई जाती है जो गोबर की बना कर दाई लाती है। खाट के पाये में चाँदी की हँसुली डाली जाती है और उसके बाद थोड़ा नाज डाल कर उस पर तेल का दिया जलाया जाता है। वही चार रोटियाँ और उनके ऊपर चावल तथा शक्कर रख दी जाती है। तभी जच्चा हल्दी के छींटे लगाकर 'बै' की पूजा करती है और रोटियाँ मनसकर दाई को देती हैं। छठी के दिन से ही रोटी-दाल खाने को दी जाती है। छठी के दिन ही स्याही सरसों के दीपक पर झाड़ कर पहली बार बच्चे की आँख में डाली जाती है, किन्तु उस दीपक का प्रकाश बच्चे को नहीं देखने दिया जाता।

'सौबर' में जब तक गंदगी रहती है, उन्हें प्रेत-बाधा का भय रहता है। 'सतवाह' या छठी इसी प्रकार की एक निशाचरी है जिसको संतुष्ट करने के लिए प्रसव के छठें दिन प्रसूता से यह पूजा करायी जाती है। गंदगी को दूर करने के लिए

ही 'छठी पूजन' किया जाता है। इस प्रकार हमारे इस टेहले में भी आदिमानव के विश्वासों की छाया वर्तमान है। इस देवी का एक नाम चर्चिका देवी भी है। इस दिन ननद की विशेषता रहती है वह 'सतिये' रखती है जिसके लिए उसको उचित नेग मिलता है। कहीं-कहीं पर इसी दिन कुंआ पूजने की भी प्रथा है। पर यह तब होता था जब गावों में घर ही में कुआँ होता था। इस दिन से सूतक नहीं माना जाता और जच्चा को सब कोई छू सकते हैं।

कुछ बालकों की छठी इस अवसर पर न मनायी जाकर उसके विवाह से पहिले मनायी जाती है। इसमें भी गीत 'ब्याही' ही गाये जाते हैं। इस दिन संबंधियों का तथा परिचितों का प्रीतिभोज होता है और लेनदेन की प्रथा है। बालक को इस दिन सर्वप्रथम देख कर सब आशीर्वाद देते हैं तथा सामर्थ्यानुसार भेंट भी देते हैं।

'छठी' के गीतों में बड़ी विविधता है। इस वर्ग में दाई, जच्चा, पर्दा, जीरा, खिचड़ी, कठुला, पालना, ननद, जिठानी नाम के अनेक गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में लोकाचार का वर्णन, हास-विनोद तथा प्रसूता का मनोविज्ञान सुंदर रीति से प्रकट हुआ है। पुत्र की माता का मान, पुत्र-कामना तथा सास-ननद के झगड़ों का वर्णन भी इनमें रहता है।

यह जन्म देने वाली जाजमातृ के हेतु गाये जाते हैं। इस 'जाजमातृ' को ही लोक भाषा में 'बैमाता' कहते हैं। देवी का आह्वान इस प्रकार किया जाता है—

ऐसी बिहाई मेरे नित उठ आओ
आओ बिहाई तुम्हें पूंजूगी रोली
तन्ने जगाई मेरे ससुर की पौरी
आओ बिहाई तुझे पूंजूंगी पेडा
तैंन्ने बुलाये मेरे देवर जेठा
आओ बिहाई तुमें पूंजूंगी मेंहदी
तैंन्ने बुलाई परदेसन ननदी
आओ बिहाई तुमें पूंजूं बताशे
तैंन्नें दिखाये हमें खेल तमाशे

जन्म-गीतों में लवकुश की ब्याहियाँ भी हैं तथा कृष्ण संबंधी भी हैं। सीता के वनवास तथा लवकुश के जन्म के संबंध में इस गीत में बहुत अच्छा वर्णन है। यह बहुत विस्तृत गीत है, अतः इसको यहाँ संपूर्ण नहीं दिया जा रहा है।

भाभी पहले तो ननद को बहुमूल्य वस्तु देने का वायदा कर लेती है, बाद में प्रायः घर की स्थिति देखकर या लालच में पड़कर कंजूसी के कारण ननद की

मनचाही वस्तु देने से मुकर जाती है। इसके संबंध में भी कई गीत बहुत प्रसिद्ध हैं जो बहुत रोचक हैं। यह गीत पुत्र जन्म के अवसर पर छठी, दशूटन आदि के दिन बालक की बुआ अपनी ओर से गवाती है। इसका आशय संभव है इस अवसर को अधिक मनोरंजक बनाना है और हर ननद-भावज को स्मरण दिलाना है। ये गीत 'जगमोहन' और 'मनरंजना' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन गीतों में ननद-भावज का झगड़ा, नारी की संकुचित मनोवृत्ति, भाई-बहन का स्नेह तथा विवेक-शून्य व्यक्ति के निरादर की बात बड़ी स्पष्टता से कही गयी है। इन गीतों में स्त्रियों का मनोविज्ञान प्रकट होता है। और उनकी व्यावहारिक बुद्धि प्रबंध-क्षमता तथा सरस, कोमल भावनाओं का सुंदर समन्वय हुआ है। इस गीत में स्त्री का आभूषण प्रेम, उसका हठ, उसका अपने भाई-बहन तथा पितृगृह की हर वस्तु से मोह तथा सभी लोकाचारों का विस्तृत वर्णन है।

विवाह के बाद से ही स्त्रियों में मातृत्व की भावना का उदय हो जाता है और वह उसके लिए अनेकों कामनाएँ करने लगती हैं। उनकी पूजा-आराधना के मूल में यही अभिलाषा निहित रहती है। वह अपने मन में उसके सामाजिक महत्व को भलीभाँति समझती रहती हैं। पर अगर दुर्भाग्यवश उनके बालक नहीं होता है तो उनका समाज तिरस्कार करता है और 'वंध्या' घोषित कर देता है। 'वंध्या' का दुख बहुत ही व्यापक होता है, उसको कहीं पर भी स्नेह व संतोष नहीं मिलता और वह अपना जीवन निरर्थक मानने लगती है। उससे संबंधित करुण रस के गीत हैं, इन गीतों का नाम 'साड-फाँसे' है।

यह कृष्ण-जन्म संबंधी गीत है जिसमें बताया गया है कि संसार में अन्य सभी वस्तुएँ सुलभ हैं, उधार मिल सकती हैं, मोल मिल सकती हैं, पर बालक नहीं।

दशूटन (नामकरण संस्करण)—यह साधारणतः तो बालक के जन्म के दसवें दिन ही होता है, पर कभी-कभी किन्हीं अशुभ नक्षत्रों में बालक का जन्म होने के कारण दसवें दिन न होकर अन्य किसी शुभ दिन भी होता है। 'मूल नक्षत्र' में बालक का जन्म होने से बालक को माता-पिता के लिये अशुभ माना जाता है। ऐसी अवस्था में २७ दिन बाद विधि-विधान से मूल-शांति होने के बाद ही दशूटन होता है तथा नामकरण किया जाता है। अभी तक के सब कार्य को स्त्रियाँ स्वयं ही सम्पन्न करती आयी हैं पर दशूटन पर पुरोहित को बुलाकर यज्ञ करवाया जाता है। इस अवसर पर लौकिक और शास्त्रीय, दोनों ही क्रियाएँ होती हैं। इस दिन जच्चा के पीहर से उसका पिता या भाई बालक के लिए वस्त्र, आभूषण तथा अन्य निकट संबंधियों के लिए भी वस्त्र व खानपान की सामग्री

लाते हैं जिसको 'छूछक' या 'खिचड़ी' कहते हैं। यह समारोह बहुत उत्साह और घूमधाम से मनाया जाता है, खान-पान तथा प्रीतिभोज होता है और लेनदेन की प्रथा है। दशूटन के दिन प्रायः सभी संबंधी व परिचित, बालक को प्रथम बार देखकर कुछ न कुछ उपहारस्वरूप देते हैं और आशीर्वाद देते हैं। इस दिन भी 'ब्याही' गाये जाने की प्रथा है।

पुत्र-जन्म से संबंधित गीतों में कुछ सामान्य अभिप्राय मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं :—

१—पुत्र-जन्म की कामना और वंध्या-स्त्री की मनोव्यथा, समाज में उसका उपेक्षित जीवन जिसकी चरम सीमा है—जीवन का अंत तक कर देने का विचार, सपत्नी का आगमन।

२—पुत्र-जन्म से पहले की सुखद कल्पनाएँ, ननद-भावज का परस्पर होड़ बद लेना।

३—पुत्र-जन्म संबंधी गीतों में ननद, सास और दाई से बहू का विरोध।

४—नेग के संबंध में ननद, सास और दाई के द्वारा बहू का विरोध।

५—पति को बुलवाकर प्रसव की पीड़ा को बाँटने के लिए पत्नी की प्रार्थना।

६—पुत्र-जन्म संबंधी गीतों में राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, कौशल्या तथा नन्द-यशोदा की प्रधानता।

७—पुत्री के जन्म पर उपेक्षा की भावना और जच्चा को कष्ट देना।

८—कुल, मर्यादा, स्वाभिमान और निष्ठा से संबंधित लोकगीत।

इन गीतों में पुत्र-कामना की अभिव्यक्ति देवी-देवताओं से की जाती है। राम, सूर्य, गंगा, देवी आदि इस प्रार्थना के लिए इष्ट माने गये हैं।

मुंडन—यह बालक के पहले, तीसरे या पाँचवें वर्ष में होता है। जन्म के बाद पहली बार बालक के बाल किसी मंदिर के पास, गंगा के पास या थान[1] आदि पर बहुत घूमधाम से कटवाये जाते हैं। मुंडन बुआ की गोदी में होता है। मुंडन के समय लड़के की बुआ, आटे की लोई लेकर बैठ जाती है और जैसे झालर गिरती जाती है वैसे वह उसको आटे में गूँथती जाती है। इसमें बालक के माता-पिता रुपये या मोहर रख देते हैं। यह नेग बुआ को ही मिलता है। बाल उतरवाने के लिए तो भिन्न-भिन्न स्थानों की मनौती भी मानते हैं। उदाहरण के लिए, शाकुम्बरी देवी के मंदिर पर, बालासुंदरी, गढ़ की गंगा पर, हरिद्वार में। मुंडन के अवसर पर गाये

---

१. थान—किसी सिद्ध-पुरुष की समाधि के स्थान को कहते हैं। यह स्थान का ही बिगड़ा हुआ रूप है।

जाने वाले गीत अवसर-विशेष के होते हैं तथा कभी-कभी पुत्रजन्म संबंधी भी गाते हैं—कुछ विशेष गीत भी गाये जाते हैं।[1]

कनछेदन—मुंडन के बाद कनछेदन-संस्कार होता है। लड़कियों के कान तो साधारणतः छिद जाते हैं और कोई विशेष आयोजन नहीं किया जाता, पर लड़कों का तो कनछेदन-संस्कार बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। इसमें भी देन-लेन व खानपान की प्रथा प्रचलित है। गीत प्रायः 'व्याही' ही गाये जाते हैं।

जनेऊ—'जनेऊ' शब्द यज्ञोपवीत का ही अपभ्रंश है। जब बालक १२ वर्ष का होता है तो उसका यज्ञोपवीत संस्कार होता है। यह विवाह के समान ही धूमधाम से मनाया जाता है। प्राचीनकाल में इसके बाद से ही विद्यारंभ होता था। पर अब यह प्रथा भी कुछ ब्राह्मण-परिवारों में ही प्रचलित रह गयी है। जनेऊ में तीन तार होते हैं जिनका आशय मानते हैं कि ये निम्न-वस्तुओं के द्योतक हैं—

१—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ; २—ऋषि-ऋण, देवऋण और पितृऋण से मुक्त होने का संकल्प; ३—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों ही वर्णों के लोग यज्ञोपवीत के अधिकारी हैं।

जनेऊ को बहुत पवित्र मानते हैं। लोकविश्वास है कि उसमें विष्णु जी का वास होता है। इसी से शौच जाते समय दाहिने कान में लपेटने की प्रथा है।

आधुनिक समाज में कुछ तो आर्थिक कठिनाइयों के कारण और कुछ महत्व की कमी के कारण उस संस्कार को अलग से पूर्ण महत्व न देकर केव . विवाह के पहले ही किया जाने लगा है। इस प्रकार समय, श्रम व अर्थ की सुविधा व बचत रहती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत अलग नहीं होते।—इसमें व्याही तथा 'बन्ने' आदि गीत ही गा लेते हैं।

विवाह-संस्कार—जन्म आदि संस्कारों के पश्चात्, सब से अधिक महत्वपूर्ण संस्कार विवाह ही होता है। यह आशावाद और उल्लास का सुखद अवसर माना जाता है। इसमें जीवन के नवीन तथा महत्वपूर्ण अध्याय में प्रवेश करते समय की जाने वाली मंगल-कामनाएँ व मंगल-कार्य सम्मिलित रहते हैं। इस अवसर पर परिवार के सभी निकट व दूर के संबंधी एकत्रित होते हैं। विवाह के अवसर पर विशेष रूप से, स्त्रियों के मन में विशेष उल्लास रहता है। इसका प्रमाण हमें उनके

---

१. घुंघरवाले बाल लला के,
दादा भी रहसै, दादी भी रहसै
हंस के करैं हैं गरब-लाल के।

[इसी प्रकार सभी संबंधियों का उल्लेख करते हैं।]

समय-समय पर गाये जाने वाले मांगलिक गीतों में मिलता है, जो उन्हीं के द्वारा बनाये व गाये जाते हैं।

विवाह-संस्कार सामाजिक तथा धार्मिक, दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। यह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये तोरण-द्वार है, जिसके पार विशाल कर्म-क्षेत्र मनुष्य की प्रतीक्षा करता रहता है। इस कर्म-भूमि में स्त्री-पुरुष दोनों को ही समान रूप से एक-दूसरे की आवश्यकता होती है। इस अवसर पर ही लोक-मान्यताओं, लोक-विश्वासों तथा लोक-भावनाओं को उचित अभिव्यक्ति मिलती है। इनका प्रादुर्भाव धार्मिक पुस्तकों अथवा शास्त्रों से नहीं होता, अपितु ये देश, काल, जाति के बनाये हुए लोकाचार तथा परंपराएँ होती हैं इसीलिये उनमें देश, काल, जाति के अनुसार भिन्नताएँ भी मिलती हैं उदाहरणार्थ––पूर्वी उत्तरप्रदेश में 'परछन' के समय (वधू के प्रथम बार ससुराल आगमन के समय) सास, वधू को लक्ष्मी मानकर उसके चरण-स्पर्श करती है, परन्तु खड़ीबोली-प्रदेश में यह प्रथा इसके बिल्कुल विपरीत है।

संपूर्ण विवाह में शास्त्रीय संस्कार तो केवल पाणिग्रहण संस्कार ही है जिसको कि निश्चित मूहूर्त्त में विद्वान पंडित ही वैदिक मंत्रों द्वारा सम्पन कराता है, अन्य तो लौकिक, सामाजिक व सांस्कृतिक महत्व की प्रथाएँ ही हैं। इनमें से अधिकांश का संबंध नारीजगत् से है पर कुछ का पुरुषों से भी है। इस को हम दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं––कन्या-पक्ष के यहाँ सम्पन्न होने वाली प्रथाएँ तथा वर-पक्ष के यहाँ होने वाली लोकाचार संबंधी प्रथाएँ। हर पक्ष में भावनाओं की भिन्नता होने के कारण रीति-रिवाजों में भी पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है।

कुछ सामाजिक व लोकाचार संबंधी प्रथाएँ तो विवाह निश्चित होने के दिन से ही आरंभ हो जाती है। इनमें सब से पूर्व **रोपना, अथवा, रोकना,** नामक प्रथा है। 'रोपना' से बीजारोपण का अर्थ लगाया जाता है। 'रोकना' अर्थात् लड़के तथा लड़की को एक-दूसरे के लिये प्रतीक्षा करने के लिये रोक देना ––के अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। इस अवसर पर वर-पक्ष की कुछ स्त्रियाँ व पुरुष, कन्या को देखने जाते हैं तथा कन्या को आभूषण, जोड़ा, कुछ फल, खिलौने, मेवा-मिठाई, चूड़ी-बिन्दी आदि शृंगार की वस्तुओं से उसकी गोद भरते हैं। और फिर कन्या-पक्ष वाले वर को यथासामर्थ्य धनराशि, मिठाई तथा फल आदि भेंट करते हैं। इस प्रकार 'रोकना' प्रथा होती है। तत्पश्चात् कुछ समय के बाद सुविधानुसार सगाई या वाग्दान-संस्कार होता है।

सगाई––इस अवसर पर कन्या पक्ष वाले धन, फल, मिठाई जोड़े तथा अन्य वस्तुएं यथासामर्थ्य भेजते हैं तथा उसके साथ ही साथ या कभी-कभी कुछ दिन

बाद एक पत्र भेजा जाता है जिसको 'लगन' या 'टेवा', 'टेहवा' कहते हैं जिसमें कन्या-पक्ष, वर-पक्ष से प्रार्थना करता है कि वह अमुक तिथि को विवाह के लिये पधारें। 'सगाई' का अर्थ संभवतः निकट संबंधी अथवा सगे हो जाने से है। वर-पक्ष वाले अपने मित्र व संबंधियों को बुलवाकर सगाई दिखलाते हैं तथा उसके बदले में 'संजोया' भेजते हैं। 'संजोये' में कन्या के लिये जोड़ा, आभूषण, मेंहदी, बिंदी, शृंगार का सब सामान, फल, मेवा, खिलौने संजोये जाते हैं। इसमें केवल कन्या से संबंधित आवश्यक वस्तुएँ 'शुभ' के लिये रख ली जाती हैं और अधिकांश वापिस कर दी जाती हैं। इसी सामान से कन्या की 'सिरगुंद्दी' (बाल बनाने की क्रिया) की जाती है। इस अवसर पर महिलाएँ 'सुहाग' गाती हैं।

यदि विवाह तथा सगाई के बीच में अधिक विलम्ब होता है तो कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को 'त्यौहारियाँ' भी भेजनी पड़ती हैं। विवाह के बाद भी एक वर्ष तक कन्या के घर मुख्य त्यौहारों पर सामान जाता है, उदाहरण के के लिये सावन में सिंधारा, फागुन में 'फगुआ', दिवाली आदि पर मिठाई। विवाह के पूर्व और भी बहुत से लोकाचार होते हैं जिनमें हलद, बान, मढ़ा, तेल भात आदि मुख्य हैं।

हलद——यह ८, ७ या ५ दिनों की होती है। इसमें नायन तथा अन्य संबंधी भी लड़की के शरीर पर हल्दी चढ़ाते हैं। हल्दी बहुत गुणकारी है। इसका प्रयोग अनेक रोगों में किया जाता है तथा इसके प्रयोग से छूत की बीमारी होने की आशंका भी नहीं रहती। विवाह के अवसर पर लड़के व लड़की को नये ग्राम व शहर में जाना होता है। उनकी आबहवा बदलती है तथा हर प्रकार के व्यक्तियों से स्पर्श होता है—इसी से रोगों से बचाव के हेतु ही इसका यह वैज्ञानिक प्रयोग——बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। इससे त्वचा मुलायम, साफ़ तथा सौन्दर्यपूर्ण भी हो जाती है।

तेल——दूब से चढ़ाया जाता है, यह बान भी ५, या ७ होते हैं। इनके बाद प्रति-दिन कन्या को उबटना मला जाता है। (उबटना सुवासित सामग्री से बनाया हुआ सौंदर्य-प्रसाधन है। चमेली के तेल में मिलाकर शरीर पर मलते हैं) इसका उद्देश्य कन्या की सौंदर्य-वृद्धि करना और उसको आकर्षक बनाना ही होता है।

मढ़ा——मढ़ा बारात जाने अथवा आने से पहले दिन अथवा एक दिन पूर्व चढ़ता है। इसमें सब संबंधी खानदान के लोग भाग लेते हैं। मढ़े में ५ अथवा ७ सरकंडे होते हैं, । सराई में सुपारी; हल्दी की गाँठ रखकर तथा लाल कपड़ा रखकर कलावे में पिरोकर दोनों सिरों पर बाँध देते हैं तथा उन सरकंडों में पाँच, सात अथवा नौ स्थानों पर कलावे से गाँठ लगा दी जाती है, फिर उसको उठा कर टेहले वाले

कमरे के बाहर खूँटी पर रख दिया जाता है। कन्या के विवाह में इसका अर्थ लिया जाता है कि कन्या का विवाह छप्पर के समान है जिसको सब मिलकर कंधे पर उठाते हैं। इस प्रकार, लड़की के विवाह में सभी मिलकर कार्य करते हैं। 'मढ़े' में एक सफ़ेद चादर भी ऊपर बाँध दी जाती है, उसको 'मढ़ा' बाँधना कहते हैं। इस पर स्वस्तिक चिह्न बना होता है तथा चावल, हल्दी, सुपारी आदि भी म.गलिक वस्तुएँ उसके बीच में ऊपर डाल देते हैं।

भात––कन्या तथा पुत्र के विवाह की तिथि निश्चित होने के बाद माँ अपने पीहर भाइयों को विवाह में आने का निमंत्रण देने जाती है। साथ मिसरी के कूजें, मेवा, मेंहदी, कलावा, रोली, एक चिट्ठी आदि ले जाती है, इसको 'भात न्यौतना' कहते हैं। भात के अवसर से संबंधित इसी वर्ण्यविषय के बहुत से गीत हैं जिनमें 'नरसी का भात', 'नींदना भात' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका वर्ण्य-विषय होता है भाई से विवाह में सहायता देने की प्रार्थना करना। इनमें बहिन अपनी आर्थिक असमर्थता तथा सामाजिक कटु-आलोचनाओं के भय का भी उल्लेख करती है। भाई यथाशक्ति अपने सामर्थ्यानुसार आभूषण व वस्त्र लेकर विवाह के एक-दो दिन पहिले पहुँचता है और वहाँ पर उसका उचित स्वागत होता है। लड़की के विवाह में वह जोड़ा पायजेब, बिछुए, नथ आदि तो लाता ही है, इसके अतिरिक्त, सामर्थ्यानुसार और भी वस्तुएँ लाता है। बहिन द्वार पर भाई तथा भाई के परिवार की आरती करके घर में प्रविष्ट कराती है। घर में भाई को बूरा तथा सुहाली खिलाई जाती है और नाई उस समय भाई का अंगूठा धोता है जिसका कि उसको उचित नेग मिलता है। इस अवसर पर भाई को 'सीठने' भी दिये जाते हैं जो कन्या की चाची, ताई, भाभी आदि संबंधी देती हैं––उदाहरण के लिये––

भातियों की मूंछ जैसे कुत्ते की पूंछ
मत पाड़ियो रे लाल, वो तो विचारा गरीबड़ा

तथा––

भातियों के कान जैसे फुट्टी दुकान
गधे मत बाड़ियो रे लाल, वो तो बिचारा गरीबड़ा

इसी प्रकार, सभी अंगों से संबंधित और भी 'सीठने' दिये जाते हैं। लड़के के विवाह में मामा अधिक सामग्री नहीं ले जाता––'घुड़चढ़ी' का पूरा जोड़ा ले जाना आवश्यक होता है।

अभीतक लड़की के विवाह से पूर्व की प्रथाओं का उल्लेख किया जो कन्या-

पक्ष में मनायी जाती हैं। इसी अवसर पर वर-पक्ष के यहाँ भी कुछ समारोह होते हैं ।

सगाई चढ़ना—'लगन आना', 'तेलबान', 'मढा' वा 'भात' आदि । इनमें अधिक अंतर नहीं होता । लगभग दोनों पक्षों में समान ही होते हैं, गीत अवश्य कुछ भिन्न होते हैं—जिन्हें 'घोड़ी बन्ने' कहा जाता है ।

वर-पक्ष के यहाँ विवाह के पहिले दिन 'घुड़-चढ़ी' का विशेष महत्वपूर्ण आयोजन होता है ।

घुड़-चढ़ी—विवाह के पहले दिन या उसी दिन वर की घुड़-चढ़ी होती है । घुड़-चढ़ी के पश्चात् वर अपने घर वधू को बिना साथ लिये नहीं लौटता । अतः किसी मित्र के घर या मंदिर में रात्रि में ठहर जाता है और वहीं से वह वर-यात्रा में सम्मिलित होता है। प्राचीन काल में आधुनिक काल के समान याता-यात के सुगम साधन नहीं थे । इसलिये वर घोड़े पर जाता था और अन्य संबंधी लोग रथ या बहेलियों में यात्रा करते थे । वर को सर्वप्रथम घोड़े पर चढ़ाकर मंदिर में ले जाया जाता है तथा वहाँ उससे पूजा व दान कराया जाता है । घुड़-चढ़ी के अवसर पर लड़के के सभी संबंधी टीका करते हैं और गीत गाते हैं—यह घोड़ी-बन्ना, सेहरा आदि कहलाते हैं । तत्पश्चात् यात्रा आरंभ होती है, लड़के के विवाह में सभी संबंधियों के मन में अधिक उत्साह रहता है । इसमें लड़की के विवाह से भिन्न मनःस्थिति रहती है, अतः इन गीतों की लय, वर्ण्य-विषय तथा लड़की के विवाह में गाये जाने वाले गीतों में भेद पाया जाता है । इस अवसर पर वर के साथ छोटा भाई या छोटी बहिन को भी घोड़े पर बैठाया जाता है । इसी अवसर पर माँ कुएँ में पैर डाल कर बैठती है, दूध पिलाई का 'नेग' माँगती है और सब आधि-व्याधियों को सराइ में बन्द कर के बारात लौटने तक रखती है जिससे यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो । भाभी काजल डालती है तथा राई-नौन से नजर उतारती जाती है ।

बारात जाने के बाद, उसी दिन रात्रि में सब घर की व पड़ोस की स्त्रियाँ मिलकर एक प्रथा मनाती हैं जिसको 'कोयल' कहते हैं । इसमें सब से पहिले 'सोब्बो' लिखा जाता है जो निम्न प्रकार का होता है—

एक ब्राह्मणी नाई बन जाती है और समधनों को आकर बारात का हाल सुनाती है । घर की सब स्त्रियाँ उसे घेर कर बैठ जाती हैं और पूछती हैं कि, 'बाग' में क्या-क्या दिया ? दावत कैसी की है ? तब वह ब्राह्मणी, जो नाई बनती है, तरह-तरह की गंदी बातें बोलती है जैसे 'चौदा सौ' रुपये दिये हैं इत्यादि ।

इस अवसर पर वह शब्दों को बिगाड़कर बोलती है जिससे उनका दूसरा अर्थ लग जाता है, जा प्रायः अश्लील होते हैं।

इसके बाद भाँग, बनाई जाती है। एक लम्बा-सा डंडा लेकर 'नाई' भाँग घोंटता है। भाँग घोटते-घोटते वह गाना गाता जाता है तथा मस्ती में झूमता रहता है।

इसके बाद एक ब्राह्मणी नाई बनकर आती है और आकर कहती है कि मुझे बारात में लड़के की माँ, बुआ इत्यादि की खबर लाने के लिये भेजा है। उस समय एक गाना-गाती है—

मैं तो दूरों से आया री माई रामलीला
मुझे जगदीश ने भेजा री माई रामलीला
बहु की सुध लादे री माई, सुक्खो की खबर ला दे
मुझे पास ही सुला दे री माई—रामलीला

इसी प्रकार घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर उसकी स्त्री के साथ मज़ाक होता है।

इसके बाद 'चूड़ी' पहनी जाती है। एक ब्राह्मणी मनिहार का वेश बना कर हरी चूड़ियाँ, बैंजनी चूड़ियाँ, कहकर आवाज़ लगाती है और उसे घर में बुला लिया जाता है। घर में आने पर उससे सब से पहिले बहू का जोड़ा बँधवाते हैं। 'चूड़ियाँ वाली' बहुत मजाकिया स्त्री बनती है। चूड़ियाँ पहनाते समय वह कहती है—ये हरी-हरी चूड़ियाँ तुम पहनो सुहागन चूड़ियाँ, इसके बाद चूड़ी पहनाती जाती है और घर के प्रत्येक पुरुष का नाम ले-लेकर उसकी स्त्री को उसकी चूड़ियाँ पहनाती है। स्त्रियाँ अपने-अपने देवरों, पुत्रों के नाम की भी चूड़ियाँ पहनती हैं। चूड़ी पहनाते समय चूड़ीवाली यह गाना गाती है—

जगदीश की पौड़ी पौड़ा रे मनिहार लला
कला का हाथ हठीला रे, मनिहार लला
कला पहिरन बैठी रे मनिहार लला
वो तो बड़ी ही हठीली रे मनिहार लला

ये चूड़ियाँ सचमुच में नहीं पहनाई जाती हैं, यह सब झूठ-मूठ का अभिनय होता है। पर बहुत ही सफल अभिनय होता है।

चूड़ियाँ पहनने के बाद, आधी स्त्रियाँ छत के ऊपर चली जाती हैं और आधी नीचे चौक में बैठी रहती हैं फिर 'कोयल' बुलाई जाती है। नीचे वाली स्त्रियाँ बोलती हैं—

"मत बोलो री बहनों"

इसी प्रकार, घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर बोलती जाती हैं और ऊपर वाली स्त्री 'मत बोलो री बहनों' कहती जाती है। इस प्रकार 'कोयल' समाप्त हो जाती है। कहीं-कहीं पर इस क्षेत्र में 'कोयल' के बाद बहू-बन्ने भी बनाये जाते हैं और उनके फेरे कराये जाते हैं। आपस में ही घर की लड़की बन्ना बनती है और कोई भी बहू, बहू बनती है। उन्हीं स्त्रियों में से एक पंडित बनता है और उनके फेरे कराये जाते हैं। यह एक प्रकार का स्वाँग होता है। वेशभूषा पात्रों के अनुरूप ही पहनी जाती है। इस समय 'सुहाग' गाये जाते हैं। ऐसा मानते हैं कि 'सुहाग' इसलिये गाने चाहिये क्योंकि बहू को इस समय 'सुहाग' चढ़ता है और फेरे होते हैं। 'कोयल' में अब इतना ही होता है।

बारात जाने के अगले दिन दोपहर को स्त्रियाँ गाना-बजाना व नृत्य करती हैं। यह लड़के के विवाह की मुख्य प्रथा होती थी जिसका प्रचलन अब कम हो गया है। इसमें लगभग सभी प्रकार के गाने गाये जाते हैं, जो चलते हुए तथा हँसी, मजाक व नृत्य के होते हैं। इसको 'खोड़िया' कहा जाता है।

'खोड़िये' के बाद 'बधावा' गाया जाता है। घर की व खानदान की सब स्त्रियों के नामों को ले-लेकर उनको बधाई दी जाती है, क्योंकि उन्होंने ऐसे सुपुत्र को जन्म दिया है। यह 'बधावा' बधाई-गीत इस प्रकार का होता है कि इसमें वह लड़के की माँ का नाम लेकर गाते हैं, उदाहरण के लिये—

बधावा है 'कमला' की कोख
जिसने जाया है हरि सा पूत

उधर कन्यापक्ष के यहाँ जब बारात पहुँचती है तो उसको सादर 'जनवासे' में (एक निश्चित स्थान पर) ठहराया जाता है। दोपहर के खाने में चटनी या रायता नहीं दिया जाता है—यह खटाई है। अभी संबंध बनने से पूर्व ही उनमें 'खटाई' न पड़े। संभव है, इसमें यही धारणा हो। फेरों से पूर्व लड़की का बाप जनवासे में नहीं जाता।

बारात पहुँचने के पश्चात्, सबसे पहिली तथा महत्वपूर्ण प्रथा 'बाग' होती है। इसको 'न्यौतनी' भी कहते हैं। इस समय लड़की वाला अपने पुत्र व अन्य संबंधियों के साथ कुछ भेंट भेजता है। लड़की का भाई वर की पूजा करता है तथा भेंट देता है और अपने घर पर सादर पधारने का निमंत्रण देता है। तब बारात 'बारद्वारी' अथवा सेवल के लिये सज कर चलती है। इसको 'चढ़त' भी कहते हैं।

'न्यौतनी' से पूर्व वर-पक्ष का नाई बाजा लेकर कन्या-पक्ष के घर जाता है

तथा उनको सूचना देता है। कहीं-कहीं इसे 'सुहाग पूड़ा' भी कहा जाता है। इसके पश्चात् ही कन्या-पक्ष वाले उनको लेने जाते हैं।

'बाग़' की प्रथा भी परिस्थितिजन्य प्रथा थी। पहिले बड़ी-बड़ी धर्मशाला एवं कोठियाँ नहीं होती थीं, इसलिये बारात बाग़ों में ही ठहरती थी। इस समय ग्रामवासी वधू के भाई को लेकर पूजा करते थे, यही 'बाग' की प्रथा अब भी अवशेषरूप में मिलती है।

जब बारात घर आ जाती है तो वर की 'सेवल' या पूजा होती है। इस समय लड़का द्वार पर पड़ी हुई चौकी पर खड़ा होता है। वधू की भाभी अथवा बड़ी बहन 'सेवल' या 'आरता' करती है। यह चौकी जिस पर वर खड़ा होता है, यह वर के बहनोई को मिलती है। इसके पश्चात् खान-पान के बाद पाणिग्रहण-संस्कार होता है।

पाणिग्रहण संस्कार—ये संस्कार निश्चित मुहूर्त में विद्वान् पंडितों द्वारा वैदिक मंत्रों के द्वारा ही कराया जाता है। इस समय वर-वधू अग्नि के सम्मुख समाज को साक्षी मानकर प्रतिज्ञाएँ करते हैं। इस संस्कार को कहीं-कहीं 'कन्यादान' भी कहा जाता है।

कन्यापक्ष में गुरुजन (कन्या से संबंध में बड़े सभी संबंधी) पूरे दिन व्रत रखते हैं तथा कन्यादान सम्पन्न हो जाने के पश्चात्, भोजन करते हैं। व्रत के पीछे दो भावनाएँ निहित रहती हैं। उनमें से एक यही है कि कन्यापक्ष में गुरुजन उपवास रखकर ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी कन्या सुखी तथा धन-धान्य से पूर्ण रहे। दूसरी भावना इस संकल्प की परिचायक होती है कि गुरुजनों ने कन्या के विवाह के संबंध में संकल्प किया है कि वे कन्या को सुपात्र के हाथों में सौंपकर ही निश्चिन्ततापूर्वक तथा शांति से भोजन करेंगे।

विवाह के समय अन्य विधि-विधानों के अतिरिक्त 'कन्यादान' मुख्य होता है। विवाह के अन्तर्गत जितने छोटे-बड़े संस्कार होते हैं उन सभी का केन्द्ररूप यही संस्कार है। कन्यादान का दृश्य बहुत ही कारुणिक होता है। पिता अपनी लड़की को सदा के लिये पराये हाथों में दे देता है—कन्यादान को लोकगीतों में सूर्य-ग्रहण और चन्द्रग्रहण से भी अधिक कष्टप्रद बताया गया है। इस समय माता-पिता की बहुमुखी भावनाएँ होती हैं, एक ओर तो वह अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति की भावना से प्रसन्न होते हैं, पर साथ ही दूसरी ओर वरपक्ष का आतंक भी बना रहता है तथा वह कन्या के भविष्य की अनिश्चितता के संबंध में कल्पना करके भी काँप उठता है। इसी समय जब पिता, वर को कन्या का हाथ पकड़ाता है तो कन्या का भाई पानी की धार गिराता है, उस समय भाई को

पानी की धार न टूटने देने का आदेश दिया जाता है। इसका तात्पर्य कदाचित् यह है कि उस समय वर-वधू दोनों कुलों का संबंध एकरस ही बना रहे। कन्यादान के समय भाई के हाथ से पानी गिरवाने से यह आशय भी रहता है कि बहन के विवाह के बाद उसका माँ के यहाँ संबंध बनाये रखना भाई के ऊपर ही निर्भर करता है। इसी समय भाई वर-वधू के हाथ में खील भी देता है। 'खील' का शुभ-संस्कारों में बहुत महत्त्व माना जाता है, इसका उल्लेख साहित्यिक कृतियों में भी मिलता है।

कहीं-कहीं इसी अवसर पर या कुछ पहिले ही कन्या के हाथ पीले किये जाते हैं। यह क्रिया एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। "हाथ पीले करना" तो कहावत के रूप में भी लड़की के विवाह के लिये ही प्रयुक्त होता है। घर तथा बाहर की जिन स्त्रियों से लेन-देन होता है वह हल्दी से लड़की के हाथ पीले करती हैं और हाथ में छल्ला, अंगूठी तथा रुपये देकर जाती हैं। हाथ पीले कराई के अवसर पर आये सब रुपये व आभूषण लड़की को ही दिये जाते हैं।

वर का जीजा या फूफा गठबंधन करता है। गाँठ में साबुत सुपारी तथा एक टका भी बाँधते हैं। इसके बाद सप्तपदी भाँवरे होती हैं। 'सप्तपदी' के बाद लड़की, लड़के के वामभाग में आ जाती है। इस अवसर पर स्त्रियाँ एक बहुत ही करुण गीत गाती हैं जिसमें वह कहती हैं कि अभी पहली ही भाँवर है अभी तो बेटी बाप की है, अभी दूसरी ही भाँवर है, इसी प्रकार छः भाँवर तक तो बेटी बाप की ही रहती है परन्तु सातवीं भाँवर के होते ही वह पराई हो जाती है। मानो अपनेपन की सीमा छः भाँवरों तक ही होती है।

सप्तपदी के बाद जब वधू पूर्णतः वर की हो जाती है और इसका सूचक होता है उसके वाम भाग में बैठना। इस अवसर पर 'छायादान' करने की प्रथा है। दो काँसे की कटोरियों में गर्म घी करके दो-दो आने पैसे डाल दिये जाते हैं। दोनों उस घी में अपना मुँह देखते हैं। ये घी और पैसों सहित दोनों कटोरियाँ 'भड्डरी' या 'डकौत' को दे दी जाती है। यह बहुत भारी दान समझा जाता है, अतः भड्डरी के अतिरिक्त इस दान को कोई नहीं लेता। इसके बाद वर-वधू दोनों के पिता यथा-शक्ति दान करते हैं। इसके पीछे देवी-देवताओं की वर-वधू पर अनुकम्पा बनाये रखने का प्रयत्न ही रहता है तथा इस शुभ-अवसर पर प्रसन्नता अभिव्यक्त करने का एक माध्यम भी माना जाता सकता है।

यह संस्कार सम्पन्न हो जाने के पश्चात् वर-वधू घर के अन्दर ले जाये जाते हैं। 'थापे' के सम्मुख दोनों को बैठा दिया जाता है, तथा वर से 'छन' अथवा 'छन्द' सुनाने को कहा जाता है। यह परम्परा, लोकजन की संगीत तथा हास्य-

प्रियता की परिचायक हैं तथा इसी अवसर पर नारी-समाज वर की बुद्धि-परीक्षा भी लेता है। इसी समय वर के साथ अनेक मजाक भी किये जाते हैं जैसे—वधू के जूतों को वर से पुजवा लेना। इस समय वर-पक्ष के लोगों को सीठने अथवा गालियाँ भी दी जाती हैं। 'छन' सुनकर वर को यथासामर्थ्य भेंट करते हैं, पये व आभूषण। 'छन' के रुपये वर की निजी सम्पत्ति होती है। अगले दिन सवेरे कुँवर 'कलेवा' अथवा 'बासड़ा' होता है। इस समय वर के साथ उसके छोटे भाई तथा भतीजे आदि भी आते हैं। अधिकतर घरों में इस अवसर पर बासी खाना खिलाने की प्रथा है। जिन बर्तनों में वर भोजन करता है, वह वर के साथ ही भेज दिये जाते हैं। इसी समय कँगना भी खिलता है—'कंगना' भाभी खिलवाती हैं जिसका उसको 'नेग' मिलता है। इस समय वर से तथा उसके संबंधियों से जी भर कर मजाक होता है। जिसके द्वारा वह स्त्री-संबंधियों से भली-भाँति परिचित हो जाता है। सभी महिलाएँ स्वयं वर से परिचय कर लेती हैं तथा हर प्रकार से वर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती हैं। 'कंगने' पर भी वर को बहुत-सा सामान भेंट स्वरूप मिलता है। इसी दिन शाम को बहुत बढ़िया खाना खिलाने की प्रथा है, जिसको 'बढ़ार' कहते हैं। खाना खाते समय स्त्रियाँ पर्दे के पीछे से वरपक्ष के लोगों को खूब 'सीठने' देती हैं जिसको कोई भी बुरा नहीं मानता यद्यपि यह अश्लील भी होते हैं। तीसरे दिन विदा का आयोजन होता है। अब प्रायः विदा दूसरे ही दिन करने लगे हैं, अतः बढ़ार की प्रथा कम हो गई है।

विदा—विदा से पहले लड़की को दिया जाने वाला पलँग बिछाया जाता है। उस पर वर-वधू को बैठाकर, सूप में धान रख दिये जाते हैं। सर्वप्रथम पुरोहित वर-वधू को तिलक करता है तथा रुपये देता है और पाँव छूता है। इसके बाद वर के जितने भी बड़े होते हैं, तिलक कर के पाँव छूते हैं व रुपये और नारियल देते हैं। इसके बाद लड़की के माँ-बाप, चाचा-चाची, भाई-भाभी धान बोते हैं, ये क्रिया गठबँधन करके ही की जाती है। धान बोने के बाद वर उठकर चला जाता है और वधू को भी उठाकर अन्दर ले जाते हैं, फिर उसको उन्हीं कपड़ों में विदा करते हैं। मंडप में बिखरे हुये धान उठा कर रख लिये जाते हैं और जब लड़की अपनी ससुराल से विदा हो जाती है तो इन्हीं धानों को लेकर माता-पिता गंगा जी में बहा देते हैं और बेटी व्याह के गंगा नहाते हैं। 'गंगा-नहाना' एक मुहावरा-सा बन गया है। किसी महत्वपूर्ण संकल्प व अनुष्ठान के सकुशल पूर्ण होने पर प्रायः लोग 'गंगा' नहाते हैं। धान बोना इस सत्य का परिचायक है। जिस प्रकार धान बोने के बाद, उग आने पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रोप

दिये जाते हैं, इसी प्रकार कन्या भी होती है—जो पलती है एक स्थान पर, फूलती है दूसरी जगह। धान वैसे शुभ भी माने जाते हैं।

विदा से पूर्व पिसी हुई मेंहदी को घोलकर या गेरू से टेहले वाले कमरे के दोनों ओर दीवार पर दो-दो 'थापे' लड़की से लगवाये जाते हैं। इसके बाद कमरे की 'देहली' का लड़की से 'पूरी-बूरा' या चावल-गेहूँ सुहाली, कुछ पैसे रख कर पूजन करवाया जाता है। इसको 'देहली पूजना' कहते हैं। इसका अर्थ है कि जिस घर को छोड़कर वह जा रही है वह सुख-शांति से पूर्ण रहे, अपने घर की तथा भाई-भतीजों की शुभ बनाती हैं। 'थापे' का आशय संभवतः यह था कि तब फोटो का रिवाज़ न था—वैज्ञानिक उन्नति से पूर्व तो पुत्री की स्मृति-स्वरूप उसका हाथ की छाप माँ दीवारों पर लगवा लेती थीं। विदा से पूर्व बेटी तथा वर को भंडार में ले जाकर मिठाई खिलाते हैं।

कन्या का विदाई का दृश्य बहुत ही कारुणिक हो जाता है। सम्पूर्ण नारी और पुरुष समाज के आत्मसंयम की इस समय परीक्षा हो जाती है। जो पिता जीवन के बड़े से बड़े संकट के समय भी धैर्य नहीं खोता और अपने ऊपर पूरा संयम रखता है, वही पिता कन्या की विदाई के समय घरातियों और बरातियों के सामने बच्चों की तरह बिलख उठता है। उसका सारा संयम टूट जाता है और माँ तो यहाँ तक कहती है कि कन्या से तो मेरा घर भी खाली, पेट भी खाली, अतः अब मैं भविष्य में कन्या कभी नहीं जनूँगी। अपनी कोख को खाली करते समय उसको जो मार्मिक वेदना होती है उसका वर्णन असंभव है। इस करुण अवसर को और भी करुण बनाते हैं, इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत! इन गीतों में कन्या सभी संबंधियों के स्नेह की तुलना करती हैं जिनमें माँ का स्नेह ही सर्वोपरि ठहरता है।

कन्या-पक्ष वाले तो अपना सब कुछ अर्पण कर चुके होते हैं, अब आँसुओं के अतिरिक्त उनके पास शेष रह ही क्या जाता है। उधर कन्या अपने लखपती बाप से व्यंग्यपूर्ण प्रश्न करती है कि किस कारण मुझे यह परदेश मिल रहा है। यह भाव इस गीत में बहुत ही भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है—

काहे को व्याही विदेश, रे लक्खी बाबुल मेरे
भइयों को दीन्हें महल दुमहले, हमको दियो परदेस रे

विदा के समय बाहर 'ध्यानों' की जिनमें फूफा तथा दामाद आते हैं तथा मामा समधी आदि की 'मिलाई' होती है। सब पुरुष संबंधी—ग्राम के गोहरे तक जाते हैं और वहीं पर अंतिम विदाई होती है तथा इस समय लड़की को डोली में रुपये दिये जाते हैं।

लड़की की विदाई की तुलना रहस्यवादी कवि इस लोक से उस लोक में जाने से करते हैं। उसके लिये इस जग के मातृ-गृह का अस्तित्व समाप्त होता है। यह पुनर्जन्म के समान ही होता है, एक वातावरण, परिवार तथा रागात्मकता की छाया से दूसरे ही प्रकार की छाया में जाती है। उनकी प्रसन्नता मिश्रित वेदना, प्रसव-वेदना के समान होती है। इस प्रकार पूर्ण विवाह-संस्कार विशेष कर, कन्यापक्ष वालों के लिए हर्ष और विषाद का अद्भुत अवसर होता है।

इधर कन्यापक्ष वाले अपनी 'कच्चे दूधों से पाली नादान बेटी' को विदा करते हैं और घर और पेट से खाली होते हैं। उधर वर-पक्ष विजयी के समान सुख-सम्पत्ति के साथ वधू का गृह-प्रवेश कराता है। इस समय का उसके घर का उल्लास व हर्ष दर्शनीय होता है। हर प्राणी-नयी बहू को देखने को उत्सुक होता है। वर-वधू के स्वागत के लिए सभी मांगलिक लक्षण प्रस्तुत किये जाते हैं— सुहागिन स्त्री, मंगलकलश, शंखध्वनि, चौक पूरना आदि। माँ, भाभी आदि बहू को बहुत प्यार से डोली से उतारती हैं तथा घर के मुख्य द्वार पर माँ, चौमुखे दिये से आरती करती है, न्योछावर करती है, बलैया लेती हैं। बेटा-बहू माँ के पाँव छूते हैं, माँ अशीष देती है अन्य स्त्रियाँ बधावे गाती हैं। पर फिर जैसे ही गृह-प्रवेश करने लगते हैं तो बहनें 'राह' रोकती हैं, भाई उन्हें 'बार रुकाई' के रुपये देता है। इस प्रथा के मूल में संभवतः यह भावना हो कि बहनें जो अब तक भाई की आकर्षण तथा स्नेह की केन्द्रविन्दु रहीं अब कहीं भाभी के आने से उपेक्षित न हो जाएँ—भाई उनको भेंट देकर आश्वासन देता है कि नहीं तुम्हारा स्थान पूर्ववत् रहेगा। माँ, बेटा-बहू को 'थापे' के आगे ले जाती है और वहाँ पर दोनों से पूजा कराई जाती है, रुपये की थैली में बहू का हाथ डलवाया जाता है तथा मीठे चावलों से उसका 'मुँह जुठलाया' जाता है, फिर वही मीठे चावल सभी खाते हैं। तत्पश्चात् बहू की 'मुँह दिखाई' होती है और सब संबंधी बहू का मुँह देख कर उसको आशीर्वाद देते हैं तथा यथा संभव भेंट देते हैं। इस अवसर पर छोटे देवर या किसी बालक को बहू की गोदी में बिठाया जाता है जिसका आशय है, शीघ्र ही समय आने पर बहू की गोद बालक से भरे।

अगले दिन 'कंगना' तथा 'संटी' खेलते हैं। यह फूल की संटी होती है। इस दिन कुछ क्षण के लिए बहू को समानाधिकार प्राप्त होता है—वह जी भर कर पति की पिटाई कर सके और फिर जीवन भर पिटने के लिए तैयार हो जाती है। फूल की संटी कामदेव के पुष्पबाण की परिचायक भी है। इस संटी के प्रयोग का दोनों को वैसे भी समानाधिकार है।

दो-चार दिन वधू मेहमान की तरह रहती है, फिर शुभ मुहूर्त में बहू का छोटा

भाई आकर उसको अपने घर लिवा ले जाता है और इस अवसर पर बहू के भाई का बहुत स्वागत होता है। इस प्रकार विवाह-संस्कार सम्पन्न होता है।

गौना—इसके बाद गौने की प्रथा होती है जिसमें लड़का तथा कुछ विशेष सम्बन्धी प्रायः संख्या में पाँच—एक निश्चित समय पर शुभ-मुहूर्त में वधू को विदा करा कर ले आते हैं। इस समय भी पर्याप्त लेन-देन होता है तथा गीत भी। पहले जब बाल-विवाह की प्रथा थी तो वास्तविक विदा का दृश्य इसी समय उपस्थित होता था क्योंकि कन्या, विवाह के बाद ५-६ वर्ष बाद प्रथम बार श्वसुराल जाती थी पर अब गौने का महत्व कम हो गया है और या तो विवाह के साथ ही गौना हो जाता है जिसको 'पटड़ा फेर' कहते हैं और या कुछ ही दिन, एक या दो मास पश्चात्। इस अवसर पर लड़की के घर 'सुहाग' और लड़के के घर 'घोड़ी बन्ने' गाये जाते हैं।

मृत्यु-संस्कार—मनुष्य शरीर से संबंधित, अन्तिम संस्कार यही है। जो व्यक्ति अच्छी-बड़ी अवस्था में अपने बेटों, पोतों के सामने स्वाभाविक मृत्यु पाता है, उसकी अर्थी को खूब सजाया जाता है। इस सजी हुई अर्थी को 'विमान' कहते हैं, विमान की कल्पना भी स्वर्गलोक जाने के लिए ही करते हैं। इस 'विमान' को गाजे-बाजे के साथ श्मशान तक ले जाते हैं। इस समय मृतक के पौत्र चवँर डुलाते हैं। इसके पीछे धारणा रहती है कि भौतिक जीवन की संपूर्ण सुविधाओं का उपभोग कर मानों वह अन्य अच्छे लोक के लिए महायात्रा कर रहा है। यह केवल परिवर्तन है उन्नति के लिए, न कि कोई दुख का विषय है। इसी से इसका संबंध शोक से नहीं बल्कि प्रसन्नता से है। यह गाना, बजाना व सजावट उस मृतक व्यक्ति के बेटों, पोतों तथा अन्य संबंधियों के लिए शुभ समझा जाता है। छोटे-छोटे बालकों को ऐसे वृद्ध मृतकों के विमान अथवा अर्थी के नीचे से निकाला जाता है क्योंकि ऐसा करने से वह दीर्घायु को प्राप्त होंगे। इसी विचार से जिनके बालक नहीं जीते, वह बालकों की टोपी अथवा कुरता बनाने के लिए श्मशान से विमान का कपड़ा ले आते हैं। इस प्रकार यहाँ वृद्ध की मृत्यु पर शोक नहीं मनाया जाता है।

'शव' को गाँव के 'गोहरे' ले जाकर उतारा जाता है। वहाँ पर घट फोड़ दिया जाता है। यह घट, क्रिया करने वाला बड़ा पुत्र हाथ में लिए रहता है। शव के ऊपर जितने भी शाल-दुशाले ढके रहते हैं, वह भंगी को दे दिए जाते हैं। शव-यात्रा के समय बहुत से लोग रुपयों, पैसों की बखेर भी करते हैं। अन्त्येष्टि-क्रिया बड़ा पुत्र करता है और उसको क्रिया के समय बहुत नियम-संयम से रहना पड़ता है। तख्त पर सोना तथा एक समय भोजन करना आवश्यक है। इन दिनों

परिवार में काले उड़द की दाल बनती है तथा बिना छने आटे की रोटी। बारह दिन तक कढ़ाई नहीं चढ़ती। निकट के पुरुष संबंधी दसवें तक हजामत भी नहीं बनाते। श्मशान में संध्या को दीपक जलाने तथा घट भरने दसवें तक जाते हैं।

दसवें दिन महाब्राह्मण को पुत्र, यथाशक्ति दान देता है। इस दान में वे सभी वस्तुएँ होती हैं जो जीवनकाल में मृतक की आवश्यकता थी व प्रिय थी। उसी दिन सभी परिवार के लोग हजामत बनवाते हैं तथा स्त्रियाँ भी सिर से स्नान कर सिंदूर आदि लगाती हैं। कुछ परिवारों में इन दिनों गायत्री का जाप तथा गरुड़पुराण का पाठ होता है। तेरहवीं के दिन घर की शुद्धि होती है तथा ब्राह्मण-भोजन कराया जाता है।

यद्यपि इस समय साधारणतः गीतों का विधान नहीं होता पर स्त्रियों का इस समय का रुदन एक लय में होता है और उसके साथ जो शब्द वे कहती हैं, वह प्रायः मृत-व्यक्ति की प्रिय वस्तुओं का नाम लेकर शोक प्रकट करती हैं। इनको इस प्रदेश में 'उलाहणी' कहते हैं। यह गीत यद्यपि बहुत कम प्रचलित है, पर इनके द्वारा हमें पूरी प्रथा का पता चल जाता है—यह परंपरागत प्रथाओं का द्योतक है।

इन शोक-गीतों के वर्ण्य-विषय, मृतक तथा उससे संबंधित वस्तुओं व स्वभाव से होते हैं। ये जीवन की परिस्थितियों की तथा सांसारिक संबंधों की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालते हैं और मृतक के संबंधियों तथा उसके व्यवहार में आने वाली पदार्थों का मार्मिक वर्णन कर करुणा की लहर उत्पन्न करते हैं। इनमें अकाल मृत्यु पर खेद तथा मृतक से लौटने तक का आग्रह किया जाता है तथा इनमें मृतक का रूप-गुण वर्णन मिलता है और उस समय होने वाले अपशकुनों का भी वर्णन रहता है। एक उलाहणी का उदाहरण हम यहीं पर दे रहे हैं जो वृद्ध की मृत्यु के अवसर पर गाया जाता है—

ए चन्दन रूख कटाइयोणी, ऐ बाढ़ी बेग बुलाइयोणी
ऐ सात्तो बाज्जे बाजियाणी, ऐ बेट्टों मूंड मुंड़ाइयोणी
ए बहुये खेस खिडाइयाणी, ऐ पोत्तों चंवर डुलाइयोणी,
ऐ दोहतों रास कराइयोणी, ऐ भर बजारो काढ्ढोणी
ऐ चुंदरी पड़े दिसावरोणी, ऐ मरना री बुड्ढे का
ऐ पैसे बहुएं पांवलियाणी, ऐ बाग्गो साड़ी सांहणी
ऐ क्या क्या पुन्न कराइयोणी, ऐ गऊएं पुन्न कराइयोणी
ऐ सोन्ने खुरी मढाइयोणी, ऐ चांदी सींग मढ़ाइयोणी।

वृद्ध की मृत्यु पर नायन जिस गीत को गाती है, वह 'उठावणी' भी कहलाती है। उठावणी का तात्पर्य है अरथी उठाने के अवसर पर गाया जाने वाला गीत— मृत्यु के समय 'पल्ले लेकर' रोने की प्रथा अभी भी प्रचलित है।

सधवा तरुणी स्त्री की मृत्यु पर भी विलाप का गीत मिलता है। वैसे सधवा सौभाग्यवती स्त्री की, जिसके पति जीवित हों, उसकी मृत्यु बहुत ही अच्छी मानी जाती है। 'पति के कंधे पर चढ़ कर जाना' मुहावरा भी बन गया है।

वृद्ध की अर्थी उठ जाने के बाद फाटक तक स्त्रियाँ भी पीछे-पीछे जाती हैं तथा जिसका बूढ़ा मरता है वह 'नायन' को रुपया देती है, बाद में समधिन देती है और फिर सब संबंधी व परिचित जो उपस्थित होती हैं एक-एक या दो-दो पैसा देकर 'बेल' बढ़वाती हैं। यह सब बेटों आदि का नाम ले लेकर वंश-वृद्धि करती हैं। यह जीवित लोगों के लिए शुभ की कामना करवाने का एक रूप है।

छोटे बालक के मरने में, सायंकाल यदि कोई स्त्री रोती है तो ऐसा लोक-विश्वास है कि माँ रोवे तो बालक की कष्ट होता है; क्योंकि यमराज के यहाँ छोटे-छोटे बालक पानी भरने का काम करते हैं। जब दिन भर वह पानी भर कर निबटते हैं तो मजूरी के रूप में उनको पानी पीने के लिए दिया जाता है। यदि ऐसे समय बालक की माता रो उठे, तो जितने आँसू गिरें, उतना ही जल बालक को नहीं मिलेगा। इसलिए उसकी माँ को कदापि रोना नहीं चाहिये।

खड़ीबोली के संस्कार संबंधी गीतों में जन्म से मृत्यु तक के सभी प्रमुख संस्कारों का उल्लेख मिलता है तथा इनके लोकमहत्व का पता चलता है। लोकजीवन में उनका क्या महत्व है, इनसे यह भी पता चलता है। इन गीतों में जीवन का पूर्णरूपेण यथातथ्य-चित्रण है।

धार्मिक गीत : व्रत, त्योहार, अनुष्ठान संबंधी

धर्म, लोकजीवन की विरासत है। लोकमानव, धर्म की चादर के नीचे अपने को सुरक्षित समझता है। उसके सम्मुख जो भी कुछ कठिनाई आती है, उस समय धर्म का भोला विश्वास ही उसका साथी बनता है। धर्म, लोकजीवन में इसीलिए जीवित है कि लोकमानव का इसके अतिरिक्त न अपनी बुद्धि पर विश्वास है और न ही पृथ्वी की और किसी शक्ति पर। लोक मानव के ये अंधविश्वास तथा प्रथाएँ, वेदों तथा शास्त्रों द्वारा बोले वाक्य ही प्रतीत होते हैं। धर्म ही उसको भाग्यवादी बना कर विषम परिस्थितियों में भी हारने नहीं देता। भाग्य को दोष देकर फिर वह कर्म में रत हो जाता है।

लोकजीवन में धार्मिक भावना होने के कारण धर्मभीरुता की भावना भी

सदा बनी रहती है। वह प्रकृति के हर अवयव की पूजा करता है क्योंकि हर समय प्रकृति उसकी सहचरी है। वह वृक्ष, सरिता, सर्प सभी की निष्ठा से पूजा करता है। प्रत्येक मास में कोई न कोई पर्व आकर उसकी इन धार्मिक भावनाओं को जागृत करता रहता है। इन सभी पर्वों के अवसर पर गीत गाने की प्रथा है। देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार "लोकगीतों का बचपन धर्म की छाया में व्यतीत होता है। अनेक गीत ऐसे मिलेंगे कि जिनका जन्म, पूजा, व्रत, त्यौहार के साथ होता है। लोकजीवन के देवी-देवता, व्रतों, उत्सवों को समझने के लिए लोकजीवन के आदिम काल के विश्वासों की थोड़ी जानकारी आवश्यक है। जो देवता, प्रागैतिहासिक काल के जाने-पहिचाने ऐतिहासिक पुरुष हैं—जैसे राम-कृष्ण, उनसे संबंधित उत्सव तो उनकी स्मृति में मनाये जाते हैं अन्य उत्सवों का संबंध मानव के आदिम विश्वासों से है। लोक-विश्वासों के कारण ही अनेक देवताओं के प्रति लोकजन में निष्ठा वर्तमान थी। इस निष्ठा ने ही आगे चल कर शक्ति का रूप ले लिया। उनके लिये नदियाँ पालक तथा ध्वंसक दोनों ही थीं, इसीलिए वह उनको पूजता था। खड़ीबोली के लोकगीत इन्हीं धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत होते हैं और इनमें भाग्यवाद की झलक स्पष्ट दीखती है। संसार में मनुष्य की बनाई हुई विषमताओं को भी वह भाग्य का ही कारण समझते हैं।

धार्मिक लोकगीतों में भाग्यवाद का तथा कर्मवाद का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। कभी-कभी तो कर्म और भाग्य दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हो जाते हैं। हिन्दू समाज में कर्मवाद का सिद्धांत अपना प्रबल प्रभुत्व जमाये हुए है। साधारण जनता का इस कर्म में अटल विश्वास है कि जो जैसा करता है वैसा फल पाता है—'कर्मप्रधान विश्व करि राखा' तुलसीदास जी की इस चौपाई की प्रतिध्वनि हमें लोकगीतों में मिलती है।

किसी भी देश की सजीवता, समृद्धि और उसके जीवन का ठीक-ठीक अनुमान उसके त्यौहारों और उत्सवों ही से लगाया जाता है। जो देश जितना ही अधिक उत्सव-प्रिय होगा, उतना ही अधिक सुखी और समृद्ध होगा। हमारा देश सदा से अपने उत्सव और त्योहारों-मेलो के लिए प्रसिद्ध रहा है। यही उत्सव-प्रियता उसके पूर्व गौरव को सूचित करती है। इस समय हमारा देश पूर्ववत् सुखी और समृद्ध तो नहीं, परन्तु फिर भी यह उत्सव-प्रियता का अवशेष ही है या परम्परा का निभाना ही है। उत्सव को अधिक रोचक और सफल बनाने में लोकगीतों का विशेष हाथ है। इन धार्मिक गीतों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं :—

१—देवी-देवताओं से संबंधित लोकगीत।
२—व्रत-त्योहार संबंधी तथा दैनिक फुटकर गीत।
३—जोगियों के गीत।

देवी-देवताओं से संबंधित लोकगीत—

इस प्रकार के लोकगीतों में अनेक देवताओं की उपासना का उल्लेख मिलता है। राम, कृष्ण, शिव, देवी, माता, साँझी आदि सभी गीतों पर हम दृष्टिपात करेंगे। प्रत्येक हिन्दू के घर में तथा मन्दिर के मुखद्वार पर गणेश जी की प्रतिमा अवश्य रहती है। कोई भी कार्य आरम्भ करते समय गणेश-स्तुति की जाती है जो इस प्रकार है—

सिमरूं गौरी पुत्र गनेस
नाम लिये से संकट सब भागें.....

तथा इसी प्रकार—

सिमरत कटैं है कलेस
माता तुम्हारी पारबती पिता तुम्हारे महेस
धूपदीप पकवान मिठाई भोग लगाऊं हमेस
सिमरूं गौरी पुत्र गनेस।

कुछ देवी-देवता संबंधी गीत, शीतला माता, दुर्गा आदि से संबंधित, राम-कृष्ण, शिव, हनूमान, भैरों से संबंधित गीत तथा विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले दई-देवता के गीत भी मिलते हैं जिनमें इनकी आराधना की जाती है।

स्त्रियों की श्रद्धा जितनी देवियों के प्रति है, उतनी देवताओं के प्रति नहीं। जब घर में कोई बीमार होता है, कोई अपशकुन होता है अथवा कोई आपत्ति आती है तो उस समय वह भगवती देवी, दुर्गा या काली की प्रार्थना करती हैं। शीतलादेवी इन देवियों में प्रधान हैं। माली, शीतलादेवी का परम भक्त माना जाता है, अतएव उनकी कृपा के लिए उसकी सहायता आवश्यक होती है। देवी के गीत दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—प्रथम, वह जो स्त्रियाँ घर में या जागरण में गाती हैं। यह स्फुट भी होते हैं तथा प्रबंध भी; दूसरे, भगत कहलाते हैं।

स्फुट में देवी की प्रार्थना, उसकी स्तुति, उसके पराक्रम का उल्लेख, उसके स्थान तथा शोभा का वर्णन, जात की तैयारी, तथा यात्रियों की कठिनाइयों का वर्णन मिलता है। यह गीत स्त्रियाँ विशेषरूप से चैत्र या क्वार में गाती हैं। चैत्र तथा क्वार मास के शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लेकर नवमी तक व्रत रखे जाते हैं।

इस प्रदेश में अनेकों देवियों की पूजा होती है जिनमें सात मुख्य हैं और शीतलादेवी उनमें प्रमुख तथा उल्लेखनीय हैं ।

शीतला देवी—विज्ञान चेचक को एक रोग मानता है परन्तु लोकविश्वास में उसे शीतलादेवी कहा जाता है । इतने भयंकर रोग का जिसमें शारीरिक तपन की चरम सीमा होती है, उसका नाम शीतला सुनकर आश्चर्य होता है । डॉक्टर तारापुरवाला के मत से, मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि वह नीच और भयंकर वस्तु को किसी सुंदर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है । इस भयंकर बीमारी को शीतला कहने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं । चेचक के प्रकोप के साथ उनकी पूजा भी होती है । साधारण अवस्था में स्त्रियाँ उनका बहुत आदर करती हैं । देवी के गीत अनन्त हैं, उनमें से एक-दो का उदाहरण हम परिशिष्ट में दे रहे हैं । बासौड़ा पूजने का भी एक विशेष गीत है ।[1]

लड़की व लड़के के विवाह के अवसर पर जो लोकगीत गाये जाते हैं, उनमें देवी-देवताओं के आवाहन से संबंधित गीत मिलते हैं । हमारा समाज धर्मभीरु है, इसी से वह अनिष्ट की आशंका से, पहिले से ही बचाव करता है, जिस प्रकार कि किसी भी संक्रामक रोग के पहिले उसके बचाव का उपाय कर लेते हैं । आधुनिक-युग तो बचाव में बहुत विश्वास करता है पर स्त्रियाँ तो पहिले से ही उसके निवारण का उपाय कर देती थीं । इसीलिए किसी भी मंगल कार्य के आरंभ में मंगलाचरण होता है जिसमें सभी देवी-देवताओं को विवाह में आमंत्रित करते हैं । लगन लिखे जाने से पहिले स्त्रियाँ देवी-देवताओं के जो गीत गाती हैं, उन गीतों में इन सब बातों का उल्लेख रहता है । इन गीतों में भूमियाँ, मीरा, जौहर, सेती, चावण, बूढ़े बाबा आदि लोक देवताओं से संबंधित गीत हैं ।

विवाह के अवसर पर पूजित देवी-देवताओं को राजसी अथवा तामसी प्रवृत्ति का माना जा सकता है । पूजा के इस आनुष्ठानिक आयोजन में टोने-टोटके का बाहुल्य है जो स्पष्टत: व्यंजित करता है कि सामान्य नारी-मानस की स्थिति आदिम युग की मानवीय सभ्यता से अधिक विकसित नहीं हो पाई । मानवेतर सृष्टि के विभिन्न पदार्थों में देवत्व की कल्पना कर भय और विस्मय की भावना से उपासना एवं प्रार्थना करने की प्रवृत्ति असभ्य और अर्ध-सभ्य जातियों की देन है । बहुदेववाद की भावना निम्नतर स्तर के लोगों में विभिन्न रूप से मिलती है । ऐसे लोगों में अंधविश्वास के कारण देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जादू-टोने एवं अनेक

---

१. एक विशेष माता का त्योहार—जिसमें देवी की पूजा ठंडे खाने से, बासी खाने से की जाती है । विशेष वस्तुएँ हैं—मीठा चावल, गुड़, पूये आदि ।

विभिन्न अभिचारों का प्रचलन हो जाता है। वह प्रकृति में, पाषाण में, जल में, वायु में, मनुष्यों द्वारा निर्मित चित्र एवं मूर्तियों में—दूसरे वृक्ष, पशु, पक्षी और मनुष्य के सारे चेतन पदार्थों में देवी-देवता के अस्तित्व को मानते हैं। प्रेत और आसुरीशक्ति से मनुष्य सदा ही भयभीत होता है। अपनी सुरक्षा के लिए अपनी बुद्धि के अनुसार प्रयास किया करता है। इस चेष्टा में अज्ञान और विस्मय भाव दोनों ही हैं।

भूत-प्रेत एवं अन्य अनिष्टकारी शक्तियों से हट कर मनुष्य ने उन रूपविहीन तत्वों को भी साकारता देकर अपने जीवन को मंगलमय एवं निर्विघ्न बनाने के लिए अनुष्ठान एवं लौकिक विधियों की रचना की। यहाँ तक कि भयंकर रोग भी देवता बन गये। उदाहरण के लिए शीतलादेवी, छोटी माता देवी आदि।

विवाह के मांगलिक अवसर पर विघ्न और अनिष्ट की आशंका के निवारण की ओर अधिक प्रवृत्त होना स्वाभाविक ही है। भारतीय परम्परा की सामान्य देवी लक्ष्मी और सरस्वती, इस पर भुला दी जाती हैं। केवल शक्ति की परिचायक विभिन्न नामधारिणी देवियों का अर्चन होता है। रतजगे में मातृदेवी, कुलदेवी, दुर्गा, चामुंडा आदि का आह्वान और पूजन करते हैं।

पूर्वज-पूजा—पितर-पीर, सती, शीतला, भैरों, मृतसौत, कुलदेवी, गीत के स्वरूप में विद्यमान हैं तथा अम्बा, माता, काली, कराली, दुर्गा का पूजन करते हैं। देवी को प्रसन्न करने के लिए रात्रि-जागरण भी किया जाता है। प्रसाधन बहुत सरल होते हैं, लौ जलती है। अखंड जोत जलाई जाती है जिसका तात्पर्य है सौभाग्य अखंड रहने की कामना करना। रात्रि जागरण होता है तथा गीतों का क्रम चलता है।

देवी के गीत जो विवाह के अवसर पर गाये जाते हैं, उनका वर्ण्य-विषय नख-शिख वर्णन होता है। अनन्त सौंदर्यमयी नारी रूप किसी स्वर्णकार की कृति है। स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर पूर्वजों को निमंत्रण देती हैं व श्रद्धा के साथ उनका स्मरण करती हैं। वह सौत तक से भी भयभीत रहती है, अतः वह सौत का भी पूजन करती हैं। शीतला की पूजा परिवार में वैभव, वात्सल्य-भावना की अभिव्यक्ति है। वह भैरों की पूजा भी करती हैं।

इस संपूर्ण पूजा-आराधना में तथा टोने-टोटके में सब देवी-देवताओं का आवाहन करना, किसी को रुष्ट न करने व सब का सहयोग पाने की भावना निहित रहती है।

जनपदों में पंचदेवों की उपासना को घरेलू रूप में लिया गया है। स्वस्तिक, सूर्य-पूजा का चिह्न है। विवाह में कोई मांगलिक कार्य ऐसा नहीं होता जिसमें

पहिले हल्दी या रोली से स्वस्तिक चिह्न न बनाया जाता हो।

धार्मिक गीतों एवं व्रतो में देवी-देवताओं आदि के गीत हैं। स्त्रियों के जीवन का तो यह विशेष अंग है। पहले जब स्त्रियों का क्षेत्र घर तक ही सीमित था, व्रतों-त्योहारों आदि का विशेष महत्व इसी कारण था कि वे जीवन में इनके द्वारा कर्मण्यता लाती थी तथा इसी के कारण घर में एक उल्लासपूर्ण और व्यस्त वातावरण रहता था। व्रतों का विधान आत्म-शुद्धि के उद्देश्य का भी द्योतक है।

व्रतों, अनुष्ठानों आदि का स्त्री-लोकसमाज में विशेष महत्व है। वह इनको अधिकतर पति, पुत्र या भाई की मंगलकामना के लिये ही करती हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह उपयोगी है। इसके अतिरिक्त व्रत में खाई जाने वाली भिन्न-भिन्न वस्तुएँ भी जिनका चुनाव मौसम के अनुसार ही निर्धारित किया गया होगा, गुण-कारी होती है। व्रतों आदि में जो वस्तुएँ दान की जाती हैं, वह भी निरर्थक नहीं होतीं। व्रतों के करने में जीवन में पवित्रता, संयम, नियम आदि गुणों का समावेश होता है। अपनी जिह्वा पर भी नियंत्रण हो जाता है। अतः हर दृष्टि से व्रतों से लाभ ही होता है। उनके कारण दिनचर्या में कुछ विभिन्नता भी आ जाती है। इन्हीं व्रतों के विधिपूर्वक करने से अनायास ही उनका भावपक्ष और कलापक्ष-निखर आता है और जीवन में अकर्मण्यता और नीरसता भी नहीं आने पाती। कुछ व्रतों का तो सामाजिक महत्व है जिनको सामूहिक रूप से मनाने की प्रथा प्रचलित है। जैसे—श्रावण में तीजों के दिन झूलने की प्रथा सामूहिक रूप से की जाती है। इस दिन स्त्रियाँ आपस में सभी के घर जाती हैं तथा एक ही स्थान पर इकट्ठी होकर झूला झूलती हैं। उस समय गाये जाने वाले गीत सामाजिकता का पाठ भी पढ़ाते हैं, साथ ही आहार-व्यवहार में भी सुधार करते हैं। इनमें ऐतिहासिक तथ्य भी मिलते हैं जिनसे पुरातन आदर्शों का भास होता है और पुरातत्त्वप्रियता का पता चलता है। ये गीत प्रायः भजन ही होते हैं जिनका निर्माण समयानुसार भिन्न-भिन्न अवसरों पर होता है।

व्रत-त्योहारों में 'साँझी' का बहुत महत्व है। साँझी, कुमारी कन्याओं का एक आनुष्ठानिक त्योहार है। राजस्थान, पंजाब और ब्रज में कुछ हेर-फेर के साथ वही रूप मिलता है।

आश्विन मास की प्रतिपदा से कुंवारी कन्याएँ साँझी का व्रत आरम्भ करती हैं जो पितृ-पक्ष में नौ दिन तक चलता है। कई स्थानों पर प्रतिदिन संध्या को घर के बाहर द्वार के किसी भी ओर थोड़ी सी ऊँचाई पर गोबर से भूमि लीप कर सूर्यास्त के पहिले सांझी की आरती के हेतु सांझी तैयार की जाती है। सांझी के शृंगार के हेतु अपरिमित सामग्री एकत्रित की जाती है।

साँझी, दीवार के कुछ भाग को लीप कर उस पर गोबर की ही रेखाओं द्वारा अंकित की जाने वाली आकृतियों को कहते हैं । गोबर की इन रेखाओं पर गुलाब, गुलबाँस, कनेर आदि की पंखुरियाँ चिपकाकर उन्हें सजाया जाता है जिससे आकृतियों में रंगों का सामंजस्य पैदा हो जाता है । आश्विन मास के संपूर्ण पितृपक्ष में ये आकृतियाँ प्रतिदिन क्रमशः मिटाकर नयी बनाई जाती हैं। इस समय प्रकृति भी पूर्ण रूप से प्रफुल्लित होती है और सौंदर्यमयी होती है । वह साँझी के शृंगारार्थ भिन्न-भिन्न प्रकार के उपकरण एकत्र कर लेती हैं। इस प्रकार साँझी के आकृतिगत पक्ष के द्वारा कुँवारी कन्याओं को आवश्यक रूप से रेखांकन एवं रंग मिश्रण का ज्ञान उपलब्ध होता है। इन्हीं आकृतियों के सम्मुख खड़ी होकर वे प्रतिदिन संध्या को साँझी के गीतों द्वारा पूजन करती हैं, । नैवेद्य चढ़ाती हैं और उसे बाँट कर खाती हैं।

साँझी की आकृतियों को प्रतीक मान कर पूजन किया जाता है । साँझी की आकृतियाँ भिन्न-भिन्न जातियों, संस्कारों और भावनाओं से प्रभावित होती हैं। ये बालिकाओं के मानसिक विकास और स्वर को प्रकट करती हुई प्रागैतिहासिक मानव के पश्चात् विकसित कृषि-सभ्यता के संकेतों और प्रतीक चिह्नों से अपना संबंध भी स्थापित करती है। अंकन की प्रेरणा मनुष्य में स्वाभाविक है, अंधविश्वास, प्रथाएँ, और धार्मिक रीति-रिवाजों को चित्रांकन की प्रवृत्ति से रूप प्राप्त हुआ और कुछ आकृतियाँ आनुष्ठानिक हो गयीं । (चित्र देखें)

साँझी की आकृतियों से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि कुँवारी कन्याएँ अपने दैनिक जीवन को उपयोगी वस्तुओं का ही अंकन करती हैं जैसे, चाँद सूरज, तारे, चिड़ियायें, नाई, नायन, चाटवाला, धोबी आदि । साँझी का आनुष्ठानिक पक्ष बालिकाओं के भावी जीवन की सौभाग्य-कामना से संबंधित है। भावी मंगलकामना के लिए वह आराधना करती हैं, यह सौभाग्य का आदर्श प्रतीक है। साँझी के गीतों का स्थूल वर्गीकरण इस प्रकार है—आरती के गीत, साँझी की आवश्यकता और उसकी पूर्ति के गीत, परिचयात्मक गीत, साँझी का रूप वर्णन तथा सांझी के विदा के गीत ।

साँझी के गीतों की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—सामूहिक गान, लय, लघुचरण द्रुतगामी, संवादात्मकता, लघुकथा सूत्र टेकपूर्ण तथा दोहरा-दोहरा कर गाना। इनमें आदर्श के प्रति श्रद्धा होती है । विनोद गौण होता है और कुतूहल रस-प्रधान ।

व्रत-त्यौहार कुछ इस प्रकार के भी होते हैं जिनकी अवधि एक दिन न होकर संपूर्ण मास तक होती है, उदाहरण के लिए कार्तिक, माघ, बैसाख मास तथा

पुरुषोत्तम मास जिसे 'मलमास' भी कहते हैं। इन पूरे महीनों में विशेष प्रकार का यम, नियम, स्नान, पूजन, खान-पान का विधान है और उसी का माहात्म्य होता है। कुरु प्रदेश में गंगा का ही विशेष महत्व है। कार्तिक मास में या इन अन्य महीनों में महिलाएँ सामूहिक रूप से गंगा-स्नान करने जाती हैं—सबेरे ४ बजे ही—तारों की 'छइयाँ' में। उस समय जाने में उनको सरलता रहती है, अवकाश होता है तथा उस समय जल भी गर्म रहता है। फिर सूर्य की किरणों के साथ-साथ जल ठंडा होता जाता है। गंगा-स्नान करने जाते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं, वह प्रभाती कहलाती है—

राम नाम लीजो मेरी संग की सहेली,
मेरी बैहण भेणली राम चरण छूती

तथा—

कहीं मिलते राम चरण छूती,
मैं तो बागों गई थी वहाँ भी ना मिले....

इन गीतों में भगवान संबंधी, राम-कृष्ण संबंधी भजन होते हैं। उदाहरण के लिए—

जागो प्यारे मोहन, अब तुम जागो
भोर भई चिड़ियां चौंचाई, नन्दबुलारे
काले काले कागा बोले, पंछी बोलन लागे

'प्रभाती' भजनों में स्त्रियाँ केवल करुण और शृंगार के ही गीत नहीं गातीं अपितु समय-समय पर भक्ति से ओतप्रोत गीत भी गाती हैं जहाँ उनका हृदय, शृंगार तथा करुणा से भरा रहता है। वहीं उसमें भक्ति की भी कुछ कम मात्रा नहीं रहती। इन गीतों में भक्ति की प्रधानता रहती है। कहीं-कहीं पर इनमें मनुष्य जीवन की नश्वरता का वर्णन रहता है, तो कहीं भगवान के बाल रूप का सुन्दर चित्रण। इन गीतों में रहस्यवाद की गंभीर व्यंजना भी मिलती है। इन्हीं में कुछ गीत सूरदास और तुलसीदास आदि कवियों के भी अपभ्रंश रूप में उपलब्ध होते हैं।

कार्तिक मास में नहाने के समय भी स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं—

उठ मिल लो राम भरत आये
भूरी सी हथिनी पै जरद अम्बरी ऊपर चंवर डुलत आये
राह रघुवर अंगन लिपाया
मोतियन चौक पुरत आये
बहियां पसार मिलै चारों भइया
नैनों से नीर ढलत आये।

यह दोहा नहाते समय या किसी भी नदी में स्नान करते समय कहती हैं—

गंगा बड़ी गोदावरी तीरथ बड़ा प्रयाग ।
महिमा बड़ी समन्द की पाप कटैं हरद्वार ।।

ऊपर के दोहे के बाद कहती हैं 'जल मिलै सोहर मिलै' और बाद में कहती हैं—

धोऊं सीस मिलै जगदीस
धोऊं नैन मिलै सुख चैन
धोऊं कान मिलै भगवान
धोऊं कंठ मिलै बैकुंठ
धोऊं काया मिलै माया

प्रभाती के समान ही संध्या को भी दोनों समय मिलने पर वह गीत गाती हैं जिन्हें सही साँझ के गीत कहती हैं। इनमें प्रभात व संध्या के समय का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन होता है। इनका वर्ण्य-विषय प्रभाती के समान ही हरि-गुण-गान या प्रकृति-वर्णन होता है—

दोनों बखत मिलै हर का गुन गाय लौ रे
यो संसार ओस का मोती धूप पड़े ढल जाय रे

गंगास्नान आदि के अतिरिक्त वनस्पति पूजने का बहुत महत्व है। इनमें पीपल तथा तुलसी का विशेष महत्व है। कार्तिक मास में तो तुलसी-पूजन का विशेष महत्व है। पूरे महीने तुलसी के पौधे पर दीपक चढ़ाते हैं और आरती करते हैं तथा देव-उठानी एकादशी को या किसी भी दिन 'तुलसी-विवाह' भी करते हैं। तुलसी का घर-घर में बहुत महत्व होता है। तुलसी पूजन के अवसर पर स्त्रियाँ यह दोहा कहती हैं तथा आरती करती हैं—

तुलसी रानी नमो नमो
हर की पटरानी नमो नमो

तथा—

मैं तुमसे बूझूं तुलसा दे राणी
मधुवण किस गुण पाये

तथा—

तुलसा माता तू मुक्ती की दाता
विवला सींचूं मैं तेरा, कर निस्तारा मेरा

इस प्रकार वनस्पति पूजन में तुलसी और पीपल का विशेष महत्व है।

जोगियों के गीत—जोगियों और भिखारियों के गीत लोकसाहित्य का एक

महत्वपूर्ण अंग है। इनके द्वारा लोक को सदा ही उद्बोधन प्राप्त होता रहा है। मुसलमान भिखारी साईं कहलाते हैं और हिन्दू भिखारी जोगी। यहां पर जोगियों के गीत भी इसी के अंतर्गत आ जाते हैं।

भिखारियों के गीतों का वर्ण्य-विषय साधारणतः चेतावनी संबंधी होता है कि किस प्रकार माया-मोह से लिप्त जीव को संसार की नश्वरता का उपदेश देना चाहिये। इसमें काया, माया की अस्थिरता का तथा साँसारिक संबंधों की व्यर्थता का कथन होता है।

यह ब्रह्म जीव संबंध पर प्रकाश डालते हुए निस्संग जीवन व्यतीत करने के आदेश अथवा सत्य, परोपकारादि गुणों से परिपूर्ण स्वच्छंद जीवन व्यतीत करने का उपदेश देते हैं।

यह दया-धर्म प्रेरक होते हैं और प्राचीन सत्पुरुषों की जीवन-गाथा तथा हरिश्चंद्र, ध्रुव, प्रह्लाद, हसन-हुसैन आदि की लोक-गाथाएँ भी सुनाते हैं। इनके गीतों में कुछ मनोरंजक स्थल भी हैं जो निम्नस्तर के हैं। हिन्दू भिखारियों पर सिनेमा का प्रभाव भी पड़ा है तथा कबीर और गोरखपंथी साधुओं का भी प्रचुर मात्रा में प्रभाव है। इनकी भाषा मिली-जुली होती है। मुसलमान फ़क़ीर तो प्रायः जुमेरात व जुम्मे को ही अधिक दिखायी देते हैं पर हिन्दू तो सभी दिन भीख माँगते दिखायी पड़ते हैं। वह कहते हैं—

"करो रे मन वा दिन की तदबीर"

मुसलमान फ़क़ीर कहता है—

"अल्ला की प्यारी दुनिया, दम के दीदार"

सांसारिक ऐश्वर्य, धन, माल, जीव को पतित बनाने वाले हैं इसलिए इनका उपभोग सोच-विचार कर करना चाहिये। दान-भोग और नाश लक्ष्मी की यही तीन ही गति हैं। इस लोक में दान के त्वरित फल का वर्णन गंगा घाट पर 'बिछुए' बजा कर माँगने वाले 'गंगापुत्र' नामक भिखारी किया करते हैं—

हो तेरी पड़ौसन कर रहमन
तू क्या देक्खे मेरी जजमान—हर गंगा
छल्ला देवे लल्ला पावे
पेठा दे, बेटा ले जाय—हर गंगा

जोगी अथवा योगी नाम के सम्प्रदाय के जन्मदाता संत गोरखनाथ जी थे। भरथरी व नादिया जोगी प्रायः कस्बों और नगरों में भीख माँगते दिखायी देते हैं। भरथरी जोगी गाकर माँगते हैं। वह प्रायः भरथरी गोपीचन्द और महादेव के गीत गाते हैं। इसके अतिरिक्त लोग श्रृंगार तथा वीररस भी गाते हैं जिनमें

हीर-रांझा, कंवर निहालदे, अमरसिंह राठौर, दयाराम गूजर आदि की कीर्ति-कथाएँ हैं। जोगियों के गीतों को इस प्रदेश में साका और पंवाड़े कहते हैं। 'साका' असाधारण कार्य है और 'पवांडे' लोकजीवन की वस्तु है।

वर्णन-सौंदर्य, कोमल मर्मस्पर्शी भावनाओं का विस्तार, हिन्दू संस्कृति के गौरव चिह्न तथा हठयोगी के संकेत साकों में हैं। मोरी तथा दरवाजों के कथन में प्रतीकात्मकता का आश्रय ग्रहण कर सूफी और योगियों की साधना-पद्धति की उत्तमता से अभिव्यंजना की गयी है। नारी के शंकाकुल स्वभाव तथा भाई-बहन के स्नेह का जो गम्भीर चित्रण लोकगीतों में होता है, वह अनुपम है। इनमें अतीत बोलता है। आज कल जोगी लोग सेढू और फूलसिंह की प्रकाशित रचनाएँ गाते हैं। इनमें मुख्य यह हैं— अमरसिंह का नौमहला, गोराबादल, राजा रत्नसेन, जयमल फत्ते, जगदेव पमार, जसवंत रजपूत का साका।

जोगियों के गीतों के मुख्य दो राग होते हैं—बँधे हुए राग, बेल के राग। 'जाहर का साका,' नामक गीत में दोनों ही प्रकार के राग हैं। एक रामचन्दर नाम के जोगी के मुख से सुना सुंदरबाई के संबंध में है। वह 'दाह' गाँव, जिला मेरठ का रहने वाला है और आयु ५० वर्ष है। वैसे यह गीत बुल्ली साँगी का गीत है,इन गीतों को जोगी सारंगी पर गाते हैं।

जोगी प्रायः वैराग्य संबंधी भजन गाते हैं। जोगी की वेशभूषा गाने की शब्दावली तथा लय, सभी से श्रोता के सम्मुख एक विशेष प्रकार का वातावरण उपस्थित हो जाता है, और उसमें भी शब्द और ध्वनि से प्रभावित होकर कुछ समय विशेष के लिए वैराग्य की भावनाएँ जागृत होते ती हैं। जोगियों के गीतों का गृहस्थजीवन में समय-समय पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है, इनके उदाहरण परिशिष्ट में दिए गए हैं।

लोकगीतों में पूरा हिन्दू दर्शन वर्णित है। इनमें प्रभु की सर्वव्यापकता, सर्व-शक्तिमत्ता का भास होता है। मनुष्य के कर्मों का महत्व व उनके परिणामों पर भी प्रकाश पड़ता है। जोगियों के गीतों में प्रायः निर्गुन पद भी मिलते हैं जिनमें ज्ञान और वैराग्य होता है। पहले तो जोगी बारात में भी जाते थे। प्रातःकाल फ़क़ीरों की और जोगियों की सदाएँ व दुआएँ सुन पड़ती हैं और मनुष्य सहसा सचेत हो उठता है। आत्मनिरीक्षण तथा अनुकूल व्यवहार की इससे बलवती प्रेरणा मनुष्य को और कहीं कभी नहीं मिलती। भिखारियों की यह संस्था जीवन में नियमित-व्यवहार और शुद्धाचार की नियामिका रही है।

भिखारियों के पदों को हम निर्गुन पदों में रख सकते हैं। निर्गुन पद भक्ति-भावना से ओतप्रोत होते हैं। इनमें प्रधानतया संसार की नश्वरता का वर्णन

रहता है। निर्गुण का विषय तो भजनों में मिलता है, पर उसकी एक विशेष-लय होती है, जो बैरागिया कहलाती है। यह बहुत मधुर होती है। इन्हें सुनकर श्रोतागण आनन्द-विभोर हो जाते हैं। निर्गुण गाने वाले कबीर के सिद्धान्तों से बहुत प्रभावित हैं और इनको लोकजीवन से भी जोड़ दिया गया है। इनमें भक्तिभावना का भी उल्लेख हुआ है। ईश्वर को प्रियतम मान कर माधुर्यभाव की भक्ति-परम्परा, संतों में प्राचीनकाल से ही विद्यमान है। इन निर्गुन गीतों का प्रधान विषय ईश्वर पर विश्वास और संसार की निस्सारता का वर्णन करना है।

लोकगीतों में कहीं-कहीं पर रहस्यवादी भाव भी मिलते हैं। भक्तिभाव में अपनेपन को भूल कर जब भक्त अपने हृदय के भावों को प्रकट करता है, तब जिस कविता का उद्‌गम होता है वह काव्यकला और कविता सभी दृष्टियों से महत्व-पूर्ण होता है। यद्यपि रहस्यवाद में प्रयुक्त प्रतीक सांसारिक ही होते हैं पर इनमें अभिव्यक्ति पारलौकिक ही होती है। इनमें रहस्यवाद तथा वैराग्य भी छिपा होता है।

ऋतु संबंधी लोकगीत—

भारत कृषिप्रधान देश है। जिसमें ऋतुओं का विशेष स्थान है। यहाँ का लोकजीवन इसी पर आश्रित है। अतः उनके मनोरंजन रीति-रिवाज, कार्य-कलाप भी इसी के अनुसार विभाजित हैं। भारत में चार ऋतुएँ प्रधान हैं—शिशिर, वसंत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु। इसमें भी जहाँ तक लोक गीतों का संबंध है, वसन्त—अर्थात् होली संबंधी तथा वर्षाऋतु संबंधी सावन के गीत ही अधिक उपलब्ध हैं। ये अवसर क्रमशः फाल्गुन-चैत्र मास तथा सावन-भादों में ही आते हैं। इनमें शृंगार व करुणा का ही पुट अधिक है। यहाँ पर हम पहले श्रावण संबंधी गीतों का उल्लेख व अध्ययन करेंगे।

सावन के गीत—सावन का महीना मनभावन कहलाता है अतः इसे गीतों का महीना भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। ऋतु-गीत वैसे तो सभी ऋतुओं में मिलते हैं परन्तु खड़ीबोली-प्रदेश में सर्वोपयोगी और सर्व सुंदर ऋतु होने के कारण वर्षा ऋतु के गीत बहुत हैं जो बहुत ही मनोहारी हैं। अन्य ऋतुओं से संबंधित गीत बहुत कम हैं। श्रावण का महीना आते ही खड़ीबोली प्रदेश के जन-जन में संगीत मुखर हो उठता है। वर्षा हो चुकी होती है। चारों ओर हरियाली छा जाती है, प्रकृति संगीतमय हो जाती है तथा संपूर्ण वातावरण आह्लादकारी हो उठता है। स्त्रियाँ इस वातावरण से प्रभावित हो कर जीवन के प्रति सजग हो उठती हैं और उल्लासमग्न होकर प्रकृति को सहयोग देती हैं और घर-घर में तथा

बाग़ों में पेड़ों की डालियों पर रंग-बिरंगे कपड़े, विशेषतया हरी साड़ियां, (प्रकृति से मेल मिलाने के लिए) पहन कर झूलती हैं और प्रकृति के साथ आत्मसात् हो जाती हैं—यह दृश्य बहुत ही सुखदायक और आकर्षक होता है। देखनेवालों का मन भी उस दृश्य से आह्लादित होकर उसमें भाग लेने को लालायित हो उठता है। प्रतिदिन एक-न-एक नये गीत और नये-नये स्वर इस मास में सुनने को मिलते हैं। विविध भावों का उद्वेलन झूले के दोलन के साथ होता है। सावन का झूला उनके अन्तर की प्रसन्नता का प्रतीक बन कर सम्मुख आता है। प्राकृतिक सौंदर्य से आत्मविभोर हो कर बाल, युवा, वृद्ध—सभी का हृदय गा उठता है और प्रकृति से तादात्म्य हो जाता है। इनमें प्रकृति वर्णन बहुत उच्चकोटि का मिलता है। विभिन्न ऋतुओं का, ऋतु-परिवर्तन का मन पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा उनके अनुरूप संयोगावस्था और वियोगावस्था में मन पर क्या-क्या प्रतिक्रियायें होती हैं, इसका खड़ीबोली के लोकगीतों में बहुत ही स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलता है। किस प्रकार मन की भावनाओं तथा परिस्थितियों के कारण संयोगावस्था में प्रिय लगनेवाली वस्तुएँ वियोगावस्था में अप्रिय और असहनीय हो जाती हैं तथा मनुष्य अपनी ही भावनाओं के अनुरूप विश्व को किस प्रकार देखता है, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण इन लोकगीतों में मिलते हैं।

प्राचीनकाल में कुछ व्यापारी लोगों को अन्य उद्योग-धन्धों के लिए परदेस जाना होता था। अत्यधिक वर्षा के कारण कार्य में भी कठिनाई होती थी और यातायात में सुविधाएँ न होने के कारण 'चातुर्मास' में परदेस गए हुए पति अपने घर लौट आते थे। सभी प्रोषित-पतिकाएँ इस महीने में अपने पति की बाट जोहती थीं और उनके आ जाने पर आनन्दमग्न हो जाती थीं। कभी सुविधा पाकर वह अपनी माँ के घर भी चली जाती थी। वहाँ माँ की छत्रछाया में अतीत की सुखद स्मृतियों के साथ तथा अपनी बहन, भाभी व चिरपरिचित सखियों के साथ वह एक बार स्वयं को भी भूल जाती थी और उनकी श्वसुराल की सब यातनाएँ, व्यथा, घुटन आदि का एक मौखिक निकास हो जाता था। इस प्रकार हँस-गाकर अपनी व्यथा मुखरित कर वह तन-मन से अपेक्षाकृत स्वस्थ अनुभव करती थीं। सावन ऋतु का विशेष पर्व—तीज होता है। इस अवसर पर विवाहिता, सौभाग्यवती तथा कुमारियाँ रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुसज्जित होकर एक-दूसरे से मिलती हैं, घर जाती हैं तथा एक स्थान पर बाग़ व घर में ही पेड़ के नीचे पड़े हुए झूले पर सामूहिक रूप से झूला-समारोह होता है। यह हास्य-उल्लास का अवसर होता है। इससे जीवन में प्रेरणा मिलती है, उमंग उत्साह का यह वातावरण मानसिक जीवन को स्वास्थ्य प्रदान करता प्रतीत होता है।

इन गीतों का मनोवैज्ञानिक महत्व भी है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि मन में विषम-परिस्थितियों के तथा अनुभवों के कारण जो अनेकों गुत्थियाँ पड़ जाती हैं, उनको किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्ति तथा प्रदर्शन होना ही चाहिए। यह मानसिक रोगों के उपचार में भी सहायक होता है। बालक तो अपनी मानसिक गुत्थियों को खेलों द्वारा तथा अन्य हास्य व रुदन के द्वारा निकालते हैं लेकिन वयस्क इतनी सरलता से नहीं निकाल सकते। उनको अन्य साधन भी चाहिये। आधुनिक पढ़े-लिखे लोग जो इन मानसिक रोगों से अधिक पीड़ित होते हैं, वह अपनी भावनाओं पर बुद्धिमानी का आवरण चढ़ा कर छिपाने में निपुण होते हैं। वह चित्रकारी तथा लेखनकला के द्वारा कुछ अंश में अपनी वास्तविकता को छिपाते हैं तथा अपने मनबहलाव के बाह्य पर क्षणिक साधन; सिनेमा, रेस, क्लब आदि में जाकर अपना मनोरंजन करते हैं पर लोकमानव आधुनिक सभ्यता से भी अनभिज्ञ हैं और न ही उन्हें मनबहलाव के कृत्रिम-साधन उपलब्ध हैं और न उनकी आर्थिक सामर्थ्य ही इनका उपयोग करने की है। वह सहज और सरल हृदय हैं विशेषतः नारी, का अपने पारिवारिक व्यस्त जीवन में अनेक आर्थिक व सामाजिक समस्याओं और परिस्थितियों में निरन्तर तपते रहने के कारण मन व शरीर मँज जाता है। यह समय-समय पर लोकगीत व लोककथाओं के द्वारा अपनी व्यथा को व्यक्त करती हैं। उनकी व्यथा के प्रदर्शन का तथा मनोभावों को व्यक्त करने का यही सीधा-सादा माध्यम है जिसके कारण इनकी अधिकतर गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। इसके लिए इनको अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। आधुनिक सभ्यता में हम कुछ ऐसे रंग गये हैं कि प्रकृति के साथ हम लोग सामंजस्य कर ही नहीं सकते, और न प्राकृतिक आवश्यकता की ओर ही हमारा ध्यान जाता है। कारण, आज का जीवन कुछ ऐसा यंत्रवत् हो गया है कि प्रकृति की ओर ध्यान देने का कुछ तो अवसर ही कम मिलता है और कुछ इस ओर से उदासीन भी हो गये हैं। कोई भी वस्तु क्यों न हो हम उसका उसी के अनुरूप मनोरंजन नहीं कर पाते जब कि हमारी ग्रामीण महिलाओं में यद्यपि पहले की अपेक्षा कम है पर अब भी प्रकृति के अनुरूप जीवन को ढालने की क्षमता है व यथासंभव प्रकृति का साथ भी देती हैं। विशेषतः होली व सावन आदि का तो वह मुक्त हृदय से स्वागत करती हैं। इसका महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि यह मास ग्रीष्म और शिशिर के बाद आते हैं। ये ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ प्रसन्नता और उत्साह के प्रतीक हैं। दुख के बाद सुख अपेक्षाकृत और भी सुखद लगता है। सावन में अनेक दुखों को गीतों के रूप में दोहराने का सुअवसर मिल जाता है। झूले की पैंगों के साथ सभी स्त्रियाँ अपनी अवस्था के अंतर को भूल कर जब अपने-अपने हृदयों को खोलती हैं तो ऐसा

प्रतीत होता है कि यह अवसर उनको प्रकृति ने उनकी शिकायतों के सुनने के लिए ही निश्चित किया है । इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का वर्णन रहता है ।

सावन के गीत भावप्रधान होने के साथ-साथ वर्णनात्मक अधिक हैं । इनमें चम्पेबाग़ का उल्लेख मिलता है । 'इंदरराजा' वर्षाऋतु के देवता माने गये हैं, बिजली बादल तथा उसकी गरजन उनके विशेष अस्त्र हैं, जो लोकनारी के हृदय पर सबसे अधिक प्रभाव डालते हैं जिनसे डर कर वह अपने प्रियतम के लिए कामना कर उठती है। इसका उदाहरण हमको निम्नलिखित गीत में दृष्टिगोचर होता है—

"इन्दर राजा बागों में झूल रहे जी"

रिमझिम मेह, नन्हीं-नन्ही बूंदें, पपीहा की पिउ-पिउ, कोयल की कूक, मोर का शोर, घनघोर घटा, बिजली की चमक—सभी हृदय को ही नहीं शरीर को भी थरथरा देते हैं और पति की कामना के लिये उद्दीपन का कार्य करती हैं । वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इन गीतों में मन की कुंठा, कृत्रिम तथा सामाजिक आदर्शों के भार से उत्पन्न आकुलता, इष्ट वियोग तथा अनिष्ट संयोग अथवा अकस्मात् मिलन या क्रियाविदग्धा नायिकाओं की चातुरी (छल-छद्म) और गुप्त अभिसार के वर्णन होते हैं । इनमें नायिकाओं में विविध प्रकार स्वकीया, परकीया, सामान्या, ऊढ़ा, अनूठा, मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, अभिलषित वासक-सज्जा तथा कलहान्तरिता, सभी के चित्र मिलते हैं। इनमें स्थानीय व सांस्कृतिक प्रभाव भी हैं।

सावन के गीतों में बारहमासों का विशिष्ट स्थान व महत्व है । बारहमासों में विशेषतः वियोग के गीत हैं । वियोग के उत्ताप में वर्ष के विविध महीनों का वियोगिनी के लिए क्या रूप हो जाता है बारहमासा में अभिव्यक्त होता है। इनमें प्रत्येक ऋतु की विशेषता के साथ ही उसकी विरहिणी पर प्रतिक्रिया भी प्रकट की जाती है । साहित्य में जो षट्ऋतु का वर्णन है, वही लोककाव्य में बारहमासा माना जाता है ।

सावन के गीतों में प्रकृति से सामंजस्य स्थापित किया गया है । गीतों में बिजली, बादल, पुरवइया आदि को संबोधित किया गया है, जो इस बात का द्योतक है कि नारी उनसे साहचर्य की भावना का अनुभव करती है । राधा, कृष्ण, ब्रज के गोप, यह सब लोकनारी के अपने ही जीवन से संबंधित हैं और जो कुछ भी उनके जीवन में घटता है उससे वह सादृश्य स्थापित कर लेती हैं । इसमें शृंगार और करुणा, इन्हीं दो रसों की प्रधानता मिलती है ।

इन अधिकांश गीतों का आधार प्रेम ही होता है और घटनास्थल बाग या पन-घट होता है । पशु-पक्षी भी इस ऋतु में मिलन तथा विरह की भावना को और

अधिक उत्तेजित करते हैं। बारहमासा आसाढ़ मास के वर्णन से से प्रारंभ होता है। इनके वर्ण्य-विषय में वर्ष भर के प्रत्येक माह के विशेष त्योहारों का महत्व मिलता है। प्रत्येक माह में प्रिय की अनुपस्थिति कितनी दुःखदायी होती है, इसका भी वर्णनात्मक उल्लेख बारहमासों में पर्याप्त मिलता है। विशेषतया सावन-मास में प्रिय का न होना असहनीय हो उठता है। सावन में प्रिय की अनुपस्थिति से विरह चरमसीमा पर पहुँच जाता है। गत ग्यारह मास से वह जीवन की सारी विषमताएँ इसी आशा पर सहती हैं पर जब यह आशा भी दुराशा में परिणत हो जाती है तो धैर्य का बाँध टूट जाता है। इसी से गीतों में उल्लेख मिलता है—"बीते हैं ग्यारह जो मास"। नारी जीवन का, नारी हृदय का, तथा उसकी मनोगत सभी प्रकार की भावनाओं, आशंका, भय, क्रोध तथा ईर्ष्या का जितना सजीव और स्वाभाविक चित्रण हमें ऋतु-गीतों में मिलता है, वह अन्यत्र मिलना कठिन है।

श्रावण के गीतों का संबंध विशेषतः स्त्रियों से ही है। 'ये बारहमासे' नारी जीवन के आस-पास घूमते रहते हैं तथा उससे संबंधित होते हैं। इनका केन्द्र नारी जीवन ही होता है। इसमें राम-कृष्ण से संबंधित गीत भी हैं। इनका उदाहरण परिशिष्ट में दिया जा रहा है, जिसमें भाई के प्रेम, भावज के तिरस्कार तथा देवर आदि सभी संबंधियों के व्यवहार का बहुत ही रोचक वर्णन है। सावन के गीतों में बारहमासों के अतिरिक्त कथागीतों का भी बहुत महत्व है। इनमें ऐतिहासिक महत्व भी होता है जिनमें आल्हा, जाहरपीर, गोपीचन्द, भरथरी, मखन, चन्दना, हंसाराव, चन्द्रावल, नर सुलतान, गुग्गापीर, आदि कुछ लोकगाथाओं के रूप में प्रचलित हैं। ये लोककथा-गीत ही परिवर्द्धित होकर लोकगाथा का रूप ले लेते हैं। इस ऋतु की प्रमुख लोकगाथा 'आल्हा' है। 'आल्हा' में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज और कन्नौज के राजा जयचन्द के आपस के झगड़ों का विशद वर्णन है। इसमें 'आल्हा' तथा उसके भाइयों के वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख किया गया है। बहुत-सी अलौकिक घटनाएँ इसके अन्तर्गत मिलती हैं जिनमें पशुपक्षियों का भी महत्व-पूर्ण योग है तथा दैवीय शक्तियों का भी प्रभाव रहा है। सावन मास में जब हल्की-हल्की फुहार पड़ती है तो ढोलक की ताल पर 'आल्हा' चौपालों तथा अमराइयों में गूँज उठता है। इसमें लोकजन के अंधविश्वासों तथा आदर्शों को पूर्णरूप से अभिव्यक्ति मिली है। इसीलिए यह उनकी सबसे अधिक लोकप्रिय गाथा है।

इनमें स्थानीय और सांस्कृतिक प्रभाव भी रहता है। कँवर निहाल दे, की प्रेम-कथा में लोकलाज और मर्यादा का विचार अतीव प्रभावकारी है। स्त्रियाँ नरवरगढ़ के हाकमा, नर सुलतान और निहालदे की इस प्रेमकथा को भी बड़े उत्साह से

गाती हैं। स्त्री के लिए प्रेम, जीवन और पुरुष के लिए प्रेम, खिलवाड़ है। नरसुलतान और निहालदे की प्रेमकथा ऐतिहासिक है। इन प्रणयकथाओं में तथा वीर गाथा में स्त्री वीरता, सतीत्व की रक्षा के हेतु आत्म बलिदान तथा प्रिय मिलन के लिए सर्वस्व त्याग करने को प्रस्तुत रहती हैं। इस प्रकार नारी-चरित्र की विशिष्टता का उल्लेख इनमें मिलता है। इन प्रेमकथाओं में से कुछ का उल्लेख निम्न रूप में है।

चन्दना—यह बहुत प्राचीन गीत है। चन्दना ऊढ़ा नायिका है। चन्दना अपने पीहर में है। वहाँ पर उसका प्रेम किसी सुनार से हो जाता है। माँ उसे हर तरह से समझाती है कि वह उससे संबंध न रखे। चरखा कात कर मन बहलाने का सुझाव देती है पर चन्दना कहती है मुझसे चरखा नहीं काता जाता, कातने से देह में पीड़ा होती है, उँगली और कमर में दर्द होता है। हर तरह से तंग आकर माँ ससुराल में समाचार भिजवा कर उसके पति को बुलवाती है। उसका पति ससुराल में ले जाने के लिए आता है, वह पहले चन्दना को कुछ नहीं कहता। रात को खाना खा कर सो जाता है, बहाना बनाता है, पर वास्तव में जगता रहता है। पति को सोता हुआ देख कर उसकी स्त्री सुनार के यहाँ उससे बिदा लेने जाती है। रात में पति चुपचाप उठकर उसका पीछा करता है तथा सब कुछ अपनी आँखों से देख कर स्थिति के गांभीर्य को समझता है। पर जानबूझ कर यह भेद किसी से स्पष्ट नहीं करता और अगले दिन उसको विदा कराकर ले चलता है, मार्ग में वह उससे बदला लेता है और उसकी हत्या कर देता है। इस प्रकार अनियमित संबंधों का परिणाम भयंकर होना स्वाभाविक ही है। यही चन्दना को देखना पड़ा। यह नारी जाति का कलंक है। इसको लोक समाज में सत्य घटना समझा जाता है।

चन्द्रावली—यह ऐतिहासिक कथा है। जनश्रुति बतलाती है कि चन्द्रावली मेरठ के ही किसी गाँव की थी। वह गीत के कथनानुसार किसी कामुक युवक के चंगुल में फँस गयी और अनेक उपाय करने पर भी उनसे वह छूट न सकी। अंत में वह अपने सतीत्व की रक्षा के हेतु तथा दोनों कुलों की लाज रखने के लिए आग लगाकर आत्महत्या कर लेती है। यह बहुत ही प्रसिद्ध लोककथा है। इससे मुग़लकालीन अत्याचारों का ज्ञान होता है तथा स्त्री के चरित्र की महत्ता का परिचय मिलता है। इससे उस युग की स्त्रियों के मनोबल तथा उनके चारित्रिक व आत्मिक बल का उदाहरण मिलता है।

निहालदे—यह भी सावन का बहुत प्रसिद्ध गीत है। निहालदे एक बहुत सुदर लड़की है। माँ के अधिक मना करने पर भी बाग में अपनी सहेलियों के साथ

झूलने चली जाती है। बाग में उसे मुगलों ने घेर लिया। सब सहेलियाँ तो भाग गयीं पर मुगलों ने निहालदे को पकड़ लिया क्योंकि वही सबसे सुंदर थी। सखियों ने सब समाचार जाकर घर पर कह दिया। भाई, बहन को छुड़ाने आया और मुग़ल के द्वार पर पहुँच कर उसे मार कर बहिन को छुड़ा लाया।

जाहर-गुग्गापीर—आत्मा की अनश्वरता में विश्वास उत्पन्न कराने वाला यह गीत लोक-मर्यादा की रक्षा के लिए उच्चतम बलिदान की कथा है। रानी बाछल को यही मालूम था कि उसका पुत्र जाहर, काल का ग्रास हो चुका है परन्तु अपनी प्रियतमा सिरियल से अभिसार के लिए वह नित्य आता था, इसलिए उसने अपने को कभी विधवा नहीं माना। किन्तु सावनी तीज को झूले पर बैठी सिरियल का शीश-पट जब चंचल समीर ने उड़ा कर एक ओर कर दिया तो वह सिंदूरी माँग तुरन्त लोकचर्चा का कारण बन गयी। इस पर सास बाछल को लज्जा हुई और संदेह हुआ तथा इसी कारण आवेश भी हुआ। वह बहू पर अविश्वास कर उस पर लांछन लगाती है पर बहू विश्वास दिलाने का प्रयत्न करती है और कहती है—

तेरे तो लेखे सासु मर जो गया री
चला जो गया री, मेरे वो नित उठ आय पिया

अंत में बहू सास को प्रमाणित करने के हेतु गुग्गा को दिखाती है पर वह धरती में समा जाता है अपने कहने के अनुसार—क्योंकि उसने इस मिलन-भेद को गुप्त रखने को कहा था। जाहर ऐतिहासिक पुरुष है पर शेष घटना युग-विश्वास का रंग हो सकती है। इस गीत में लौकिकता और अलौकिकता का अद्भुत मेल है।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक छोटी-बड़ी कथाएँ सावन के गीतों के रूप में लोकसमाज में प्रचलित हैं, जिनमें ढोला-मारू, हंसाराव, बनजारा आसिक, धोबी बेटी, लच्छो मखन, मनरा, हंसामोरिनी, आदि हैं। इनमें कुछ लौकिक तथा अन्य काल्पनिक तत्व विद्यमान हैं। काल्पनिक कहने से कथा का महत्व कम नहीं होता क्योंकि कथा में जीवन न सही पर जीवन की अनेकरूपता तो विद्यमान रहती ही है।

फुटकर सावन-गीत—सावन के प्रबंध-गीतों के अतिरिक्त लघुगीत भी हैं जो भिन्न-भिन्न विषय से संबंधित हैं। उनको हम फुटकर गीतों के वर्ग में रख सकते हैं। इनमें वैयक्तिक सुख-दुख, शांति-संघर्ष, अनुराग तथा डाह, बड़ी सरलता से ध्वनित हुए हैं। इनमें नारी के दोनों चित्रों का उल्लेख मिलता है। सरल मुग्धाएँ तथा कुटिलता और कलंकभरी कुल्टाएँ दोनों का ही समान रूप से प्रदर्शन है। यह घरेलू चित्र हैं। यह गीत जीवन की विशाल चित्रपटी है। इनमें मानव मनो-

विज्ञान के सुंदर विश्लेषणपूर्ण सजीव उदाहरण मिलते हैं। हम सपत्नी की ईर्ष्या के संबंध में एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

एजी आया है सावन मास, हिंडौले गड़ाइयो जी महराज
रेसम झूल बटाय हिंडोले डालियो जी महाराज
ऐजी झूलेगी छोटी बड़ी नार, झोटे देंगे हाकमाँ जी
रिमझिम बरसै है मेह, राजा तो भेजे हैं आचकूं महाराज
एजी चुंदड़ी को धरा उतार, ओढ़ो काली कमली जी महाराज
एजी हुक्के के नौ दस टूक, चिलम चिटकाइये जी महाराज
मैं तो कातूंगी मोटा-झोटा सूत, बटाऊँ रस्से जेवड़े
कस कर बाँधूंगी सौक, ढीले बाँधूं अपने हाकमा जी महाराज

इन गीतों में प्रायः बनी-बनाई परम्पराएँ ही बार-बार दोहराई जाती हैं। उदाहरण के लिए वन, बाग़ आदि की उपमान भी सर्वस्वीकृत रहते हैं।

जाय उतारा सेले बड़ तले,
झूला तो डाला चम्पेबाग़ में
एक बन लाँघा दूजा बन लाँघा, तीजे में.....

यहाँ पर हम सावन मास में गाये जाने वाले लड़कियों के गीतों का भी अध्ययन करेंगे। जेठ मास के अन्त में उमड़ते बादलों के साथ बालिकाओं का कोमल स्वर झूल की पैंग के सहारे तरंगित हो उठता है। इन गीतों का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है—भाई के प्रति बहिन का सौहार्द्र व सद्भावना, बहिन के प्रति भाई का अतुल स्नेह तथा बलिदान-तत्परता, । सास, ननद और भौजाइयों के मनोमालिन्यपूर्ण व्यवहार तथा वाक्-संघर्ष और नारी का संकुचित मनोविज्ञान तथा माता का कन्या के प्रति करुणापूर्ण मोह सम्मिलित परिवार के पारस्परिक संबंधों का दिग्दर्शन।

यह वर्णनात्मक और संवादात्मक होते हैं। इनमें स्वल्प शब्दों में बाल-मनुहार तथा सहृदयतापूर्ण व्यवहार का सुन्दर अंकन हुआ है। बालकों के नन्हें हृदय में छोटी-छोटी बातों से हर्ष और शोक की लहर उत्पन्न हो जाया करती है और वह अपनी उन भावनाओं को अपने विशिष्ट ढंग से ही व्यक्त कर देते हैं—

कच्ची नीम की निबौली, सावन की रुत आई जी
क्यों क्यों मेरे मुन्ना से भइया, (भाइयों का नाम लेकर)
नींदड़िया क्यों सोई जी,
तमारी तो भैंणा भांजी, सासरे घर झुरमें जी
झुरमें है झुरमण दे बुलावें आवें सावण जी

आधी सी रैन पहर का तड़का, बीरन घोड़ा ले चल दिये जी
उठ उठ री बाहण हठीली खोल्लो चन्दन किवाड़ जी
उठ्ठी बीर मिलन कू मेरा टुट्या गल का हार जी
हार तो हैं और भतेरे बीरन कब कब आवै जी
चुग देंगे मेरे चिड़ी चिड़गले, पो देगा मेरा बीरा जी
थाली में धर गिरी छुहारे भोजन करने बैठ्ठे जी
परात में ले रोली रुपया टीका करणे बैठ्ठे जी

इन गीतों में चित्रात्मकता और संवादात्मकता का योग ब त सुंद र है। भाई के प्रति बहन की कोमल भावनाएँ, सास के प्रति विरसता और माता के दुलार पर अथक विश्वास ध्यान देने योग्य है। इनमें वात्सल्य-रस की अनुपम झाँकी है। कन्यायें सावन के गीत भाई को माध्यम बना कर गाती हैं क्योंकि उनका सबसे अधिक प्यार अपने भाई के प्रति होता है, उसको पाकर वह फूली नहीं समातीं।

विवाह के पश्चात् उनके निकटतम पति हो जाता है, उसको पाकर वे प्रसन्न होती हैं और उसके विरह में वे पागल हो जाती हैं। भाई को भी वह भूल नहीं पाती, यदा-कदा उसकी याद मन में शूल जाती है। हम यहाँ एक गीत प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें बालिका का प्रकृति-प्रेम, भाई के प्रति स्नेह तथा सास के प्रति भावना का पता चलता है। प्रकृति-प्रेम को प्रकट करने वाला एक बालिका का गीत इस प्रकार है :—

चक्की तले मैंने धनिया बोया, हाँ सहेली धनिया बोया
धनिये के दो किल्ले फूट्टे हाँ सहेली किल्ले फूट्टे
किल्लों की मैंने गऊ चराई गऊओं ने मुझे दुध्धा दीया
हाँ सहेली. . .
दुध्धे की मैंने खीर पकाई, हाँ सहेली खीर पकाई
खीर पका मैंने बीरन जिमाये, हाँ सहेली. . .
बीरन ने मुझे चूंदरी दी
चुंदरी मेरी झमकै सास मेरी चमकै

सावन के इन गीतों में भाई-बहन के प्रेम का वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि मातृ-स्नेह का यह पाठ, कन्याओं के मन में बाल्यकाल ही से रम जाता है और इसी बल तथा पूंजी को लेकर वह ससुराल जाती हैं।

सावन सूना भैया बिन हो गया जी
किस्कू बनाऊँ लपझप पूरियाँ जी
किस्कू राधू रस खीर. . .सावन. . .

इन सावन के गीतों में, जो बालिकाओं द्वारा गाये जाते हैं—वह उनके अनुसार ही सुबोध-सुगम होते हैं। यह अन्य लम्बे कथा-गीतों से कुछ भिन्न होते हैं तथा यह अति संगीतपूर्ण, लयपूर्ण, लम्बे छंद के होते हैं और भाषा की क्लिष्टता का अभाव रहता है। इनमें प्रेमविलासिनियों के दाँव-पेंच वाले वर्णन का अभाव रहता है। इनमें कथा-कथन की प्रवृत्ति का भी अभाव रहता है। इस प्रकार यह अलंकार-विहीन भाषा के तथा साम्यभावों से परिपूर्ण गीत, निश्चय ही सावन के भाई-बहनों के गीतों में महत्व रखते हैं। इस प्रकार सावन के दोनों वर्गों का अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनका खड़ी-बोली क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान है। इनका वर्ण्य-विषय बहुत व्यापक है और यह अपने में पूर्ण हैं।

होली—भारतवर्ष में हर त्यौहार का संबंध किसी देवी-देवता से माना जाता है। इसी प्रकार होली का भी संबंध होलिका से है। महिलाएँ फाग से पहिले दिन होली पूजने जाती हैं। माताएँ बच्चे को मेवा, लड्डू, मखाने तथा गोलों का हार पहनाकर होली पूजने ले जाती हैं जहाँ पर होली के लिए ईंधन जमा होता है। महिलाएँ भी चीचली के धागे से चारों ओर घूम कर होली पूरती हैं और लोटे से पानी छोड़ती जाती हैं तथा दीपक जलाकर रोली आदि से पूजा कर बेर चढ़ाती हैं। घर आकर मेवे-मिठाई आदि में से मिनस[१] कर हार बच्चों को खाने के लिए दे देती हैं और बच्चे हारों को तोड़ कर बड़े प्रेम से खाते हैं, फिर मुहूर्त में, ब्राह्मण होली में आग लगाते हैं। जिस समय होली में आग लगती है लोग गेहूँ की बाल उसमें भूनते हैं तथा उस भुने हुए गेहुओं की बाल को प्रसाद मान कर खाते हैं और एक-दूसरे को देकर शुभकामना करते हैं व गले मिलते हैं। बाल भूनना, फसल के लिए शुभ होता है।

अगले दिन प्रातः जब होली जल लेती है तो राख को बड़े व बच्चे सब लगाते हैं तथा बच्चों के लिए राख को उठाकर उस घर में रख लिया जाता है। इससे बच्चों पर प्रेतादि का प्रभाव नहीं होता। कहा जाता है उस दिन वातावरण में प्रेतात्माएँ रहती हैं और दूध आदि पीने से वह बालकों पर असर कर जाती हैं।

दूसरे दिन से रंग खिलता है। उसमें पुरुष विभिन्न रूप बनाकर झुंड में होली खेलते हैं। उनमें से किसी के सेहरा और मोड़ आदि बाँध कर, फटे कपड़े पहनाकर और गधे पर बिठा कर निकलते हैं। उसको कहा जाता है होली का 'भड़ुवा'। ये हास्य तथा उल्लास की अभिव्यक्ति का अनोखा साधन होता है। स्त्रियाँ नाच कर

---

१. लोक शब्द है। मन के संकल्प का अपभ्रंश है, कोई वस्तु मन से किसी के निमित्त संकल्प कर देने को कहते हैं।

होली खेलती हैं तथा लड़कियाँ दूल्हे-दुल्हा बन कर होली खेलने जाती हैं।

पूस-माघ के जाड़े और शीत की उग्रता के कारण गीतों की ध्वनि मंद पड़ जाती है। माघ में वसंतपंचमी से फिर गीतों की लहर उठती है और फागुन मास में तो वह अपनी चरमसीमा पर ही पहुँच जाती है। इस महीने में होली और धमार ही अधिक गाये जाते हैं। अनुष्ठान संबंधी गीत इस माह में भी कम ही हैं।

वसंतागमन पर प्रकृति का उल्लास दर्शनीय होता है। शीत व्यतीत होने पर मानो जगती को नूतन प्राण व नवजीवन प्राप्त हुआ हो, जो वृक्ष लतादि में पुष्प-सौरभ, पक्षियों में कोयल की कूक और मानवों में गीत बन कर फूटता है। खड़ीबोली प्रदेश की उर्वराभूमि में यही उल्लास खेतों में पीली सरसों तथा वायु की प्रत्येक सिहरन पर थिरकती हुई गेहूँ की बाल के रूप में, पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक सर्वत्र बिखर जाता है।

सावन में जिस प्रकार स्त्रियों के कंठों से करुण स्वरलहरी प्रवाहित होकर वातावरण को आर्द्र बनाती है, उसी प्रकार फागुन में मनुष्य का कंठरव उसके उन्माद को बढ़ाता है। गीत पर गीत फूट पड़ते हैं। रात और दिन होली के गीतों का समां-सा बँधा रहता है। इनका प्रधान वर्ण्य-विषय राधा-कृष्ण तथा शिव की होली होती है। इनमें श्रृंगार भावना और क्रीड़ा भावना ही प्रधान होती है। शिव जी संबंधी एक बहुत प्रसिद्ध गीत है—

दुनिया ने बोया मकी बाजरा
भोले ने बो दई भंग
दुनिया ने खाई मकी बाजरा
भोले ने खाई भंग
मेरी माँ भोला री
भोले ने पी लई भंग

मानव समाज के स्वस्थ जीवन के लिए व्यक्ति की दिनचर्या में विनोद, हास और उल्लास के लिए कुछ क्षण आवश्यक हैं। सहज प्रवृत्तियों का अवरोध मन को स्वच्छ एवं स्वस्थ नहीं रख सकता।

क्षुधा और काम मानव की दो आदिम प्रवृत्तियाँ हैं जिनको, भिन्न नहीं, एक दूसरे की पूरक कहा जा सकता है। इसीलिए भारतीय त्यौहारों में भावनाओं की अभिव्यक्ति का पूर्ण ध्यान रहा है। भारत कृषि-प्रधान देश है। किसान को पूरे मौसम कार्यरत रहना पड़ता है। विदेशों के अनुसार वह दिन के छ: घंटे कार्य नहीं करता बल्कि जिस समय उसकी खेती को उसकी आवश्यकता होती है वह तुरंत खेत पर पहुँच जाता है। उसका भाग्य तथा जीवन उसी खेती पर निर्भर करता

है। परन्तु जब त्यौहार आता है तो वह उन्मुक्त होकर गा उठता है, रंगों में डूब जाता है। जीवन की लीक को छोड़ कर वह संपूर्ण जीवन क्षेत्र में दौड़ता है। हर क्षेत्र को छूता है, हर पग पर उसको जीवन ही झलकता प्रतीत होता है। हर वातावरण तथा उसके प्रभाव को अभिव्यक्त करने के लिए हर मौसम के प्रारंभ में ऐसे त्यौहारों की अभिव्यंजना की गयी है ताकि वह उस मौसम के अनुरूप व्यवहार करके उसका स्वागत कर सके। दीपावली की दीपशिखाएँ शरद् का स्वागत करती हैं तथा आने वाले शरद् के लिए लोकजन को तत्पर कर देती हैं और विश्वास दिलाती हैं कि हम तुम्हारे साथ हैं। होली, गर्मी के आगमन की सूचना देती है। लोकजन रंग में डूब जाता है। रंग से भीग कर वह आने वाली गर्मी के लिए तत्पर हो जाता है।

यौन विचारों ने ही सामाजिक आदर्शों को जन्म दिया। होली कुं ाओं को मुक्त करने का अवसर है। मनोवैज्ञानिकों के विचार से आदर्श, वाह्य और कृत्रिम हैं। इसलिए जब कभी ऊपरी दबाव कम हो जाता है तभी सभ्यता के घने वन में खोया मानव अपनी आँखें खोल कर मूल प्रवृत्तियों की ओर दौड़ता है। होली एक ऐसा ही त्यौहार है जो सामाजिक स्वीकृति पाकर मानव को उसके अपने वास्तविक रूप में ले आता है। हमारी मर्यादित प्रवृत्तियाँ भी उन्मुक्त हो जाती हैं और आमोद-प्रमोद में निर्बंध हो जाते हैं तथा संयम और शिष्टाचार की मर्यादा का उल्लंघन भी क्षम्य समझा जाता है।

होली, ऋतु-परिवर्तन का त्यौहार है। शीतकाल की जड़ता के बाद प्रकृति में वसन्त आता है जो ऋतुराज कहलाता है और वह धीरे-धीरे ग्रीष्म में परिवर्तित हो जाता है। प्रकृति अपने इस नए और आकर्षक रूप-रंग से पुरुष को आकर्षित करती है तथा स्वाभाविक रूप से काम का उद्रेक होता है। ऋतुराज वसंत के आगमन से ही स्त्री-पुरुषों, बाल-युवा तथा वृद्धों के हृदयो में उल्लास होता है तथा नवीन स्फूर्ति का अनुभव होता है। कालिदास के अनुसार वसंतोत्सव की आम्र मंजरियों के ारा कामदेव का जन्म माना जाता है। वस्तुतः वसंतपंचमी से फाल्गुन की पूर्णिमा तक वसंतोत्सव मनाया जाता है। भारतीयों का नव वर्ष भी इसके बाद चैत्र में आरम्भ होता है। फागुन में लोग, गीत या रसिया आदि गाते है, इसलिए होली इसके स्वागत हेतु मनायी जाती है। यह पूरा मास हास्य-उल्लास ही में व्यतीत हो जाता है। ये लोक-उल्लास, लोकमानव के मन में नववर्ष के लिए आशावादी दृष्टिकोण की भूमिका होती है।

फाल्गुन के महीने में अपनी इच्छानुसार तथा समाज द्वारा स्वीकृत उच्छृंखल जीवन बिताने की छूट रहती है। फाग के साथ साधारण जनता अपने दैनिक जीवन

की विषमताओं को भी भुला देती है। वह एक बार अतीत और भविष्य को भूल अपने को केवल वर्तमान में ही खो देना चाहती है। यह माह उनके गत ग्यारह माह से अनवरत रूप से चले आते हुए जीवन से परिवर्तित होता है। इन दिनों गाँवों के मुक्त वातावरण में वह बहुत-सी गुप्त दबायी हुयी इच्छाओं को प्रकट करते हैं। परिणामस्वरूप उनके मन व शरीर की शिथिलता कम हो जाती है। उनकी बोली में फागुन का नाम 'मस्त महीना' है—

"मस्त महीना फागन का कोई जीवै तो खेले होली"

होली फसल का भी त्यौहार है। इसी से इसका संबंध सृजन के तत्व पर निर्भर करता है। इन अवसरों पर यौन संबंधों की भी छूट रहती है। यही कारण है कि होली पर अश्लीलता के प्रदर्शन दिखायी पड़ते हैं। इस समय की 'बसंती बयार' और 'गुलाबी जाड़ा' एक विचित्र मादकता भर देता है। यह दो ऋतुओं के सम्मिश्रण का बड़ा सुहावना समय होता है। प्रकृति के हाथों में इस समय दोनों ही छोर होते हैं—एक को छोड़ने के लिए और दूसरे को पकड़ने के लिए। इस समय एक हल्केपन का अनुभव होता है और मनोरंजन करने की इच्छा होती है। फागुन का मस्त-महीना अवस्था की उपेक्षा कर बड़े-बूढ़ों को भी सरस बना देता है। 'फागुन में जेठ बड़े रसिया'—इसका प्रमाण है। कोई स्त्री गा उठती है—

"मत मारे नयन की चोट, होली में मेरे लग जायेगी।"

फागुन में जब 'बड़े बूढ़ों और 'रांड़ लुगाई' को भी मस्ती छा जाती है तो फिर नवयौवना, नवविवाहिता को, जो पीहर में हैं, अचानक श्वसुराल का ध्यान आ जाना स्वाभाविक ही है। मादकता के वशीभूत हो उसके लिए प्रिय का विरह असह्य हो जाता है और वह एक परदेसी राहगीर द्वारा अपनी ससुराल में संदेशा भेजती हैं, जो इस प्रकार होता है—

कच्ची अम्बली गदराई रे फागन में
राँड लुगाई मस्ताई रे फागन में
कहियो रे उस ससुर भले से
चाल्ला ले करवा फागन में——कच्ची. . .
कहियो रे उस बहू भली से,
चार महीने गम खावै रे पीहर में
कहियो रे उस जेठ भले से,
चाल्ला ले करवा फागन में——कच्ची. . .
बिन मुकलावै ले जा रे फागन में
कहियो रे उस बहू भली से,

दो महीना गम खाजा रे पीहर में—कच्ची...
कहियो रे उस देवर भले से
चाल्ला रे करवा फागन में—कच्ची...
कहियो रे उस भाभी भली से
एक महीना गम खावै रे पीहर में—कच्ची...
कहियो रे उस राजा भले से
चाल्ला ले करवा फागन में
बिन मुकलाई ले जा रे फागन में—कच्ची...
कहियो रे उस गोरी भली से
दूजा खसम कर ले रे पीहर में
कच्ची अम्बली गदराई रे

इस गीत में मनोभावों की पूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती है। फागुन के गीतों में अधिकतर वर्णन स्त्री-पुरुष के संयोग का ही रहता है। स्त्री-पुरुष ऐसे अवसर पर अवस्था का भेद-भाव नहीं देखते और मुक्त हृदय से मनोरंजन करते हैं। इसी कारण इस अवसर पर बहुत सी अश्लील बातें भी कुछ सीमा तक क्षम्य रहती हैं। होली खेलने में सबको छूट रहती है।

"होली है भई बुरा न मानो"

यह अवसर मजाक के लिए उपयुक्त समझा जाता है। समाज द्वारा स्वीकृत मजाकिया रिश्तों में तो देवर-भाभी और जीजा-साली का ही है पर इस अवसर पर तो राहगीर तक भी मजाक कर बैठते हैं। एक स्त्री कहती है—

"मेरी लाल चुनड़ी पै रंग बरसै, गुलाल बरसै"

स्त्री वास्तव में समझ भी नहीं पाती कि उसको रँगने वाला व्यक्ति कौन है और पूछती है—

मुट्ठी भरा गुलाल किन्ने डाला रे
जिन्ने भी डाला लाला सन्मुख अइयो
नहीं तो दूंगी सहज गाली, गुम गुम गाली

एक स्थान पर भाभी, देवर के संबंध में कहती है जिसके द्वारा सारी स्थिति स्पष्ट हो जाती है—

काँटा लागो रे देवरिया मो पै संग चलो ना जाय
अपने महल की मैं अलबेली, जोबन खिल रहे फूल चमेली
धूप लगे कुम्हलाये
आधी रात हमें ले आयो, रास्ता छोड़ कुरस्ता धायो

सास ननद से पूछ मत आयो
चलत चलत पिंडली दुखायो, सगरी देह पिराय
काँटा लागो रे देवरिया—मो पै संग चलो ना जाय

हमारे लोकजीवन का कोई भी सामाजिक पर्व ऐसा नहीं जिसमें संबंधित देवी-देवता से हमारा संपर्क नहीं रहता, अतः हमारे लोकजीवन में भी लौकिक-पारलौकिक संबंध होता है। इससे प्रतीत होता है कि देवी-देवताओं को वह अपने जीवन से भिन्न नहीं मानते, वरन् एक अंग मानते हैं। होली के हास्य-गीतों में जब जन-मन उल्लसित रहता है तब भी अपने संबंधित देवी-देवताओं की उपेक्षा न कर उनके सामीप्य का ही अनुभव कर गाते हैं। राधा-कृष्ण, राम-सीता तथा शिव-पार्वती से संबंधित संयोग-श्रृंगार के गीत जो इस प्रकार होते हैं, इन्हीं से तुलना कर जनता अपने व्यवहार के औचित्य को भी मान लेती है और संतुष्ट रहती है—

होली खेलन चलो री बिरज में
सासु भी खेले सौहरा भी खेले
म्हारे खेलन की क्या चोरी जी बिरज में।

होली के गीतों में राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती दोनों का ही कुछ न कुछ भाग अवश्य है तथा इस अवसर पर भांग आदि पीने की प्रथा का मूल संबंध भी उसे ही माना जाता है—

सब रंग भीग आई, तुमै होली किन्ने सिखाई
राधा किसन मुरारी भर भर मारे पिचकारी तुमै

तथा—

होली खेले रघुवीर अवध में होली खेले
राम के हाथ कनक पिचकारी सीता के हाथ अबीर—होली. . .

तथा—

"आज सदाशिव होली मनाई"

होली के इस उल्लासपूर्ण वातावरण के संयोग के साथ ही विप्रलंभ का भी वर्णन मिलता है। एक स्त्री जिसके पति परदेश में हैं, अपने जेठ से कहती है—

"जेठ तेरा बाला बीरन परदेस"

वह कहती है—

"बिना मारू कैसे कटे दिन रात।"

होली के मस्ताने अवसर पर अनमेल विवाह भी अखर जाते हैं और वह कहती है—

मैं तो कोड्डा री पहर पछताई
मेरी चरचा करे लुगाई
मेरा बालम याणा मैं तो स्यानी
उनके मरियो बाप्पू माय

इसमें बाल-विवाह के ऊपर भी आक्षेप हैं। इस समय वियोग असहनीय हो जाता है—

रंडुआ तो रोवै आध्धी रात
सुपने में देखी कामिनी

यद्यपि होली के गीतों में अधिकतर रसिकता प्रिय गीत ही रहते हैं पर कुछ में सामाजिक विषय भी मिलते हैं। होली के गीतों में राष्ट्रीय झलक भी देखने को मिलती है—

विके इब मिल गया सौराज मौज में होली गावेंगे
किसानों का रब सुद्दा ऐसा, घर में नाज हाथ में पैसा
चौधरन कहै घेर में आज, साँग बुल्ली का लावेंगे
लाला गाँ का चक्कर काट्टे, हाली जमादार ने डाटे
दरोगा चले दबा के कौला, रोब खूब ढेर बढ़ावेंगे
बिल्ली बाम्मे ढेर दिनों माँ, रकम्मा उल्टी गेहूँ चणों में
तारकै दूबकी टुट्टी छाण, सोहणा बंगला छवावेंगे
होली में आगा बड़ा उजीर, खुवाकै बढ़िया रसकी खीर
करेंगे गहरी जान पिछान, रग माँ उसे न्हुवावेंगे
इक रंग में रंग दे सब कू, ऊंच नीच छोड़ कै ढब दूं
देस का होगा कल्याण, प्रेम की गंगा बहावेंगे।'

खड़ीबोली प्रदेश में चमारों की होली विशेष प्रसिद्ध है। होली में ढोलक बजा-बजा कर नृत्य करते हैं। इस अवसर पर डफ बजाने की प्रथा भी बहुत प्रचलित है। इन गीतों में सूक्ष्म भावों तथा कथानकों के स्थान पर खुला और सादा सार्वजनिक आह्लाद और उछाह का भाव होता है। यह उत्साह और उमंग का त्यौहार है।

खड़ीबोली प्रदेश में होली के अवसर पर स्त्रियाँ मंडलाकार घूमती हुई एक दूसरे के हाथ मार कर गाती हैं। वह पटका कहलाता है तथा इसके साथ ही साथ नृत्य भी करती हैं जिनके प्रमुख गीत इस प्रकार हैं—

"राजा नल के बार मची होली, री मची होली"

होली में प्रयोग में आने वाले वाद्ययंत्र होते हैं—डफ, झांझ, घंटा, थाली, ढोल। होली की टेर सवा-महीने तक सुनायी देती है। इसके अतिरिक्त मनोरंजन के

लिए इस प्रदेश में गाये जाने वाली मुख्य 'रागिनी' है जो वर्षा को छोड़ कर सभी ऋतुओं में गायी जाती है। विषय और पकड़, दोनों ही की दृष्टि से यह अति उत्तम होती है। 'रागिनी' की प्रकाशित पुस्तकें इस प्रदेश में अपनी विशेषता के साथ पायी जाती हैं।

यों तो होली सभी संबंधी पड़ोसी आदि खेलते हैं पर होली का विशेष त्यौहार देवर-भाभी, साली-बहनोई आदि का है जिनको एक-दूसरे से होली खेलने के फल-स्वरूप देवर को तथा जीजा को अपनी भाभी व साली को कुछ उपहार देने की भी प्रथा है जिसको 'फगुआ' कहते हैं, यह भी नेग के रूप में आता है। नववधू को, जो पहली होली ससुराल में मनाती है—गुरुजन तथा पति, रंग डलाई का नेग देते हैं। होली तो वस्तुत: ऋतुगान है। श्रम मलिन जीवन में काव्य स्फूर्ति तथा नवीन उत्साह लाने के लिए मनोरंजन आवश्यक है। ऋतु के अनुसार उनके मनोरंजन का रूप और उसके साथ संबंधित गीतों का क्रम बदलता है। मनोरंजन के गीतों में यहाँ होली, रागिनी और आल्हा का प्रचार है जो क्रमश: जाड़े, गर्मी और बरसात में गाये जाते हैं। वसंत से होली तक यह सवा-महीने का मनोरंजन न जाने जीवन को कितनी कुंठाओं से मुक्त कर जाता है। होली ने बड़े-बड़े खेल खिलाये हैं। राजा कारक की होली इस प्रदेश में बहुत प्रसिद्ध है—

राजा कारक बड़ पै चढ़ गये बार बार रानी बरजै
तीन हजार तुमैं बाग बो दूं राजा ले लो मुझसे दाम सवाये
खिलाये रे खेल खिलाये, हौली रे बड़े बड़े खेल खिलाये।

टेक और तोड़ के पहले और पीछे देर तक ढोल, डफ व थाली बजती है। इस प्रकार की पुरानी होलियों में अधिकांश धार्मिक व पौराणिक विषय अथवा लोक प्रचलित कहानियाँ—जैसे सहलोचन सती, पूरनभगत, हरिश्चन्द्र, नल-दमयन्ती, कँवर निहालदे फूलकुंवर मिलती हैं। इन होलियों में आधुनिक होलियों की अपेक्षा अभिव्यक्ति की सरलता और भाव-गांभीर्य अधिक है।

महाभारत के लाक्षागृह की होली इस प्रदेश में इस प्रकार प्रचलित मिलती है—

लुक वे गया भीम गगन में
आधी रात करन का पहरा, बारा घंटे बाज गये
बाहर में कीचक सो रह्या
'बहणा की अरज सुण वीरा'
दो बाँदी आ लगी म्हारे बिपदा का कुछ मोल नहीं

करुणा की लहर उठाने वाली निहालदे की होली का एक अंश प्रस्तुत है—

रानी जिन्दी मुझसे नाँय मिलेगी
नगरी दूर समै चौमासा नद्दी नाले कर गये जोर
चारों तरफ से बिजली चमके बादल करै गगन में सोर
मारग दिसा समझ मेरी मैण्या, जो मोकूं तो नाय मिलेगी
परदेस्सों में मरणा होग्गा, काया को खावेंगे स्याल
मेरे प्रान छुटै रस्ते में वहाँ डाल पर जागी कंवर निहाल
दूनों प्रान छुटे रस्ते में व्हाँ जल मर जागी कंवर निहाल
दूनों जीव भटकते रहजागें मेरी काया खाक मिलेगी

हरियाना में होली इस प्रकार की भी प्रचलित है——

पति इस जीने से मै मरी भली दुखियारी
बिना पति के नर बिहनी है पसू बराबर जूनी

खड़ीबोली प्रदेश में हर जाति का होली और उसके गाने का ढंग भिन्न है। यदि समानता है तो इस बात में कि इस अवसर पर सभी समान भाव विभोर से रहते हैं। हर जाति अपने को महत्वपूर्ण मानती है——

होली तो गूजरी की सबसे पहले,
फेर पिच्छे और सब्ब की

यह हमारा ऋतुपर्व है जिसमें टेसू के रंग में रंग कर सब वर्ण समान स्वर्ण वर्ण दीखते हैं।

गाँवों में मनोरंजन गीतों के अतिरिक्त ग्रामीण-जन अलाव, चौपाल पर बैठ कर अनेक नीति, ज्ञान, धर्म व प्रेम-व्यवहार संबंधी सुंदर दोहे कहते हैं और कभी-कभी कुछ बताने को पद्यबद्ध कहानियाँ भी। अनेक अवसरों पर अनेक मुख से लोकोक्तियाँ भी निकलती हैं। होली के अवसर पर यह प्रायः शृंगार-रस की ही होती हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है——

जैसी ओढ़ी कामली, वैसा ओढ़ा खेस
जैसे कंथा घर रहे तैसे रहे बिदेस

इस प्रकार हम होली के विभिन्न गीतों का अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इनमें कुछ विशिष्टता अवश्य मिलती है।

सर्वप्रथम तो इनमें प्रेमोल्लास की धारा अत्यन्त वेग से बहती है। इनमें प्रेम का रोमांचपूर्ण वर्णन रहता है, तथा उसी से संबंधित जीवन की सरल और रसमय झांकियाँ मिलती हैं। इन गीतों में आदर्श से अधिक यथार्थ पर बल दिया जाता है और हास्य का विशेष पुट व स्थान रहता है। खड़ीबोली प्रदेश में होली से संबंधित कथाएँ व गाथाएँ भी प्रचलित हैं।

श्रम-गीत—लोकजीवन कर्मण्यता का साकार रूप है। यहाँ स्त्री-पुरुष सभी का जीवन श्रमरत रहता है। अकर्मण्यता का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं, इसी से वास्तव में यह कर्मक्षेत्र है। श्रमरत वातावरण में श्रमपूर्ण व्यस्त जीवन बिताते हुए ही श्रम गीतों का जन्म अनायास ही हो जाता है। कार्य करने के फलस्वरूप जो मन व शरीर बोझिल हो जाता है, उसी की दुरूहता को कम करने के लिए जो गीत गाये जाते हैं, वे कार्यकर्ताओं में स्फूर्ति का संचार करते हैं। इनके द्वारा मन की अतृप्त आकांक्षाओं और वेदनाओं का आभास मिलता है। इसका मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है। किसी कार्य की दुरूहता का उसमें पूरी एकाग्रता के कारण अधिक अनुभव होता है पर अगर किसी अन्य ओर ध्यान बँट जाये तो उसकी एकाग्रता कम होने से वह कम कष्टदायक रह जाती है। इन श्रमगीतों का महत्व इनकी समयोपयोगिता के कारण ही है। श्रमगीतों को मुख्यतः हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—स्त्रीवर्ग के गीत तथा पुरुष वर्ग के गीत। इनमें भी और विभाजन इनके क्रिया-कलापों के अनुसार किया जा सकता है।

प्रत्येक नीरस और कठिन कार्य को सरस और सरल बनाने का यत्न अवश्य किया जाता है और श्रम-परिहार में गीत सर्वाधिक सहायक होते हैं। मनुष्य के हाथ और मस्तिष्क का अद्भुत मेल है। जहाँ हाथ श्रम की ओर बढ़े कि मस्तिष्क ने हृदय से सहयोग कर भाव को वाणी दी और इसके परिणामस्वरूप हृदय के स्पन्दनों की ताल पर हाथ चलने लगते हैं। गीत और श्रम के इस संबंध को नृत्य और गान के रूप में अनुभव किया जा सकता है। लगभग श्रम की प्रत्येक क्रिया के साथ गीत जुड़े हैं क्योंकि श्रम की नीरसता एवं कठोरता का निवारण उनके द्वारा ही संभव होता है।

स्त्री वर्ग के श्रमगीत—स्त्री वर्ग के मुख्य क्रिया-कलाप, जो लोक-जीवन में प्रचलित हैं वह हैं—चक्की पीसना, चरखा कातना, ओखली कूटना, खेती करना, पानी भरना आदि। इन अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों का वर्ण्य-विषय मुख्यतः उनकी सामयिक, पारिवारिक और दैनिक समस्याएँ होती हैं। भारत के हर प्रांत में लगभग समान ही नारी समाज की समस्याएँ होती हैं उदाहरण के लिए—बालविवाह, अनमेल विवाह, बहु-विवाह, बंध्या का दुख तथा विवाहित जीवन में पति के अत्याचार। इन गीतों के श्रम के साथ-साथ अपने दुखों को व्यक्त करके वह कुछ अंशों में अपने मन के बोझिलपन को कम कर देती है।

श्रमगीतों में नारी हृदय तथा हिन्दू समाज की स्थिति का बहुत ही स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। यह गीत, श्रम के समय अपने विषाद को व्यक्त करने के साधन हैं। समय-समय पर गाये जाने वाले इन गीतों के माध्यम

से नारी अपनी स्थिति स्पष्ट करती है। इन गीतों में जीवन के दुर्बल पक्ष तथा सुख से अधिक दुख ही का अधिक उल्लेख मिलता है। इनमें करुण-रस की प्रधानता रहती है। इन क्षणों में वे अपनी समस्याओं का मनोविज्ञान के आधार पर अवलोकन करती है। अपना दुख किसी से स्पष्ट रूप में कह देने से उनकी वेदना को वाणी मिल जाती है, हृदय हल्का हो जाता है। अगर अपने दुख को कह कर आपस में न बांट लें तो उनके मन में ग्रंथियाँ पड़ जाती हैं जिनका उपचार भी नहीं। जीवन की विषमताओं का इस प्रकार का उल्लेख उन्हें जीवन-दृष्टि भी देता है तथा भविष्य के लिए सहनशक्ति भी। संपूर्ण मानव-जीवन में और नारी-जीवन में तो दुखों का पलड़ा ही अधिक भारी रहता है तथा सुख का तो कहीं-कहीं, कभी कभी केवल उल्लेख मात्र ही होता है, इसी से उनकी उपेक्षा करना भी संभव नहीं।

नारी के विशेष क्रिया-कलाप, घर में ही केन्द्रित हैं तथा उसी से संबंधित हैं। इसी से स्त्रियों के श्रम गीतों में अधिकतर गीत उनके क्रिया-कलापों के ही अधिक निकट हैं, मुख्यत:——चक्की पीसना, पानी भरना, खेतों में काम करना आदि।

लोक-जीवन में स्त्रियों में चक्की का विशेष महत्व है। चक्की जीवन के कर्म-चक्र-प्रवर्तन का प्रतीक है। उनके दैनिक कार्य का आरंभ प्रातः इसी से होता है। चक्की की व्यावहारिक उपयोगिता भी है। यह स्त्रियों के लिए विशेष स्वास्थ्यप्रद व्यायाम सिद्ध होता है। चक्की पीसते समय गाये जाने वाले गीतों का वर्ण्य-विषय उनके घरेलू जीवन से संबंधित होता है, और मुख्यत: उसमें सामाजिक समस्यायें ही रहती हैं। वह आपस में एक-दूसरे से सुख, दुख कह सुन कर जीवन की विषम गुत्थियों को सुलझा लेती हैं तथा अपने मन में कुंठा को स्थान नहीं देतीं। चक्की पीसना, विचार-विनिमय तथा सुख-दुख बाँट लेने की प्रथा का उचित माध्यम व समय था। चक्की के गीतों में हमें ननद-भावज शर्त करती हुई, बदना बदती हुई मिलती हैं। इस प्रकार के गीतों में इसका स्पष्ट उल्लेख है, यह 'मनरंजना' का गीत किसी न किसी रूप में हर उपभाषा, लोकभाषा में उपलब्ध है।

चक्की के गीतों में सास के शाश्वत कटु-व्यवहारों का भी उल्लेख किया जाता है। यह तभी होता है जब कि देवरानी-जिठानी एक दुख की समभागी हों, दोनों ही सतायी हुई हों और एक दूसरे के मनोभावों को भली प्रकार समझती हों। अतः तब वह अपना सर्वतोमुखी असंतोष प्रकट करती हैं——

ना इस घर में चक्की री ना चूल्हा
ना चक्की में चूण बैहण मेरी
बुरा है ससुर का देस

ना इस घर में कोठी रे कुठला
ना कोट्ठी में धान

इन्हीं गीतों में सास से संबंधित अन्य गीत भी मिलते हैं जिनमें उन पर सास द्वारा किये गये नारकीय यंत्रणाओं के उल्लेख मिलते हैं। इन्हीं गीतों में बंध्या की मर्मवेदना तथा विधवा के प्रति किये गये अत्याचारों का भी बहुत ही मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलता है। प्रोषितपतिकाओं का विरह-वर्णन भी इनमें दृष्टिगत होता है। संक्षेपतः करुणरस के सभी मार्मिक प्रसंग इनमें मिलते हैं।

चरखे के गीतों में प्रायः इसी के वर्ण्य विषय मिलते हैं। मनरंजना का गीत भी इसी से संबंधित मिलता है जो थोड़े से भेद के साथ इस प्रकार है—

ननद भावज मिल कातें मनरंजना
कोई कातत तो बदलइ होड़ मनरंजना

चरखे के गीतों में नारी का असंतोष मिलता है। इनमें गांधीवाद का और चरखे का प्रचलन भी मिलता है। परिशिष्ट में उदाहरण देकर हमने इसे स्पष्ट कर दिया है।

चरखे के कुछ गीतों में तो चरखे का केवल उल्लेखमात्र ही है जिनका कोई विशेष महत्व किसी भी दृष्टि से नहीं है, लेकिन ये नारी-जीवन में चरखे की ओर संकेत करते हैं—

झुम्मर टिक्का पहर के, मैं गई थी बजार
किसी बाबू ने मारा मेरे ताना
बोल्ली तो मेरे लग गई
चरखा पड़ा रे आगरा, लाठ पड़ी बंगलोर
ओ हो तार पड़ा बिजनौर

इस गीत में पश्चिमी उत्तरप्रदेश के दो-तीन जिलों तथा कस्बा बंगलौर का भी उल्लेख आ गया है।

चक्की चरखा और चूल्हा के अतिरिक्त कृषि-प्रधान भारत के गाँवों की स्त्रियाँ अपने अवकाश के क्षणों में पतियों के साथ खेत में काम करवाती हैं तथा दोपहर को खाना पहुँचाना भी उनके लिए दैनिक जीवन का एक विशेष अंग होता है। घर और खेत का वातावरण उनके जीवन में आत्मसात् हो जाता है और वह उसी से संबंधित गीतों का निर्माण कर लेती हैं जिनमें प्रायः उसी से संबंधित समस्या रहती है; पर कभी-कभी अन्य विषय भी समाहित हो जाते हैं—

ग्रामीण नारी के लोकजीवन में तो गीत हर क्रिया का आवश्यक अंग है। उनकी बोली में कोई भी काम 'गूंगे' नहीं करना चाहिये। अतः हम देखते हैं कि

जब कहीं भी वह सामूहिक रूप से जाती है चाहे वह खेत में हो मेले में हो या गंगास्नान में, पानी भरने जाते समय, तालाब या नदी के तट पर हो, वह अपनी लघु यात्रा को रोचक बनाने के लिए इन गीतों का सहारा लेती है। इसलिए ये गीत नारी की मुखरता के भी द्योतक हैं।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बातचीत करते तथा गाना गाते हुए, समय जल्दी कटता है। ऐसा प्रतीत होता है इन गीतों में शृंगार और करुण दोनों ही रसों का उल्लेख मिलता है। इसका वर्ण्य-विषय कभी गंतव्य स्थान जाने के उद्देश्य से संबंधित होता है उदाहरणार्थ, गंगास्नान, मेले, जात बोलने जाते समय, पीपल पूजते समय का। इसी प्रकार खेत पर जाते समय, पानी भरने जाते समय भी वह अधिकतर उसी से संबंधित गीत गाती हैं। लेकिन खेत पर जाते समय कोई निर्दिष्ट विषय नहीं होता अतः यह उनकी स्वेच्छा पर निर्भर करता है कि वह क्या विषय लें। इनमें जीवन का हास्य-व्यंग्य भी मिल जाता है तथा आशा व निराशा का वर्णन भी है। एक स्त्री अपने परदेश जाते हुए पति से पूछती है—

कितनक दिन में आओगे ओ काली छतरी वाले
पाँच बरस में आवेंगे हो घूम घाघरेवाली
हमकू क्या कुछ लाओगे, सौक दूसरी लावेंगे हो गोरी

इस गीत में हम देखते हैं कि पुरुष, स्त्री की भावनाओं का किस प्रकार उपहास करते हैं। स्त्री कितने निश्चल भाव से पति से उत्सुकतावश पूछती है 'मेरे लिए क्या लाओगे', 'कब आओगे'। एक परदेस जाने वाले से प्रियतमा का यह प्रश्न करना कितना स्वाभाविक है। पर पुरुष उसकी प्रिय-भावनाओं की उपेक्षा कर कितना अप्रिय और कटु उत्तर देता है—'पाँच बरस' की लंबी अवधि के बाद आने पर भी साथ में सपत्नी लायेंगे जिसकी कल्पना मात्र ही नारी के लिए दुखदायी है। यही भाव-वैषम्य तथा नारी जीवन के भाग्य की विडम्बना, हमें लोक-गीतों में मिलती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके लिए विचारों का आदान-प्रदान आवश्यक है। गाँवों में स्त्रियों के लिए इस तरह के सम्मेलन के मुख्य स्थल तो दैनिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण हैं और वह है पनघट। उनके जीवन में पनघट बहुत महत्त्वपूर्ण है और उन्हें अपना पर्याप्त समय इसी पर बिताना होता है। इन अवसरों पर वह अपने सुख-दुख की सभी बातें करती हैं और अपनी इच्छानुसार अपने उद्गारों को गीतों के रूप में प्रकट करती हैं। इन गीतों में कुछ शृंगार रस का भी समावेश रहता है। प्रायः गीतों में पनघट प्रेमियों और प्रेमिकाओं का मिलन-स्थल भी होता है। प्रेमी प्रायः अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा पनघट पर या

पनघट की राह पर ही करते पाये जाते हैं ऐसी परम्परा लोकजीवन में पायी जाती है।

प्रथम दृष्टि में ही प्रेम होने के उल्लेख मिलते हैं। पनघट पर प्रायः युवतियाँ ही जाती हैं। जो या तो अविवाहित रहती हैं या नवविवाहिता। उनमें से कुछ प्रोषित-पतिकाएँ भी होती हैं। अतः हम उन्हीं में सभी प्रकार की नायिकाएँ पा लेते हैं। पुरुषों की कुचेष्टाओं के प्रमाण भी मिलते हैं। युवतियों को देख कर मनचले युवक फबतियाँ कसते हैं। उदाहरण के लिए—

काला जुत्ता ऊँचा रे, एड्डा जल भरने को जाना रे
घेरे में बैट्ठा एकयार, चलती को बोल्ली मार गया
जिनके रे बालम घर में को ना उनका सिंगरना ठीक कोना

अथवा—

हे री सास्सू पाणी तो भरणे में चली
हे री सास्सू कूये पै खेल्ले काला नाग
मुझे तो डस लेगा, हेरी मेरी बीबी
मैंने तो जाणा देवता, ऐ री बीबी मावस की माँगे मुझसे खीर
मुझे तो डस लेगा

अथवा—

माली की ने दोघ्घड़ ठाई
हाथ लई है चकडोर
मण पै तो उन्हे घात दई है चकडोर
घणी दूर का आया मुसाफिर
तण सा नीर पिला दे

ग्रामीण नारी के जीवन में पनघट का विशिष्ट स्थान है। ग्रामीण स्त्री के लिए यह स्थल विचार विनिमय के स्थान थे जिसको आजकल 'क्लब' का रूप दे दिया गया है। यह मनोरंजक स्थल होते थे जहाँ वह अपनी-अपनी घर-गृहस्थी की, सुख-दुख की बातें सुनती, सुनातीं थीं। यह स्थल कई प्रेम-गाथाओं के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

सिल्ला बीनना—गेहूँ कटने के दिनों में लाई करने (गेहूँ काटने) के पश्चात् उठवाने का काम होता है। यह काम प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं। इनमें एक लाभ यह होता है कि उनको परिश्रमिक भी अनाज ही मिलता है। इस क्रिया को प्रायः चमारिन स्त्रियाँ करती हैं।

सिल्ला बीनने के समय इन गीतों के पश्चात् चामड़ व भूमिया के गीत गाती

हैं और उसके पीछे एक बधावा गाकर बाद में ढोला गाती हैं और घर जाती हैं। इन गीतों के उदाहरण परिशिष्ट में दिए गए हैं।

नारी जीवन से संबंधित ऊपर लिखे गए क्रिया-कलाप प्रायः सभी प्रान्तों के लोकगीतों में कुछ साधारण भेद-भाव के साथ अवश्य ही मिलते हैं। जीवन की दैनिक परिस्थितियों में उनके अन्तर्मन का रूप हर प्रांत में समान रूप से हुआ है और स्वभाववश उन्होंने उनके अनुरूप गीतों की रचना भी की है।

पुरुषवर्ग के श्रमगीत—जिस प्रकार स्त्री वर्ग के क्रियागीत स्त्रियों के कार्यों से संबंधित मिलते हैं, उसी प्रकार पुरुष वर्ग के गीत भी उन्हीं के कार्यों से संबंधित होते हैं। दोनों के ही भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्र हैं। पुरुषों को अधिक शारीरिक श्रम करना पड़ता है, वह बलवान होते हैं अतः वह इस योग्य होते हैं और सफलतापूर्वक करते भी हैं। इसलिए श्रम का परिहार करने के लिए गीतों का निर्माण करते हैं। इनके वर्ण्य-विषय स्त्रियों से नितांत भिन्न होते हैं और उनमें करुणरस की अपेक्षा शृंगार की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। खड़ीबोली-प्रदेश में ईख की पैदावार बहुत अधिकता से होती है और किसान बैलों के द्वारा खींचे जाने वाले कोल्हू से गन्ना पेल कर उसके रस से गुड़ शक्कर तथा राब बनाते हैं।

कोल्हू चलाने का काम प्रायः रात्रि भर होता है। कोल्हुओं पर चारों ओर जागरण रखने के लिए 'कोल्हू गीत' गाने का प्रचलन है जिनको पल्हावे या मल्हौर कहते हैं। यह काम में थकान का अनुभव नहीं होने देते हैं और जीवन में सरसता बनाये रखते हैं। पल्हावे या मल्हौर का विषय प्रायः शृंगार, नीति व धर्म होता है। कहीं-कहीं इनमें अश्लीलता भी अधिक मात्रा में आ जाती है।

मल्हौर रात्रि के समय कोल्हुओं पर ऐसी ऊँची टेर से गाये जाते हैं कि एक कोल्हू से उठने वाला स्वर दूसरा स्पष्ट सुन सके, कारण कि उसका उत्तर दूसरे कोल्हू के लोगों को देना पड़ता है। लंबे धार्मिक व नीतिपरक उपदेशों की अपेक्षा धर्म व नीति के ज्ञानकरण (संक्षिप्त वाक्य) ही अधिक प्रभावकारी होते हैं। इसलिए मल्हौरों के लिए दोहा जैसा छोटा छंद अपनाया गया। यहां पर शृंगार, नीति व धर्म संबंधी दोहे उदाहरण के लिए दे रही हूँ—

शृंगार—

जोबण तेरे कारण छोड्डे माई बाप
सात्थन छोड्डी साथ की, हिरना बरणी नार
मेरी बावलिया मल्हौर'

जोबण चाल्या रूसके, पड़ लिया लम्बी राह
कैसे पकड़ूं दौड़ के मेरे गोड्डो में दम नाय

नीति—

जिनका ऊँचा बैठणा, जिनके खेत निवाण
उनका बैरी क्या करे, जिनके मीत दिवाण
मेरा बावलि या मल्हीर

धर्म—

माला मन से लड़ पड़ी, प्यारे का लड़कावे मोय
मण निहचें कर राखिये राम मिला द्यूंगी तोय

मल्होरों में विनोदपूर्ण पद्य में कटाक्ष एवं उपालंभ भी सुन पड़ते हैं। उदाहरण के लिए—

ढाई पाट का ओढ़ना, तले खड़ा मेरा जेठ
ढाई पाट का ओढ़ना, मूढ ढकूं अक पेट

इसमें पौराणिक कथाओं का सहारा भी लिया गया है जो इस प्रकार है—

लकड़ी इकली ना जलै, नाय उजाला होय
लक्षमन सा बीरा मारकै, राम अकेला होय

जादू, टोना व तांत्रिक उपायों का सार्वजनिक जीवन में सफलता प्राप्ति के लिए प्रयोग दर्शाने वाली इस प्रकार की एक मल्होर है—

बड़ बाँधू बड़ वासनी, बड़ के बाँधू पात
तेरे गुरु की मसक, बाँध ल्यूं तेरे दोणों हाथ

इन छोटे छन्दों में महान् प्रेरणा सूत्र हैं—

उदाहरण के लिए कबीर का एक दोहा लोकभाषा में इस प्रकार है—

चालती चाक्की देख कै, प्यारे दिया कबीरा रोय
दो पाट्टों के बीच में साबित रह्या ना कोय

पल्हावे—

(१) **नदी किनारे रूखड़ा तीन तपस्सी उतर रहे**
सीता लछमन राम मेरे बावलये मलोर

(२) **नेड़े मुंह को टोकनी संवल दे पनहार गजब पड़ो तेरे रूप पर**
दिया मुसाफर मरवाय मेरे बावलये मलहोर

(३) **कल्लर की हम बेर या, ढोला आया हमारे तले कू**
पक्के पक्के खा गया
कच्चे के लगाये ढेर मेरे बावलये मलहोर

(४) दाँती ले साल की पूसै काट सौ पचास
रस्ते में झौपड़ी गेर ले
यहीं भिनकी आस—मेरे बावलिये मलहोर

(५) गाड़ी के गड़ वालये और गाड़ी के पहये सूत
करू न तुझे के पड़ा
तू छेड़े ने गाऊँ के पूत, तुझे के पड़ा,
झोंपड़ी में जच्चा पड़ी थी
मुझे था काम—मेरे बावलया मलहोर

(६) गाड़ी के गड़वाल ये तेरी गाड़ी भरी मसूर वाले बैल को
हीक ये तुझे जाना बड़ी दूर—मेरे बावलिये मलहोर

(७) आवण आवण कर गये ला दीये बारह मास
चाल पूरानी हो गयी खड़कन लगे बाँस

(८) बोदी बाड फरोस की, पैर दियो भर डाय
ओच्छे की क्या दोस्ती, भीड़ परे भग जाय

(९) जितनी खिड़की उतनी चंदन छिड़की
बीच बिच्चे रख दी मोरी जी
चै चै कर तो रैन गुजरगी,
पास खड़ी रही गोरी जी
तु है रसिया बन का बसिया,
जो मैं होती बिरवै की लकड़ी
गले से लगती गोरी जी
तू रसिया बन का बसिया,
तू क्या जानै चोरी जी
चै चै कर तो रै न गुजरगी, पास खड़ी रही गोरी जी

पुरुषों के श्रमगीतों में कोल्हू के गीतों के बाद कुएं के गीतों का स्थान है। यह 'बारे' कहलाता है। 'बा', हिन्दी शब्द का अर्थ जल है, यह संस्कृत का वारिजल से बना है।

कुआं चलाने की क्रिया में दो व्यक्ति साथ काम करते हैं। इनमें एक तो कुएँ की मन पर खड़ा होकर चरस लेता है और दूसरा चरस खींचने वाले बैलों की जोट हाँकता है। इस दूसरे व्यक्ति को कीलिया वाले कहते हैं। इन दोनों का काम एक दूसरे के सहयोग से चलता है। जिस समय चरस ऊपर आता है उस पर कुएँ की मन पर खड़ा व्यक्ति बारे की दूसरी पंक्ति कह कर अपने साथी को सूचित करता है

कि वह बैलों की बरत से बीच की कीली निकाल कर अलग कर दे जिससे रस्सी ढीली हो जाने पर वह चरस मन के ऊपर लेकर उलट दे। पहिली पंक्ति को वह उस समय कहता है जब चरस कुएँ के अंदर जल भरने के लिए छोड़ता है। ये गीत इस प्रकार दो-दो पंक्तियों की मुक्तक रचना के समान होते हैं जिसमें पहला पद जाने का व दूसरा कुएँ के भीतर से चरस आने का संकेत देने वाला होता है।

कुएँ के गीतों का विषय प्रायः भक्ति, मनोरंजन एवं विनोद होता है पर कभी-कभी इनमें व्यंग्य और उपालंभ भी स्थान पाते हैं।

भक्ति-भावना—

भाई राम था धणी का, लीए नाम ऊ ऊ ऊ
हर भर के ल्या, उठा, राम, ऊ ऊ ऊ
ले ले नाम हरी का तुम कैसे बार लाई
हे तणे बरधों कूं छोड़ दे भाई

मनोरंजन एवं विनोद—

किलड़ी कू दे दे, लगी देर प्यारे रे
है बनजारी कू झौली, हिये त्याग भाई रे

कष्ट निवारण के लिए यह लोग ये गीत गाते हैं—

कुओं के बारे

(१) 'गुर गंगे, गुर बावरे, गुर देवन के देव
गुर से चेला अन्त बड़ा, करै गुरु की सेवा'
(२) ले राम का नाम, मेरी जोड़ी को दियो जोड़
(३) 'भजन में मगन रहो, माला हर की फेरो'
(४) जोड़ कै चला जा और जोड़ी को दियौ न ढाल
(५) शिव जी महाराज की और पूजा लियो न कर
(६) अर—मेरे भाई किलिये और ओही काछ : और ओही पिलिये
(७) केला गढ़ के मग राजा की, घना द्वार : झूल रही
जिसकी बेटी कँवर निहाल दे, आज बाग में झूल रही
(८) राम का नाम ले भाई अरे बावलया कुए में गया डूब
(९) किल्ली काढ़ बलद गोरे पै पानी लावेंगे राम
(१०) काल्लू कुडंले में डूब मरा था भाई बोरी दी थी भार
(११) दोनों बैल आवन दे भाई मेरा राजी हो गया रे राम

(१२) चीरे वाले नाद चला जा डांडा कैसी लादी रे बार
(१३) अरे मेरे दोनों बैल कुभाइ मोरी दिये रे खैंच
(१४) मेरा दाना ते जलनीर--भर भर लावेंगे नीर।

पैंड़ (चक्कर) तेरी सुहाई रे भाई बधिये। (भइया बैल)
कधी पातर (वेश्या) नाचन आई रे--छोरी मेरा चालता चलो
पैंड़ तेरी में गारा रे भाई बधिये (बैल)
कधी सावन बरसै सारा रे--छोरी मेरा...
साड़-सावन के खड़ड् खाये रे भाइ-बधिये
वह बल कहाँ गवांये रे--छोरी मेरा...
कुंडी आई भागो रे भाई बधिये, कधी बोधे बैल के भागोरे--छोरी मेरा...
कोठे ऊपर कोठरी है, उसमें काला नाग
काटे से तो बच गई रे, अपने पिया के भाग--छोरी...
काया की किश्ती बनी रे, माया की हुनियार
उठा भँवर गुंजार कै रे, नैया घेरी आय--छोरी...
राम बढ़ाये सब बढ़े, बल कर बढ़ा न कोय
बल करके रावण बढ़ा, छिन में दिये खोय--छोरी...
गंग जमन की रेती रे, अरे ईखा बिना क्या खेती रे--छोरी मेरा...

बालगीत--बालगीतों का संबंध विशेषकर खेलों से है। खेलों के द्वारा बालक आदिम जीवन की अनुकरणात्मक झाँकी तो देते ही हैं साथ ही वह अपनी नैसर्गिक समूह प्रवृत्ति के उपयोग द्वारा, सामूहिक जीवन और पारस्परिक सहयोग का पाठ सीखते और जीवन को स्फूर्तिमय बनाते हैं। भडू-डुडुवा में उठक-बैठक, दौड़-भाग और भिड़न्त में वह मानव की किन्हीं पुरातन क्रियाओं की आवृत्ति करने व कृषक जीवन के लिए अपने को समर्थ्यवान् बनाते हैं। रामलीला के पात्रों की भूमिका में काम करते हुए वह स्वयं को सचमुच वही सब पात्र मान कर अपने चरित्र का उत्थान करते हैं और खेल का आरंभ करते समय नाम बता कर अलग-अलग आकर तथा पैसा उछाल कर विभिन्न प्रकार से साथियों का चयन करने में वह निर्णय की सूक्ष्म क्रिया को मूर्तरूप करते हैं।

खेल में गीत के स्वर, बालकों में आत्म दृढ़ता और अनुशासन उत्पन्न करते हैं। भाषा की मंत्रशक्ति का यह विशुद्धतम उदाहरण है।

बालगीतों के विषय, जीवन से भिन्न और असंबद्ध नहीं होते। खेल भी जीवन से भिन्न नहीं होते जीवन वास्तव में खेल ही है। खेल उत्तरदायित्वहीन जीवन है

और जीवन उत्तरदायित्वपूर्ण खेल। बाल-खेल, जीवन का अनुकरण करते हैं और गीत, जीवन की भावनाओं का अनुगमन। किन्तु अपरिपक्व मस्तिष्क की उपज होने के कारण उनमें व्याख्या और विस्तार का अभाव अवश्य होता है। जब बच्चे विवाह का खेल खेलते हैं तो कोई नाई, कोई दूल्हा और कोई पंडित बन कर वेदों के मंत्रोच्चारण की नकल इस प्रकार करते हैं—'अड़म गड़म घर टका'।

इसमें पंडितों का अनुकरण तो मिलता ही है साथ ही साथ उसकी परम्परा की ओर उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण का पता चलता है। बाल-शिक्षण में इन खेलो का बहुत महत्व है। खेल न केवल शरीर मात्र के विकास में सहायक होता है, अपितु वह जीवन की बहुमुखी संवर्द्धना में भी सहायक होता है। जीवन में आगे जाकर जो कुछ करना होता है, बालक वह सब कुछ खेल-खेल में ही सीख लेता है।

खेलों में प्रायः यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि इनमें लड़किया माँ का अनुकरण करती हैं और लड़के बाप का। इनमें जीवन के गंभीर कार्यों का भी विनोदात्मक अनुकरण मिलता है जो बहुत सफल और सजीव चित्रण होता है। मानव के पूर्ण जीवन का इन खेलों में ब्यौरा रहता है। इनमें गीतों की भाषा के विकास के अनुकरण का चमत्कार भी दिखाया जाता है। यह अदृश्य के संबंध में निश्चयता और निर्णय को प्रोत्साहन देने वाले हैं।

यह चरित्र के उत्थान में सहायक होते हैं तथा इनके द्वारा समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी सांस्कृतिक संबंधों की सदा परम्परा बनी रही है।

खेल का आरंभ करने से पहले सबको इकट्ठा करने के लिए बालक आपस में चिल्लाते हैं।

अवलक अदलक, चम्पा फूल जुआरी
जिसकी माँ बालक ना भेज्जे, उसकी माँ चमारी

चमारी से उनका तात्पर्य केवल अस्पृश्य और तिरस्कृत से ही होता है। इसे सुनकर चाहे मां कितनी ही रोकती रह जाय किन्तु स्वाभिमानी बाल-वृंद फिर घरों में नहीं रुक पाते और इस मंत्र के जादुइ प्रभाव के साथ खेल में खिंचे चले आते हैं।

ऐसे ही खेल की समाप्ति पर कोई बालक कह उठता है—

"मनुआ मरग्या, खेल बिगड़ ग्या"

बालगीतों को हम स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं जिसका मुख्य कारण स्त्री ओर पुरुष के स्वभाव और कार्यों के प्रकृत विभाजन हैं। अतः कार्य और क्रीड़ा के समय वह अपने-अपने वर्ग में मिल कर रहने में ही प्रसन्न रहते हैं। इसी का अनुकरण बालकों में भी देखा जाता है। लड़के और लड़कियाँ पृथक्

गुटों में ही खेलते हैं। इसके विपरीत यदि कभी किसी लड़की या लड़के ने दूसरे के समूह में मिल कर खेलने की हठ की तो तुरन्त ही नीचे दिये मंत्र द्वारा उसे वहाँ से भगा दिया जाता है—

लौंडियों में लौंडा खेलै
माँ बाँहण का नाड़ा खोल्ले

और लड़का कह देता है 'लड़कों में लड़की गू खानी'। सचमुच ही इसे सुनकर वह मुँह लटकाये सलज्ज भाव से खिसक जाते हैं।

प्रायः माता-पिता बालकों को 'मीं' (वर्षा) में नहाने को व नालियों के गंदे पानी में पैर डालने के लिए मना किया करते हैं किन्तु जिस समय बालकों का विद्रोह स्वर गूँजता है तो सब दौड़ पड़ते हैं—

"बरसो राम धड़ाके से, बुढ़िया मर गई फाक्के से"

इसी प्रकार एक-एक, दो-दो, चार-चार पंक्ति के अनेकों गीत बाल-खेलों के साथ संबद्ध हैं।

दैनिक खेल—

इनके अन्तर्गत यह खेल आते हैं—

१—भड़ू-डूडवा—जिसको कबड्डी भी कहते हैं।
२—पाँ पिट्टा
३—कच्छू गंगा
४—झोई-माई
५—कीलमकीड़, कुल्हाड़ा
६—लीलीघोड़ी
७—बुढ़िया-बुढ़िया
८—अंधे की लकड़ी
९—चल,चल चमेली बाग में, आँख मिचौनी, चोर सिपाही, लक्खै लक्खै कौनलक्खै, गेंदतड़ी, खो, विष अमृत।
१०—गुड़िया का खेल
ख—त्योहारों के खेल—साँझी, टेसू, चौपई-चोकड़ी (इसे डंडों से खला जाता है)
ग—ऋतुओं के गीत—सावन, फागुन और कातिक आदि (गीत गाना भी मनोरंजन का साधन है)

इनके अतिरिक्त 'चें में,' आटे-बाटे, बाबा बाबा आम दो—यह सब मनो-

रंजन के लिए ही होते हैं । इनमें बालकों की विचार-शक्ति को प्रोत्साहन के लिए पद्यबद्ध पहेलियाँ भी होती हैं ।

पीली पोखर, पीला अंडा, बता तो बता नहीं लगावें डंडा
(कढ़ी-पकौड़ी)

इंघै खूंटा, उंघै खूंटा, गोरी गाय का बुद्धा मीठा
(सिंघाड़ा)

इसके द्वारा बालकों की बुद्धि कुशाग्र होती है और उनके मस्तिष्क की कसरत होती है ।

लड़कियों के बाल-गीत——इन गीतों में भाई के प्यार का उल्लेख बड़े चाव और प्यार के साथ किया जाता है । इन गीतों में तैरती हुई अनुभूतियाँ हैं जिनमें बहिन के सुख-दुख साधारण और दैनिक जीवन से संबंधित तो हैं ही किन्तु मर्मस्पर्शी बहुत हैं । उस समय आज की तरह लड़कियाँ ब्याह होने तक 'पिया' और 'सैंया' के गीत नहीं गाती थीं । वह अपने मैके के स्नेह में रत रहती थीं ।

लड़कियों के खेलों में विशेष गुड़ियों का खेल है । नारी जीवन का अनुकरण विशेषकर गुड़िया के खेलों में मिलता है । गुड़ियों के माध्यम से वह स्त्री-जीवन के हर पहलू का अभिनय कर लेती हैं तथा इस प्रकार अपने को इस जीवन के उपयुक्त बना लेती हैं और वह कन्या, वधू, माँ, सभी रूप में अपने को रख कर उसी के अनुरूप आचरण करती हैं । गुड्डा-गुड़ियों के विवाह के खेल से ही वह विवाह-संबंधी अपने सब रीति-रिवाज सूक्ष्म रूप से सीख लेती हैं । बालिकाओं के मन व परिस्थिति के यह बहुत ही अनुरूप है । इसमें यद्यपि लड़के भी भाग लेते हैं पर मुख्य अधिकार इसमें बालिकाओं का ही है । इस समय वह कुछ-कुछ विभिन्न समयों पर होनेवाले विवाह के गीतों को भी गाती हैं ।

बालगीतों में छोटे-छोटे बालकों की जानकारी बढ़ाने के लिए पर्याप्त सामग्री इकट्ठी रहती है और उनसे जानवरों के नाम भी सुविधापूर्वक लिए जा सकते हैं——

१. **बीबी मेंढ़की री तू तो पानी में की रानी**
कौआ तेरा भाई भतीजा चील तेरी देवरानी
बगुला तेरा छोटा देवर तू कहाँ की रानी

२. **सुन सुन सखी पंछी का ब्याह था**
बगुला बराती आये, जुगनू मशाल लाये

डोर तो खूब बोले, डोमनी बारात गाये
पोदना करे सताई, बुलबुल करे लड़ाई
जूं ही बिल्ली आई—सारी सभा भगाई

यह जानवरों के संबंध में है। इसी प्रकार एक गीत उदाहरण के लिए यहाँ दिनों के संबंध में दिया जा रहा है—

बृहस्पत मेरी दाई, शुक्र की खबर लाई
शुक्र मेरा भइया, मैं खेल्लूं धम्मक धैया
सनीचर मेरा नाना, मुझे कान पकड़ बुलवाना

कुमारी कन्यायों के सावन के गीत भी उन्हीं के अनुरूप होते हैं। सावन के आते ही उमड़ते बादलों के साथ बालिकाओं का कोमल स्वर झूले की पेंगों के सहारे गा उठता है। इन गीतों के वर्ण्य-विषय में भाई के प्रति बहनों का स्नेहार्द्र व सद्भावना विशेष दृष्टिगत होती है और बहिन के प्रति भाई का अतुल स्नेह तथा बलिदान की तत्परता मिलती है।

यह वर्णनात्मक और संवादात्मक होते हैं। इनमें स्वल्प शब्दों में बाल-मनुहार तथा सहायतापूर्ण व्यवहार का बहुत सुंदर अंकन रहता है। बालकों के नन्हें हृदय में छोटी-छोटी बातों से हर्ष और शोक की लहर उत्पन्न हो जाया करती है और वह अपनी उन भावनाओं को अपने विशिष्ट ढंग से ही व्यक्त कर देते हैं।

सावन में प्रकृति प्रेम को प्रकट करने वाला एक गीत इस प्रकार है—

चक्की तले मैंने धनिया बोया हाँ सखी धनिया बोया
धनिये के दो किल्ले फूटे, हाँ सहेली किल्ले फूटे
किल्लों की मैंने गऊ चराई, हाँ सहेली गऊ चराई
गऊओं ने मुझे दुद्धा दीया, हाँ सहेली. . .
दुद्धे की मैं खीर पकाई, हाँ सहेली. . .
खीर पका मैंने बीरन जिमाये, हाँ सहेली. . .
बीरन ने मुझे चुंदड़ी उढ़ाई, हाँ सहेली. . .
चुंदरी मेरी झमके, सास मेरी चमके'

इन गीतों में भाई-बहिन के प्रेम का वर्णन होता है और इन गीतों के द्वारा ही वह जीवन को सफल बनाने से संबंधित सभी पाठ पढ़ लेती हैं—अपने छोटे भाइयों पर मातृवत् स्नेह करती पायी जाती हैं और इसी बल तथा पूँजी को लेकर वह ससुराल जाती हैं—

सावन सूना भैया बिन हो गया जी
किस्कूं बनाऊँ लपझप पूरियाँ जी
किसकूं राधूं रस खीर--सावन सूना

लड़कियों के खेल संबंधी गीतों में ही साँझी के गीत भी आ जाते हैं। साँझी धार्मिक उत्सव भी है और छोटी बालिकाओं के लिए तो यह खेल ही के समान है। इस समय जब वह संध्या को आरती करती हैं तब भी वह भाई को याद करना नहीं भूलतीं—

गोरी री गोरी साँझी माई गोरी
आरता का थाल चमेली का डोरा
गोरा री गोरा मुन्ना भाई गोरा

इस प्रकार वह सब भाइयों का नाम लेकर उन्हें गोरा बताती हैं।

लड़कों के खेल संबंधी गीत

टेसू के गीत--शारदीय नवरात्र के दिनों में सायंकाल के समय बालकों के समूह, तीन सरकंडों के आड़े बाँध कर तथा उनके बीच में सरसों के तेल का एक जलता दीपक और एक सरकंड के सिरे पर मिट्टी का खिलौना सदृश मानव शीश रख कर कुछ अपनी रचनाओं का पाठ करते घर-घर माँगते हुए घूमते हैं, इसे टेसू माँगना कहते हैं। माँगते समय वह यह दोहा कहते हैं—

"मेरा टेसू यहीं अड़ा, खाने को माँगे दही बड़ा"

लोक-व्यवहार में टेसू शब्द प्रायः मूर्ख तथा भोले व्यक्ति का संबोधन ही होता है। टेसू (पलाश) का फूल अग्नि के समान लोहित वर्ण का होता है। इसी प्रकार बबरीक का शीश भी प्रतीत हुआ होगा। अतः टेसू बबरीक का प्रतीक हो गया। बबरीक, कृष्ण द्वारा छला गया था इसलिए इस मूर्खता की स्मृति के आधार पर टेसू मूर्ख व्यक्ति कहा गया। इन गीतों जो इस प्रकार है— में हमें संत बानी की उलटवासियों का एक बालरूप दिखायी देता है,

कबूतर यार था मेरा, गया था दूर के घेरे
फंसा था जाल के फंदे, कि टूटी आम की डाली
पिलंग के चार पाये थे कि रोया बाग़ का माली
फिरस्ते लेने आये थे
चलो महामारी समझ के।
कंकड़ कुइयाँ सीतल पानी नौ मन भंग उसी में छानी
चल बे चट्टे, भर ला लोट्टे, पी पी भंग उड़ायें सोट्टे

इस लौंड्डे को चढ़ी तरंगी, पीके भंग बन गया भंगी
उल्टी गाड़ी उल्टी खाट, ये देखो बिजली के ठाट

इसी प्रकार अन्य गीत भी प्रचलित हैं। रचना की दृष्टि से टेसू को मुक्तक कहा जाता है। अनेक गीत सामयिक घटनाओं से संबंधित भी होते हैं।

एक त्यौहार 'डंडा चौथ' होता है। वैसे तो जीवन के प्रत्येक अंग पर ही 'चौपाई' कही जाती है किन्तु यह अवसर चपल बालकों के आमोद-प्रमोद का होने के कारण इनमें अधिकांशतः या तो प्राचीन पौराणिक ऐतिहासिक कथाओं से संबंधित चौपाई होती है या फिर हास-व्यंग्य अथवा सम-सामयिक महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन रहता है—

आया वसन्तक सुनो सुजान
बिना पढ़ा नर पशु समान
मिलके चहै देय आसीस,
बेटा होंगे नौ नौ बीस

वसंतपंचमी के दिन से मेरठ में होली रखी जाती है, बच्चे द्वार पर जाते हैं—

होली मांगे ऊपले, दिवाली माँगे तेल
वसन्त माँगै गुड़-चून, पाव ऊपर सेर
होली आई है गजरमत्त खाय कै
यो तो जायेगी नगर पिटवाये कै

सांझी के गीत

चैतरों पूतरों नौ नौरता साँझी के
सोलह कनागत पितरों के

चैत से लगाकर सातवें महीने अर्थात् क्वार के मास में नौ दिन सांझी के होते हैं।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को घर के भीतर अथवा मुख्य द्वार के पार्श्व में खूब लंबी चौड़ी जगह मिट्टी से लीप कर दीवार के ऊपर गोबर की एक नारी की आकृति बनाई जाती है और उसे मिट्टी के खड़िया व पेवड़ी के रंगों से रंगकर बनाये रुपहले व सुनहरी आभूषणों से खूब सजाते हैं। यही सांझी है, जिसके साथ दायें-बाएँ बहुत सी चित्रकारी की जाती है। सांझी के दाहिने हाथ ऊपर की ओर चिड़ियों का बाग़ बनाया जाता है जिसमें बीस चिड़िये होती हैं, जिनमें दो डोम-डोमनियाँ और शेष दो बामन-बामनी बनाते हैं। बाईं ओर ऊपर एक मोर

और नीचे लंकड 'सांजां' का चित्र रहता है। सांझी देवी है—सांझी की आरती का गीत इस प्रकार है—

उठ मेरी गबरजाँ पाठ करो
हम आए तेरे पूजन को

नवरात्रियों में दुर्गापूजा होती है। इससे सिद्ध होता है कि सांझी सप्त मातृकाओं में से ही एक है जिसको कौमारी अथवा गौरी कहा जाता है। सांझी लड़कियों का त्यौहार है। वही इसकी मुख्य उपासिका हैं। साँझी की आरती केवल कन्यायें ही करती हैं, यों पूजते उसे सभी हैं। सांझी शब्द की उत्पत्ति खोजने पर दो शब्द मिलते हैं—एक संज और दूसरा संज:। पहले शब्द का है अर्थ चिपकाना और दूसरे का शिव। सांझी दीवार पर चौकोर लीप कर गोबर से लगायी जाती है। इसलिए हो सकता है कि संज: शब्द से ही स्त्रीलिंग संज्ञा और हिन्दी सांझी अथवा सांजी शब्द पड़ा। कहते हैं कि सांझी वर्ष भर में केवल नौ दिन के लिए अपने घर आती है, बाकी सब दिन तो ससुराल ही में रहती है। सांझी अपने भइया (लंकड़) के संग आती है। इसी मान्यता के कारण लोक में इनको बहिन-भाई के रूप में देखा गया और सांझी के त्यौहार का संबंध इनसे कर दिया है। सांझी के अनेक गीतों में बहिन-भाई की स्नेहभावना का चित्रण हुआ है—

माँ, भइया किधे ब्याहा झबूकना
वो तो, खट्टे डोल्ले ब्याहा, झबूकना
माँ बड़अड़ कैसी आई झबूकना

२— साँझी री माँगे यो हरा हरा गोबर
कहाँ सै लाऊँ साँझी हरा हरा गोबर
मेरा री बीरा यों लहन्ड़े में बैठा वही से लाऊँ...
साँझी री माँगें थनेस्सर की बेसर
कहाँ से लाऊँ साँझी थनेस्सर की बेसर
मेरा री, बीरा थनेस्सर में बैठा वहीं से लाऊं थनेसर की बेसर
ले मेरी साँझी थनेसर की बेसर
साँझी री माँग यों अदलस कहाँ से लाऊँ—साँझी अदलस...
मेरा री बीरा बनजारो में बैठा
वहीं ये से लाऊं 'अदलस'
साँझी री मागें यों हरा हरा चुड़ला कहाँ से लाऊँ...
मेरा री बीरा सुनारो में बैट्ठा
वहीं से ल्याऊँ साँझी हरा हरा चुड़ला

मेरी साँझी ले हरा हरा चुड़ला
साँझी री मागें यों पानीपत का बिछवा,
कहाँ से लाऊँ साँझी पानीपत का बिछवा
मेरा री बीरा पानीपत में बैठा, वहीं से लाऊँ साँझी...
ले मेरी साँझी—पानीपत का बिछवा,
साँझी री मागें ये भड़कन जूता, कहाँ से लाऊँ...
मेरा री—बीरा चमारों के बैठा वहीं से लाऊं भड़कन जूता
साँझी री माँग यो छाज भर गहना,
ले मेरी साँझी—तू छाज भर गहना

३— चाब दे री चाब दे कुसम की माँ चाब दे
तू सन्ने की माँ चाब दे तू सोम की माँ
चाब दें, तू आशा की माँ चाब दे तू
तू अरुण की माँ चाब दे
तेरी पाँचों जीवें चाब दें
कड़वी कचरी, कड़वा तेल, बधियो पाँचों थारी बेल
जाग साँझ जाग, तेरी पट्ट्यों सुहाग
तेरे माथ लगै भाग
जाग साँझी जाग

सांझी रखने के अनन्तर नौ दिन तक लगातर लड़कियाँ संध्या समय थाली में तेल का दीपक रख कर उससे सांझी का आरती करती हैं और उसके बाद उसे खील बताशों का भोग लगाती हैं—

साँझी का आरता
आरता री आरता, साँझी माई आरता
सजे तेरा आरता
काहेका दिवला काहे की बाती
साँझी री क्या ओढ़ेगी, क्या पहरेगी
मिसरू पहरूँगी, स्यालू ओढूंगी
सोने की माँग भराऊँ
धन्न की साँझी, तेरे माथे लगा भाग
तेरी पेली पटिया सदा हो सुहाग
उठ मेरी गबरजा, पाठ करो
हम आये तेरे पूजन को

पूज पुजन्ती का फल पाये
भइया भतीजे गोद खिलाये
भैया हैं मेरे पाँच पचीस

उक्त गीत में देवी का स्तवन, गुणगान तथा वर-याचना के तीनों अंग वर्तमान हैं। देवी आदिशक्ति है, जिससे गायिका प्रार्थना करती है कि उसके भाई का कल्याण हो तथा उसकी वंशबेल बढ़े । मातृस्नेह के यह भाव सुंदर हैं—

गोरा रि गोरा
साँझी का मैया गोरा
म्हारे मुन्नू गोरा, म्हारे चुन्नू गोरा
गोरों के बाल झमेल्ले रिमेल्ले
उज्जेले से बरतों वाले बीर हमारे

चेतरो पेतरों नौ नौरता साँझी के
सोलह कनागत पितरों के
उठ मेरी साँझी खोल किवाड़
पूजन आये तेरे बार
पूज पूजाप्पा क्या होगा ?
भाई भतीज्जे सब पर-वार
भाई हैं मेरे नौ, दस, बीस
भतीजे मेरे पाँच पचीस

देवी की 'कामना' का परिणाम संपूर्ण सम्पन्न परिवार है। जाति-रक्षा से परिपूर्ण मानव-मन अनादि काल से समूह की, शुभ की, सुरक्षा के लिए देवार्चना करता आया है।

सांझी की आरती करने और उसके सामने बैठ कर गीत गा लेने के बाद लड़कियाँ बेल-बूटे के आकार की अनेक छेदवाली हँडिया के भीतर एक दीपक रख कर टोलियों में अड़ोस-पड़ोस में सांझी माँगने जाती हैं। इस समय भी वह सांझी के गीत गाती हैं जो ननद और भौजाई की पारस्परिक ईर्ष्या-स्पर्धा के भावों से संबंध रखते हैं। इन गीतों में मनोरंजन का तत्व है।

सांझी के गीत—

हल्दी गाँठ गंठीली
भइया बहू ऊ हठीली
माँगे सोन्ने का बिन्दा

बिन्दा बैठ गढ़इयो
उप्पर मोरनी बछइयो
तले फूंगरू लटकाइयो
ऊ तो मुं मसकोड़े
उस्का मुंगड़ियो मूँह तोड़े

भाई बहन से संबंधित हास्य-गीत—

भइया रे तू बहण बुलाय
तेरा कुच्छ ना माँगती
माँगू तिहल पचास
आँगी ओढ़ने डेढ़ सौ
गाड़ी भर के बोझ्झा[1] ला
हरी हरी मूंग बिसावरी
भैंसा मेंकी झोट्टीला[2]
गायों में की ओसरला[3]
तले बछरुवा चोंखती
भइया, तू बहण बुला

लड़की के भाग्य का जो धन होता है, उसे पहुँच जाता है। उसे कोई देने का वृथा दंभ क्यों करे—ऐसा भाग्यवादी हिन्दुओं का विचार है। इसीसे 'मान ध्यानी' कोई लेने-देने से 'अलसाता' नहीं। लड़की के भाग का जो निकल जाये वही अच्छा है। वैसे भी पैसा हाथ का मैल है।

सास के अत्याचारों का वर्णन—

भैया रे मुन्नी का दे लड़िहार
पानी पिला दे री बहन तिसाये जाँय
नेज्जू टूटी रे गड़वा गया पताल
सास बुरी है रे दें भैया की गाली
भैयों की गाली मत खइयो री
गडुए बिसाऊँ सौ साठ

---

१. दहेज।
२. स्वस्थ भैंस जो एक-दो बार ही ब्याई हो।
३. पहली बार की ब्याई गाय।

जाग साँझी जाग तेरा बणिये सुहाग
दिल्ली सहर तैं ब्याहण आये
मर लियाड़ी गेहणों ल्याए
अणक मणक का जुता लाये
हात्थ रचायण मेंहदा ल्याए
जाग साँझी जाग

सांझी सिलाने की क्रिया दशहरा पूजने के बाद की जाती है। सांझी दीवार पर से उतार कर लड़कियों की टोली गीत गाती हुई किसी पोखर या ताल पर जाकर उसे एक शर्बत तथा दूसरी खीलों की कुल्हिया के साथ 'सिला' आती है। साथ में थोड़े बताशे व खील भर के ले जाई जाती है, जिनको वह सांझी 'सिलाने' के उपरान्त आपस में वहीं बाँट लेती हैं। कुछ लोगों का विचार है कि सांझी का संबंध रावण-राम युद्ध के समय श्रीराम द्वारा की गयी शक्ति पूजा से है। राम के रावण पर विजयी होने के लिए राम के साथ-साथ अनेकों ऋषियों ने भी शक्ति की पूजा की थी और व्रत लिया था कि रावण की पराजय के पश्चात् ही वह अपनी पूजा समाप्त करेंगे। यह सांझी की पूजा उसी काल से लोक-प्रचलित हो गयी, मानो यह तम के ऊपर सत् के विजयी होने के लिए किया जानेवाला अनुष्ठान है। सांझी खिलाने जाते समय यह भजन गाते हैं—

कहीं मिल जायें राम चरन लेती
मैं तो बागों गई, राम वहाँ भी ना मिले
मालन से बूझ खबर लेतीं, गई मैं तो तालों...

इसी प्रकार ताल, कुआँ, महलों आदि का नाम लेते हैं।

खड़ीबोली के लोकगीतों में समाज
३
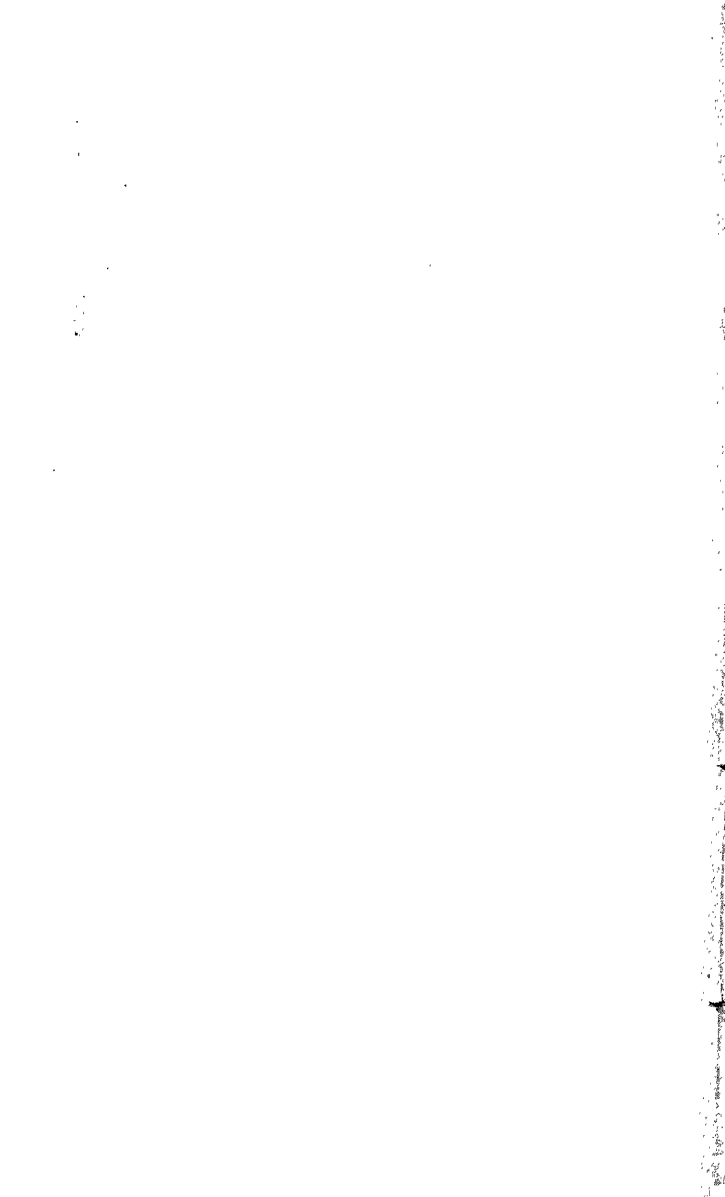
भारतीय समाज-शास्त्र, प्राचीन ग्रन्थों के अतिरिक्त कहीं और दृष्टिगोचर नहीं होता। आधुनिक युग में समाज-शास्त्र को जो नया रूप दिया जा रहा है उसका भारत में सर्वथा अभाव है। भारतीय समाज के चित्र किसी समाज-शास्त्र में तो नहीं मिलते परन्तु सब परम्पराएँ, विश्वास, जीवन के आधारभूत सिद्धान्त तथा उनका जीवन-दर्शन लोकजीवन में निहित है, यही यदा-कदा लोकगीतों में अभिव्यक्त होता है। इनमें जीवन के सुख-दुख, प्रेम-घृणा, ईर्ष्या-द्वेष, कटुता-मधुरता, आलोचना तथा प्रशंसा सब कुछ निहित रहते हैं।

खड़ीबोली का लोकगीत, दिन प्रतिदिन के जीवन की गीतात्मक अभिव्यक्ति है। इनमें जीवन के बहुरंगे चित्र अंकित किये गये हैं। इनका मूल ध्येय मनोरंजन है किन्तु यह जीवन में बहुत गहरी अन्तर्दृष्टि के द्योतक हैं। यह जीवन के विविध अंग और स्तरों को स्पर्श करते हैं तथा हर देश व काल में उसका यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत कर देते हैं। इन गीतों में कदाचित् ही कोई ऐसा हो जिसमें जीवन को आलोचनात्मक दृष्टि से न देखा गया हो। समाज की प्रत्येक गतिविधि के साथ इन गीतों का संबंध है। प्रभाती से शाम तक व्यक्ति के दैनिक आचारों से लेकर उसके समष्टिगत जीवन के समस्त व्यवहारों का ब्यौरा इनमें समाया हुआ है। साधारण से साधारण विषय से लेकर जीवन की गहन समस्याओं और छोटी-बड़ी सभी घटनाओं का लेखा इनमें वर्तमान है। हमारे धार्मिक विश्वासों के मूल पूजा-पाठ की विधियों का ढंग तथा आचरण और जीवन में होने वाले अनेक अनुष्ठान इन गीतों में वर्णित हैं।

गीतों में वर्णित संस्कारों और लोकाचारों के अतिरिक्त बहुत-सी प्रचलित प्रथाओं और धारणाओं के भी उल्लेख मिलते हैं।

लोकगीतों में हम लोक जीवन के हर पहलू का सजीव स्वाभाविक चित्रण पाते हैं। गृहस्थ्य जीवन का चित्रण सास-बहू, ननद-भावज व सपत्नी के अप्रिय संबंधों का तथा भाई-बहनों, पति-पत्नी, माता-पुत्री, पिता-पुत्र के प्रिय संबंधों का अपने में पूर्ण उल्लेख मिलता है। समाज में किस प्रकार प्रिय व अप्रिय संबंधों से

स्वभाव व संस्कार बनते-बिगड़ते हैं और प्रिय व अप्रिय संपर्क व वातावरण जीवन को सुखी व दुखी बनाने में सहायक होता है। विशेषतः नारी जीवन की तो सम्पूर्ण व्याख्या ही इनमें मिलती है। इन गीतों में जिस सभ्यता-संस्कृति, आचार-विचार, एवं रीति-रिवाजों का उल्लेख मिलता है वह अक्षरशः सत्य होता है। उसमें असत्यता, अतिरंजना तथा अस्वाभाविकता का तो कहीं स्थान भी नहीं होता। इन गीतों में न कला है न भाषा-सौष्ठव और न गीतकारों ने इनकी रचना बंद कमरों में ही की है। ये गीत तपते सूर्य के नीचे खेतों में काम करते हुए, लोक मानव ने गाया है। चूल्हे पर कसार भूनती तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनाये हैं, जिस समय अन्तर को जो भी स्पर्श कर गया तुरन्त वही भाव बोलचाल की भाषा में गीत बन कर फूट पड़ा।

हर प्रान्त के गीतों में उस प्रदेश की संस्कृति व सभ्यता झाँकती रहती है। उससे बिना प्रभावित हुए उनका निर्माण होना संभव नहीं। यहाँ इन गीतों के द्वारा खड़ीबोली प्रदेश के जीवन के रीति-रिवाजों का तथा उनके समाज का सच्चा स्वरूप भी देखने को मिलता है। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के होते हुए भी इसमें भारतीय संस्कृति के अनुकरणीय अथवा आदर्शात्मक उल्लेख भी हैं। परम्परा से चली आती हुई प्रथाएँ स्वभाव बन जाती हैं, इस सत्य का लोकजीवन में तथा लोकगीतों में ही दर्शन होता है।

यहाँ पर सर्वप्रथम हम समाज में जन्म से अंत तक नारी की वास्तविक स्थिति पर विचार करेंगे।

हिन्दू समाज में पुत्रजन्म एक बहुत ही हर्षोल्लास का क्षण होता है परंतु ठीक इसके विपरीत ही पुत्री-जन्म की स्थिति होती है। उसके जन्म से ही विषाद का वातावरण छा जाता है। नारी के रूप में कन्या का जन्म आरम्भ से ही समस्या लेकर चलता है। समाज में स्त्रियों का क्या स्थान है तथा उनके जीवन का क्या मूल्य आँका जाता है, यह कौन नहीं जानता। बहुत कम लोग नारी जीवन का उचित मूल्यांकन करते हैं। नारी, नर की पूर्णता ही नहीं उसकी जननी भी है। सर्वप्रथम पुत्री के जन्म में हर्षोल्लास मनाने का उल्लेख कहीं पर भी नहीं मिलता वरन् इसके विपरीत उसका जन्म तो एक प्रकार की "डिग्री" समझा जाता है और प्रायः उसकी उपमा 'अंधेरी रात' से दी जाती है। जिसका जन्म ही निराशा और शोक की संध्या में होता है, उसके भविष्य के उज्ज्वल होने की कैसे आशा की जा सकती है। कन्या से संबंधित तो कई कहावतें भी बन गयी हैं। एक नहीं दो मात्राएँ, नर से भारी नारी, भले ही वह अपने घर की लक्ष्मी हो पर माँ-बाप के यहाँ उसकी कैसी बिडंबना है, इसकी अनुभूति होती है जब हम सुनते हैं—"भगवान दुश्मन को भी "बेटी

न दे"। बिटिया ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है अभिभावक चिन्तित हो उठते हैं और वह चिन्ता समाप्त होती है विवाह के बाद। इसका कन्या के मन पर, उसके शारीरिक व मानसिक विकास पर, दूषित प्रभाव पड़ता है तथा उसका व्यक्तित्व अधूरा रह जाता है। अगर उसे समाज की यह उपेक्षा जीवन के प्रथम चरण से ही न मिले तो वह कितनी उन्नति कर सकती है, उदाहरण के लिए वर्तमान समाज की शिक्षित कन्या को देखा जा सकता है जिसका कि पालन-पोषण लड़कों के समान ही होता है, उनमें आत्मविश्वास, आत्म-सम्मान आदि की भावनाएँ मिलती हैं तथा उनके व्यक्तित्व का विकास भी स्वस्थ रूप में होता है। किन्तु इसके विपरीत लोकसमाज की ग्रामीण कन्या अशिक्षिता है उनके दृष्टिकोण सीमित हैं तथा रूढ़िबद्ध हैं। कन्याओं का विवाह साधारणतः छोटी ही अवस्था में कर दिया जाता है। किसी कन्या का विवाह अगर किसी कारणवश छोटी ही उम्र में नहीं हो जाता तो लोग उँगली उठाते हैं––

"ओड कंवारी फिरै बाप कै, क्या तेरा बाबल टोट्टे में
पीहर के माँ फिरै घूमती....."

इस प्रकार की बातों को सुनते-सुनते लड़कियाँ अपने जीवन को भार समझने लगती हैं और उनके कोमल हृदय में असमय ही विवाह की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। वह भी घर के अन्य प्राणियों की भाँति विवाह ही को जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझती हैं––

बारा बरस की मैं हुई री अबलों ना मेरा व्याह करा
दिल्ली भी ढूंढी अर आगरा भी ढूंढा, कहीं ना पाये भरतार
पक्का मदरसा उसका रे जिसमें पढ़ें भरतार

यहाँ लड़की अनुभव करती है कि उसके विवाह में देरी हो रही है जिसके लिए वह माता-पिता को दोष देती है। समाज की कुप्रथा और बाल-विवाह के विरोध में भी गीत मिलते हैं––

"छोटे से बलमा मोरे आँगना में गिल्ली खेलें"

तथा

रतन कटोरी घी जलै, अर चूल्है जलै कसार
घूंघट में गोरी जलै, जिसके याणे भरतार

प्रायः अनमेल विवाहों का कारण लोभ ही होता है। लड़की कारुणिक शब्दों में कहती है––

माया के लोभी बापणे, बुड्ढे को व्याहा दई रे
बुड्ढा तो चला नौकरी मैं केल्ली रह गई रे

एक स्थान पर वृद्ध से विवाह हो जाने पर एक रूपगर्विता लड़की अपने माता-पिता को दोष देते हुए कहती है——

माता पिता मेरे चूक गये, आँख मींच साड़ी की
चूर चूर कर दिया नूर मेरा, बुड्ढे के संग ब्याही

विवाह के पहले उसका क्षेत्र घर ही में होता है । वह प्रायः अशिक्षित होती हैं और स्कूल-कालेज में पढ़ने न भेज कर अपने घर में ही दादी-माँ उन्हें गृह-कार्यों में निपुण कर देती हैं। इन्हें घर में रह कर भी कार्य करने की तथा सामाजिक जीवन बिताने की शिक्षा मिलती है । उनका मन विवाहित जीवन व गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार किया जाता है तथा उनको आदर्श-सहिष्णु कर्तव्यमय तथा त्यागमय जीवन बिताने के ही उपदेश मिलते हैं । माँ कहती है——

"तू कहना मेरा मान लाड्डो, चाल्ली को अपणी सिंभाल मेरी लाड्डो"

तथा

सासरे के जाणा बेब्बे हाथ दिये का खाणा होगा
हो री री घूंघट में दुख रोणा है रे बोब्बो सासरे के जाणा है

विवाह के पश्चात् गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने पर वह पति की सहधर्मिणी होती है, अतः उसको भी नियमानुसार कर्त्तव्यधर्म और पुरुष के समान ही आदर और सम्मान प्राप्त होना चाहिये । परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसी बात नहीं पायी जाती । लोकगीतों में प्रेम-पद्धति के प्रकरण में यह मिलता है कि किस प्रकार लोकगीतों में वर्णित प्रेम एकपक्षीय है । जहाँ स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति अगाध प्रेम है, वहाँ पुरुष के मानस में एक बिन्दु भी नहीं । इसी प्रकार के चित्रण समाज में स्त्री के गिरे हुए स्थान के भी द्योतक हैं । इन गीतों द्वारा पुरुष का पूरा अधिकार स्त्री पर दृष्टिगत होता है ।

नारी आजन्म पराश्रित रहती है इस कारण उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं होता, समाज के द्वारा उसके हृदय में ऐसे भाव स्थान कर लेते हैं जिससे वह एक बार भी विद्रोह न कर सके । वह विवाह के समय अपने पिता से कहती है——

काहे को ब्याही बिदेस रे लक्खी बाबल मेरे
हम तो रे बाबल तेरे खूंटे की गइया जित बाँधो बंध जाये
भइयों को दीन्हें महल दुमहले तो हमको दियो परदेस रे

इन पंक्तियों में कन्या की परम्परागत परवशता का अभास मिलता है। उनका कोई निजी अस्तित्व नहीं, वह स्वयं ही अपने को लखपती बाप की खूंटे की गइया

समझती है, जिसका अस्तित्व उसके पालक की इच्छा पर निर्भर है। इस गीत में नारी की विद्रोहात्मक ध्वनि मिलती है जो दबी आवाज में विद्रोह कर रही है कि उसके भाइयों को तो महल-दुमहले दिये गये हैं और उसे परदेस दिया गया है, उसे भी क्यों नहीं निकट रक्खा गया।

गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश करने पर भी वह सदैव सुखमय सिद्ध नहीं होता और उसे शाश्वत पारिवारिक ईर्ष्या-द्वषों का सामना करना पड़ता है। सम्मिलित परिवारों में पारस्परिक स्नेह और विरोध पाया जाता है। उनका मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है, बहू कहती है—

घर ससुरा लड़ै, घर सासड़ लड़ै
घर बालम लड़ै, मेरी कबर घटी
पास पैसा हो तो जहर खा मरूँ
आँगन में कुंआ हो तो डूब मरूँ

रात दिन के इसी क्लेश से छुटकारा पाने के लिए वह अंत में संयुक्त परिवार से मुक्त होना चाहती है तथा अपने सुखी स्वतंत्र परिवार की कल्पना करती है—**"मैं न्यारी होऊँगी, मेरा न्यारी का करो इंतजाम।"** अगर वह किसी प्रकार अलग रहने भी लगती है तो उस अभागिन का पति भी तो उस पर अत्याचार करता है कितनी विवशता है। **"पराई नार के पीछे पिया परदेश में छाये"** इन गीतों में नारी के आर्थिक परतंत्रता का भी आभास मिलता है।

नारी की यातनाएँ अभी भी समाप्त नहीं होती हैं। अगर वह दुर्भाग्य से बंध्या प्रमाणित होती है तो उसकी समाज में, विशेषतया स्त्री समाज में बहुत ही शोचनीय स्थिति हो जाती है। नारी का व्यक्तित्व सर्वप्रथम मातृत्व पद प्राप्त करके ही उभरता है, बंध्या होना समाज में स्त्री के लिए सबसे बड़ा अभिशाप और विडम्बना है। संसार में स्त्री का आदर पुत्रवती होने पर ही निर्भर है। एक यही अवसर होता है जब कि वह स्वयं ही अपने को महत्व देती है तथा अपने जीवन का उचित मूल्य आँकती है। जीवन में प्रथम बार ही इसी अवसर पर वह सौभाग्यवती समझी जाती है। इसके प्रमाण पुत्रोत्सव पर गाये जाने वाले गीतों में मिलते हैं—

"धन धन सावित्री की कोख, राग सुहाग भरी जिन्ने जाये विजय सिंह पूत"

इसके विपरीत पुत्रविहीना स्त्री को समाज में तिरस्कृत दृष्टि से देखा जाता है और हर प्राणी उसकी उपेक्षा करता है, उसे अपराधिन समझा जाता है और उसके जीवन का कोई मूल्य नहीं होता। उसके दुख के साथ किसी को सहानुभूति नहीं होती और उसको व्यंग्य वाणों से समय-समय पर बींधा जाता है। उसका पति

दूसरा विवाह तक कर लेता है । लोकगीतों में बंध्या की स्थिति के दुःखों का बहुत ही कारुणिक वर्णन मिलता है। कभी-कभी तो स्त्री के त्याग की चरमसीमा दिखायी गयी है। जब वह अपने बंध्यापन से अवगत होती है तो पति को स्वयं सहर्ष पुनर्विवाह कर लेने का सुझाव देती है, यह हिन्दू नारी के चरित्र की विशेषता है। हिन्दू नारी के त्याग की सीमा इन लोकगीतों में ही दृष्टिगत होती है––

बिण माँगे मोती मिलै माँगे मिलै न भीख
बिण माँगे सच्चे झलकें बिण पुतर माता तरसै
राजा जी तम करवा लो दूजा ब्याह, सादी से मतणा नाट्टो जी

यद्यपि पत्नी के लिए इससे बढ़कर दुख दूसरा नहीं हो सकता कि उसके जीवित रहते सपत्नी आ जाय, कहते हैं—'सौत बुरी कच्चे चून की' इन गीतों में करुणरस की प्रत्यक्ष धारा प्रवाहित होती है। नारी यहाँ स्वयं ही अपने पति को दूसरा विवाह करने का सुझाव देती हुई मिलती है और कहती है—

तम अपणा ब्या करवा लो, साज्जण म्हारे मारो कटार
दिल्ली से अंगन मंगवा लो सजण धुर जमण जल नीर
हमको ठोंक जला दो साजण, धर हिरदै पै धीर
बिण पुत्तर पटण फकीरी, बिण कंथा कैसी नार

पुत्र और पतिविहीन स्त्री को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है और उसका कारण आर्थिक ही होता है। 'बिण कंथा कैसी नार' यह भावना लोक समाज में बहुत प्रबल है। भारत के जन समाज में विधवा का स्थान बहुत ही दयनीय है। पुरुष अनेक विवाह करने में स्वतंत्र था पर कन्या का, बाल-विधवा होने पर भी दूसरा विवाह नहीं हो सकता था। स्त्री-विहीन पुरुष के लिए समाज का कोई नियंत्रण नहीं पर पतिविहीना नारी के लिए और विधवा के लिए बहुत कठोर नियम बनाये गये हैं, उसकी आर्थिक और सामाजिक दशा बहुत ही शोचनीय हो जाती है। लोकसमाज व हिन्दू समाज में विधवा होना एक बहुत बड़ा अभिशाप समझा जाता है। इसके अतिरिक्त वह अशिक्षिता होने के कारण शेष जीवन भर आर्थिक स्थिति से पराधीन हो जाती है। समाज में उसका स्थान उपेक्षणीय हो जाता है और विवाहादि मंगल कार्यों के अवसर पर तो वह अस्पर्श्य ही समझी जाती है। अनेक सामाजिक संबंधों के विषय में स्त्रियों के मनोभाव लोकगीतों में मिलते हैं।

पुरुष के स्वभाव की विशेषता है कि वे स्वयं चाहे कुछ भी करें लेकिन उनका शंकित हृदय स्त्री को किसी से भी बात करते नहीं देख सकता, वह उस पर अत्याचार करता है। उदाहरण के लिए—

"नाड़ तेरी काट्टगाँ री गलियों में खड़ी बतराई...."

इन्हीं पारिवारिक झंझटों के कारण वह भाग्यवादी हो जाती है जिससे उसको कुछ शांति मिलती है——

करमगती होकै रहती है, भाग गती होकै रहती है
लिक्खे अंकूर विरमाके, मिटाये ना मिटैं री बहना
चिट्ठी हो तो बाँच भी दे, तेरा करम न बाँचा जा

सामाजिक संबंधों में हमें प्रिय और अप्रिय दोनों ही प्रकार के संबंधों का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है—माता-पुत्री, पिता-पुत्र, बहिन-भाई, सास-बहू, ननद-भावज, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेयसी, बिरहिणी तथा सपत्नी। इनमें भारतीय आदर्शता, स्वाभाविकता तथा मनोवैज्ञानिकता मिलती है। इससे संबंधित बहुत से सुंदर लोक-गीत मिलते हैं जो अवसर विशेष के होते हैं तथा इस प्रबंध में ही वर्गीकरण के अनु-सार दिये गये हैं। भाई बहन से संबंधित गीत, विवाह में भात के गीत, पुत्री के विवाह व बेटी की विदाई के अवसर के तथा सावन आदि के गीतों में सामाजिक भावनाओं का निर्दोष वर्णन मिलता है। रुचिकर संबंधों का उल्लेख जिनका लोकसमाज में अभाव नहीं है पर इसके विपरीत कुछ अरुचिकर संबंधों का भी उल्लेख मिलता है जिनमें प्रमुख दो ही हैं——सास-बहू और ननद-भावज से संबंधित गीत। इन दोनों ही संबंधों का शाश्वत झगड़ा है जिनका अध्ययन करने पर बहुत से स्वाभाविक कारण मिल सकते हैं जिनमें से प्रमुख कारण ये हैं कि सत्ताधारी पुत्र-प्रसू-माता की अधिकार शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है। युवक पति, पत्नी से अधिक भावनाओं का साम्य अनुभव करता है तथा यदा-कदा अपनी माँ तथा बहिन से भी उपेक्षा कर जाता है। पत्नी भी पति का सहारा पाकर सास की धारणा के अनुसार नहीं रह जाती, यद्यपि प्रारम्भ में सब संबंधियों का आकर्षण केन्द्र भी बहू ही बन जाती है। नववधू, कुमारी अवस्था में जिस अधिकार के स्वप्न देखा करती है और जब वह क्षण सम्मुख आता है तो वह अपने अनेक अधिकारों को हस्तगत करने का प्रयत्न भी करती है। इसी कारण अन्य संबंधी सास, श्वसुर तथा ननद रुष्ट होने लगती है। ननद जानती है कि माँ, बेटी के प्रति अधिक सहृदय हो सकती है इसीलिए वह भी माँ के साथ भाभी का विरोध करती है। इस स्थिति में बहू को बड़ी कठिनाई रहती है। पति की भी स्थिति विचित्र होती है। सास नन्द आदि का विरोध तो अपने पुत्र व भाई के दूसरे विवाह के करवाने तक की सीमा तक पहुँच जाता है।

लोकगीत, जीवन तक ही सीमित नहीं रहते, समाज तथा जाति संप्रदायों में भी उनकी दृष्टि उतनी ही गहरी पहुँचती है। हम सांप्रदायिक झगड़ों को भी इस स्थान पर लेंगे जिसके अन्तर्गत लोकमानव का सांप्रदायिक तथा सामाजिक दृष्टि-

कोण स्पष्ट हो जायगा। भारत विभाजन के अवसर पर गढ़मुक्तेश्वर में होने वाले उपद्रव के समय का वर्णन लोककवि इस प्रकार करता है—

गढ़ गंगा का हाल सुनाऊँ, चित देकर सुणना भाई
जो कुछ मन्ने देखा भाला, उसको देऊँ सुणा

सार्वजनिक संकटों में मँहगी, कन्ट्रोल, युद्ध तथा महामारी का वर्णन भी इन गीतों में स्थान-स्थान पर मिलता है।

लोकगीत, दुखमय अनुभूति के मार्मिक एवं मनोरंजक वर्णन है। मानों इनमें उन घटनाओं की अनुभूति करते हुए भी उसे हँस कर टाल देने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरण के लिए मँहगाई से संबंधित एक गीत इस प्रकार है—

कैस्सा पड़ गया काल हमारा
दिवालड़ा लिकड़ गया
ढाई सेर के गोहूँ बिकैं हैं छड़े ना फटके जाँय
हमारा दिवाल्ला—

नये-नये फैशन और चाल-ढाल पर बहुत गीत हैं जिनमें आधुनिकता का प्रभाव है। इनमें पुरानी पीढ़ी के परम्परावादी व्यक्तियों की, नये प्रकार के आचार-विचार पर बराबर टिप्पणी रहती है। नया-नया पानी का नल लगने पर किसी की इस प्रकार की उक्ति है—

"पानी पियतु मेरा जिऊ घबराय फिरंगी नल मत गड़वाइयो"

इसी प्रकार अन्य आधुनिकता से संबंधित उक्तियाँ हैं जिनसे असंतोष ही प्रकट होता है, श्रम का मूल्य कम हो रहा है अर्थ का महत्व बढ़ गया है।

कांग्रेस का इस प्रदेश में बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। जनता के रहन-सहन, आचार-विचारों पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इनसे संबंधित अनेक गीतों की रचना लोककवियों ने की जिसमें उनका शुद्ध स्वदेश-प्रेम प्रदर्शित होता है। कांग्रेस के समय में, जिस समय निर्दोष बालकों तक पर अंग्रेजों द्वारा गोलियाँ चलाई गयीं, उसका वर्णन भी उनके द्वारा यथातथ्य अपनी भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

स्वतंत्रता के लिए जनता ने क्या-क्या त्याग नहीं किये। उस काल में उन्होंने स्वतंत्रता के बाद के लिए जो स्वप्न बनाये, वह स्वप्न साकार होना संभव न था और फिर जब उनके स्वप्नों के अनुरूप काम नहीं हुए, सुधार व सफलता उस मात्रा में न मिल सकी तो उनको असीम निराशा हुई और एक असंतोष की लहर उन सब के मन में उठी, जिसका प्रतिबिम्ब उनके गीतों में प्रत्यक्ष दर्शित होता है।

स्वतंत्रता के बाद असंतोषी दल ने एक अपना संप्रदाय बना लिया । जो कम्यु-निस्ट थे उन्होंने कांग्रेस में अनास्था का प्रचार किया, असंतोष की भावना उत्पन्न की और जनत. के मस्तिष्कों में विष भरा जिसका प्रतिबिम्ब व स्पष्ट प्रभाव हमें जनता के इन सहज गीतों में मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्रामीण जनता को राजनीति के दाँव पेंच दिखा-कर उनमें अंधविश्वास के बीज बोये गये व कांग्रेस की बुराई दिखाकर उनको अपनी ओर आकर्षित किया गया । सुनहले स्वप्न दिखाकर अब उसके अपने स्वतंत्र विचार न होकर उसी के अनुरूप ढल गये । इन गीतों में स्वतंत्रता के बाद के परिवर्तनों का भी उल्लेख मिलता है जिससे संबंधित गीत भी उपलब्ध हैं।

लोक समाज में धर्म, जीवन का अभिन्न अंग है, अत: सामाजिक समस्याओं से ही धार्मिक आन्दोलन उत्पन्न हुए, विशेषकर आर्यसमाज का । आर्यसमाज धार्मिक से अधिक सामाजिक आन्दोलन था जिसकी सामयिक आवश्यकता भी थी, अत: इससे संबंधित गीतों को भी दिया है। इस प्रदेश के जिलों में आर्यसमाज का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होता है ।

आर्यसमाजी प्रचारकों के गीतों में वीररस और करुण रस की प्रधानता है तथा व्यंग्य शैली प्रमुख है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार के लिए संकेत और जातीय बल बढ़ाने की आवश्यकता पर अधिक महत्व देने का काम इन्हीं का था । हिन्दुओं में इससे जातीय चेतना तो आई किन्तु पर्याप्त जातीय विद्वेष भी बढ़ा। प्रचार के लिए जन-भाषा का आग्रह, क्षेत्र-क्षेत्र में अनुकूल उर्दू और हिन्दी शब्दों की प्रचुरता, लोकप्रचलित छंद, गीत, गज़ल, रसिया , लावनी, मल्हार, बारहमासा आदि का प्रयोग, लक्षण-व्यंजना से रहित सीधा अभिधा काव्य खंड का गुण दो टूक बात करना, आदि विशेषताओं का प्रभाव काव्य पर भी पड़ा है किन्तु इसके कारण उसकी मार्मिकता में कमी नहीं प्रतीत होती ।

गीत, मानव हृदय को अपनी ओर आकर्षित करते तथा अपने अनुरूप ढालने में बहुत समर्थ होते हैं। इसी से हर प्रचारक, इन गीतों के माध्यम द्वारा ही अपने मत के अनुयायी बनाये । इन गीतों में आर्यसमाज की उपदेशकप्रवृत्ति तथा सुधारवादी दृष्टिकोण का बहुत स्पष्ट चित्रण है।

लोकसमाज में नारी पर भी इसका कम प्रभाव नहीं पड़ा । एक गीत में आर्यसमाजी प्रभाव में आकर बंध्या-स्त्री प्रार्थना करती है । जिसका उदाहरण परिशिष्ट में है ।

इन्हीं गीतों के द्वारा पातिव्रत धर्म की शिक्षा भी दी गयी है जिसका उदाहरण भी तत्संबंधी गीतों में मिलता है।

आर्यसमाज के प्रभाव से जनता की बोली में भी सुधार हुआ। शिक्षा के साथ-साथ उनकी विचारधारा में भी परिवर्तन हुआ। आर्यसमाजी लोगों की सूक्ष्म दृष्टि से समाज की कोई भी कुरीति नहीं बची। उन्होंने न केवल उसके दोषों का वर्णन किया वरन् उनके समाधान के लिए भी सक्रिय प्रयत्न किये जिनका प्रभाव जनता पर भी पड़ा और इस संबंध में गीत भी बन गये। इनमें बाल-विवाह, अनमेल विवाह तथा वेश्यागमन की कुप्रथा के उन्मूलन की प्रेरणा भी मिलती है।

धर्म-परिवर्तन के समय अपना सभी कुछ बदलना होता है, इसका यथातथ्य चित्रण भी इन गीतों में मिलता है। यह गीत मुसलमानों को चिढ़ाने का है जिसको कि हिन्दू गाते हैं।

अनमेल विवाह जिसके लिए प्रायः माता-पिता ही उत्तरदायी होते हैं—यह बहुत ही असफल विवाह सिद्ध होते हैं। एक स्त्री जिसका विवाह छोटी अवस्था के लड़के के साथ कर दिया गया है कहती है—

माँ बाप का क्या बिगड़ा, बालक को व्याह दई री
देवी जात देने को गाँठ जोड़े सा चाले री
ये हँसे गाँव के लोग कहैं माँ बेटा जावै री
कोठे ऊपर कोठड़ी ननदोई सोवै री
नन्द सोवै रहस में मैं विरह में रोऊँ री
एक दिन मेरे पास में सोया मूत कै भर दिया री
मैंने जो ललकारा वो तो फूट के रोया री
बिजली पड़ियो बभना पै औ मारियो नाई री
ऐसे बाप कसाई तुझै भी सरम न आई री
जो निरदैया भैया तैंने मार न डाली री

अनमेल विवाह से संबंधित गीत इस प्रकार है—

छोटे से बालमा मुंदरी का नगीना रे
बागों में जाऊँ तो वहाँ भी संग चलै
एरी फुलड़ों में मचल गया री

इस प्रकार एक स्त्री जिसका विवाह वृद्ध से हुआ वह कहती है—

बुड्ढे को बेचन भैन्ना, मैं गई री दिल्ली के बजार
बुड्ढे का भारी दुख था
गबरू के उट्ठे नौ टके जी कोई बुड्ढे का भारी दुख था

इसी प्रकार है—

"सिर पर गठरिया घास की कोई गोदी में हमारे बालमा।"

हमारे हिन्दू समाज में विधवा का जीवन एक विडम्बना है। उसको समाज में और घर पर कहीं पर भी शान्ति नहीं मिलती, इसका गीतों में बहुत ही स्पष्ट और स्वाभाविक चित्रण मिलता है। नारी समाज तथा पुरुष समाज में वस्तुतः उसका क्या स्थान है और उसकी स्थिति से लाभ उठाने वाले व्यक्ति उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह भी इन गीतों में दिखलाया गया है।

बहु विवाह की प्रथा और पुरुष की चंचलवृत्ति की ओर संकेत करने वाले गीत भी बहुत सुंदर मिलते हैं। वह कहती है—

मेरी गोरी मैं ब्याह करवाय लूं तू खड़ी खड़ी रोवैगी
छिन जायेंगे तेरे पिलंग पास धरती में तू सोवैगा
मेरे पति तू ब्या करवाये ले मैं लाल खिलाऊँगी
आयेगी मेरी माँ की जाई, मेरी कदर बढ़ावेगी
पड़े छिन जाओ मेरे पिलंग पास, धरती में सो लूंगी।

स्त्री बंध्या है, वह दाम्पत्य सुख को भी वात्सल्य सुख के अनुमान पर न्यौछावर करती है।

भारत में ईसाइयों का धर्म भी बहुत ही शीघ्रता से फैलाया गया। ईसाई धर्म के प्रचारक ईशू के गीतों में भारतीय शब्दों व विचारों के माध्यम से ही प्रचार करते थे, यह ईसाइयों की एक नीति थी जिसका जनता पर आशातीत प्रभाव पड़ा। इन गीतों में भक्ति-भाव भी पर्याप्त रहता है।

इन गीतों में ईसाई-धर्म के प्रचार पर विशेष महत्व दिया गया है। इनकी भाषा सरल तथा मिश्रित है जो अस्वाभाविक भी प्रतीत होती है। लेकिन इन गीतों की लय बहुत अच्छी होती है। इसी से इसका खड़ीबोली प्रदेश में, वैसे तो हर जिले में मिशन्स हैं पर मेरठ ज़िले में सरधना विशेष प्रसिद्ध केन्द्र है। यहाँ का गिरिजाघर भी प्रसिद्ध है, अतः यहाँ जनता के हृदय में इनके प्रति आतंक भी है और श्रद्धा भी। इससे प्रभावित भी सबसे अधिक निम्नवर्ग की जातियाँ ही हैं।

इन सामाजिक गीतों में हमें निम्नलिखित बातों का व्यक्ति और समूह की विभिन्न मनोदशाओं और भावस्थितियों के चित्र मिलते हैं—

प्रथाओं, रूढ़ियों और कुरीतियों पर व्यंग्य, प्रेम, शृंगार वर्णन, विभिन्न जातियों में प्रचलित प्रथाओं के सांकेतिक विवरण, हर्षोल्लासमय जीवन की झांकियाँ तथा

विवश, आधीन जीवन के चित्र, समाज की दिन प्रतिदिन की गतिविधियों का मूल्याँकन तथा कलात्मक अभिव्यक्ति भी इन गीतों में मिलती है।

लोकसमाज में आदर्श सतीत्व—लोकगीतों में स्त्रियों का चरित्र बड़ा ही निर्मल, विशुद्ध एवं पवित्र दिखलाया गया है। विषम परिस्थितियों में पड़ कर शक्तिशाली कामुकों को चकमा देकर किस प्रकार स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा की, इसकी कथाएँ भारतीय इतिहास की अमर कहानियाँ हैं। सतीत्व की रक्षा के लिए स्त्रियों ने कौन-सा कठोर त्याग नहीं किया। सतीत्व का जो दिव्य आदर्श इन गीतों में चित्रित है, वह संसार में अद्वितीय ,महत्व रखता है। इसका स्पष्ट प्रमाण चन्द्रावल के गीत में मिलता है। किस प्रकार वह मुग़लों के चंगुल में फँस गयी थी और अंत में किसी भी युक्ति से न बचने पर वह आत्महत्या कर लेती हैं—

"बाल जलै जैसे खेस जलै जी हाड़ जलैं जैसे लाकड़ी जी"

लोकगीतों में जीवन के सभी पक्षों का बहुत विशद और बहुमूल्य लेखा है, विशेषतया लोकजीवन का और स्त्री-जीवन का ऐसा सहज सफल वर्णन किसी भी लोकसाहित्य में दुर्लभ है।

लोकगीतों में स्त्री-जीवन के बड़े ऊँचे आदर्श मिलते हैं। ऐसी स्त्रियों का प्रसंग गीतों में आता है जिन्होंने प्राण देकर भी धर्म की रक्षा की। पातिव्रत-धर्म का बड़ा ऊँचा आदर्श इन गीतों में मिलता है।

सती-प्रथा—प्राचीन काल में भारत में यह प्रथा प्रचलित थी। तब स्त्रियाँ अपने पतियों से सच्चे प्रेम के कारण और सच्ची पतिव्रता होने के कारण स्वेच्छा से सती हो जाती थी। सती होते समय वह सौभाग्यवती स्त्री के सदृश्य अपना श्रृंगार कर अग्नि में प्रवेश करती थीं। इस प्रथा से संबंधित गीत बहुत कम उपलब्ध हैं।

दिव्य की प्रथा—प्राचीन काल में स्त्रियों के चरित्र की पवित्रता की परीक्षा लेने के लिए उनकी अग्नि-परीक्षा ली जाती थी। हमारे समाज में सभी बंधन व पवित्रता की आवश्यकता स्त्री के लिए आवश्यक है, कारण कि नारी की रचना प्रभु ने ही कुछ इस रूप में की है। इस प्रथा से संबंधित लोकगीत भी बहुत कम उपलब्ध हैं। सीता की अग्निपरीक्षा का उल्लेख अवश्य कहीं-कहीं मिलता है।

लोकगीतों में हमारे समाज के विख्यात तथा कुविख्यात पारिवारिक संबंधों का बहुत ही सजीव चित्रण मिलता है जिनके द्वारा हिन्दू-समाज के पारिवारिक संगठन, संयुक्त परिवार, सामाजिक व्यवस्था तथा आचार-विचारों का पता चलता

है और सामाजिक व सामयिक समस्याओं पर भी यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। समाज में प्रचलित कुप्रथाओं का उल्लेख तो मिलता ही है जिनमें मुख्य हैं बाल-विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह की प्रथा, दहेज प्रथा, शराब पीने की प्रथा, नारी समाज में विधवा तथा बंध्या की उपेक्षा। इनके अतिरिक्त कुछ सामयिक समस्याएँ भी होती हैं जिनमें राशन, युद्ध जाने के समय विदाई लेना आदि है। युद्ध में जाते समय पत्नी व माँ के उद्गार लोकगीतों में करुणरस का संचार करते हैं—माँ कहती है—

दिल्ली मा भरती हो रह्यी
छांट लिये दो लाल
भर भर जिहाज चालते कर दिये
नौकरी जाया ना करते

पत्नी वहाँ की कल्पना से ही सिहर उठती है—

पलटण क मा भरती हो गये
नणदी तेरे बीर
उधर से धूप पड़े री, निचवे तपे जमीन
बीच में फिरते होंगे री नणदी तेरे बीर

लोकगीतों में जन-जन का सुख-दुख मुखरित हो उठता है। गीतों के द्वारा हमें लोकसमाज से संबंधित सभी बातों का परिचय मिल जाता है।

खान-पान, रहन-सहन:—खड़ीबोली प्रदेश के निवासियों का रहन-सहन यद्यपि सादा है पर उसकी अपनी विशेषताएँ हैं जिसके कारण वह अन्य प्रदेशों से पृथक् हो जाता है। खान-पान में यद्यपि वह अधिकतर शाकाहारी ही है पर दूध, घी, चावल, दाल आदि का उल्लेख मिलता है। खाने का व रहन-सहन का स्तर पश्चिमी ज़िलों में, पूर्वी ज़िलों की अपेक्षा अधिक अच्छा है इसका कारण है यहाँ की भौगोलिक स्थिति। इसी से यह अधिक समृद्ध प्रदेश है। गीतों के द्वारा अतिथि-सेवा के समय तथा विवाह आदि अवसरों पर पूड़ी, पकवान, मीठे चावल, खीर, गेहूँ की रोटी हलवा आदि का उल्लेख मिलता है। जाड़ों में इनका मुख्य अनाज मक्का व बाजरे की रोटी, सरसों चने व बथुए का साग, गुड़, मट्ठा तथा मक्खा आदि है।

लोकगीतों में आतिथ्य-सत्कार की भावना का प्राबल्य मिलता है। जिसका प्रमाण लोकगीतों में 'सोने की थाली', सोने का गड़वा' आदि का उल्लेख है—

सोने का गड़वा, गंगाजल पानी
न्हिला जा आप घुंघटों की ओट
सोने की थाली में भोजन परोस्सा

तथा—

"हो मैं बेल्लां भर के दूध का ल्याई उप्पर तिरै मलाई"

निम्नवर्ग के लोग जो रूखी रोटी खाकर व मोटा अनाज खाकर अपना पेट पालते हैं, वह भी अपने घर आने पर अतिथि के लिए गेहूँ की पतली रोटी तथा धोआ उड़द की दाल तथा पीले चावल बनाते हैं । यह है इस प्रदेश के आतिथ्य का आदर्श।

वस्त्रों में लहँगा, साड़ी, सिलवा, चदरी आदि का उल्लेख मिलता है । रेशमी कपड़ों को अधिक महत्व दिया जाता है । 'दखनीचीर' का भी उल्लेख है तथा गाँधी जी से प्रभावित होने के कारण 'खादी की साड़ी' का भी उल्लेख है ।

स्त्री-समाज में उनकी आभूषण-प्रियता का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है । उनकी दृष्टि में पति के प्रेम का मापदंड आभूषण ही है । लोकसमाज में स्त्रियों में आभूषण पहिनने का प्रचार भी बहुत है । निम्नवर्ग के लोग जो सोने के जेवर पहनने की सामर्थ्य नहीं रखते, चाँदी ही के आभूषण पहनते हैं। आभूषणों में जिनका मुख्य उल्लेख मिलता है वह है—झूमर, बिंदी, टिक्का, ऐरन, तोड़ा, निकलस, कड़े, छन, पछेली, अंगूठी, रमझौल, दस्तबंद, तगड़ी, लच्छे, बिछुए आदि । आभूषण पहनने से इनकी श्रृंगार-प्रियता की भावना का तथा उनके उच्च आर्थिक स्तर की सूचना मिलती है ।

अंग-प्रसाधन—अनेक गीतों में 'अवरन सार' तथा 'सोल्हों श्रृंगार' करने का उल्लेख मिलता है । चोटी, बिंदी, सिन्दूर, माँग भरना, चूड़ी पहनना काजल लगाना, मिस्सी लगाना, कपड़े, जेवर आदि पहनना तथा मेंहदी लगाना, यह विशेष श्रृंगारों में हैं । विवाहादि अवसरों पर अवश्य अंगराग, उबटन, तेल, हल्दी आदि लगाने की प्रथा भी प्रचलित है । इन प्रसाधनों में अस्वाभाविकता कम है पर उनकी कलात्मक और सौंदर्यप्रियता का पता चलता है ।

लोकगीतों के द्वारा हमें समाज में प्रचलित मनोरंजकता का भी आभास मिल जाता है जो कम है पर यह सावन, होली के गीतों में चौसर शिकार तथा जुआ आदि खेलने के वर्णन के रूप में आया है—

राज्जा जी उँच्चै महल चिणां
ये मोरी रखा दो खांडेराव की जी
राज्जा म्हारे मोरयों पै तख्त बिछा
ऐ राज्जा तो राणी चौपड़ खेलते जी

लोकसमाज का पूर्णरूपेण अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि खड़ीबोली प्रदेश के लोगों का स्वभाव बहुत सरल होता है। यद्यपि वह ऊपर से देखने पर तथा बोलचाल के ढंग के कारण कुछ शुष्क व कठोर प्रकृति के प्रतीत होते हैं लेकिन वास्तव में यह छलकपट हीन सच्चे, सभ्य, ईमानदार तथा विश्वासपात्र होते हैं।

लोकगीतों में राजनैतिक पक्ष—लोकसाहित्य का संबंध लोकमानस से होता है। जहाँ खड़ीबोली में हमें जीवन के हर पहलू के संबंध में सामग्री मिलती है, वहाँ यह राष्ट्रीय व आधुनिक भावनाओं से अछूती नहीं रही है। यद्यपि ग्रामीण घरेलू कार्यों में व्यस्त महिलाएँ भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग न ले सकीं परन्तु फिर भी वह अपनी सहजबुद्धि द्वारा समझती अवश्य हैं और अपनी बात को वह कितने सरल व स्वाभाविक शब्दों में प्रकट करती हैं यह वास्तव में सराहनीय है।

ग्रामीण महिलाएँ बापू से बहुत अधिक प्रभावित हैं। यद्यपि अधिकतर महिलाओं को उनके दर्शन करने का सौभाग्य शायद ही मिला हो और उनका संपर्क तो दूर की बात है पर वह बापू की प्रिय वेशभूषा को पहने हुए किसी व्यक्ति को देख कर उसकी ओर आकर्षित हो जाती हैं और उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखती हैं। वह अशिक्षित होने के कारण राजनीति संबंधी बातें समझने में असमर्थ रहती हैं पर फिर भी वह गांधी के जलसे में जाने की उत्सुकता दिखाती है और वह अपने प्रिय से साथ ले चलने के लिए आग्रह करती है—

"मैं भी तेरे साथ चलूंगी गाँधी के झलसे में"

अब तक वह रेडियो के नाम से भली भाँति परिचित हो चुकी हैं, अतः वह गाँव में रेडियो लगा देने को कहती है व गांधी जी की मृत्यु के पश्चात् राज्य के भविष्य के प्रति अपनी चिंता प्रकट करती हैं—

अरे दिल्ली से आये एकबार, सहर में रेडी लगा दो
तेरे मरगे महत्मा गाँधी, भइया रे उनका राज सिंभालो

पाकिस्तान की समस्या भी बहुत विकट थी, मुसलमानों को हिन्दुस्तान छोड़ते समय बहुत बुरा लगा था—

टेसन उप्पर छोरी रोवै मुसलमान की
धोब्बी की न तेल्ली की ना, असल पठान की
बाबू जी मन्ने टिकस काट दो पाकिस्तान की

गांधी जी की मृत्यु का दुख उनको भी कम नहीं हुआ। उनके दुख का अनुमान उनके गोडसे के प्रति कहे गये इन शब्दों में दृष्टिगत होता है। वह कितने स्वाभाविक ढंग से वह उसे धिक्कारती हैं—

ऐ नात्थू राम तूणें जुलम करा, कैसे मारा गाँधी
शान्तिदेवी राज करे थी, आगे लगादी बाँद्दी
चूल्हे आगे आट्टा छोड्या, हारे में छोड्या साग
गाँध्धी जी के मारनिया, तुझे कुछ ना आई लाज
जिब गाँधी की सजी आरथी, झिलमिल झिलमिल होय
मुग़लों ने बखेर करी थी, चढ़ कर हवाई जहाज

वह सुभाषचन्द्र बोस से भी परिचित हैं तथा वह कहाँ गये हैं, इस विषय में चिन्तित हैं—

भारत माता तेरे फिकर में, बाबू चन्दरबोस गया
बेरा ना पटे कित फिरै भरमता, होकर तेरा पूत गया
सबसे कहा बीर ने आपस में तम मेल करो
फूट गुल्लामी पड़ी देश में, कान पकड़ करकै भार करौ
एक पिता के बेटे हो कै सोच समझ बीचार करौ
अंगरेजों ने खबर पटी थी, एक फौज तैयार करी
जो फौज आजाद हिन्द की थी सब गिरिफ्तार करी
सिंघापुर में नेता जी ने मौत सी मारामार करी
चुगलखोर ने चुगली की थी, म्हारे देस भारत की
महात्मा गाधी जवाहर नूं कहै
म्हारा भरा भराया लाल गया, भारतमाता तेरे फिकर में...

गांधी जी ने ही खादी का प्रचार किया वह भलीभाँति जानती हैं—

"है गाढ़ा चलाया महात्मा गाँधी ने"

वह आपस में खद्दर की पोशाक ही पहनने को प्रोत्साहित करती हैं—

"खद्दर की पहनी तेहल, सुनहले गहणे"

तथा वह हर नये फैशन के साथ गांधी जी का नाम जोड़ देती हैं—

"नवा फैसन चला दिया री महात्मा गाँधी ने"

और भी कहती हैं—

यू खरा रुपइया चाँद्दी का
यूं राज महात्मा गाँधी का

साधारण दैनिक जीवन के प्रतिदिन की व्यवहार की वस्तुओं में भी वह गांधी के नाम को जोड़ देती है। इससे उनका प्रेम ही प्रदर्शित होता है, लोकगीतों को गांधी से लेकर नेहरू तक पहुँचने में अधिक देर नहीं लगती—

ऐ रेस्सम की साड़ी मंगवा दो साँवलिया
गाँधी का इसमें फोटो लगवा दो
नेहरू का झंडा लगवा दो, भारत की तस्वीर

नये गीतों में फिरंगी का भी उल्लेख मिलता है:—

पैसे का लोभी फिरंगिया
धूयें की गाड़ी उड़ाए लिए जाय

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनमें कितनी देश-प्रेम की भावना होती है और उनको प्रदर्शित करने का उनका अपना ही ढंग है जो सरल व सजीव होने के कारण अधिक प्रभावित करता है।

सामाजिक स्थिति तथा नृ-विज्ञान शास्त्र की जानकारी के लिए लोकगीतों में बहुत सामग्री भरी पड़ी है। समाज शास्त्री समाज संबंधी सिद्धान्त स्थिर करने के लिए विभिन्न सामाजिक समस्याओं, संस्थाओं, विचारों और भावनाओं को जानना चाहते हैं, इस संबंध में लोकगीत उनकी बहुत सहायता कर सकते हैं।

हास परिहास के संबंध—समाज पारस्परिक संबंधों का ताना-बाना है। कुछ ऐसे संबंध भी होते हैं जो मनुष्य को आधारभूत व्यवहार से निर्दोष रूप से मुक्त करके उस परम्परागत समाज की गंभीर घुटन से कुछ समय के लिए अलग कर सकें। इनके ही अन्तर्गत मजाकिया संबंध रहते हैं। जहाँ माँ-बाप का संबंध गंभीर तथा अनुशासनपूर्ण है, वहाँ इनका भी अपना विशिष्ट स्थान व आकर्षण होता है। यह संबंध सामाजिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इनके द्वारा किये गये हास-परिहासों के द्वारा प्रेम और भी दृढ़ होता है।

मजाकिये रिश्ते हम उन्हें कहते हैं जिनमें शब्दों और कुछ क्रियाओं की, एक सीमा तक अश्लीलता और अनौचित्य को भी क्षम्य समझा जाता है। यदि वही शब्द अन्य लोगों से कहें जायँ तो क्रोध उत्पन्न करके परिवार में क्लेष और अशान्ति के कारण बन जायँ। लोकगीतों में वर्णित संबंधों में देवर-भावज की चर्चा एक गुदगुदी और सिहरन पैदा करने वाली होती है। गौने आई हुई दुल्हन अपनी चिर परिचित माँ का घर छोड़ कर अनजान जगह पर आती है। उसकी सास की भावना उस पर रोब जमाने की होती है। ऐसी हालत में भावज के प्रति मृदु व्यवहार व्यक्त करने वाला एक ही व्यक्ति होता है और वह है देवर। पति के छोटा भाई देवर को किसी हद तक परिहास करने की छूट रहती है। देवर भी अपनी भाभी के प्यार का भोजन रहता है। कभी-कभी देवर-भाभी में यौन संबंध तक भी देखे गये हैं।

लोकगीतों में ऐसे गीत हैं जहाँ देवर अपनी भावज से अनुचित प्रस्ताव कर झिड़कियाँ भी खाता है। देवर-भावज के समाज में तीन रूप मिलते हैं—

१—देवर-भावज का परिहास वाला संबंध।

२—देवर-भावज में यौन संबंध और पति-पत्नी का व्यवहार।

३—माता-पुत्र का व्यवहार।

प्राय: सभी प्रान्तों में यह देखा जाता है कि अगर बड़े भाई की असमय मृत्यु हो जाये तो छोटा भाई देवर अपनी भाभी से विवाह कर सकता है। देवर को समाज में भी अर्द्धपति के रूप में माना गया है। समाज की ओर से देवर-भाभी के संबंध मान्यतापूर्ण हास्य संबंध है, अत: कोई भी इसमें आपत्ति नहीं करता। समाज में इस संबंध को मान्यता मिलने के भी विशेष कारण हैं।

स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षण होना बहुत स्वाभाविक है तथा मनोवैज्ञानिक भी है। माँ-बेटे, भाई-बहिन, पति-पत्नी की तरह देवर-भाभी या साली-बहनोई का संबंध भी पारस्परिक आकर्षण का कारण होता है। इसका कारण यह भी है कि दूसरे परिवार में संबंधित किसी युवती के साथ रक्त संबंध का प्रतिबंध तो होता नहीं, अपितु सीमाओं में ही उन्मुक्तता होती है और एक आकर्षण रहता है जो भावनाओं को निकट ले आता है तथा वह व्यक्ति आत्मीयता अनुभव करने लगता है। यही आत्मीयता कभी-कभी परिहास में फूट पड़ती है, विकृत होने पर यौन संबंधों में भी परिणत हो जाती है।

देवर-भाभी को इतने समीप लाने वाली उनकी परिस्थितियाँ भी होती हैं जिनकी विषमता के कारण ही उनमें प्रेम विकसित होता है।

सर्वप्रथम कन्या के दृष्टिकोण से देखिये, वह विवाह के बाद एक अपरिचित घर में आती है। अपना भरा पूरा घर छोटे भाई-बहनों का साथ छोड़ कर परदेस में अपरिचित घर में, अपरिचित लोगों के बीच उसे अटपटा सा लगता है वह अपने समवयस्क को खोजती है। जिसमें वह अपने निरंतर साथ रहने वाले भाई का प्रतिबिम्ब देख सके और साथ ही जो उसे हर तरह से समझ सके। पति तो उसके लिए एक पूज्य, देव-तुल्य ऊँची वस्तुमात्र है। जिसका उसको आदर करना है और जिसकी इच्छा के अनुरूप उसे अपने को ढालना है; तथा उनसे तो उसे दैनिक जीवन में भी मर्यादित व्यवहार करना है। निरन्तर पति तथा सास-ससुर, जेठानी, ननद आदि के कठोर नियंत्रण में रहने के कारण उस नव-यौवना के जीवन में कृत्रिमता आ जाती है, और वह असमय में ही प्रौढ़ा हो जाती है। श्वसुराल काल के उस कठोर व परतंत्र जीवन के मध्य केवल देवर का सम्पर्क ही क्षणिक उच्छृंखलता व सरसता

लाता है। यह स्थिति तो तब है जब कि देवर-भाभी की अवस्था में कम अंतर होता है और वह ऊपर तले के भाई-बहिन के समान होते हैं। जिस हास्य संबंध का हम उल्लेख कर रहे हैं, उसका संबंध इसी अवस्था से है नहीं तो अवस्था में अधिक भेद होने से तो इन संबंधों का रूप ही बदल जाता है। समवयस्क होने के कारण ही भाभियाँ, देवरों का पक्ष लेती हुई मिलती हैं। भाभी, देवर के बहुत काम आती है, वह उसके प्रेम संबंधों में सहायक होती है, उसके लिए दूती का कार्य भी करती हैं। अपने पति से उसकी शादी की सिफारिश भी करती है। देवर की चरित्रगत दुर्बलताओं के प्रमाण अनेकों लोकगीतों में मिलते हैं। एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

अबकी के देवर आये लेणीहार
अम्मा एकी माय के दो पूत
जो आया सोई ले गया मेरे राम'

लेकिन रास्ते में कुछ ही दूर पर जाने के बाद देवर के मन में पाप आ जाता है—

बावल ने फेरी है पीठ, डोला थोड़ा थामियो मेरे राम
देक्खूं भाभी री तेरा सीस, कैसी तो पटियाँ बह रही मोरे राम
देक्खूं भाभी तेरा आग्गा, कैसे तो निंबुआ पक रहे जी महाराज

इस घटना के बाद घर पहुँचने पर वह स्वयं ही सास से कहती है—

रंग रस लिया है निचोड़

लेकिन अवस्था में अधिक अंतर होने पर देवर-भाभी का संबंध, माँ-बेटे के समान हो जाता है। तब हास्य का इतना प्रश्न ही नहीं उठता। तब तो देवर अपनी भाभी का मातृतुल्य आदर करता है। इसीलिए भाभी को माँ के समान माना गया है। लक्ष्मण जी कहते हैं—

"भौजी जैसी कौसिल्यारानी माता वैसे हम जाने"

लोकगीतों में देवर-भाभी की दोनों ही अवस्थाओं का चित्रांकन हुआ है। देवर-भाभी के बाद महत्वपूर्ण संबंध है साली-बहनोई का। एक उपन्यास में साली के संबंध में लेखक ने लिखा है कि "साली का व्यक्तित्व भगनीत्व तथा प्रेयसीत्व लिये हुये होता है।" यह जीजा-साली का संबंध बहुत नाजुक मजाकिया व स्नेहपूर्ण होता है। साली के साथ जीजा के मजाक बहुत ही न्यायसंगत माने जाते हैं। साली को लोक-समाज में 'आधी स्त्री' माना जाता है। इसी से कहीं कहीं पर तो साली के साथ यौन संबंधों का भी निषेध नहीं। लोकगीतों में जीजा-साली के स्नेह की उपमा बहुत ही उपयुक्त मिलती है।

ऐ दूध मलाई का प्यार से
जीजा साली का प्यार से
कदी ना हो तकरार, हो मैं तेरी झुकमा डार
मुड्ढे पै जीजा बैठे, जड़ में बैट्ठी साली
कच्ची कली, अनार की बिण पाणी मुरझा रही

जीजा-साली में परस्पर समझौता हो जाता है और स्वयं भी वह अपने को न्यायोचित ठहरा लेते हैं--

"तू मेरा जिज्जा मैं तेरी साली, कुछ नहीं दोस रे"

छोटी-साली के साथ तो बड़ी बहिन की मृत्यु होने पर प्रायः जीजा की शादी भी हो जाती है ।

साली बहनोई के समान ही साले-बहनोई का भी बहुत हास्यपूर्ण सम्बन्ध है। यह आपस में हर तरह के अश्लील मजाक करते हुए पाये जाते हैं। इनके संबंध मित्र जैसे होते हैं, इसी कारण बोलचाल की भाषा में मित्र को भी साला कह कर सम्बोधन करते हैं जो स्नेह व समीपता का ही परिचायक होता है। साला बदनाम शब्द हो गया है जो साधारण बोल-चाल में गाली के रूप में भी प्रयुक्त होता है। यह तो हुए शुद्ध हास्य-संबंध, अब कुछ आंशिक हास्य-संबंधों को भी देखिये जिनमें ननद-भाभी का सम्बन्ध है ।

ननद-भाभी का सम्बन्ध साधारणतया तो समानता का ही होता है। भाभी के मन में देवर के समान ही ननद का भी स्थान होता है, वह उनकी अन्तरंग मित्र बन जाती है जिसके सम्मुख वह अपने सुख-दुख को सहज भाव में प्रकट कर सकती है। ननद-भावज का बहुत ही निकट का साहचर्य होता है और वह एक-दूसरे की सहायक सिद्ध होती हैं, इसके उदाहरण हमें लोकगीतों में मिलते हैं । दैनिक कार्य में पानी भरने जाते समय, चक्की पीसते समय, चर्खा कातते समय, झूला झूलते समय सदा ही वह एक-दूसरे के साथ रहती हैं और इन्हीं अवसरों पर उपयुक्त अवसर देख कर वह आपस में कौल करार तथा वायदे कर लेती हैं, होड़ बद लेती हैं--

वो नणद भावज, पिस्सण बैठी मनरंजना
जो भाभी थारे जनमेंगे नन्दलाल हम लेंगे गले का हार

ननद का दूसरा रूप चुगलीखाने वाला है। इसी से ननद को लोकसामज में चुग़लखोर का विशेषण दिया जाता है। इसकी पराकाष्ठा तब होती है जब वह भइया के कान भर के दूसरी भाभी तक ले आती है । वह व्यंग्यवाण करने के लिए प्रसिद्ध

है। भाभी भी समय-समय पर विषव्यंग्य मारती है जिसके प्रमाण मिलते हैं––

'ना मोरे भाई न बाबा, ना मोरे सगे भइया हो
स्वामी भौजी बोले विष बोल, कलेजे में साले'

भाभी को अपने परिवार के अनुरूप बनाने का काम ननद का ही होता है जिसके लिए वह हृदय से कृतज्ञ रहती है। वह अपने पति का प्रेम भी प्राय: ननद ही के द्वारा पाती है, जब कि भाभी ननद की मन:स्थिति पराये घर जाने के लिये तैयार करती है। अत: उस रूप में दोनों ही एक-दूसरे की परामर्शदायिनी व पथप्रदर्शक होती हैं।

यद्यपि समाज में ननद-भावज का सम्बन्ध कटु सम्बन्धों में दिखाया गया है, पर अपवादस्वरूप इनमें परस्पर स्नेह भी मिलता है। उदाहरण के लिए––

"ननद मुख चूमै हो।"

समाज में हास्य-सम्बन्धों में देवर, भाभी, साली, बहनोई, ननद, भौजाई, आदि के अतिरिक्त दामाद के साथ भी हास्य सम्बन्ध होते हैं। मामी-भाञ्जे, समधी-समधिन, सलहज-नन्दोई, भाभी की बहन, जीजा के भाई आदि से भी मजाकिये रिश्ते हैं जिनका गौण स्थान है।

लोकगीतों में भावाभिव्यंजना तथा कलात्मकता––

यदि लोकगीतों के संबंध में कहा जाये कि लोकगीतों में भावनाओं की सरिता बहती है तो अतिशयोक्ति न होगी। वास्तव में लोक कवि के पास सिवाय भाव-पक्ष के और था ही क्या, उसकी कल्पना अपने चारों ओर के उपकरणों में समाहित थी। कला के रूप में टूटे-फूटे तुकांत, अतुकांत शब्द थे। यदि अलंकार, रस आदि की आवृत्ति लोकगीतों में हो गयी तो वह उसकी कलात्मकता का गुण नहीं कहा जायगा अपितु वह भावनाओं का ही आवेग मात्र था। लोक कवि सुख से आह्लादित होकर भी अपने चारों ओर की वस्तुओं को ही देखता है। दुख के क्षणों में भी उसके चारों ओर के उपकरण ही उसकी मन:स्थिति पर प्रभाव डालते हैं। उन्हीं भावों को लोक कवि तुकांत-अतुकांत रूप से अपनी प्रवृत्ति व बुद्धि के अनुसार व्यक्त कर देता है। सत्य तो यह है कि लोकगीतों में भावना की पैठ तो बहुत गहरी है यदि सहृदय श्रोता इस सरिता में डुबकी लगाये तो वह नूतन से नूतन भावनाओं का साक्षात्कार करता चला जायेगा। हाँ, इतना अवश्य है कि सरिता को सुंदर बनाने के लिए उसमें रंग-बिरंगी मछलियाँ तैरती हुई नहीं मिलेंगी।

लोकगीतों में मानवीय जीवन के शाश्वत तथ्यों और संवेगों का पूर्ण रूप से समावेश दृष्टिगत होता है। सहजता और स्वाभाविकता इनका अपना गुण है। मानव का भावनाओं के साथ अन्योन्याश्रित संबंध है। चिरंतन काल से भावना

सहज रूप से मानस में विद्यमान रही है। इसी लिए लोकगीतों का जन्म भी मानव की भावनाओं के अनुरूप अनायास ही हुआ और इसी से दोनों का आपस में सुदृढ़ संबंध बना हुआ है। शाश्वत मानव भावनाओं से ओत-प्रोत लोकगीत जन्म से लेकर अंत तक पाये जाते हैं। सर्वप्रथम पुत्र जन्म में तथा विवाह एवं सुखसंयोग के समय फिर, दुख और विछोह के अवसर पर श्रमगीतों के रूप में लोकगीतों को हम हर रंग तथा हर छटा लिए उपस्थित पाते हैं। इनमें मानव जीवन के बहुत ही सूक्ष्म भावों का चित्रण मिलता है तथा भावनात्मक रूप से परिष्कृत होता है। मनोवैज्ञानिक दष्टि से इनमें अध्ययन की अपार सामग्री है। मनोदशाओं का संपूर्ण और सर्वांगीण सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण अपने स्वाभाविक रूप में अगर कहीं मिलता है तो वह लोकगीतों में ही मिलता है। इनमें बाल-भाव, प्रौढ़ तथा बूढ़ी भावनाएँ अपने यथार्थ और स्वाभाविक रूप में दृष्टिगत होती हैं। मानव की हर गतिविधि तथा प्रतिक्रिया के मूल में उसके अंतर्निहित भाव हैं। गीतों का निर्माण स्वतः भावावेश के क्षणों में होता है। यह भावनाएँ सार्वभौमिक तथा सर्वजनीन होती हैं प्राकृतिक तथा भौगोलिक विशेषताएँ उसमें अंतर नहीं कर सकतीं। इन्हीं भावनाओं के कारण हम कह सकते हैं कि लोकगीतों में स्थायी भावों का प्रतिपादन भाग भावना से ही होता है, इसीलिए समान भावधारा प्रवाहित होती है। लोकगीतों में भावनाओं का अवस्था-गत भेद भी स्पष्ट दृष्टिगत होता है जो रुचिकर भी है तथा अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण भी है। यह अवस्था तथा परिस्थितियाँ भावनाओं में भेद करती हैं। बालकों में कुतूहलवश सत्य, प्रेम, भोलापन स्वाभाविक रूप से ही वर्तमान रहता है। नारी-गत सब मनोभाव उसका हर पहलू, स्नेही अथवा ईर्ष्यालु तथा उसका शुक्ल-कृष्णपक्ष, सब ही इन लोकगीतों में चित्रित रहते हैं। पुरुष का वीर तथा अविश्वासी हृदय एवं उसके स्वभाव की अच्छाई-बुराई सभी, कुछ इन गीतों में वर्तमान रहता है। विविध भावों से संबंधित बालगीतों, नारी-गीतों तथा पुरुष-गीतों का यहाँ उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है, पिछले अध्याय में इनका उल्लेख विषयानुसार हो ही चुका है। यहाँ पर तो हम केवल उसके सैद्धान्तिक पक्ष पर ही ध्यान देंगे।

लोकगीतों में हमें संवेदनशील मानव के ही दर्शन होते हैं जो रचना करते समय अपनी परिधि को केवल मानव तक ही सीमित न करके मानवेतर सृष्टि के साथ भी रागात्मक संबंध स्थापित कर लेता है। संयोग तथा वियोग में प्रकृति से तथा जड़-चेतन से तादात्म्य का वर्णन मिलता है।

गहन अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि कुछ न कुछ सूत्र सब स्थानों के लोकगीतों में सर्वमान्य मिलते हैं। प्रेम का मनोभाव सर्वत्र ही समान है, उसमें अभि-

व्यक्ति के माध्यम, देश काल व परिस्थिति के अनुसार भिन्न हो सकते हैं। भाई-बहन का सात्विक निःस्वार्थ स्नेह, नारी का त्याग, संयोग, वियोग, प्रेम, घृणा, करुणरस, बेटी की विदाई, विवशता, वात्सल्य की भावना, रागात्मक अनुभूति तथा नारी के कोमल व कटु स्वभाव का चित्रण यथातथ्य समय-समय पर मिलता है।

आदिकाल से प्रारंभिक मूलभाव तथा मौलिक संवेग तीन माने जाते हैं—वह है भय, प्रेम और क्रोध। यद्यपि इन तीनों भावों में भी बहुत से अंतरभेद और मात्रा-भेद हैं लेकिन इसके अतिरिक्त यह भाव किसी न किसी रूप में इन्हीं तीनों के मुख्य विभाजन में मिल सकते हैं। हर भाव एक नाटक के समान एक अपनी विशिष्ट शैली अपनाता है जिसका कोई आरम्भ या अन्त नहीं।

संवेग की परिभाषा देना बहुत कठिन है। वस्तुतः व्याख्या देने से इसे समझना बड़ा सरल है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि दुख, प्रसन्नता, क्रोध, भय तथा उत्तेजना में भावों का कैसे अनुभव किया जाता है। ऐसी अवस्थाओं को मनोवैज्ञानिकों ने संवेग की संज्ञा दी है। अध्यापकों, नेताओं तथा राजनीतिज्ञों के हाथ में संवेग बड़े ही प्रबल अस्त्र हैं। संवेगों को उत्तेजित करके ही वे बालकों तथा नागरिकों पर अपनी इच्छानुसार प्रभाव डालने का प्रयास करते हैं। कभी-कभी उसमें दूसरे प्रकार की भी प्रवृत्ति मिलती है। शांति, सुख तथा प्यार आदि का अनुभव भी संवेगात्मक अनुभव के अंदर ही गिना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न प्रकार की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का अनुभव करता है।

लोकगीत जन-जीवन के बहुमुखी अनुभवों की उपज होती है। इसलिए मानव-हृदय की विविध भावभूमियाँ स्पर्श करते हुए भी वे जीवन की अभिव्यक्ति करते हैं, उसमें कोई विषय वर्जित नहीं रहता। लोक और युग की प्रवृत्तियाँ उसमें मुखर होकर बोलती हैं।

स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा स्नेह की मात्रा अधिक होती है। स्त्री का प्रेम ध्रुवतारा की भाँति अटल दिखलायी पड़ता है। चाँदी और सोने के टुकड़ों से इस स्वाभाविक एवं अकृत्रिम स्नेह को खरीदा नहीं जा सकता पर पुरुष का, रूप-सौंदर्य उसे मुग्ध कर सकता है।

लोकगीतों में जीवन के कठिन अवसरों में नारी-प्रेम की अलौकिकता की परीक्षा हुई, परन्तु फलस्वरूप लोकोत्तर त्याग और सहनशीलता ही सम्मुख आई।

इन मूल संवेगों में मनुष्य पशु के निकट आ जाता है यद्यपि पशु में इनका रूप बहुत स्पष्ट है। यह तीनों सार्वभौमिक हैं। इनमें वात्सल्यभाव बहुत प्रमुख है। सब संवेग जन्म के साथ ही उत्पन्न होते हैं। संगीत सब कलाओं में सबसे अधिक

संवेगात्मक है, अन्य किसी भी कला की अभिव्यक्ति का संगीत के समान गहन प्रभाव नहीं पड़ता है।

मनुष्य की मनोवृत्तियाँ जटिल तथा दुरूह हैं, उनमें शृंखला तथा नियम निकालना सरल नहीं। हमारी प्रवृत्ति सदा एक सी नहीं रहती। अंतर्भक्ति आत्मचिंतन, वाह्य जगत् प्रवृत्तियों की अनेक रूपता के साथ साहित्य में भी अनेक रूप हैं। मानव-स्वभाव के मूल में भावात्मक साम्य होता है। अतएव साहित्य में भी अनेकरूपता के होते हुए भी भावनामूलक समता दिखायी देती है।

भय, प्रेम और क्रोध न केवल संवेग हैं वरन् प्रवृत्तियाँ भी हैं। साधारण स्वस्थ मनुष्य में इसका समावेश होना आवश्यक है। वस्तुतः जिस मनुष्य में यह भावनाएँ स्वाभाविक नहीं हैं, वह अस्वस्थ है। स्वाभाविक असंतुलन का कारण इन्हीं भावनाओं को अस्वीकार करता है।

यह भावनाएँ स्वयं में अच्छी या बुरी नहीं हैं। प्रत्येक का भिन्न भावात्मक प्रत्युत्तर है। इनकी अच्छाई या बुराई इस पर निर्भर है कि भावनाएँ समाज में किस प्रकार अपनायी जाती हैं।

हमारे लोकगीत, लोक-जीवन के सारे तत्वों को उभारने वाले, उन पर प्रकाश डालने वाले तथा सीधे-सादे सच्ची भावनाओं को प्रकट करने वाले गीत हैं। इनमें जीवन की अनन्तता मिलती है।

स्त्रियों के गीतों में करुणा की धारा सतत प्रवाहित होती रहती है। करुण-रस का स्थायीभाव शोक होता है। इनमें वात्सल्य का भाव भी प्रकट होता है। संवेगों से हमें ज्ञात होता है कि मनुष्य का प्रारंभिक उद्देश्य सुख की इच्छा तथा कष्ट से बचाना है।

सभी संवेग सर्वप्रथम अंतर से उत्पन्न होते हैं। साधारणतः प्रकृति से निकट का संपर्क होता है, प्रकृति से उसका तादाम्य होता है और भावनात्मक संबंध भी होता है। वह ऋतुओं के अनुसार उसके साथ आनन्दानुभूति का अनुभव करता है। यह न केवल भय उत्पन्न करता है वरन् उत्साहवर्धक भी है। यह मनुष्य के सुख-दुख को प्रभावित करता है, इसी कारण वह मूर्तिमान किये जाते हैं। इन भावनाओं का पूर्ण उद्रेक ऋतुओं के साथ मिलता है।

प्रेम यद्यपि स्वाभाविक रूप में ही आरंभ हो जाता है पर विरह में इसके कष्ट का अनुभव होता है। इन गीतों में प्रेम की धारणा आदर्श है। प्रिय का हृदय, मंदिर के दीपक के समान शान्ति से जलता है। प्रेम में प्रेमी अपना अहं भूल जाता है और वह अपने अस्तित्व को अपने प्रेमी में ही खो देता है।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी जीवन-दर्शन होता है। संसार में दो प्रकार

के प्राणी है––एक वह जिनका जीवन यंत्रवत् है जो कभी जीवन और संसार के प्रति गंभीरतापूर्वक नहीं सोचते, दूसरे वे लोग हैं जो जीवन में भी अर्थ खोजते हैं। इन दो के बीच की स्थिति है जन साधारण की, जो न तो शब्द के वास्तविक अर्थ में दार्शनिक ही है पर वह दुख उठाता है और जहाँ उसका पीड़ा से साक्षात्कार होता है, वहीं दार्शनिक हो जाता है। वह सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में चिंतन नहीं करता, आदि-अंत का चिंतन उसका विषय नहीं होता है। वह जीवन को ठीक उसी रूप में लेता है जिस रूप में उसे प्रकृति से मिलता है। यही धारणा उसके पूरे जीवन में प्रवाहित रहती है जिसके कारण वह न केवल संघर्ष करता है वरन् धैर्यपूर्वक सहता भी है और तटस्थ होकर प्रकृति के उपक्रम को देखता है। अभावों और कष्टों में भी वह कभी निराश नहीं होता। वह कर्मण्य रहते हैं इसी से उनमें नैराश्य की भावना नहीं मिलती।

लोकगीतों में हम इन शाश्वत तथ्यों और संवेगों का समावेश पूर्ण रूप से पाते हैं। लोकगीत भावना प्रधान काव्य है जिसमें सहजता और स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण के लिए प्रेम के अभाव में रोष व भय का उल्लेख गीतों में बहुत मिलता है। प्रेम का हर प्रकार का स्वरूप मिलता है। यह भाव अपने व्यापक रूप में मिलते हैं। प्रेम के विभिन्न पात्र माँ-बहन, प्रेमिका, पत्नी तथा बेटी, सभी रूपों में अपने पूर्णरूप और आदर्श रूप में मिलते हैं तथा इसके अपवाद भी मिलते हैं। लोकगीतों में वर्णित प्रणय तथा अश्लील गीत अपेक्षाकृत कम हैं। जीवन की सत्यता और गंभीरता उसमें मिलती है। प्रिय की अनिष्ट की कल्पना का भय सौत के प्रति ईर्ष्या मिश्रित रोष बहुत ही स्वाभाविक रूप में चित्रित किया गया है। मनुष्य की यह सहज प्रकृति है कि हमें जिनके प्रति आकर्षण होता है और उनके प्रति हमारी स्वीकारात्मक प्रतिक्रिया (Positive Reaction) होती है और जिनके प्रति विकर्षण होता है, उनकी ओर (Negative) नकारात्मक प्रतिक्रिया होती है। भावनात्मक सुरक्षा के अभाव में हमें बाह्य जगत् से भय प्रतीत होने लगता है। यह हमारा अपना ही प्रक्षेप (Projection) होता है।

मानव सामाजिक प्राणी है। यह भाव मूलरूप में आरंभ ही से विद्यमान रहता है। आदि मूल भावनाएँ दो हैं––विस्तार तथा संकोच की। विस्तार के अन्तर्गत रति, प्रेम और घृणा आ जाते हैं तथा संकोच के अन्तर्गत भय, रोष तथा ईर्ष्या। अन्य सब भाव इन्हीं के विकास और प्रसार से उत्पन्न हुए हैं जिनके उदाहरण हमें पुत्रजन्म संबंधी गीतों में, विवाह के गीतों में तथा फुटकर गीतों में भी उपलब्ध हैं। इनके उदाहरण परिशिष्ट में प्रसंगानुक्रम से दिए गए हैं।

यह शाश्वत भाव लोकगीतों में इतने सहज और स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत

हैं कि उनका श्रोता व पाठक के जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ता है और वह उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इसी कारण यह भाव और भी दीर्घजीवी हो गये हैं तथा अधिक शाश्वत प्रतीत होते हैं। यह स्थायी भाव के रूप में हर प्राणी में विद्यमान रहते हैं। केवल उनको आवेगात्मक स्थिति में आने की परिस्थिति आनी चाहिये।

गीतों में भावों का चित्रण किस प्रकार हुआ है, इस पर भी कुछ प्रकाश डालेंगे। मानवीय भावनाओं का लोकगीतों में बहुत ही स्पष्ट सहज तथा स्वाभाविक वर्णन होता है। मानवीय भावना अपने पूर्ण रूप तथा स्वस्थ्य रूप में मिलती है, वह जीवन का एक अंग होती है। लोकगीत में जीवन से, यथार्थ से पृथक् भावना केवल भावना के लिए नहीं मिलती। इसी कारण लोकगीतों में भावना का शुद्ध रूप दृष्टिगत होता है। अपने में यह अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता है तथा हृदयग्राही होता है। उदाहरण के लिए, मानवीय मूल भावनाओं (प्रेम, रोष, भय) के संबंध में गीत मिलते हैं। प्रेम बहुत व्यापक और शाश्वत भाव है—संसार की नींव उसी पर आधारित है। लोकगीत की आधारशिला भी उसी पर टिकी है। प्रेम का प्रथम दिग्दर्शन हमें पुत्र-जन्म संबंधी गीतों में मिलता है—माँ का बालक के प्रति स्नेह तथा उसी समय की ममता बहुत शुद्ध स्वाभाविक तथा गहन होती है और अतुलनीय होती है। जन्म से पहिले ही यह भावना प्रस्फुटित हो जाती है और धीरे-धीरे बीज के अंकुर होने और फिर पौधे और फल-फूल के रूप में आने तक यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। फिर ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता जाता है, संपर्कों के साथ-साथ स्नेह भी दृढ़तर होता जाता है और उसकी चरम सीमा मिलती है। कन्या के विवाह के अवसर पर माँ-बाप कितने स्नेह विह्वल हो जाते हैं और वही प्रेम फिर दुख का स्थान ले लेता है। अपनी लाड़ली बेटी के लिए वर खोजते समय तथा कन्या के विवाह संबंधी गीतों व विदाई के गीतों में इसका स्पष्ट वर्णन मिलता है। विवाह के बाद दाम्पत्य-जीवन में प्रेम का उत्कर्ष रूप मिलता है। अत्यधिक प्रेम ही असफल होने पर तथा उचित प्रत्युत्तर न मिलने पर कभी-कभी ईर्ष्या का रूप ले लेता है। इसके भी लोकगीतों में पर्याप्त उदाहरण मिल जाते हैं।

लोकगीतों में रोष, क्रोध, प्रेम की असफलता पर तथा प्रेम के बँट जाने या छिन जाने का भी उल्लेख मिलता है। सौतिया-डाह से संबंधित गीतों में, सौतेले बालकों पर, दुराचारी पति पर, स्वाभाविक अधिकार भावना की तुष्टि न होने पर भी रोष आता है।

लोकगीतों में भय—उपेक्षिता नारी जब अरक्षा का अनुभव करती है तो प्रेम में भावनात्मक सुरक्षा का अनुभव न करना ही जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी भय तथा

असंतोष उत्पन्न कर देता है जिसका परिणाम यह होता है कि नारी को भी भीरु और अविश्वासी तथा संदेही प्रवृत्ति का बना देती है। न भय की भावना का मूल कारण अरक्षता की भावना रहती है। अरक्षता दो प्रकार की होती है—सामाजिक तथा भावनात्मक। लोकगीतों में इन दोनों की ही अपने में उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्ति हुई है।

कला-पक्ष—लोकगीतों में रसों को पृथक् रूप से महत्व नहीं दिया गया है, परन्तु वह उनमें स्वाभाविक रूप से ही आ गये हैं। इनमें स्वाभाविक रसों के कारण ही अत्यधिक सरसता का अनुभव होता है। इन लोकगीतों में रसों का अस्वाभाविक समावेश नहीं होता, इसी से यह अधिक मनोरंजक और सरसतापूर्ण होते हैं। लोककवि या लोकगीतकार उनसे तटस्थ रहकर, उस प्राकृतिक वातावरण से दूर रहकर रचना नहीं कर सकता, वह तो स्वयं उसका द्रष्टा न होकर भोक्ता होता है। इसी से लोकगीतों में प्रेम, करुणा तथा वात्सल्य आदि सभी रसों का समावेश अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान पर आधारित होता है जो अधिक यथार्थवादी होता है। वास्तव में यथार्थ ही मर्म को छूता है और जीवन जगत् पर अमिट प्रभाव डाल जाता है। लोकगीतों में सरसता होने का कारण उनकी उस जीवन से निकटता भी है। लोककवि भाव जगत् का प्राणी है। इनमें अधिकांश रूप से हृदय तत्व ही प्रधान है इसी से लोकगीतों को रस प्रधान कहा जाता है। रसभावानुभूति से संबंधित है। भावों का कोई भी विस्तार रस की स्थिति मात्र है और इस दृष्टि से ही उसका सांगोपांग वर्णन उपस्थित होता है। लोकसाहित्य में पारिवारिक स्नेह भी एक रस की ही स्थिति होती है। मधुर शब्द, परिचित भाव, गृहस्थी का मनोरम वातावरण, अवसर की उपयुक्तता, सब मिलकर इन गीतों में एक विचित्र तन्मयता उत्पन्न करने की क्षमता प्रदान करते हैं। रामनरेश त्रिपाठी जी के शब्दों में "इन ग्राम गीतों में रस है, अलंकार नहीं," यह अक्षरशः सत्य है।

लोकगीतों में किसी भी रस का स्वतंत्र विकास नहीं हुआ है। किसी भी गीत के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक गीत पूर्णतया श्रृंगार, हास्य, अद्भुत या शांत रस से पूर्ण है।

लोकगीतों में श्रृंगार का बहुत व्यापक प्रसार मिलता है तथा इसी की प्रधानता है। इसमें श्रृंगार का रूप नितान्त संयत, शुद्ध, दिव्य और पवित्र है।

जीवन के प्रथम चरण में पुत्र-जन्म का संबंध भी श्रृंगार तथा वात्सल्य से है। पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में पुत्र जन्म की कामना, परिवार की प्रसन्नता तथा जच्चा का वर्णन होता है, जो इन दोनों रसों के ही अन्तर्गत

आता है। स्नेह, जीवन को समयानुकूल भिन्न रूपों में प्रभावित करता है। बालक का जन्म भी वस्तुतः पति-पत्नी के स्नेह का ही सुंदर परिणाम है।

पुत्र-जन्म के बाद से मुंडन, जनेऊ तथा विवाह तक उत्साह तथा प्रसन्नता के ही अवसर आते हैं जिनको, लोकहृदय, लोकगीतों के रूप में व्यक्त करता है। नाचने के गीतों के रूप में संयोगावस्था, वस्त्राभूषणों का वर्णन रहता है। सावन तथा होली के गीतों में प्रेम संबंधों का उल्लेख रहता है। यद्यपि विरह तो सदैव ही दुखदायी होता है और विशेषतया इन सुखद ऋतुओं में और भी, जिनमें प्रिय के मिलन की अधिक कामना व आशा रहती है लेकिन फिर भी इनमें श्रृंगार रस के गीतों का अभाव नहीं है। अगर प्रिय निकट है तो आर्थिक-विषम परिस्थितियाँ कोई भी भावनात्मक अभाव नहीं होने देतीं और न ही उसके मुख पर विषाद की रेखा ही मिलती हैं। प्रिय की उपस्थिति ही उसकी संपूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति है। वह सरल-हृदया इसी में आनंद विभोर रहती है और कुछ नहीं चाहती। पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में श्रृंगार तथा वात्सल्य रस का वर्ण न जगह-जगह पर मिलता है। उदाहरण के लिए यहाँ पर व्याही और मुंडन के दो प्रसंग दिये जा रहे हैं—

व्याही—

ओंठ सूखे मुख पीला जी महल में
मैं तुझे पूछूं हे मेरी गोरी
किस गुन हुआ मुख पीला जी महल में

मुंडन गीत—

घूंघर वाले बाल लला के
दादी भी रहसैं, दादा भी रहसैं
हँसे के करे हैं खरच

इसी प्रकार अन्य बहुत से गीत हैं जो गर्भवती की मनोदशा, उसकी शारीरिक चेष्टाओं तथा परिवर्तनों को स्पष्ट करते हैं। जच्चा का मनोल्लास, उसकी भाव-भंगिमा, उनके वर्ण्य-विषय से संबंधित हैं।

विवाह संबंधी गीतों में श्रृंगार का आनन्द अधिक मात्रा में मिलता है। विवाह के हर अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में श्रृंगारी भावनाओं का प्राधान्य रहता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

बन्ना—

बन्ना खड़ा कमरे में हँसे, मन मन में सजै, सजन घर जाना है

सीस बने के चीरा री सोहे पँची संभाले सिस्से में सजन घर जाना है

सुहाग—

रस की भरी लाड्डो तेरी अंखियाँ
माथे बिब्बी के टिक्का रतन जड़ा सोहे

लोकगीतों की शृंगारिक भावनाएँ अत्यन्त संयत और गंभीर हैं। उसमें कलात्मक साहित्य की भाँति ऊहात्मक पद्धति को नहीं अपनाया गया है। नायक और नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते समय भी कलात्मकता है। साहित्य की शैली को न अपना कर एक दूसरी ही पद्धति को अपनाया गया है।

हास्य संबंधी गीतों में तथा गालियों आदि में शृंगार रस का आस्वादन होता है। जीजा-साली से संबंधित एक गीत इस प्रकार है—

ऐंजी दूध मलाई का प्यार से
जीजा साली का प्यार से

ऋतु संबंधी गीतों में, विशेषतया होली व सावन के गीतों में शृंगार रस प्रधान रूप से दृष्टिगत होता है। होली में ऋतु के प्रभाव से वातावरण ही शृंगार रसमय हो जाता है। कहीं अश्लीलता भी झलक पड़ती है। उसका सर्वव्यापक प्रभाव होता है—

कच्ची अम्बली गदराई रे फागण में
राँड लुगाई मस्ताई रे फागण में

इसी प्रकार सावन में भी शृंगार रस का उद्दीपन होता है—एक नायिका अपने पति से कहती है—

"जागो मेरे नणदी के बीर भतेरे दिन सो लिये"

इस भाँति यह ऋतुएँ स्वयं ही यौन प्रवृत्तियों की प्रेरक होती हैं तथा उत्तेजक सिद्ध होती हैं।

लोकगीतों का शृंगार अत्यन्त परिष्कृत और शिष्ट होता है। यहाँ बुद्धि और मस्तिष्क की दौड़ के स्थान पर हृदय का स्वाभाविक उद्गार देखने को मिलता है।

करुण रस—लोकगीतों में शृंगार के बाद करुण रस की ही प्रधानता मिलती है। इनमें करुणा इतनी प्रभावोत्पादक है कि जड़ और चेतन, दोनों को समान रूप से प्रभावित कर लेती है।

सोहर बिदाई के गीतों में, नारी जीवन की करुण कहानी का दुख मूर्तिमान हो उठता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीतों में करुण रस की अबाध धारा प्रवाहित होती रहती है। उस रस की अभिव्यक्ति इन गीतों में तीन अवसरों पर विशेष रूप से होती है--बेटी की विदाई, प्रिय वियोग तथा वैधव्य। इन तीनों ही अवसरों पर सुखमय जीवन का अवसान हो जाता है और उसका नया अध्याय आरंभ होता है।

नारी का जीवन ही दुख तथा रुदन का पर्याय है, यह करुणा की लम्बी कहानी है। जैसा रस-परिपाक करुण रस के गीतों में हुआ है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। गौना, चक्की तथा सावन के गीतों में भी करुण-रस की प्र धानता होती है। विदाई के गीत तो मानों करुण-रस के काव्य हैं जिनमें लोक कवि की आत्मा पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुई है। संतानहीना होने के कारण स्त्री को अपने पति की झिड़की, सास और ननद का व्यंग्य, समाज की उपेक्षा और तिरस्कार, अपमान एवं निरादर आदि न जाने कितनी बातों को सहन करना पड़ता है। परिणाम स्वरूप उसका पारिवारिक और सामाजिक जीवन अभिशाप हो जाता है। सामूहिक पारिवारिक भावनाओं के कारण उसका दुख और भी बढ़ जाता है।

शृंगार-रस के बाद करुणरस का ही स्थान होता है। जीवन में सुख-दुख का ताँता लगा ही रहता है और प्राय: देखा जाता है कि जीवन के सुख से अधिक भारी पलड़ा दुख का ही रहता है। दुख मनुष्य को संवेदनशील बना देता है, इसी से करुण रस के अन्तर्गत जीवन की सभी कोमल भावनाओं का समावेश मिलता है। पारिवारिक जीवन में तो कन्या के विवाह में व उसकी विदाई के अवसर पर ही उससे प्रथम संपर्क होता है। कन्या की विदाई का दृश्य वास्तव में बहुत ही कारुणिक होता है। जो माता-पिता कन्या को पाल कर इस योग्य बनाते हैं उन्हीं को उसे दान के रूप में देना पड़ता है तथा इस तरह उस पर से अपना अधिकार खोना पड़ता है। कन्यादान, वस्तुदान के समान ही मनुष्य दान है। यह हमारे समाज की विचित्र प्रथा है। माता-पिता तथा कन्या, तीनों के ही जीवन में यह एक अविस्मरणीय घटना होती है। लौकिक पक्ष में जो कन्या की विदाई है, वही आध्यात्मिक पक्ष में संसार से विदाई के समान है। कन्या विदाई के अवसर पर गाये जाने वाले गीत करुण रस से ओतप्रोत होते हैं तथा बहुत ही हृदय-विदारक होते हैं। विवाह के पश्चात् गौने की प्रथा भी प्रचलित है। पहले जब बाल-विवाह प्रचलित थे तब विवाह से अधिक महत्वपूर्ण गौना होता था और गौने की विदाई ही वास्तविक विदाई होती थी। इसी से गौने की विदाई से संबंधित गीतों में जितना करुण रस है, उतना अन्यत्र संभव नहीं। उनके वर्ण्य-विषय इस प्रकार के होते थे--

काहे को व्याही बिदेस, रे लक्खी बाबुल मेरे
भइयो को दीन्हें महल दुमहल्ले, तो हमको दियो परदेस रे

लटुआ खेलत बीरन छोड़े अब भैय्या भई पराइ रे
आज बनेगी दुल्हन म्हारी बीबी तू कहाँ चली रे

तथा

भात्ती भी आये लाड्डो, बराती भी आये
आये लाड्डो को लेनहार, अम्मा मैं तो पाहुणी
आज के दिन मुझे रख लो

साधारण विवाहों के अतिरिक्त ग्रामीणों में अभी भी बहु-विवाह, बाल-विवाह तथा अनमेल-विवाह प्रचलित हैं जिसके कारण नव-विवाहिता बहुओं की स्थिति और भी शोचनीय हो जाती है——

माया के लोभी बापणे, बुड्ढे को व्याह दई रे
बुढ़ा तो चलता नौकरी मैं केल्ली रह गयी रे'

माता पिता मेरे चूक गये आँख मीच कै साद्दी की
चूर चूर कर दिया नूर मेरा, बुढ़े के संग व्याही

केवल बहुविवाह, अनमेल-विवाह के कारण ही दुख नहीं उठाना पड़ता वरन् सम्मिलित परिवार में रात-दिन सास व ननद के कठोर अनुशासन में रहना पड़ता है और सहनशीलता से युक्त नारी के लिए भी यह असहनीय हो उठता है। लोकगीतों में चक्की, चरखा आदि के क्रिया गीतों में यह वधुएँ अपने हृदयों को खोल कर कथागीतों के रूप में प्रकट करती हैं ——

घर ससुरा लड़ै घर सास्सड़ लड़ै
घर बालम लड़ै, मेरी कदर घटी
पास पैसा हो तो जहर खा मरूं

तथा

मत लड़ै मोरी सास्सू जुदा हो जा री
अपणा झुम्मर भी ले ले,
आपण टिक्का भी ले ले,
मेरी अम्मा वाली बेंदी मुझे दे दे

इस प्रकार सास के अत्याचारों से ऊब कर तथा सम्मिलित परिवार के भार से दुखी होकर वधू अलग रहने की इच्छा प्रकट करती है पर उन अभागिनियों के पति

भी व्यभिचारी होते हैं और उनकी अनुपेक्षा करते हैं। सावन के गीतों तथा बारह-मासों में बहुत ही करुण वर्णन मिलता है और विरह की कारुणिक दशा का तथा अपनी विवशता का बहुत ही स्वाभाविक चित्रण मिलता है।

"सूख गयी भई पेली विपत मैंने बहुतेरी झेली"

सामाजिक तथा पारिवारिक समस्याओं के अतिरिक्त कुछ सामयिक समस्याएँ भी होती हैं जिनका वर्णन भी कारुणिक होता है और जो परिस्थितियों को विषम तथा जीवन को भी दुखमय बना देती हैं। इनके वर्ण्य-विषय होते हैं युद्ध पर तथा नौकरी पर जाते हुए माता-पिता और स्त्री का दुख तथा राशन, कंट्रोल आदि नियंत्रण जिनसे दैनिक जीवन का सुख छीन लिया जाता है।

दिल्ली के माँ भरती हो रह्यी
छांट लिये दो लाल, नौकरी जाया ना करतें

तथा

कितनक दिन में आओगे
हो काली-सी छतरी वाले
पाँच साल में आवेंगे
हो गोरी घूम घागरेवाली
हमकू क्या कुछ लाओगे
तुमको सौक दूसरी लावेंगे

राशन के संबंध में—

कैसा काल पड है दुनिया में
मैंने देखा ना सुना
घर के बच्चे खाना माँगे गेहुँआ पै कंटोल

कुछ गीतों में ऐतिहासिक तथ्य भी मिलते हैं जिनमें गोपीचंद, भरथरी, रोहिताश्व, राम-सीता आदि के उल्लेख मिलते हैं। इनमें विरह के दुखों का वर्णन रहता है।

गोपीचन्द—

गोपीचन्द की सिकल पिछान
बैहण रोई गल-बहियाँ डाल कै
वीर जोग लिया किस भूल से
तेरी रे सुरण काया धूल में

रोहिताश्व की मृत्यु पर शैव्या का विलाप——

यहाँ न्हाणे हैं बेकार, लाल जहाँ अपना ना कोई
अरे गोद्दी उठा लाई ल्हास
जब तुझे खाया मेरे लाल, नाग ने मुझे क्यूं ना खाई

गाँधी जी की मृत्यु के विषय में तथा पाकिस्तान बनने के बाद मुसलमानों की दुर्दशा का वर्णन तथा गोवध का वर्णन भी बहुत ही हृदयग्राही है। ग्रामवासिनी कहती हैं——

"नाथू राम तैणे जुलमा करा, कैसे मारा गाँधी
तुझे कुछ ना आई लाज"

तथा

"माता तो रोवै गाँधी की रे कौन पीवै मेरा दूध"

पाकिस्तान बनने पर जब मुसलमानों को भारत छोड़ कर जाना पड़ा तो उनको कम दुःख नहीं हुआ। वर्षों के रहते हुए देश को छोड़ते समय उनके उद्गार इस प्रकार होते हैं——

टेसन ऊपर छोरी रोवै मुसलमान की
बाबू जी मेरा टिकस काट दो पाकिस्तान की

इसी प्रकार गऊ हत्या के समय गीतों में गऊ का ही मानवीकरण किया मानों उसी के द्वारा यह विलाप किया जा रहा है——

ऐ गऊ माता रोवै खड़ी खड़ी तबेले में
ओ मत बेच्चे रे पापी मुझे बुढ़ाप्पे में

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों में करुण रस अपने व्यापक रूप में है और मनुष्यों की हर समस्या पर इन्होंने सहृदय सहानुभूतिपूर्वक दृष्टिपात किया है, साथ ही पशु पक्षियों तक के दुखों की इन सरल लोक हृदयों ने उपेक्षा नहीं की। ये अत्यधिक संवेदनशील हैं।

वात्सल्य-रस——इसमें करुणा और शृंगार दोनों का ही भाव रहता है। स्त्रियों के हृदय में वात्सल्य का भाव स्वाभाविक रूप से बना रहता है। बच्चों के लिए उनके मन में बड़ी प्रबल ममता रहती है। बालक के तनिक भी आँखों से ओझल होने पर उसके हृदय में अनेकों आशंकाएँ उठने लगती हैं। वात्सल्य-रस के अन्तर्गत जो अनुभव दिखाये जाते हैं, वे साहित्य में वियोग और शृंगार रस के अन्तर्गत आते हैं। गीतों में यह विशेषता है कि उनमें शिष्टकाव्य के बँधे वर्णन नहीं मिलते।

बारहमासा-काव्य में शृंगार रस की ही रचना है, पर बारहमासों में अपवाद-स्वरूप वात्सल्य रस भी मिलता है। इनके अधिक उदाहरण तो पुत्रजन्म संबंधी गीतों में मिलते हैं।

हास्य-रस—लोकगीतों में स्थान-स्थान पर हास्य-रस का भी पुट पाया जाता है। विवाह के अवसर पर ससुराल में जो परिहास का उल्लेख किया जाता है, वह बहुत मधुर होता है। कहीं-कहीं पर इन गीतों का व्यंग्य इतना चुटीला चुभता और अनूठा होता है कि लोककवियों की सूझ पर आश्चर्य होता है।

यद्यपि लोकगीतों में करुण रस की ही प्रधानता रहती है फिर भी इनमें हास्य-रस के कम प्रसंग नहीं मिलते। विवाह तथा गौने के अवसर पर वर के साथ हास-परिहास किया जाता है। खोड़िया[1] में तथा होली के दिनों में जो गीत गाये जाते हैं उनमें हास्य और शृंगार का मिश्रण रहता है। इनमें कहीं प्रियतम पर फब्तियाँ कसी जाती हैं तो कहीं देवर से हँसी मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है। हास्य-रस केवल जीवन की नीरसता में परिवर्तन करने के लिए मुँह का जायका बदलने के लिए है। सुख और हास्य के कुछ क्षण जीवन को सरस बनाये रखने में सहायक होते हैं। भारत में हिन्दुओं के अनेकों त्यौहार होते हैं पर हास्य और व्यंग्य के लिए अधिक प्रेरणा देने वाले मुख्य त्यौहार होली, विशेषरूप से हास्य-व्यंग्य का ही पर्व है। फाल्गुन मास में इस पर्व पर प्रत्येक से आशा की जाती है कि वह निजी, पारिवारिक, सामाजिक तथा जातिगत सभी प्रकार के मनमुटाव भुला कर मुक्त हृदय तथा भूतकाल को भुलाने के साथ ही भविष्य के लिए भी हास्य विनोद और उमंग, हृदय में संग्रहीत कर ले जिससे विषम परिस्थितियों को संतोषपूर्वक सहज रूप से स्वीकार कर सके।

होली के गीतों में जहाँ सरल हास्य व व्यंग्य होता है, वहीं उत्तरदायित्वहीनता तथा उच्छृंखल जीवन का भी परिचय मिलता है।

भर पिचकारी मेरे सिलवे पै मारी
चद्दर हो गई तंग रंग में होली कैसूं खेलूं
साँवलिया जी के संग

तथा

कच्ची अम्बली गदराई फागण में
जा कइयो मेरे ससुर भले से
गौना ले जइयो, पीहर में

---

१. बारात जाने के अगले दिन दोपहर को स्त्रियों द्वारा आयोजित गान-नृत्य व स्वांग आदि।

जा कहियो उस बहुअड़ भली से
चार महीने गम खा जा पीहर में

होली के गीतों के अतिरिक्त नाचने के गीतों में भी हास्यरस मिलता है—

पज्जामा पहरा हाथ में, दस्ताना सिनञ्ञ के
घर से लिकड़े बाबू, न्हाणे के वास्ते
नाले में न्हा लिए, जिमना जी सिमञ्ञ के

दिल्ली में दुपट्टा भूलें, मेरठ में रुमाल
झगड़े में धोती भूले रात साँवलिया
रंडियों से पिट आये रात साँवलिया

विवाह में फेरों के बाद वर-वधू को एक कमरे में जहाँ पूजा होती है 'थापे आगे' ले जाया जाता है। वहाँ पर पुरुषों में अकेला वर ही बहुत सी स्त्रियों के बीच में रहता है। वहाँ पर वर से 'छन' कहने का आग्रह किया जाता है। यह अधिकार हास्यपूर्ण ही होते हैं। इनके कहने पर वर को सास के द्वारा 'नेग' मिलता है। यह अवसर वर की बौद्धिक सूझ की परीक्षा का होता है। इन छनो का वर्ण्य-विषय प्रधानतया सास, साली, सलहज आदि पर कही जाने वाली बातें तथा व्यंग्योक्ति होती है। इस अवसर पर कोई बुरा नहीं माना जाता है, विवाह में हास्य का यह अवसर बहुत ही अच्छा होता है। इसी समय वर का सभी संबंधित स्त्रियों से तथा वधू की मित्रों आदि से परिचय कराया जाता है। इस अवसर पर उपस्थित स्त्रियाँ अपनी मर्यादानुसार तथा बुद्धि के अनुसार वर से मज़ाक करने से नहीं चूकतीं। छन[1] अनेकों होते हैं उदाहरण के लिए एक यहाँ पर दिया जा रहा है —

छन पकइया, छन पकइया, छन के ऊपर पौंड्डा
हम तो आये थे व्याह करवाने, सासू के हो गया लौंड्डा

विवाह के अगले दिन बराती लोग जो खाना खाते हैं जिसको 'बढ़ार' कहते हैं। यह लड़की के विवाह के अवसर पर विशेष दावत होती है। इस अवसर पर घर की स्त्रियाँ समधी को तथा वर पक्ष के अन्य सम्बन्धियों को संबोधित करके गीतों के रूप में मधुर गालियाँ देती हैं जिनको इस अवसर पर देना तथा सुनना दोनों ही शुभ समझा जाता है तथा वर-पक्ष वाले इसको बुरा भी नहीं मानते—

१. छंद का अपभ्रंश है, जो लोकभाषा में प्रचलित शब्द है। छन वैसे एक आभूषण का भी नाम है, जो चूड़ियों के बीच में पहना जाता है। पर यहाँ पर इसका अभिप्राय छंद से ही है।

वरन् अपने को भाग्यशाली ही समझते हैं—यह सीठने[1] कहलाते हैं। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है—

बाग़ भराया भला किया सुलताना रे
खाये खट्टे चार, मेरा मन भाया रे
खट्टे खाया भला किया रह गया, हमल मेरे पेट
सुलताना रे
जाये लड़के चार मेरा मन भाया रे

इस प्रकार हास्य के भी जीवन में पर्याप्त क्षण मिल जाते हैं जिनमें कटु व्यंग्य भी रहता है।

वीर-रस—

वीर रस शौर्य पराक्रम तथा पौरुष का द्योतक है। वीर रस का वीरता के कारण पुरुषों से ही अधिक संबंध है पर स्त्रियों के गीतों में भी यह मिलता है। यद्यपि ग्रामीण महिला का जीवन-क्षेत्र नितान्त घर तक ही सीमित होता है, उनको वीरता प्रदर्शन के अवसर कम ही मिलते हैं तथा वह अधिक सुरक्षित सरल और स्वस्थ जीवन व्यतीत करती हैं। पर इसमें भी अपवाद मिलना स्वाभाविक हैं। अशिक्षा के कारण भी उनका दृष्टिकोण सीमित व ज्ञान परिमित रहता है पर संकट काल में तथा सतीत्व की रक्षा के लिए वह अपने प्राणों की बाजी लगाने में देर नहीं करती। उनमें चारित्रिक बल, नैतिक पुष्ट धारणाएँ होती हैं। वह अनुभवहीन होने पर भी साहसी, आत्म-विश्वासी तथा सबल होती हैं। उनकी आत्मा सामाजिक रूढ़ियों में बँधे रहने के कारण इतनी सुप्तावस्था में रहती हैं कि वह आसानी से अत्याचार का विद्रोह नहीं कर पातीं। फिर भी सामाजिक प्रभाव उन पर भी पड़ते हैं।

यद्यपि ग्रामीण नारियों को स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेने का अवसर नहीं मिला परन्तु फिर भी वह अपनी सहज बुद्धि द्वारा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को अवश्य समझती थी। वह बापू, सुभाषचन्द्र बोस आदि के नामों से भलीभाँति परिचित थीं तथा उनके विचारों से प्रभावित भी थीं। गाँधी जी के प्रति उनके मन में विशेष श्रद्धा थी। जिन गीतों में बापू तथा काँग्रेस का उल्लेख

---

१. सीठन—(सीठा-फीका) मीठी गाली को ही सीठना कहते हैं जिसको कि सुन कर या कह कर मन में रोष तथा बुरी भावना न उत्पन्न हो।

है वे उनकी राष्ट्रप्रियता, उत्साह व पौरुष को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिए—

'मैं भी तेरे साथ चलूंगी गाँधी जी के जलसे में'

तथा

यूं खरा रुपइया चाँदी का, यू राज महात्मा गाँधी का
क्या होगा निमक बणाणे से, क्यूं डरो जेल जाने से
यू खरी चवन्नी चाँदी की, यू राज महात्मा गाँधी की

तथा—

जागो हे प्यारी बहनो, भारत जगाई चलो
परदा जहालत का दूर हटाई चलो
बर्छियो की धार यही से, मारना सिखाई चलो
बचपन की सादी छोड्डो, बच्चे अजाद छोड्डो
फिरते हैं टोप्पी वाले, पर चढ़ाई चलो
दुरगा सीता पद्मा, जैसे बीरन कारज कीनै
जागो हे प्यारी बहनो

सावन के गीतों में गाये जाने वाले 'चन्द्रावल' गीत में स्त्री की वीरता का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि वे किस प्रकार मुग़लों से अपनी सतीत्व की रक्षा की और अपने प्राणों का मोह छोड़ आत्महत्या कर ली।

पुरुषों का जीवन वीर रस प्रधान होता है तथा अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी ही अधिक होता है। उनका कार्य क्षेत्र घर के बाहर ही अधिक होता है। उनका संपर्क जीवन के हर पहलू से रहता है जिनका उल्लेख भिन्न-भिन्न समय पर गाये जाने वाले गीतों में मिलता है।

वीर रस का जीवन में अपना विशिष्ट स्थान है। यह पौरुष और साहस बनाये रखने के लिए आवश्यक है, उद्देश्य पूर्ति के लिए सामूहिक रूप से प्रयत्न करते समय ऐसे गीतों का अनायास ही निर्माण हो जाता है। इन अवसरों पर यह गीत प्रेरणा देते हैं, तथा उत्साह और स्फूर्ति प्रदान करते हैं। इनका जो प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, वह भाषण तथा पुस्तकादि से अधिक स्थायी एवं प्रभावोत्पादक होता है।

शृंगाररस और करुणरस, मनुष्य की कोमल भावनाओं का ही परिष्कार करते हैं और जीवन में रसिकता तथा नैराश्य की भावना भी भरते हैं जब कि वीर रस का जीवन में इनसे विपरीत प्रभाव होता है। यह जीवन में त्याग और पराक्रम का पाठ पढ़ाते हैं जिससे मनुष्य का चरमोत्कर्ष होता है।

वीभत्स-रस—लोकगीतों में वीभत्स-रस को भी कम महत्व मिला है।

अद्‌भुत रस के अवश्य कुछ उल्लेख मिलते हैं । यद्यपि लोकगीतों में उक्ति-वैचित्र्य और उच्छृंखल प्रवृत्तियों का स्थान नहीं है यह मानव जीवन की कुतूहल वृत्ति को शांत करते हैं । अद्‌भुत रस से पूर्ण रचनाएँ लोकसाहित्य में कम अवश्य हैं पर उनका सर्वथा अभाव भी नहीं है । उदाहरण के लिए यहाँ पर एक गीत दिया जा रहा है--

केले की भई सगाई सकरकन्दी नाचन आई
कासीफल के बने नगाड़े, भिंडी की चोब बनाई
गोभी फूल के गड़े शामियान्ने मूली के खम्भ लगाये
गाजर बिचारी के लाल भये, ये आलू छोछक लाया
गाँडर बिचारी ने थैल्ले भराये गेहूँ ने गंगाल भराये
बेर कुरकुली के भाँड बराती, मूंगफली रंडी बनाई
मक्का बिचारी के साल दुसाले, ज्वार लड्डुए बँधाए
ज्वार बाजरे के डोम मिरासी, नटनी नाचन आई

शांत-रस---शांत रस जैसा कि नाम ही से ज्ञात होता है, शांति का प्रेरक है। भारत के अधिकांश लोग शांतिप्रिय व संतोषी प्रकृति के होते हैं तथा भौतिक सुख की अपेक्षा मानसिक सुख प्राप्त करना ही उनके जीवन का उद्देश्य होता है। भारत धर्मप्रधान देश है, यहाँ अपने को नास्तिक कहने वाले भी अनजाने में धर्म से अनुशासित रहते हैं । जीवन के अणु-अणु में यह ऐसा समाया हुआ है कि साधारण व्यक्ति उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता । सभी धार्मिक गीतों में जो प्रायः देवी देवताओं संबंधी होते हैं---राम कृष्ण, देवी, माता, तुलसी तथा अन्य व्रत व त्यौहार संबंधी, इतवार एकादशी, माघ, कार्तिक मास मे 'न्हाण' आदि के गीतों का मन पर अमिट और शांत प्रभाव पड़ता है। उनमें देवी-देवताओं से मंगल-कामना की स्तुति की जाती है और भगवान् के रूप और गुण का भी वर्णन मिलता है । इसके गाने का समय प्रायः प्रभात-काल व संध्याकाल होता है । यह दोनों समय मिलने की पवित्र वेला कहलाती है। इस समय भगवान् का नाम लेना आवश्यक है । वैसे तो भगवान् का नाम कभी भी और किसी समय लिया जा सकता है पर दैनिक व्यस्त जीवन में इस निर्धारित समय में ही लिया जा सके तो भी बहुत है। भारतवासी अधिकतर भाग्यवादी होते हैं जो कभी-कभी अकर्मण्यता को भी जन्म देते हैं । इनको धार्मिक बनाने में इन धार्मिक गीतों का ही विशेष योगदान होता है । इनसे संतप्त हृदयों को शांति मिलती है और यही शांति और संतोष उनके कठिन और अभावपूर्ण जीवन को संतोषपूर्वक जीवन बिताने में सहायक होते हैं । भजनों में जीवन की निस्सारता का भी वर्णन

मिलता है जो आध्यात्मिक पक्ष को पुष्ट करता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दार्शनिकता का पुट अवश्य निहित रहता है। प्रश्न केवल यही है कि वह उसको जीवन के व्यावहारिक पक्ष में लाने में कहाँ तक सफल हो पाता है। हिन्दू-दर्शन जन-जन के हृदय में अपना एक विशेष स्थान रखता चला आया है। इसी की प्रतिच्छाया इन लोकगीतों में मिलती है। यह अशिक्षित वर्ग का अपना दर्शन है। इनमें रहस्यवाद भी मिलता है। इनमें ऐहिक जीवन की निस्सारता और पारलौकिक जीवन की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। स्त्रियों की कामना के केन्द्र दो ही हैं— माँग और कोख, पति और पुत्र—इनके कल्याण साधन के लिए यह देवी देवताओं से मंगल कामना किया करती हैं।

यह गीत बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इनमें संसार की निस्सारता, जीवन की अनित्यता तथा सुख सम्पत्ति की क्षणभंगुरता का सुंदर प्रतिपादन मिलता है। वृद्धा स्त्रियाँ जब तीर्थयात्रा या गंगास्नान के लिए टोली बनाकर जाती हैं तब वे भजनों को गाती हैं। एक तो भजनों का कोमल भाव दूसरे इन वृद्धाओं के कंठ से निकली हुई भक्ति विह्वल ध्वनि, तीसरा प्रातःकाल का सुहावना समय, यह तीनों मिल कर इन भजनों को इतना रसमय बना देते हैं कि सुनने वालों के हृदय इन सांसारिक प्रपंचों से दूर हट कर भगवद्भक्ति के सरोवर में गोता लगाने लगते हैं।

कहीं-कहीं रहस्यवाद की बड़ी सुंदर झलक दिखायी पड़ती है। भक्तिभाव से अपनेपन को भूल कर जब भक्त अपने हृदय के भावों को प्रकट करता है तब जिस कविता का उद्गम होता है वह व्यापकता तथा दार्शनिकता दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण होती है। रहस्यवाद में प्रयुक्त प्रतीक सांसारिक होते हैं किन्तु उनसे अभिव्यक्त-भाव पारलौकिक होता है। इनमें रहस्यवादी छटा भी देखने को मिलती है। इन गीतों के कुछ उदाहरण यहाँ मुख्य प्रबंध में ही दिये जा रहे हैं—

एकादशी के संबंध में—

बरतों में भारी ए री एकादशी
जिसके री आगे सुच्च संगम रह्या
नित उठ आवै री गिरधारी

तथा—

करो रे रामा वा दिन की तदबीर
ए गुरुजी हमने औगन भौत किये
इतने ही चावल एकादशी को खाये
इतने ही जीव हते

इतवार—

क्या तूने पग से पग मिली धोया
बैठ गंगा जी की पार

तुलसी—

तुलसा महारानी नमो नमो
हर की पटरानी नमो नमो

देवी का गीत—

तेरी सदा री भवन में आरती जय जय
जै जै माता तेरी सकल बराई

संध्या—

संध्या का सिमरन करौ रे मन तू
साँझ हुई दिन छिपने को आया
घर घर गऊआ आई रे
दोनों बखत मिले हर का गुन गाय ले रे

ग्रहण—

आया कुरुछेत्र का न्हाण
तुम बिन बाँके बिहारी में कैसे जपूं नाम
काहे की धरती काहे का अंबर
काहे का संसार

गंगा—

दुख हरणी सुख दैणी गंगा जी
मन की तो रैस मिटाओ गंगा राणी

बुढ़ापे के प्रति—

अब हमने जानी रामा आई रे बुढ़ानी
आई रे बुढ़ानी रामा, गई रे जवानी

कबीर का प्रभाव—

राम गुन गाये से ग्यानी तू तिर जाँ
मूंड के मुड़ाए से जो लोग तिर जाँ
तो भेड़ क्यूं न तिर जा जिनके मुंडे मुंडाये सिर

आर्यसमाज का प्रभाव, मीरा का, साँझी के गीत, कलियुग का वर्णन तथा अन्य भजन, इसी श्रेणी में पाये जाते हैं जिनके कुछ उदाहरण परिशिष्ट में दिए जा रहे हैं।

लोकगीतों में अवस्था के अनुसार ही सब रसों का वर्णन मिलता है। बाल्यावस्था तथा युवावस्था में प्रायः श्रृंगाररस, वीररस तथा हास्यरस का उल्लेख मिलता है। बालकों के खेल के गीत आदि इन्हीं में आ सकते हैं तथा उसके बाद

प्रौढ़ावस्था में तथा वृद्धावस्था में मनोदशा के अनुरूप करुण तथा शांतरस के गीत आते हैं। जीवन में हर जगह अपवादों का ही स्थान है, अतः इसके विभाजन की कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती और नहीं ही कोई अवस्था-विशेष ही निर्धारित की जा सकती है।

लोकगीतों में रसों का सांगोपांग वर्णन नहीं है और न शास्त्रीय पद्धति ही है। आलम्बन और वातावरण उद्दीपन और आश्रय तो स्वयं उपस्थित रहते हैं। इनमें निर्माणकर्ता और उपभोक्ता एक होता है। इनमें विविध रसों का चित्रण तथा भावों का उन्मेष होता है तथा तीन स्थितियाँ होती हैं जो इस प्रकार हैं—

१—उल्लासावस्था—जिसमें प्रेम, रति, वैभव तथा वात्सल्य होता है।

२—ओजावस्था—जिसके अन्तर्गत वीरता, उत्साह रौद्र तथा अद्‌भुत आते हैं।

३—शोभावस्था—भय, लज्जा, करुणा, निराशा, आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं।

इन गीतों में कृत्रिमता का नितान्त अभाव है। पदविन्यास तथा शब्दरचना नितांत स्वाभाविक है। इन गीतों में सीधे-सादे शब्दों में मधुरता कूट-कूट कर भरी है।

लोकगीतों में हृदय की कोमल भावनाओं को आडंबरहीन अभिव्यक्ति दी गयी है। अलंकार और रस, लोकगीतों के लिए साध्य वस्तु के रूप में नहीं आये। हृदय की गहराइयों से निकलने के कारण रस तो अनायास ही लोकगीतों की परम्परा की सम्पत्ति बन गया है।

लोकसाहित्य में सरसता केवल आन्तरिक गुण के आधार पर ही निर्भर करती है पर लोकगीतों में यह अतिरिक्त अथवा कौशलपूर्वक नहीं, सहज रूप में आते हैं। उसी सहज रूप में सरसता का पूर्णरूप प्रस्तुत होता है। लोकगीतों का वातावरण मुक्त होता है, जिसमें भाव और कल्पना की प्रधानता रहती है। रागतत्व और शब्दों की कोमलता का भी इनमें मुख्य स्थान है, इनमें विशेष रूप से मुक्त और स्वच्छंद मनोवृत्ति मिलती है। यह अपने उचित यथार्थ स्वाभाविक वातावरण में मिलते हैं किसी भी घटना या व्यक्ति का उचित मूल्यांकन उसके स्वाभाविक वातावरण में रहकर ही किया जा सकता है और तभी सत्यता का बोध होता है।

लोकगीतों में भावपक्ष प्रधान होता है यद्यपि काव्य संबंधी रस, ध्वनि, अलंकार की शास्त्रीय परम्पराओं को उनके साथ एक सीमा तक निभाया जा सकता है। इनमें प्रतीकों का बहुत प्रयोग हुआ है जिनका चयन जीवन के प्रतिदिन के क्रिया कलापों से ही हुआ है।

लोकगीतों में अलंकार-विधान उस रूप में विद्यमान नहीं है जिस प्रकार साहित्यिक भाषा काव्य में, फिर भी भाव को स्पष्ट करने लिए इनमें उपमा, रूपक तथा श्लेष अलंकार स्वतः आ गए हैं। पर उनकी विशेषता यह है कि इनमें एक विचित्र सरलता, नवीनता तथा मौलिकता है जो वस्तुतः कृत्रिम कविताओं को देखने पर नहीं मिलती।

लोकसाहित्य में सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग यथास्थान हुआ है किन्तु प्रधानतया उपमा, रूपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति और अन्योक्ति का बाहुल्य है। इनमें अलंकारों के प्रयोग की तरह यद्यपि वह बारीकी नहीं आ पायी है फिर भी लोकसाहित्य में प्रयुक्त ये अलंकार भावों को पूर्ण रूप से व्यक्त कर देते हैं।

लोकगीतों में उपमाएँ, नवीन तथा मौलिक होने के साथ ही भावव्यंजक भी होती हैं। इनमें सीधी अभिव्यक्ति का गुण, विशेष महत्व का है क्योंकि अलंकार और रस इनमें साधन के रूप में व्यक्त होते हैं, साध्य के रूप में नहीं। भावनाओं के प्रति सहज ईमानदारी भी इनमें व्यक्त हुई है। लोकगीतों की मनोव्यथा उन्मुक्त हुआ करती है, उसमें सभ्यता का मिथ्या आवरण नहीं लिपटा रहता। साथ ही मर्यादा और परंपरा की रक्षा भी इनमें निहित है। लोकगीतों में काव्यगत सौंदर्य की सफल अभिव्यंजना है। अनुभूति और अभिव्यक्ति में इतनी एकरूपता होती है कि उसमें सीधे चुभ जाने की क्षमता है। मनोभावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही लोकगीतों की विशिष्टता है। इनमें स्वाभाविकता अत्यधिक है और वर्णन शैली भी सहज है। इनमें सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल का अधिक महत्व है।

लोकगीतों की उपमाएँ साधारण जीवन से ली गयी हैं। इनमें शब्द-माधुर्य और अर्थ चमत्कार है। लोकगीतों में नखशिख वर्णन के लिए प्रकृति और जीवन के उपकरणों को ही अपनाया गया है। यहाँ पर कुछ मुख्य और बहु-प्रचलित उपमाओं को उदाहरणार्थ दे रहे हैं—आँख हिरणी की न होकर आम की फाँक, नीबू की फाड़, नाक तोते की चोंच, भुजा सोने की छड़ी, पैर केले के स्तम्भ, पीठ धोबी की पाट सी, पेट छाक सा मुलायम, ओंठ कटा हुआ पान, भौंह चढ़ी हुई कमान, दाँत अनार का दाना, जुल्फें काली और दाँतों की बतीसी चमकने वाली, नाक सुआ सा, मुख बटुआ सा, बटुआ सी बहू, ललाट लोटा, उंगलियाँ मूँगफली सी, चोट्टी जाणे काली नाग, झड़बेड़ी सी हाल्ले, बाणी फूल सी झड़े, चाल जल में मुरगाई, नाड़ मोरनी बरगी, पति के लिए प्रभु, रसिया, छैला, सइया, साँवलिया, सिपाही आदि।

पति-पत्नी के मिलन को दूध-पानी का मिलन कहा जाता है। भाग्य को समुद्र के समान अथाह बतलाया गया है जिसका पाटना कठिन है और लड़की का पिता

जुआड़ी (जैसे जुआ में हारी हुई सम्पत्ति पर उसके पहले मालिक का कोई आधिपत्य नहीं रहता) ।

वर ककड़ी के समान, जिसे ऊपर से देख कर यह नहीं बताया जा सकता कि वह मीठी होगी कि कड़वी, यह लड़की के भाग्य पर ही निर्भर करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों में स्वीकृत उपमानों के साथ ही साथ नवीन उपमान भी हैं जो परम्परागत नहीं, वरन् स्वाभाविक हैं तथा प्रकृति से लिए गये हैं। परिस्थिति और वातावरण के अनुरूप उपमान भी लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए—एक पनघट का लोकगीत 'सोरठ' यहाँ पर दिया जाता है जिसके वार्तालाप में प्रेमकथा है:—

टाँडै पै चला री बनजारा, कूएँ पै आस्सन डारा
कूएँ पै सोरठ आई, जैसे गुंठी बीच नगीना
उसने फांसी रेसम डोरी, उसने पकड़ ली कस कस कै
मुझे थोड़ा नीर पिलाय दे, मैं प्यासा बड़ी दूरों का
अरी तेरी बाप बड़ा अन्यायी, तुझे ब्याह दई री टोट्टे में
तू चल री मेरे टाँड में जहाँ बिछ रहे पिलंग जरी के
अरे तेरे आग लगो रे टाँड में, फुक जइयो पिलंग जरी के
मैं गुजर करूँ री टोट्टे में,
तिरिया ने बोली मारी, मेरी निकल गई नस नस में
तिरिया ना काहू की होती, चाहे कितना ही लाड़ लड़ाए लो
तू चल री मेरे टाँड्डे में, अरे तेरे आग लेगे री टाँडे में
अरे तू कौन गली का रोड़ा,
अरे तू कौन खेत का बथुआ, मैं असल गोभ केले की
मैं असल ईट छज्जे की,
अरे तू कौन जात बनजारा, मैं राजपूत की बेटी
तिरिया ने बोली मारी, तिरिया ना काहू की होती

खड़ीबोली जनपद की भाषा में लक्षणा, व्यंजना अत्यधिक है। साधारण लोग प्राय: ऐसी बात कह डालते हैं कि उनका मुँह ताकते ही रह जाते हैं। इस भाषा में कटु व्यंग्य हैं, कटाक्ष अधिक है तथा हास-परिहास का भंडार है। खड़ीबोली जैसे शब्द मुहावरे, उपमाएँ तथा प्रतीकों के प्रयोग अन्यत्र कम ही देखने को मिलते हैं। यह अनूठी उपमाएँ प्रकृति से सीधी ही प्राप्त हुई हैं। यह सजीव और जीवित भाषा है। गीतों का सीधा संबंध जीवन से है, उसी से इसमें निश्छल अभिव्यक्ति है। इनमें प्रयुक्त उपमाएँ सर्वसम्मत हैं।

लोकगीतों में कथा-तत्व—कथा या कहानी कहना और सुनना, मानव की एक बहुत ही स्वाभाविक आवश्यकता है। प्रायः कहानियाँ गद्य में होती हैं पर कुछ पद्य में भी होती हैं तथा गद्य-पद्य मिश्रित होती हैं। गद्य की अपेक्षा पद्य सदैव ही अधिक आकर्षक होता, है। स्मरण भी अधिक समय तक रहता है तथा कर्णप्रिय भी अधिक होता है। पद्यमय कथाओं को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—छोटी कथाओं वाले गीत जिन्हें गीतकथा की संज्ञा दी जा सकती है तथा बड़ी कथाओं वाले लोकगीत जिन्हें हमने लोक-गाथा नाम दिया है। इन लोक-गाथाओं का उल्लेख हम अलग अध्याय में करेंगे। यहाँ पर हम इन गीतकथाओं के वर्ण्य-विषय पर ही दृष्टिपात करेंगे।

इन गीत कथाओं में कथानकों के अभाव स्पष्ट मिलते हैं। यह मुक्तक काव्य है न कि प्रबंध काव्य। कथाएँ छोटी हैं। इनके वर्ण्य-विषय भी ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, कौटुम्बिक, प्रेम संबंधी तथा काल्पनिक हैं। इनको हम स्थूल रूप से तीन मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१—पौराणिक तथा ऐतिहासिक गीत-कथाएँ।
२—सामाजिक एवं कौटुम्बिक गीत-कथाएँ।
३—काल्पनिक प्रेम-कथाएँ।

१. पौराणिक तथा ऐतिहासिक गीत-कथाएँ

इन कथाओं के अन्तर्गत वही गीत आते हैं जिनमें कुछ न कुछ ऐतिहासिक व धार्मिक पौराणिक अंश मिलता है। इनमें भी प्रामाणिकता का अभाव है, कारण कि यह लोकविश्वासों से प्रभावित है। उदाहरण के लिए सीता-बनवास, जिसके संबंध में जनमत है कि रामचंद्र जी ने बहन के चुगली करने पर सीता पर संदेह किया और बनवास दिया।

लवकुश जन्म संबंधी गीत, कृष्णजन्म संबंधी तथा शिव जी का व्याह आदि गीत-कथा धार्मिक पृष्ठभूमि लिये हुये हैं।

ऐतिहासिक के अन्तर्गत भरथरी, गोपीचन्द, ध्रुव, गुग्गापीर आदि हैं। चन्द्रावल को भी हम इसके अन्तर्गत ले सकते हैं क्योंकि इसमें भी मुग़लकालीन अत्याचारों का चित्रण है।

उदाहरण परिशिष्ट में दिया गया है।

२. सामाजिक तथा कौटुम्बिक गीतकथाएँ—इन गीतकथाओं के वर्ण्य-विषय में प्रधानतया सामाजिक मान्यताओं का उल्लेख, सामाजिक समस्याओं की

झलक, लोकरीति-रिवाजों से संबंधित प्रचलन का उल्लेख और मानवीय-सहज सामाजिक भावनाओं का उल्लेख मिलता है। ईर्ष्या, प्रेम, प्रतिहिंसा आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जैसे सावन के गीतों में 'मनरा'। पुत्र जन्म के अवसर पर गाई जाने वाली ब्याही में मनरंजना, जगमोहन आदि हैं तथा भात के गीतों में 'नरसी का भात'। भात के गीतों में भाई-बहन के स्नेह की चर्चा विशेष रूप से मिलती है। उनके द्वारा परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहारों का चित्रण मिलता है। इनमें समाज के कृष्ण व शुक्ल पक्ष दोनों का चित्रण मिलता है।

३. काल्पनिक तथा प्रेम संबंधी गीतकथाएँ—सुखद कल्पना तथा प्रेम, जीवन की आत्मा है, जीवन से इनका संबंध है। अतः इससे संबंधित और इनके कारण होने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाओं से संबंधित अनेकों गीतकथाएँ हमारे प्रदेश में प्रचलित हैं जिनमें कुछ का उल्लेख हमने परिशिष्ट में भी किया है जो इस प्रकार है—

सावन के गीतों में मनरा, धोबी बेटी, हंसा राव, कुंवर निहालचंद, नर सुल्तान, लच्छो, चन्दना, जाहर, चन्द्रावल आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों में कथा-तत्वों का भी एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है।

लोकगीतों में संगीत पक्ष—लोकगीतों की आत्मा, लोक-संगीत है। लोक-संगीत बहुत ही प्राचीन है। बहुत से विद्वानों का मत है कि वस्तुतः लोक-संगीत ही का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर भी पड़ा है। यदि यह कहा जाय कि शास्त्रीय संगीत का जन्म लोक-संगीत से हुआ है तो, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अतः इनकी विशेषताओं का अध्ययन बहुत ही आवश्यक है। जिस प्रकार जनता की भाषा से साहित्यिक भाषा बनी, उसी प्रकार लोकगीतों से ही शास्त्रीय-संगीत विकसित हुआ।

जीवन और संगीत के नैसर्गिक संबंध का जितना वास्तविक परिचय हमें लोक संगीत के द्वारा मिलता है, उतना शास्त्रीय संगीत से नहीं।

लोक-संगीत, जनजीवन के अत्यधिक निकट होता है। मनुष्य को जन्म से ही—जीवन में रोने और गाने का जन्मसिद्ध अधिकार होता है। यह आत्माभिव्यक्ति के दुख-सुख के व्यवतीकरण के सहज व सरलतम माध्यम है। यही अभिव्यक्ति परिष्कृत होकर संगीत का रूप धारण कर लेती है और शब्दों की सृष्टि कर लेती है। अतः यह निश्चित है कि मानव-हृदय ने पहिले स्वरों को जन्म दिया फिर शब्दों को। यह सहज, स्वाभाविक, अचेतन और प्रवृत्तिमय सृजन क्रिया है। यह अनजाने तथा स्वयं ही स्फूर्त होती है। यह समाज की एक सहज आवश्यकता है अपने नैतिक

मूल्यों, सामाजिक उत्सवों, त्यौहारों तथा रीति-रिवाजों एवं सामाजिक कार्यों के दौरान में यह जन्म लेता है ।

लोक-संगीत का क्षेत्र स्त्रियों और पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले सभी प्रकार के गीतों में व्याप्त धुनें हैं जिनका आदि-संगीत के बाद की अवस्था से संबंध है। बालकों के धुन-युक्त गीत भी इसमें सम्मिलित हैं। व्यापक रूप से लोकप्रचलित कंठ के माधुर्य को व्यक्त करने वाली समस्त ध्वनियाँ लय और ताल गत सम्पत्ति लोक संगीत के अन्तर्गत ही आती है ।

लोकगीतों में स्त्रियों के गीत अधिक महत्व के हैं क्योंकि पुरुषों के गीतों की अपेक्षा स्त्रियों के गीतों की धुनें तथा शब्द-संचय परम्परागत अधिक है। पुरुषों के गीतों में परिवर्तन का क्रम चलता रहता है जिसमें क्रमश: विकृति आती जाती है। वाह्य प्रभावों के कारण पुरुष अपने शब्द और संगीत संपत्ति की ज्यों की त्यों रक्षा नहीं कर पाता। स्त्रियाँ स्वभाव से ही संरक्षण-प्रिय होती हैं। रूढ़ियों में उन्हें विश्वास होता है, अतः उनके गीत और स्वभाव में विकृत परिवर्तन का स्वरूप कम दृष्टि-गत होता है ।

छंदशास्त्र की दृष्टि से यह दोषयुक्त हो सकते हैं क्योंकि लोकगीतों के निर्माताओं को कोई पिंगल शास्त्र का ज्ञान नहीं था, अतः यह लयबद्ध होते हैं छन्दबद्ध नहीं ।

शब्दों और स्वरों के चुनाव में बहुत माधुर्य होता है क्योंकि यह सरस तथा स्वाभाविक अनुभूतिमय होते हैं। कवि अपने भावों को व्यक्त करने के लिए पहिले से कोई आयोजन नहीं करते ।

लोकगीतों में छंद का स्थान गौण तथा लय का प्रधान रहता है। इस लय को 'तोड़' कहते हैं। लय और तुक, भावों के अनुरूप होती है। तुक भी आवृत्ति के रूप में होती है। तुक के कारण लोकगीतों को स्मरण रखने में सहायता मिलती है, अतः इसी से यह एक आवश्यक अंग है ।

लय, वास्तव में इन गीतों का मोहक गुण है। जब स्त्रियाँ सामूहिक रूप से किसी गीत को लयपूर्वक गाने लगती हैं तो वह लय के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहाँ किसी पंक्ति में अक्षर कम होता है, वहाँ कुछ अक्षरों को जोड़ कर पूरा कर लेती हैं। इन्हीं लयपूर्ण गीतों से रस का संचार भी होता है। प्राय: लोकगीत तुकान्त होते हैं पर इनमें कोई नियम या बंधन नहीं है—इनके साथ, लोकगीतों में गायन की सुविधा के लिए —रे, ना, हो, ओ; हो, ए राम, मोरे राम, आदि का प्रयोग भी होता है ।

शास्त्रीय संगीत के अनेक रागों का जन्म इन्हीं लोकधुनों से हुआ है। बहुत

सी ध्वनियाँ शुद्ध शास्त्रीय रागों से मिलती जुलती हैं । प्राय: देखा जाता है कि जिस भाव-विशेष का चित्रण गीत में किया जाता है वह उसके शब्दों के अर्थ से पूरी तौर से मेल खाता है, उसी भाव-विशेष के अनुरूप नाम देना शास्त्रीय संगीतकारों का काम था । लोक-संगीत के द्वारा अनेक रागों की उत्पत्ति होना कठिन विषय नहीं है ।

यहाँ पर हम कुछ रागों का उल्लेख करते हैं जिनका हमें लोकगीतों में अधिक प्रयोग मिलता है—जैजैवन्ती, पीलू, तिलक कामोद, खमाज, काफी, देश, बिलावल । कुछ गीतों में इन रागों के केवल स्वर ही लगते हैं और कुछ गीतों में पूर्णरूप से वह राग मिलते हैं ।

लोकगीतों में कहरवा, दादरा, तथा दीपचन्दी धुनों का ही अधिक प्रचलन है । लोकगीतों में ताल का कोई भी शास्त्र नहीं है । लय ही गीत की आत्मा है । लय-विहीन लोकगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । लोकगीतों की तालों से ही शास्त्रीय तालें विकसित हुई हैं ।

हर लोकगीत शास्त्रीयता का बाना पहन सकता है लेकिन शास्त्रीय संगीत लोकगीत नहीं बन सकता । शास्त्रीय संगीत की क्लिष्ट पद्धति के बीच तथा सामाजिक संगीत की इस जनसाधारण आवश्यकता के बीच लोकसंगीत सेतु का काम करते हैं ।

लोक-संगीत में लयात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करने के लिए ढोल, ढोलक, चंग, डफ, मजीरा, झाँझ तथा नगारा आदि अनेक प्रकार के वाद्य होते हैं ।

लोकगीतों का संगीत पक्ष एक स्वतंत्र विषय है जिसके गंभीर और विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है । यहाँ पर केवल स्पर्शमात्र किया गया है, विस्तार में नहीं जाया जा सका ।

लोकगीतों में सहायक लोकवाद्य

संगीत प्राणी-मात्र के लिए आत्म अभिव्यक्ति का एक साधन है । क्रोध, ईर्ष्या, स्नेह, द्वेष, विजय, भय, सुख, हर्ष, या विषाद के समय अपने आप स्वरों का क्रम व्यक्त हो जाता है ।

गायन के द्वारा स्वर की अमूर्त्तता और निश्चितता को बार-बार दोहराना संभव नहीं हो सकता है । इसलिए स्वर की पवित्रता के लिए शनै: शनै: वाद्यों का भी विकास होने लगा । वाद्य वस्तुत: संगीत के माध्यम होते हैं । इनके द्वारा संगीत का तारतम्य नहीं टूटता और वह अधिक प्रभावोत्पादक तथा कर्णप्रिय हो जाता है । वाद्यों के अभाव में गायक अपने स्वर तथा ध्वनि को सम बनाये रखने में असमर्थ रहता है ।

वाद्यों के सहयोग से वह देर तक गा सकता है। गायक को तन्मयता के साथ गाने में भी वाद्य सहयोग देते हैं जो गायक के लिए अति आवश्यक है। वाद्य का सहारा इसलिए लिया जाता है कि संगीतज्ञ को गाने में सहायता मिले और बीच में श्वाँस लेने का उचित अवसर मिल जाये। श्रोतागण को तन्मय करने के लिए भी लय (झंकार) की आवश्यकता पड़ी जिसके फलस्वरूप वाद्यों का प्रयोग आरम्भ हुआ।

"सरल लोकजीवन में वाद्य प्रत्येक स्थान पर वर्तमान रहते हैं। प्रातःकाल जब स्त्रियाँ चक्की चलाती हैं तो उसकी घरघराहट ही उसके स्वर में मिल कर वाद्य का रूप धारण कर लेती है। बच्चा पैदा होने पर माताओं की प्रसन्नता के मूक स्वर को खाली-वाद्य द्वारा स्वर मिल जाते हैं। ढेंकली चलाने वाला आदमी पानी की सर-सराहट को छप-छप कर ताल पर ही गा चलते हैं। गाड़ी हाँकने वाला व्यक्ति बैलों की घंटियों और खुरों की आवाज़ से ही अपना स्वर मिला लेता है। बर्तन माँजने वाली स्त्री बर्तनों की खनखनाहट को ही अपने गीत का माध्यम बना लेती है। धोबी कपड़े की फटाफट से ही अपने स्वर को मुखरित कर संगीत की सृष्टि करता है। इस प्रकार हम प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिए वाद्य उपस्थित पाते हैं।[१]"

जन साधारण का सहज-संगीत, प्रकृति से ठेठ तादात्म्य रखता हुआ विकसित होता रहा। लोक-संगीत की इसी परम्परा में विभिन्न वाद्यों का उपभोग होता रहा। स्थान के अनुसार, जाति के अनुसार, सुविधा के अनुसार और गानों की प्रकृति के अनुसार यह बदलते रहे। कुछ तो ऐसे हैं जिनका प्रचलन प्रायः सभी स्थानों में होता है पर कुछ वाद्य, क्षेत्र-विशेष के विशिष्ट वाद्य भी होते हैं इनका प्रयोग सामूहिक रूप से गाते समय ही अधिक होता है।

शास्त्रीय-संगीत की ओर यदि हम ध्यान दें तो वहाँ पर हम विभिन्न प्रकार के वाद्यों को पायेंगे। ये अपने नये-नये रूपों तथा गुणों के साथ सम्मुख आते हैं। लोक-जीवन में हमें वाद्यों के दो मुख्य स्वरूप मिलते हैं—प्रथम—मनुष्य की क्रियायें वाद्य का स्वरूप धारण कर लेती है जैसे ढेकली के चलाने से उत्पन्न ध्वनि। इन क्रियागत ध्वनियों को हम सुविधा के लिए 'क्रियावाद्य' का नाम दे सकते हैं। द्वितीय—परन्तु दूसरे प्रकार के वाद्यों को हम वाद्यों के स्वरूप में ही सम्मुख लाते हैं—उदाहरण के लिए ढोलक। यदि हम इन वाद्यों के इतिहास को टटोले तो हम इन प्रचलित वाद्यों के पीछे भी क्रिया को ही पायेंगे। लोकवाद्य अपने उत्पत्तिकाल में ऐसे साधनों से उत्पन्न हुआ जो प्रतिदिन के कार्यों में आते रहे। आज भी आसाम का

---

१. सम्मेलन पत्रिका—लोकनृत्य और लोकवाद्यों में लोकजीवन की व्याख्या—श्री शान्ति अवस्थी, एम. ए., पृ० ३७४

बहुत प्रचलित लोकवाद्य दो बाँसों से बनता है जो बहुत मधुर ध्वनि उत्पन्न करता है। ये बाँस लोक मानव के क्रिया अंग ही रहे होंगे। लोकवाद्य संगीत के साथ संगत देने वाले उपकरण ही नहीं रह गये अपितु वह स्वतंत्र रूप से भी बजाये जाने लगे और श्रोताओं को इन अर्थहीन किन्तु अनुभूतिपूर्ण स्वरों में भी मानवीय संवेदनशीलता अनुभव होने लगी। यह संगीत का अत्यन्त विकसित स्वरूप है।

लोकगीतों में आज भी वाद्यों का सीधा संबंध गायन विशेष से है। गाना और वाद्य का मानों रसायनिक संबंध है जिनका एक दूसरे से अन्योन्याश्रित संबंध है। लोकगीतों में काम आने वाले वाद्यों के दो प्रयोजन हैं, एक तो स्वरों का आरोह-अवरोह के अनुकूल चलना और दूसरे उसकी लय को बनाये रखने के लिए ताल सँभाले रखना। स्वरों के साथ चलने वाले तीन प्रकार के वाद्य हैं। तारवाद्य और फूंक से बजने वाले वाद्य तथा चोट देकर बजाये जाने वाले ताल वाद्य जैसे ढोलक।

इन लोकवाद्यों के पीछे हम कुछ पौराणिक परम्पराओं को भी पाते हैं, जो इनका धार्मिक तथा पौराणिक रूप से महत्व बढ़ा देती है।

"जीवन में वाद्यों का प्रमुख स्थान रहा है। पौराणिक गाथाओं में भी हम वाद्यों को किसी न किसी रूप में पाते हैं। शिव जी डमरू बजाते थे जो आज तक लोकवाद्य बना है। इसका प्रयोग नेपाल तथा उसके तराई प्रान्त के लोकजीवन में मिलता है। विष्णु के हाथ में शंख मिलता है जिसे बजा कर विष्णु ने प्रथम नाद उत्पन्न किया था। कृष्ण के हाथ में वंशी का होना भी जीवन में वाद्यों की व्यापकता का द्योतक है। रामायण काल में रावण संगीतज्ञ था। यह प्रसिद्ध है कि वह शिव जी के नृत्य के समय मृदंग बजाया करता था। किवदंती है कि ब्रह्मा ने ढोल की रचना त्रिपुर राक्षस के रक्त से मिट्टी सान कर तथा उसी के चमड़े से मढ़ कर की थी।"[1]

उपर्युक्त सभी बातों से हम देखते हैं कि जीवन में वाद्यों का सदैव प्रयोग होता आया है। इन सभी वाद्यों का विकास लोकजीवन ही से हुआ है। बालक आम की गुठली घिस कर पपिहरा बना कर वाद्य रूप में प्रयोग करते हैं अथवा ज्वार के पत्तों को मोड़ कर मन बहलाने के लिए अपना बाजा तैयार कर लेते हैं। पंडित अपनी पूजा में शंख और घड़ियाल का बजाना नहीं भूलते। वृद्धजन कीर्तन के समय करताल अवश्य बजाते हैं। इन लोकवाद्यों ने हमारे जीवन के साधना और भक्ति पक्ष को सदैव बल दिया। मीरा भी नाचीं तो पैरों में घूँघरु बाँधना नहीं भूलीं।

ताल-वाद्यों का प्रमुख प्रयोजन गीत को संतुलित मात्राओं में बाँटे हुए आगे बढ़ाये चलना है। ताल के बिना गीत का प्रभावशील होना भी असंभव है। लोकगीतों में

---

१. लोकसंस्कृति अंक—सम्मेलन पत्रिका, पृ० ३७६

प्रयुक्त होने वाले ताल-वाद्यों को भी हम दो भागों में बाँट सकते हैं---एक, तो वे ताल-वाद्य जो गायन के साथ ही विभिन्न ताल रूप ग्रहण कर सकते हैं तथा दूसरे वे जो केवल दो मात्राओं के बीच के समय क्रम को ही बता सकते हैं। पहले प्रकार में ढोलक, नगारा आदि हैं, दूसरे में मंजीरा, थाली, करताल आदि हैं। लोक-वाद्यों में ताल और स्वर-वाद्यों की इस विभिन्नता के साथ ही कुछ ऐसे वाद्य भी हैं जो ताल और स्वर दोनों का काम देते हैं। तम्बूरे की तरह स्वर देना और विभिन्न तालों का उपयोग करना 'चौतारे' या 'इकतारे' की विशेषता है। लोक-वाद्यों की यह विशेषता शास्त्रीय रूप में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में नहीं है।

प्रत्येक वाद्य का अपना विशिष्ट प्रभाव है। हर तार-वाद्य का अपना-अपना सौंदर्य, अपना-अपना प्रभाव और अपनी-अपनी शैली है। इस विविधता के कारण भारतीय संगीत की शोभा अनेकों गुना बढ़ जाती है। वाद्यों की विविधता जितनी लोक-संगीत के साथ जुड़ी है उतनी शास्त्रीय-संगीत के साथ नहीं।

लोक-वाद्यों में स्वरों की साधना की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि शास्त्रीय-वाद्यों में है। स्वरों की सच्चाई से कानों को परिचित कराये बिना लोक-वाद्य बजाया नहीं जा सकता।

लोक-संगीत के साथ ही वादन पक्ष भी रहता है, सामूहिक रीति से नाच-नाच कर गाना ग्रामों में बहुत प्रचलित है। वादन के क्षेत्र में लय व ताल दिखलाने वाले वाद्यों का ग्राम-गीतों में अधिक उपयोग होता है। स्वतंत्र वादन का विकास लोकसंगीत में नहीं हुआ।

उत्तरभारत में लोक-संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में से ढोलक, खंजड़ी और करताल उल्लेखनीय हैं। इनमें से ढोलक सब से अधिक महत्वपूर्ण है। ढोलक में कहीं-कहीं अद्‌भुत विकास मिलता है। उसके पृथक् बोल होते हैं। कुछढोलक-वादक तो ऐसे मिलते हैं जो तबले के सदृश्य ही ढोलक पर पूर्ण विस्तार और चमत्कार दिखलाते हैं किन्तु लोक-गीतों में ढोलक पर केवललय व सरल ताल दिखलाना ही पर्याप्त होता है। यद्यपि यह कार्य भी अत्यन्त प्रभावशाली और रोचक होता है।

मनुष्यमात्र के हृदय में जो प्रधान भाव रहते हैं उनकी अभिव्यक्ति के लिये ये ताल लगभग पर्याप्त हैं। हर्ष, उल्लास, स्फूर्ति, उत्साह और वीरता आदि में कहरवा और दादरा उपयुक्त हैं।

लोक-वाद्यों को हम स्थूल रूप से चार भागों में विभक्त कर सकते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं---

१---फूंक-वाद्य, २---खाल-वाद्य ३---तार-वाद्य ४---ताल-वाद्य।

१. फूंकवाद्य

बाँसुरी——बाँसुरी का आरम्भ इस प्रकार होना प्रतीत होता है कि बाँस की नली में से किसी ने हवा को वेग से निकलते हुए देखा होगा, फिर अपने मुँह से फूंक डाल कर उसी ध्वनि को निकालने का प्रयत्न किया होगा। धीरे-धीरे वही प्रारंभिक प्रयत्न फूंक के वाद्ययंत्रों का आदि बीज बन गया। सबसे प्राचीनतम वाद्यों में बाँसुरी ही है। यह बाँस या पीतल की सबसे अच्छी होती है। इसका प्रयोग शास्त्रीय वादक भी करते हैं और लोक वादक भी। ये अपने अपने ढंग से इसे बजाते हैं। शास्त्रीय बाँसुरी की बनावट खूबसूरत और कीमती होती है। इसमें सात स्वर होते हैं। यह सामुदायिक व स्वतंत्र वाद्य है। भगवान् कृष्ण का रास और बाँसुरी अलग-अलग नहीं किये जा सकते। वे उसके बड़े प्रेमी थे। अत: बाँसुरी का संबंध कृष्ण से ही सर्वप्रथम है। यह सबसे सस्ता वाद्य है। लोक-संगीत-समाज में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

अलगोजा——यह प्रारंभिक वाद्य है। आनन्दाभिव्यक्ति के समय मुँह से सीटियाँ बजाने का विकसित रूप है। इसके कई रूप आज भी विद्यमान हैं। कई अलगोजे तीन छेदवाले होते हैं और कई पाँच छेदवाले। आदिवासियों में इस वाद्य का विशेष प्रचार है।

किसी भी बाँस की नली में लोहे की गरम सलाख से छेद कर दिये जाते हैं। बाँस की नली के ऊपर के मुँह को छील कर एक लकड़ी का गट्टा चिपका देने पर आसानी से उसमें से आवाज़ निकाली जा सकती है। प्राय: दो अलगोजे एक साथ मुँह में रख कर बजाये जाते हैं। दोनों साथ बजने से बड़े मधुर मालूम पड़ते हैं। यह दो बाँसुरियों से मिल कर बनता है।

शहनाई——फूंक वाद्यों में श्रेष्ठ और सबसे मीठा वादन शहनाई का ही होता है। इसे सदैव दो व्यक्ति बजाते हैं। यह बड़ी चिलम की आकार की होती है और शीसम या सागवन की बनती है। शहनाई सबसे अच्छी बनारस में बनती है। इसमें आठ छेद होते हैं। उसका पत्ता ताड़ के पत्ते का होता है। इसकी आवाज बड़ी तीखी और मीठी होती है। यह बहुत दूर तक सुनाई देती है। इसको हरेक व्यक्ति नहीं बजा सकता। इसको विशेषकर नागारची बजाते हैं। कभी-कभी लोकनाटक और ख़यालों के साथ भी यह बजायी जाती है। इसका जोड़ा नगाड़े का है। शादी के अवसर पर इसे बजाया जाता है। इसकी धुन फूंक के ऊपर निर्भर है। यह बहुत पुराना वाद्य है।

बीन——यह छोटी, लौकी, (घिया) अथवा तुम्बे की बनी होती है। इसकी तुम्बी एक अलग ही प्रकार की होती है। उसका पतला भाग लगभग डेढ़ बालिश्त लम्बा

होता है। तुम्बी के नीचे का हिस्सा गोल आकार का होता है। उसके नीचे के आकार में थोड़ा-सा छेद कर दिया जाता है और फिर दो पतले बाँस की दो पोरी अर्थात् दो मूँगफलियाँ ली जाती हैं। उन मूँगफलियों में से एक में तीन छेद बना देते हैं और दूसरे में नौ छेद कर देते हैं। दोनों को एक दूसरे से चिपका देते हैं। नल-बाँस लेकर दो पात बना लिये जाते हैं। वे दोनों पात उन मूँगफलियों के मुँह में बैठा दिये जाते हैं। इनमें आवाज़ पैदा होती है। फिर उन दोनों जुड़ी हुई मूँगफलियों को नल-बाँस सहित उस तुम्बी के छेद में मोम की सहायता से जमा दिया जाता है। यह भी नकसाँस से बजती है। उसमें एक अचल स्वर 'सा' के रूप में बजता रहता है। इसको सँपेरे जाति के लोग बजाते हैं। इसमें साँप को मोहित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। नाग इसको सुनकर वश में हो जाता है।

बांकिया—यह पीतल का बना होता है। अधिकतर यह मेरठ में बनता है। इसकी लंबाई १॥ हाथ के लगभग होती है। इसमें तूहड़ की आवाज़ होती है। शादी-विवाह के अवसर पर यह बजाया जाता है। यह सरगड़ों का खानदानी वाद्य है और ढोल के साथ बजता है। यह बैंड का सा साज जान पड़ता है।

शंख—शंख, शुभसूचक ध्वनि प्रसारित करने के लिए प्रयोग में आता है। यह एक जंतु का खोल है जो समुद्र में होता है। इसकी आवाज़ बड़ी गंभीर होती है और बहुत दूर-दूर तक सुनायी पड़ती है। इसको जमात वाले साधु बजाते हैं। इसका प्रयोग मंदिरों में घंटे-घड़ियाल के साथ होता है। घर में पूजा के समय या शुभ अवसरों पर भी इसका प्रयोग होता है। यह वृद्ध या साधुओं के शव के साथ भी बजाया जाता है। यह अनेक प्रकार का होता है। इसको बजाने की कई विधियाँ होती हैं। यह हृदय दहला देने वाला वाद्य है।

गोमुखा—यह पीतल का बड़ा लम्बा वाद्य होता है। यह उस समय का प्रतीक है जब राजओं की सवारी निकलती थी अथवा लड़ाई के लिए सेना चलती थी। गोमुखा उस समय आगे-आगे चलता था। यह ध्वनि तेज करने के काम में आता है। उस समय इससे 'लाउडस्पीकर' का काम लिया जाता था। अब भी बारात के आगे एक व्यक्ति लिये हुए चलता है। यह आगे से चौड़ा और पीछे से छोटा होता है। एक व्यक्ति फूँक से बजाता रहता है। उसमें आरोह-अवरोह तथा मोटा या पतला स्वर नहीं होता। आवाज़ कम या अधिक होना फूँक पर निर्भर है।

२. तारवाद्य

जो साज़ तारों के माध्यम से संगीत को व्यक्त करते हैं उनको तारवाद्य कहते हैं। इन वाद्यों में पीतल और लोहे के तार काम में लाये जाते हैं। जानवरों की सूखी आँतों और घोड़ों की पूंछ के बालों का भी प्रयोग होता है।

तारवाद्यों में तार के लम्बेपन या छोटेपन तथा ढीला करने से स्वरों का उद्भव होता है। जब कि फूंकवाद्य में फूंक देने तथा फूंक के अनुसार छेद की दूरी और नजदीकी से स्वरों की उत्पत्ति होती है। फूँक को जितना लम्बा जाना पड़ेगा, स्वर नीचा जायेगा और फूँक जितनी छोटी होगी, स्वर उतना ही ऊँचा होगा। तार की जगह यहाँ फूंक आ जाती है किन्तु लम्बाई-छोटाई का वही सिद्धांत यहाँ भी लागू होता है।

सारंगी—सारंगी तार वाद्यों में श्रेष्ठतम वाद्य है। यह प्रत्येक स्वर और प्रत्येक गायन के सौंदर्य को अभिव्यक्त कर सकती है। इनमें २७ तार होते हैं। यह तुन, सागबन, केर, रोही आदि वृक्षों की बनती है। लोक वाद्यों में इसका छोटा रूप मिलता है। किसी-किसी के माथे में खूँटियाँ होती हैं किसी-किसी में नहीं। ऊपर की तातें बकरे की आँतों की बनी होती हैं। इसमें तेरह तुरमें होती हैं। ये सब स्टील की बनी होती हैं। तातों को चार बड़े खूँटों से बाँध दिया जाता है। सारंगी को गज से बजाया जाता है। गज में घोड़े के बाल बँधे रहते हैं। लोक गायक विशेषकर जोगी लोग इस पर निर्गुन पद गाते हैं, जोगियों का यह विशेष वाद्य है। देवी-देवताओं के मंदिरों में भी बजायी जाती है। वहाँ इसके साथ वार्ताएँ भी कही जाती हैं। यहाँ शिव जी का विवाह, निहालदे, गोपीचन्द, भरथरी, आल्हा आदि गाते हैं।

एक ही स्वर पर मिले दो तारों में सामंजस्य होता है। मिले हुए दोनों तारों में एक तार बजा कर उसे अंगुली से वहीं रोक देने पर दूसरा तार स्वयमेव गूँजने लगता है। इसी सिद्धांत के आधार पर तारवाद्यों में कुछ मुख्य तारों के नीचे छोटे-छोटे तार लगे होते हैं। ये छोटे तार तरबे होते हैं।

तम्बूरा—इसको 'निशान' भी कहते हैं। कहीं-कहीं यह 'चौतारा' भी कहलाता है। इसमें चार तार होते हैं। इसकी शकल सितार या तानपूरे से मिलती-जुलती है। इसकी कुंडी तुम्बे की नहीं होती। यह सारी लकड़ी की बनी होती है। इसे बजाने वाला दाहिने हाथ से बजाता है और बायें हाथ से इसे पकड़े रहता है। यह एक उँगली से बजता रहता है। यह क्रिया तानपूरे के समान होती है। इसके साथ करताल, मंजीरे, चिमटा आदि वाद्य बजते हैं। निर्गुण पंथी जोगी लोग इस पर भजन गाते हैं।

इकतारा—यह आदि वाद्य है। इसका संबंध नारद जी से जोड़ा जाता है। ऐतिहासिक रूप से इकतारा तम्बूरे का पूर्वरूप है। इसका प्रयोग मुख्यतः भजन एवं बानियों के गाने में होता है। इकतारे के साथ अधिकतर मंजीरे व करतालों को रखा जाता है। गोसाईं, नाथपंथी, साईं, जोगी आदि इसका अधिक प्रयोग करते हैं। यह सस्ता वाद्य है। एक छोटे गोल तुम्बे को लेकर उसमें बाँस फँसा दिया जाता है।

थोड़ा सा हिस्सा काट कर बकरे की खाल से मढ़ देते हैं। बाँस के नीचे एक तार बाँध दिया जाता है। उस तार को खूँटी से कस देते हैं। कोई-कोई लोग इसमें दो-तीन तार भी बाँध लेते हैं। तार पर उँगली से ऊपर नीचे चोट करते हुए इसे बजाते हैं। बाँस या नीचे का भाग भारी और ऊपर का हल्का होता है। इकतारा एक हाथ में ही पकड़ कर बजाया जाता है। दूसरे हाथ में करताल रखते हैं।

प्राय: देखा जाता है कि तारवाद्यों को दो प्रकार से उपयोग में लाया जा सकता है। एक तो गज के द्वारा संचालित होते हैं तथा दूसरे अँगुली, मिजराब आदि अन्य किसी वस्तु के आघात से स्वरों को झंकृत करते हैं।

३. खाल-वाद्य

जिन वाद्यों में खाल का प्रयोग होता है उनको खालवाद्य नाम दिया गया है।

नगाड़ा——यह वाद्य एक ओर मढ़ा हुआ होता है और इसमें भैंस का चमड़ा काम में लिया जाता है। नगाड़ा लकड़ी की चोट से बजाया जाता है। इसके बोल भी निश्चित नहीं हुए हैं। यह गतिपूर्ण ढंग से लय की अनुभूति देते हैं। यह नौबत की ही तरह का होता है। उसके साथ इसी की शक्ल की नगाड़ी होती है जिसका उसके साथ जोड़ होता है। नगाड़ी को मादा और नगाड़े को नर कहते हैं। यह दोनों ही प्राय: साथ बजते हैं। नगाड़े में हर प्रकार के ठेके बजते हैं। यह बहुत सुन्दर लगता है। इस जोड़े का उपयोग इन सब जगहों पर होता है। शादी में प्राय: यह एक माह से पहले ही बजाये जाते हैं। नौटंकी, रामलीला आदि में भी यह बजाये जाते हैं। यह बड़े-बड़े मन्दिरों में बजता है। नगाड़ी छोटे पाड़े या बकरे की खाल की मढ़ी होती है। नौबत, नगाड़ा और नगाड़ी तीनों एक ही शकल पर हैं पर छोटे-बड़े के विचार से इनका नाम अलग-अलग है। नगाड़े के साथ शहनाई भी बजती है। नगाड़ा एक विशेष जाति बजाती है तथा कोई-कोई इसे बजाने के लिये प्रसिद्ध भी होता है।

ढोल——यह साज अधिकतर नाच के साथ या स्वतंत्र रूप से बजाया जाता है। यह अनेक प्रकार के होते हैं। यह हर जगह अपनी ही तरह का होता है। इसकी ध्वनि भी दूर तक जाती है। घोष भी बहुत देर तक और गहरा गूँजता रहता है। इसीलिए इसे सामूहिक नृत्यों में और शादी-विवाह में उपयोग किया जाता है। ढोल का सामाजिक जीवन से बहुत संबंध है। विशेष अवसरों पर इसके घोष का अत्यन्त आनंद उठाया जाता है।

ढोल का चमड़ा बकरी या बकरे का होता है। ढोल को कभी एक हाथ व एक लकड़ी और कभी-कभी दोनों ओर लकड़ियों से बजाया जाता है। सूत या सन की रस्सी से इसे कसा जाता है। इसकी आवाज़ गंभीर हो जाती है। यह एक मांगलिक

वाद्य है। बहुत स्थानों में हर त्यौहार और हर घर में बजता है। इसके लिए ऊँच-नीच का प्रश्न नहीं। शादी में भी अक्सर बजता है। इसको मृत्यु संस्कार के समय भी शोक समाप्त करने के लिये बजाते हैं। बारात को बिदा करने के लिये बजाते हैं। शुभ अवसरों पर इसका प्रथम बार उपयोग करने के समय पूजन होता है। मौली (कलावा) बाँधते हैं और स्वस्ति चिह्न बनाते हैं। इस पर नृत्य भी करते हैं। इसको दो लोग साथ-साथ बजाते हैं। होली आदि के अवसर पर होने वाले नृत्यों में इसका प्रयोग होता है।

नौबत—शहनाई के साथ बजने वाले दो छोटे नगाड़े होते हैं। एक बड़ा और एक छोटा। बड़ा नर और छोटा मादा होता है। इन दोनों को दो लकड़ियों से बजाया जाता है। इसके बोल भी बहुत विकसित हैं। इनमें तालों को बजाने का विधान है। शहनाई के साथ नौबत का भी खूब विकास हुआ है। इन नगाड़ों को भैंसे के चमड़े से मढ़ा जाता है। पूरे भैंसे की खाल इसके लिए पर्याप्त होती है। इसकी कुंडी सर्वधातु की बनी होती है। यह वाद्य चमड़े की रस्सी से गूँथा जाता है अर्थात् कसा जाता है। यह करीब ४ फीट ऊँची होती है। बबूल या सीसम की चोब से यह बजती है। बजाने वाले के दोनों हाथों में चोब रहती है। अच्छी नौबत की आवाज़ ३-४ मील की दूरी तक चली जाती है। पहिले किसी युग में यह वाद्य युद्ध के समय बजाया जाता था। वहाँ यह गाड़ी में या हाथी पर रहती थी। युद्ध में यह सबसे आगे रहती थी। इस पर ८ मात्रा का ठेका भी लगता है। इसकी आवाज़ में बड़ी गंभीरता रहती है। इसकी खाल के भीतर राल, हलदी, तेल (पकाकर) लगाया जाता है। आजकल बड़े मंदिरों में इसका उपयोग होता है। राजा-महाराजों के यहाँ अक्सर सुबह, शाम और दोपहर को यह बजा करती थी।

चंग—होली के अवसर पर गाने वाली टोली के पास एक गोलाकार एक ओर से मढ़ा हुआ वाद्य रहता है। इसे चंग कहते हैं। यह एक ओर बकरे की खाल से मढ़ा होता है। इसको मढ़ने में रस्सी आदि कोई वस्तु काम में नहीं ली जाती। जौ के आटे की लेही बनाकर घेरे में लगा देते हैं और उसके ऊपर खाल चिपका देते हैं फिर उसे छाया में सुखाकर काम में लाते हैं। इसको कंधे पर रखकर बजाते हैं। इसको दाहिने हाथ से पकड़ कर उसी से चिमटी मारते हैं जो नाड़ी का काम करती है और बाएँ हाथ से बजाते हैं। होली के दिनों में प्रायः हरेक जाति के लोग इसे बजाते हैं। इस पर धमालें और चलत के गीत चलते हैं। इसको ढप्प भी कहते हैं। चमार होली के दिनों में इसका प्रयोग करते हैं। चंग की सबसे प्रिय ताल कहरवा है। कहरवे के सुंदर और गतिवान बोल, चंग को अत्यन्त मधुर और आकर्षक बना देते हैं। चंग को बाएँ हाथ में उठाकर हथेली पर जमा लिया जाता है। बाएँ हाथ की उँगली

में लकड़ी की एक चीप रहती है और दाहिने हाथ से उस पर बोल निकाले जाते हैं। चंग पर भेंड़ का चमड़ा भी काम में लाया जाता है। डफ़ उत्तर प्रदेश में चलने वाली चंग का ही एक रूप है। इसको आधी ढोलक कह सकते हैं। इसका घेरा ढोलक से बड़ा होता है।

ढोलक—इस वाद्य का सबसे अधिक प्रचलन है। प्रायः सभी प्रकार की तालें बजायी जा सकती हैं। यह आम या बड़ की लकड़ी से बनती हैं। इसकी मढ़ाई ढोल की तरह होती है, तथा यह बकरे की खाल से मढ़ी होती है। इसके दोनों मुँह बराबर होते हैं। बीच का भाग चौड़ा होता है। सिरे पर कुछ चूड़ी उतार होते हैं। ढोलक को रामलीला वाले बैरागी, तुर्रा, कव्वाली तथा ख्यालों में बजाते हैं। कठपुतली वाले और नट भी इसे बजाते हैं। यह नारी समाज में भी बहुत प्रचलित है। इसके साथ मंजीरा बजता है। ढोलक को रस्सियों से जकड़ कर ऐसा शिकंजा तैयार किया जाता है कि वह आसानी से ढीली और कसी जा सकती है। ढोलक भी कई प्रकार से बनायी जाती है। लोकगीतों में ढोलक का सहयोग बहुत आवश्यक है। ढोलक के ऊपर पैसे से टेक दी जाती है तथा घुंघरू हाथों में बाँध कर भी बजाये जाते हैं। विवाहादि अवसर पर प्रारंभ तथा अंत में इसका पूजन भी होता है। यह शुभ अवसर का चिह्न है। 'ढोलक बजना' आनंद का द्योतक है। दक्षिण और पश्चिम में ढोलक का परिवर्तित रूप डप्प काम में लाया जाता है। ढोलक को स्त्रियों और पुरुषों में समान रूप से आदर मिला है। खड़ीबोली प्रदेश में दो तालें प्रचलित हैं—खड़ी ताल तथा बैठी ताल।

चंगड़ी—आकार में चंग से छोटी होती है और चंग की तरह ही भेंड़ की खाल से मढ़ी, लेकिन इसकी लकड़ी में पीतल व काँसे के घुंघरू और झाँझ लगे होते हैं। झनकार की आवाज़ इसका विशेष सौंदर्य है।

खंजरी—यह एक ओर से मढ़ी हुई होती है। बकरे का चमड़ा काम में लिया जाता है। भिखारी अपने गाने के साथ बजाते हैं। कभी-कभी ढोलक के साथ भी बजाते हैं। इस को भी चंग की तरह बजाया जाता है। लेकिन उँगली या हथेली के भाग को चमड़े पर टिकाया नहीं जाता। भजन में इसका विशेष प्रयोग होता है।

डमरू—डमरू का संबंध भगवान् शिव से है। इस दृष्टि से यह बहुत पुराना वाद्य है। यह प्रायः मदारियों के पास देखा जाता है। एक छोटे से आकार का डमरू दोनों ओर से मढ़ा होता है और बीच में पतले हिस्से पर दो डोरियाँ बँधी रहती हैं जिनके किनारों पर बंधी दो मोम की गोलियाँ चमड़े पर पड़ती हैं और उससे ध्वनि निःसृत होती है। इसमें गति का ही क्रम अथवा लय की अनुभूति

होती है। इसके साथ वह बाँसुरी भी बजाते हैं। यह केवल धाराप्रवाह बज सकता है और एक खास प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता है। मिट्टी के डमरू बहुत छोटे होते हैं अतः मदारी लोग प्रायः काठ के ही डमरू प्रयोग में लाते हैं। यह बहुत सरल वाद्य है। इसे बजाने के लिये विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं होती।

मटकी——मटकी वादन में मटकियों के चुनाव में बहुत बुद्धिमानी की आवश्यकता है। मटकी जितनी ही अधिक पकी हुई और मजबूत होगी उतनी ही उसमें मधुर और झंकारवाली आवाज़ निकलेगी। आगरा, मथुरा की काली मटकियाँ इसके लिए बहुत अधिक उपयुक्त हैं। मटकी बजाने के लिये तबला तथा ढोलक का ज्ञान आवश्यक होता है। मटकी का पेट तो दाहिने हाथ से बजाये जाने वाले तबले का काम देता है और मुँह पर हथेली से थाप मारने से मटकी के गर्भ से गंभीर आवाज निकलती है। कुछ लोग हाथ में घुँघरू बाँध कर भी मटकी बजाते हैं। इससे ताल के साथ नृत्य का प्रभाव भी उत्पन्न होता है। मटकी को खाली हाथ में कंकर लेकर चटकारी से भी बजाया जाता है और कहीं-कहीं इसे बकरे के चमड़े से एक ओर मढ़ कर भी बजाते हैं। कुछ लोग मटकी के मुँह पर ही थाप देकर काम निकाल लेते हैं। यह सर्वसुलभ तालवाद्य है।

४. तालवाद्य

ताल देने के लिये एक ही प्रकार की आवृत्ति से बजने वाले वाद्यों को 'आधे साज' माना गया है क्योंकि इनमें 'ताल' देने की क्षमता तो है ही पर स्वर देने की नहीं। फिर भी यह अपने आप में मधुर होते हैं। इनमें मुख्यतया निम्नलिखित वाद्यों को ले सकते हैं——

काँसी की थाली और काँसी की ही तासक भी होती है। इन आधे साजों का महत्व बहुत देर तक गूँजती रहने वाली झनकार में है। यह मंदिरों में विशेषतौर पर आरती के समय काम में ली जाती है। पुत्र-जन्म के अवसर पर फूल की थाली बजाने की प्रथा है और इसे बहुत शुभ मानते हैं। मंदिरों में विभिन्न प्रकार की आवाज़ों को एकत्रित करने के लिए घंटा, झाँझ, कटोरों, घंट, घड़ियाल आदि भी काम में लिये जाते हैं।

इन वाद्यों में घुँघरुओं के प्रकारों को भी ले लेना चाहिये। काँसी और पीतल के मिश्रण से अच्छे घुँघरू बनते हैं। छोटे-छोटे आकार के घुँघरू को रमझोल कहते हैं। स्त्रियाँ पैरों में पहनती हैं। साधु आदि कमर में भी पहन लेते हैं। इनका काम केवल आवाज़ भर देना होता है।

मजीरा——यह पीतल और काँसी की मिली हुई धातु का बना होता है। दो

मंजीरों को आपस में टकराया जाता है। यह निर्गुणी भजनों के साथ तम्बूरे-इकतारे के साथ भी बजता है। ढप और ढोल के साथ भी बजता है। इसकी ध्वनि बहुत मधुर होती है। भजनों के साथ तथा होली के गीतों में भी बजाया जाता है। मंजीरे छोटे-बड़े दोनों प्रकार के होते हैं।

झाँझ—एक छोटे मंजीरे की बड़ी अनुकृति है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई एक फुट के लगभग होती है। झाँझ का प्रयोग अधिकतर मंजीरे, ढोलक, चिमटा आदि के साथ होता है।

खड़ताल—यह शब्द करताल से बना है जिसका अर्थ है हाथ की ताल। सामूहिक गान के साथ ताल की सर्वाधिक जनश्रुत बनाने के लिये खड़ताल की उत्पत्ति की गयी। यह लोकवाद्य भारत में बहुत स्थानों पर प्रचलित है। यह लगातार एक ही लय की ताल देने में प्रयुक्त होता है। कोई भी व्यक्ति थोड़े से अभ्यास से इसे बजा सकता है। बहुधा यह वाद्य साधु-संतों तथा भक्तजनों का है। खड़ताल भक्तों का ही सबसे प्रिय वाद्य है। यह मधुर वाद्य नहीं है। इसके साथ पीतल की जो गोल-गोल कटी हुई छोटी-छोटी तश्तरियाँ होती हैं उनकी झंकार इसे मधुर बना देती है। खड़ताल वैयक्तिक गाने के साथ इतना अच्छा नहीं लगता। यह तो सामूहिक गान के साथ ही शोभित होता है। खड़ताल के साथ मंजीरे एवं इकतारा विशेषकर बजते हैं। खड़ताल और इकतारे का मेल है। भक्ति के गीतों के साथ ही खड़ताल वादन की परम्परा चल पड़ी है। दूसरे गीतों के साथ खड़ताल वादन प्रायः नहीं होता। प्रत्येक भक्त के घर में यह वाद्य मिल जाता है। इसके अतिरिक्त आजकल दो लकड़ियों के छोटे टुकड़ों को हाथ में लेकर भी ताल देते हुए देख सकते हैं। बालक खेलते समय इनका प्रयोग करते हैं तथा स्त्रियाँ नाचते समय। अभी हमने यहाँ कुछ मुख्य वाद्यों का ही उल्लेख किया है। कुछ अनावश्यक वाद्यों को छोड़ दिया है यथा: बाल्टी, डंडे, घंटी, चिमटा, आदि।

लोकगीतों की भाँति अभी इन वाद्यों का भी वैज्ञानिक सर्वेक्षण होना शेष है। जीवन से संगीत और संगीत से वाद्य अधिक दूर नहीं हैं। अब अनेकों वाद्य तबला, हारमोनियम आदि भी गाँवों में काम में आने लगे हैं।

मनुष्य अपने प्राण के साथ ताल को भी ग्रहण करता है। शास्त्रीय संगीत में बिना ताल के गायन नहीं हो सकता। उसी प्रकार लोकगीतों में भी उनका होना अत्यावश्यक है। शास्त्रीय संगीत की उत्तर भारतीय प्रथा में मुख्यतया तबला, पखावज व मृदंग ताल के लिये संगत में प्रयुक्त होते हैं। लोकगीतों में ताल की

चित्र सं० ३
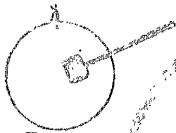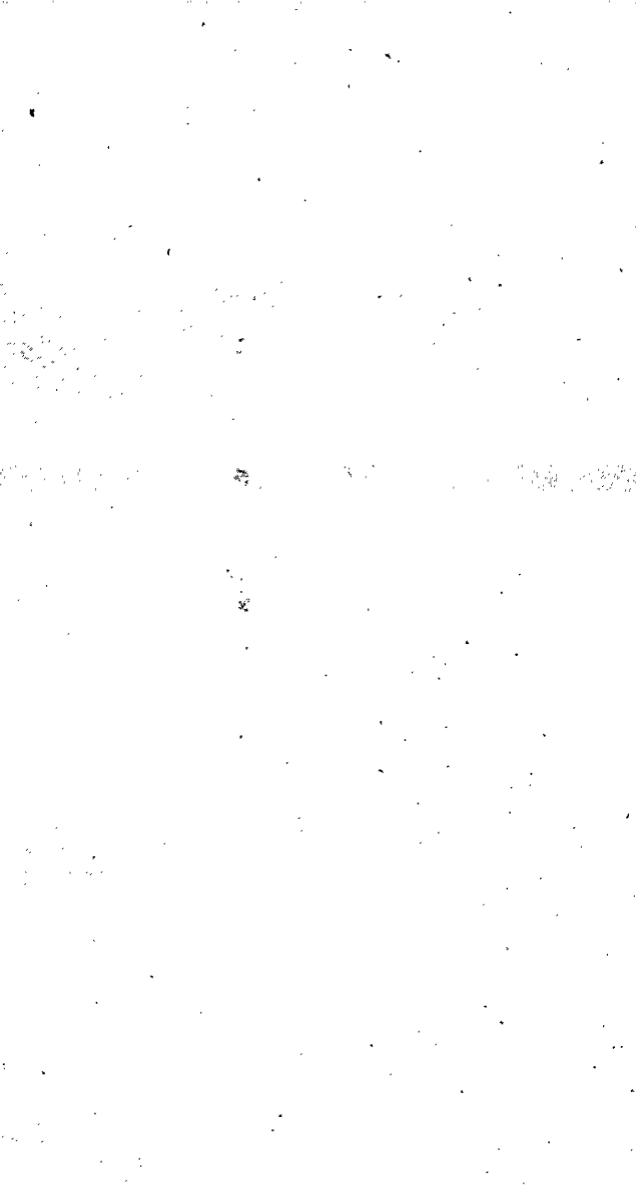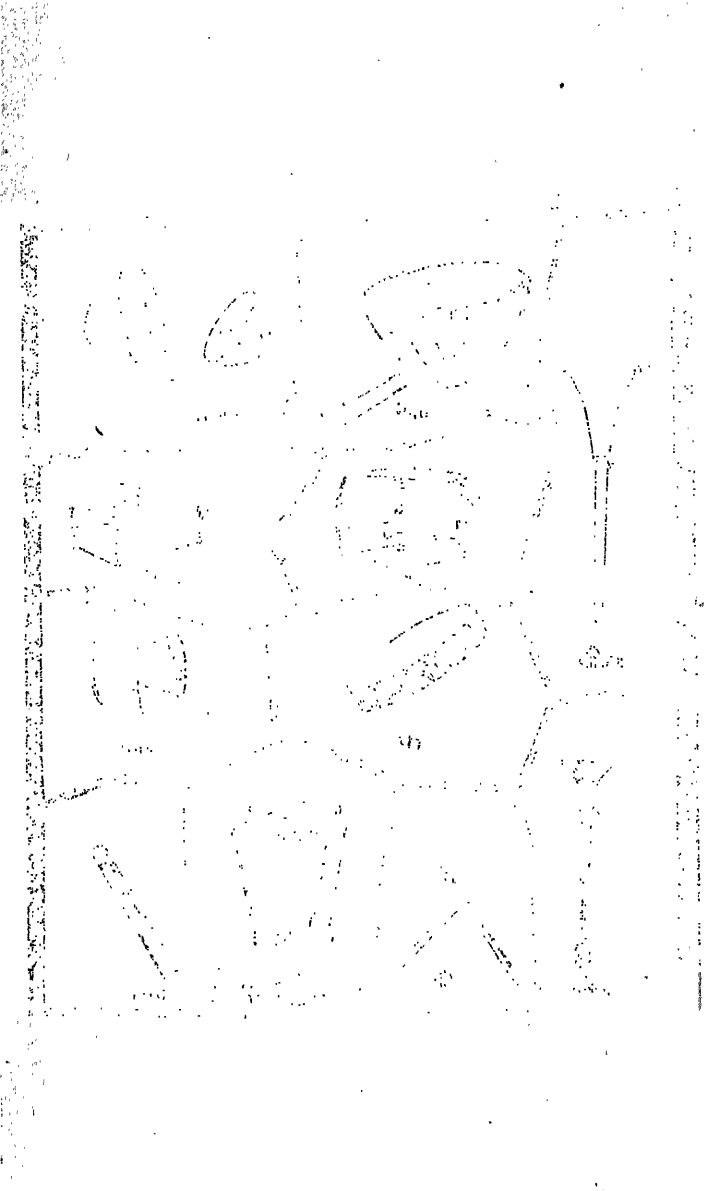
दृष्टि से ढोलक, ढोल, मंजीरे, नगारे, चंग, ढप्प, आदि कितने ही वाद्य हैं। इन वाद्यों के द्वारा लोकगीतों में भी निश्चित बंधन आ जाता है।

लोकगीतों में तालों का ठीक उतना ही कठिन जाल फैला है जितना शास्त्रीय ताल-वाद्यों में। सामूहिक लोक गीतों में तो ताल ही प्रमुख रहती है। ताल का संगीत में वही महत्व है, जो भाषा में व्याकरण का है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों के गाये जाने के अवसर पर लोकवाद्यों का बहुत महत्व है। इनका निर्माण गायन के लिये तथा इनकी सुविधा के लिये व सरस और सरल बनाने के उद्देश्य से ही किया जाता है।

खड़ीबोली
की
लोककथा
४

लोककथा विश्व व्याप्त है । इसके अन्तर्गत समाज अथवा देश-विदेश की परंपराएँ सुरक्षित हैं। वास्तव में लोककथाएँ नाना रूपों में लोकजीवन को आच्छादित किए हुए हैं। आदिकाल से ही उनका गठबन्धन मनुष्य की चेतना से चला आ रहा है। "मानव के सुख-दुख, प्रीति-शृंगार, वीर-भाव और वैर इन सब ने खाद बना कर लोककथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा-उपासना आदि इन सबसे कहानी का ठाट बनता और बदलता रहता है। कहानी मनुष्य के लिये अपूर्व विश्रान्ति का साधन है। मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव-समाज का प्राचीन रसायन है।[1]"

आधुनिक कथा की भाँति लोककथा को अपने शृंगार के लिये विचार-कल्पना तथा कला-सौष्ठव की आवश्यकता नहीं हुई। न जाने कब लोककथा गंगा के प्रवाह की भाँति, काल के पर्वतों से निकल कर मैदान में आ गई तथा किस शिव ने इसको सबसे पूर्व अपनी जटाओं में धारण किया है कि आज तक वह हर देश व हर समाज में उसी प्रकार से प्रवाहित है। लोककथा मौखिक रूप से ही प्राप्य है। लिखित रूप में लोककथा कहीं भी उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि लोककथा की यह विशिष्टता रही है कि इसका स्थूल रूप परिवर्तनशील है। हर कहानी कहनेवाला कहानी के तथ्यों के अतिरिक्त उसके शाब्दिक तथा भावनात्मक रूप को अपने प्रकार से बदल कर कहता है। कभी-कभी ये भी देखने में आता है कि लोककथाओं के तथ्यों में भी प्रादेशगत अथवा व्यक्तिगत रूप में परिवर्तन हो जाते हैं।

'मानस शास्त्र के तत्वज्ञों का कहना है कि मानव मन में जो शाश्वत बाल-भाव समाया रहता है, उसकी भाषा, उसका साहित्य, उसकी भावाभिव्यक्ति कथा ही है।[2]'

लोक-साहित्य में लोकगीतों के बाद, लोककथाओं का ही स्थान है। गद्य और पद्य में इन दोनों का समान महत्व है। खड़ीबोली के लोक-साहित्य तथा जन-समाज में भी हम लोककथाओं का वही स्थान पाते हैं जो अन्य प्रान्तों

---

१. लोककथा अंक—'आजकल' मई १९५४, लोककथाएँ और उनका संग्रहकार्य—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ९

२. लोकसाहित्य की भूमिका—सत्यव्रत अवस्थी, पृ० ७१ ।

के लोक-साहित्य में है। इसका मूल कारण यही है कि लोक-जीवन में उनके आचार-विचार सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों तथा बोली में विषयगत तथा स्वरूप-गत भेद होने पर भी उनकी आत्मा की सरलता और स्वाभाविकता समान रहती है। कहानी का जन्म तो बालक के जन्म के साथ ही हो जाता है। जब बालक पैदा हुआ होगा और उसने होश सँभाला होगा तो उसकी संसार के संबंध में जानने की जिज्ञासा जाग्रत हुई होगी। उस समय उसको अपने गुरुजनों से कहानी के द्वारा ही बीते हुए युग की कथा का परिचय मिला होगा।

'कहानी समस्त वाङ्मय की आद्या है। मौखिक या लिखित साहित्य का कोई रूप ले लें तो उसके मूल में कोई न कोई सूक्ष्म कथा अवश्य मिलेगी। यह कहना अयुक्त न होगा कि मानव की विश्व के व्यापारों के प्रति जो प्रथमाभि-व्यक्ति वाचिक या कायिक हुई होगी वह एक कहानी रही होगी। मैं और 'तुम' इन दो शब्दों में भी एक कहानी है।[1]'

'लोक-मानस ज्ञान को कहानी के रूप में ही स्वीकार करता है। जो ज्ञान कहानी के रूप में सरल नहीं वह लोकमानस में नहीं पचता। मानव जाति बुद्धि का कितना ही विकास कर ले वह प्रत्येक नई पीढ़ी में बाल-भाव से ही जीवन-चक्र का आरम्भ करती है। बाल-भाव की शिक्षा-दीक्षा, रुचि और विचार का एक मात्र आश्रय कहानी है।[2]'

इन लोककथाओं में लोक-मानव की सब प्रकार की भावनाएँ, परम्पराएँ तथा जीवन दर्शन समाहित है। भूत जानने की जिज्ञासा, घटनाओं का सूत्र, कोमल व परुष भावनाएँ, सामाजिक-ऐतिहासिक परम्पराएँ, जीवन-दर्शन के सूत्र सभी कुछ लोककथा में मिल जाते हैं। इन लोककथाओं का अध्ययन करने के लिये एक ऐसी भूमि की आवश्यकता होगी जिसके आधार पर हम खड़ीबोली प्रदेश की उपलब्ध लोककथाओं का अध्ययन कर सकें। इसीलिए यह देखना आवश्यक होगा कि किस वर्गीकरण को अपनाया जाय जो अध्ययन को अधिक सुगम और सरल बना सके। वैसे तो लोककथाएँ एक दूसरे से इतनी अधिक संबंधित हैं कि उनका कक्षीय (Water tight Compartment) वर्गीकरण करना बहुत कठिन है। परन्तु फिर भी कुछ वर्गीकरणों को हम यहाँ पर देखेंगे। सबसे पहिले डॉ० स्टिथ थौम्पसन (Stith Thompson) का वर्गीकरण लेते हैं। इसी वर्गीकरण के उन्होंने दो आधार माने हैं—प्रथम, सरल कथाएँ और द्वितीय जटिल कथाएँ।

---

१. हरियाना प्रदेश का लोक-साहित्य—शंकरलाल यादव, पृ० ३३७।
२. भारत की लोककथाएँ—सीतादेवी, भूमिका—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ५।

सरल कथाएँ—इस प्रकार की कथाओं के अन्तर्गत वह सब कथाएँ आती हैं जिनका कथानक सीधा व सरल होता है। प्रारम्भ से अंत तक एक सा चलता है। इस प्रकार की कथाओं में चरम बिन्दु, एक से अधिक स्थानों पर नहीं आता। न इसमें अधिक घुमाव-फिराव ही होते हैं। इस प्रकार की कथाओं में पात्र भी उतने ही रहते हैं जितनों से कहानी का काम चल जाता है। अन्तर्कथाओं तथा संबंधित कथाओं का भी यहाँ पर नितान्त अभाव रहता है। इनमें एक ही अभिप्राय होता है तथा ये शिक्षाप्रद, गृहस्थजीवन तथा जाति आदि से संबंधित कहानियाँ होती हैं, नीतिवाणी तथा जीवन के साधारण अंग भी निहित रहते हैं। मूर्खों की, धोखे की, ठगों की, बुरी पत्नी, सौतेली माँ, लंगड़े, गंजे, बहरे, आलसी पति, आलसी दोस्त तथा अतिशयोक्तिपूर्ण कथाएँ इसके अन्तर्गत ही आती हैं, उदाहरणार्थ—चालाकी में बनिया, नाई की चालाकी, चटोरी जाटनी, जाट की उरली परली बात, कुम्हार आदि सामाजिक तथा जातिगत कहानियाँ हैं। पशु-पक्षी संबंधी कहानियों में 'सोने के बाल वाला बंदर, सोने का जौ, आदि कहानियाँ हैं। इसी प्रकार 'राम नाम का महत्व, विष्णु भगवान के दर्शन, लक्ष्मी और दलिद्दर, कहानियाँ धार्मिक कहानियों के अन्तर्गत आती हैं।

जटिल कथाएँ—इनका कथानक जटिल होता है। इनमें सहायता व पुष्टि के लिये अन्य अन्तर्कथाएँ व संबद्ध कथाएँ रहती हैं। कथानक में कई बार उतार-चढ़ाव आ जाते हैं तथा जटिलता बढ़ जाती हैं। कथानक के निर्वाह के लिये नये-नये पात्र आते चले जाते हैं तथा कहानी और नायक के ऊपर विभिन्न प्रकार से प्रभाव डालते हैं। इनमें अमानवीय शक्तियों तथा अलौकिक शक्तियों अधिक होती हैं। लेकिन अंत में नायक ही विजय प्राप्त करता है। इसके अन्तर्गत परियों की कहानियाँ, जादू की कहानियाँ, व दानों की कहानियाँ आती हैं। प्रेमकथाएँ, भाग्य-संबंधी, ईमानदारी, भगवान् का न्याय, और सजायें, चालाकी आदि तत्व इस प्रकार की कहानियों में बहुधा उभरते हैं।

खड़ीबोली प्रदेश में उपलब्ध और संग्रहित लोककथाओं में से कुछ कथाओं के नाम हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। जटिल कथाएँ अधिकतर ऐतिहासिक, अलौकिक तथा धार्मिक कथाओं में ही उपलब्ध हैं। रोटी का दान, राजा हरिश्चन्द्र, अंजनादेवी आदि धार्मिक कथाएँ इसी प्रकार की कथाएँ हैं—अलौकिक कथाओं में 'गुलबकावली' 'झिलमिल का पेड़', 'अमीजल' तथा 'बाबा जी' की कहानियाँ हैं। यह कहानियाँ जटिल कथाओं के अन्तर्गत रखी जाती हैं। सरल और जटिल कथाओं पर विस्तार से विचार करना तो कठिन होगा। केवल हमने यहाँ संकेत मात्र किया है वैसे भी यह वर्गीकरण बहुत अधिक स्थूल रूप में हमारे सामने आता

है तथा केवल कहानी की प्रकृति तथा उसके कथानक और विकास पर ही प्रकाश डालता है। उपलब्ध कथाओं के अन्य गुण इसमें आंशिक रूप से ही मुखर होते हैं इसी कारण इसके आधार पर किया गया वर्गीकरण पूर्ण नहीं माना जा सकता।

वर्गीकरण—डॉ० गौरीशंकर सत्येन्द्र तथा डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने-अपने प्रबन्धों में लोक-कथाओं के वर्गीकरण किये हैं। ये वर्गीकरण अपने-अपने प्रदेश में उपलब्ध लोक-कथाओं के आधार पर ही किये गये हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक 'ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन' में लोक-कथाओं का निम्नांकित वर्गीकरण किया है—[1]

१—गाथाएँ २—पशु संबंधी अथवा पंचतंत्रीय
३—परी की कहानियाँ ४—विक्रम की कहानियाँ
५—बुझौवल ६—निरीक्षण गर्भित कहानियाँ
७—साधु-पीरों की कहानियाँ

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भी भोजपुरी प्रदेश में उपलब्ध लोककथाओं का वर्गीकरण अपनी पुस्तक 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन' में इस प्रकार से किया है—[2]

१—उपदेशात्मक २—मनोरंजनात्मक
३—व्रतात्मक ४—प्रेमात्मक
५—वर्णनात्मक ६—सामाजिक

डॉ० सत्येन्द्र का वर्गीकरण यद्यपि हर दृष्टि सुगठित सुन्दर तथा उपयुक्त है, परन्तु उनका वर्गीकरण हमारे प्रदेश के वर्गीकरण से मेल खाता सा नहीं लगता। इसके दो कारण हैं—प्रथम, हमने लोक-गाथाओं का अध्ययन प्रथक् अध्याय में किया है जिस कारण लोकगाथाएँ हमारी लोक-कथाओं के इस वर्गीकरण में स्थान नहीं पा सकेंगी। यद्यपि हमारे प्रदेश में पंचतंत्रीय कहानियों से कुछ भिन्न पशु-पक्षी संबंधी लोक-कथाएँ मिलती हैं परन्तु वे सब कहानियाँ पशु-पक्षी संबंधी ही हैं इसलिए इनका हमारे वर्गीकरण में विशिष्ट स्थान है। डॉ० सत्येन्द्र ने विक्रम संबंधी कथाओं के दो भाग किये हैं—एक, ऐतिहासिक पुरुष पर आधारित लोक-कथाएँ हैं दूसरी, अन्य किसी भी राजा के विक्रम की कहानियाँ हैं। परन्तु खड़ीबोली प्रदेश में विक्रम से अलग भी इतिहास संबंधी कहानियाँ उपलब्ध हैं इसलिए उन सब को ऐतिहासिक

१. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, डॉ० सत्येन्द्र, पृ० ८३
२. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय पृ० ४१४

कहानियाँ मानना ही उपयुक्त रहेगा। परियों, दानवों, तथा सिद्ध पुरुषों की कहानियाँ अपने अन्दर अलौकिक तत्व लिये हुए हैं, इसलिये उन सबको भी अलौकिक कहानियों के वर्ग में रखने से सुविधा रहेगी।

इसी प्रकार यदि हम डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के वर्गीकरण पर विचार करें तो हम पायेंगे कि प्रेम संबंधी कथाएँ हमारे प्रदेश में बहुत प्रचलित नहीं हैं और जो हैं भी उनको सुनाना परम्परा के विरुद्ध माना जाता है। यहाँ तक कि तोता-मैना की कथा भी इस प्रदेश में बहुत कम सुनायी जाती हैं। यदि सुनायी भी जाती हैं तो एक विशेष प्रकार के वर्ग में। इसी कारण अपने वर्गीकरण में उनको हम अलग स्थान नहीं दे पाये हैं। इस प्रदेश में धर्म का बहुत प्रभाव होने के कारण त्यौहार, व्रत, उपदेश तथा पौराणिक कहानियाँ बहुत उपलब्ध हैं, उनको हम अपने वर्गीकरण में धार्मिक कथाओं के अन्तर्गत ही स्थान देंगे। स्थानीय, जातिगत, बालकों संबंधी कथाओं को भी हम सामाजिक कहानियों में ही स्थान देंगे। अपने प्रदेश की कहानियों का वर्गीकरण करने में हमने डॉ० सत्येन्द्र जी के वर्गीकरण से अवश्य सहायता ली है परन्तु एकत्रित सामग्री के वर्गीकरण की सुविधा के कारण हमारा वर्गीकरण उनसे कुछ भिन्न हो गया है। यही बात डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के संबंध में कही जा सकती है। ऊपर कही गयी सब बातों को ध्यान में रख कर अध्ययन की सुविधा के लिए हमने निम्नलिखित वर्गीकरण किया है। लोककथा से संबंधित संग्रहित सामग्री को हम सात वर्गों में विभाजित करेंगे—

१—धार्मिक कथाएँ २—ऐतिहासिक कथाएँ
३—अलौकिक कथाएँ ४—सामाजिक कथाएँ
५—नीति कथाएँ ६—हास्य कथाएँ
७—पशु-पक्षी संबंधी कथाएँ

१. धार्मिक कथाएँ—धार्मिक कथाओं को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—अ—व्रत-त्यौहार तथा अनुष्ठान संबंधी लोक-कथाएँ; आ—देवी-देवता संबंधी लोक-कथाएँ।

व्रत-त्यौहार तथा अनुष्ठान संबंधी लोक-कथाओं के अन्तर्गत दो प्रकार की कथाएँ हैं—पहली वह कथाएँ, जो अनुष्ठान अर्थात् विधि-विधान से संबंधित हैं। इन कथाओं में अहोई अष्टमी, संकटचौथ, करवाचौथ, बड़मावस तथा भइया-दूज की कथा आती है। दूसरी कथाएँ वह हैं जिनमें अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती। इनमें सोमवार मंगलवार आदि वारों की कथाएँ हैं तथा कातिक-स्नान की कथा भी इन्हीं में आती है। अधिकतर इनमें कहानी सुनना उतना आवश्यक नहीं होता जितना अनुष्ठान संबंधी कथाओं में होता है।

देवी-देवता संबंधी लोक-कथाओं में राम-कृष्ण, चुटक विनायक, शिव-पार्वती, अंजना, शनि, सूर्य आदि की कथाएँ आती हैं।

२. ऐतिहासिक कथाएँ—इनमें ऐतिहासिक पुरुषों से संबंधित कथाएँ हैं, यथा—वीर विक्रमादित्य, राजा भोज, सिकन्दर, औरंगजेब तथा अकबर आदि। इन सबकी आगे सविस्तार विवेचना भी की गयी है।

३. अलौकिक कथाएँ—इस प्रकार की कथाओं का संबंध अमानवीय शक्तियों से है, जिन्होंने लोकमानस के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। इन कथाओं में दानों, परियों, तथा सिद्ध पुरुषों के चमत्कार देखने को मिलते हैं।

४. सामाजिक कथाएँ—इन कहानियों के अन्तर्गत हमने समाज से संबंधित भिन्न-भिन्न प्रकार की कहानियाँ ली हैं यथा—स्थानों से संबंधित (स्थानीय कथाएँ); बालकों से संबंधित (बाल-कथाएँ); जाति कथाएँ तथा सामान्य या फुटकर कथाएँ।

५. नीति-कथाएँ—नीतिकथाओं के अन्तर्गत समाज में प्रचलित नीति-वाक्य तथा कहावतों से संबंधित कथाएँ हैं। वास्तव में यह कहावतें या नीति वाक्य किसी न किसी कहानी के चरम-वाक्य रहे हैं।

६. हास्य-कथाएँ—ये कथाएँ शेखचिल्ली तथा अन्य हास्यप्रद कथाओं से संबंधित हैं, जिनसे समाज का मनोरंजन होता है।

७. पशु-पक्षी सबंधी कथाएँ—पशु-पक्षी से संबंधित कथाओं में पशु-पक्षी मनुष्य की बोली बोलते हैं। यह मनुष्य से भिन्न होते हुए भी उसके अभिन्न अंग हैं।

धार्मिक कथाओं के अन्तर्गत व्रत-त्यौहार, अनुष्ठान, वार तथा देवी-देवता संबंधी कथाएँ आती हैं। धार्मिक कथाओं का प्रसार लोक-मानव के अन्तर तथा वाह्य जीवन पर इतना अधिक है कि उसके जीवन के सब कार्यकलाप उन कथाओं द्वारा प्रेरणात्मक शक्ति पाते हैं।

इन लोक-कथाओं का लोक-मानव पर धनात्मक प्रभाव होता है। कथाएँ किसी भी वस्तु के महत्व तथा गुण को स्पष्ट रूप से समझाने का सुगम तथा सरल माध्यम हैं, इसीलिए धार्मिक लोककथाएँ, लोक-जीवन के धार्मिक पक्ष को अधिक सबल बना देती हैं, व्रत नियम में उनकी आस्था को और भी दृढ़ कर देती हैं। लोक मानव धर्मभीरु होता है जब वह कथाओं में, व्रत-त्यौहारों तथा अनुष्ठानों के दोनों रूप स्पष्ट देखता है, नियमित रूप से उनका पालन करने वाला मनुष्य अन्ततः सुफल अधिकारी होता है और उनके प्रति अनास्था रखने वाला अथवा उसमें प्रमाद

करनेवाला दुख का भागी होता है तो, लोक-मानव कहानी के द्वारा सब बातों को समझ कर संकट नहीं मोल लेता चाहता। वह उन्हीं बातों को करता है जिनके कारण उसे कष्ट न उठाना पड़े। इसीलिए वह सरलतम कर्म-रेखा अपनाता है तथा उसी पर चलता रहता है।

व्रत-त्यौहार संबंधी लोक-कथाओं में धर्ममय सामाजिक परम्पराएँ सुरक्षित रहती हैं जिनका नित्यप्रति के जीवन से बहुत निकट का संबंध है। इन परम्पराओं को सीखने की आवश्यकता नहीं होती, अपितु पुत्री माँ से, वधू सास से स्वयं ही जान लेती हैं, यह एक जीवन का क्रम हो जाता है। ये कथाएँ लोक-मानव के सम्मुख उसके स्वजनों की सुरक्षा मंत्र के रूप में आती है। इन व्रत-कथाओं में किसी न किसी अनुष्ठान की योजना भी होती है। इन अनुष्ठानों का रूप घरेलू तथा लोक प्रचलित होता है।

वास्तव में स्त्री-समाज में प्रचलित गद्य के अन्तर्गत सबसे मुख्य स्थान त्यौहार-व्रत कथाओं का ही है। भारतीय समाज में बहुधा धार्मिक अनुष्ठान का भार स्त्री-समाज पर ही पड़ता है। धार्मिक अनुष्ठानों में हमें दो धाराएँ स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं—एक है शास्त्रीय तथा कर्त्तव्य से संबंधित, यह बहुधा पुरुष के आधीन रहती है। दूसरी है लौकिक अथवा श्रोतत्व से संबंधित, यही प्रायः स्त्रियों के लिए होती है। यथार्थ में पूजा, स्त्री का धर्म नहीं, व्रत ही उसका धर्म है।

लोक-रुचि में कहानी की प्रवृत्ति की मूल अधिष्ठात्री है नारी। उसने ही मुख्यतः अपनी लोक-संस्कृति, परम्पराओं, विश्वासों, अनुष्ठानों, पूजा-विधानों, तथा अपने सांसारिक उद्गार, उत्सव, समारोहों को गीतों एवं कथाओं में व्यक्त किया है। प्रायः देखा जाता है कि प्रत्येक पर्व या त्यौहार की या तो कोई पौराणिक कथा है अथवा कोई धार्मिक अन्धविश्वास का प्रतिफल है।

स्त्रियों के पर्वों के पीछे अनेक विचित्र कथाएँ गुँथी रहती हैं, जिनसे इन पर्व-विशेषों का समारम्भ होता है। यह पर्व के माहात्म्य को बताती है। पर्व के अनुसार बर्ताव न करने से उनसे मिले कुफलों का वर्णन भी रहता है। हर त्यौहार से संबंधित कहानी में किसी अलौकिक शक्ति या देवता के प्रताप का वर्णन ही रहता है।

उनका प्रत्येक घड़ी-पल इन्हीं अनुष्ठानों से परिपूर्ण रहता है। इनमें चित्र-कला के प्रतीक मिलते हैं। घर में जीवन-मंगल के उत्सव त्यौहार दिखायी देते हैं। इन उल्लासों में एक उमंग का समावेश रहता है, एक मंगल तथा समृद्धि की भावना विद्यमान रहती है। इनमें विविध दृष्टिकोणों, तथा साम्प्रदायिक भावनाओं का अद्भुत सम्मिश्रण मिलता है। त्रिदेवों के प्रतीकात्मक-स्वरूप वर्णन के अतिरिक्त गाय, गंगा, वट-वृक्ष, पीपल, आँवला तथा तुलसी आदि के संबंध में भी कथाएँ हैं।

धार्मिक कथाओं से संबद्ध जातियों का इन कथाओं की सत्यता में अटूट विश्वास हो जाता है। ये कथाएँ उनकी मानसिक आवश्यकताओं को उतना ही संतोष प्रदान करती है जितना भोजन उनकी शारीरिक आवश्यकताओं को ।

हिन्दू नारी के जीवन में हर दिन ही व्रत है । यहाँ तो कहावत भी प्रचलित है—'सात वार नौ त्यौहार।' इन्हीं उत्सवों, व्रतों और त्यौहारों में नारी का सत्य रूप प्रदर्शित होता है । ये नीति संबंधी भी होती हैं और व्रत, पति या संतान की कामना से संबंधित भी । यह महिलाओं द्वारा ही कही-सुनी जाती हैं । यह सभी सुखांत होती हैं और सुनने वालों के लिये भ। उसमें आशीर्वचन रहते हैं । व्रत-कथाओं में वर्जनाओं का भी उल्लेख मिलता है, इनमें श्रद्धा और भय की भावना मुख्यरूप से दिखाई देती है ।

अलौकिक शक्ति का अभिज्ञान जहाँ एक ओर भय को पैदा करता है, वहाँ श्रद्धा का आरम्भ भी उसी से होता है । श्रद्धा की यह भावना पूजा, विजय, आत्म-निवेदन और दैन्य के रूप में लोक-कथाओं में व्यक्त हुई है । विनम्र आतिथ्य, समर्पण, मनौती, बलि आदि देवताओं को दिए उत्कोच के रूप में सदैव मानव की अपनी ही भावना व्यक्त होती रहती है ।

नारी स्वभाव से ही कोमल होती है तथा उसमें हृदय पक्ष, बुद्धि पक्ष की अपेक्षा प्रबल होता है । वह विश्वासों और मान्यताओं को अपने जीवन में एकीकार कर लेती हैं। व्रतों के संबंध में कहानियाँ इसका सजीव उदाहरण हैं। इन कथाओं के द्वारा ही हमें यह आभास मिलता है कि इनमें उन ग्रामीण महिलाओं की कितनी आस्था निहित है और यही आस्था है जो धर्म का अंकुर पैदा करती है । धार्मिक भावना, नैतिक संबल, सभी का चारित्रिक निर्माण में विशिष्ट स्थान है ।

धार्मिक लोक-कथाओं के विभिन्न अंगों पर दृष्टिपात करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि धार्मिक लोक-कथा में भी जीवन के समान ही आस्थानहीनता का कोई स्थान नहीं है । स्त्रियों के व्रत अधिकांश लौकिक हैं । उनका शास्त्रों में उल्लेख भी नहीं मिलता ।

व्रत-कथाएँ, धार्मिक विश्वासों के आधार पर खड़ी की गई हैं। इनको अनुष्ठानों और व्रतों में स्थान दिया जाता है। इनके कहने-सुनने से शुभफल की आशा रहती है अथवा अशुभ का निवारण। कहानियों को कहना-सुनना अनिवार्य माना जाता है, अन्यथा व्रतपूर्ण नहीं होता । 'आसमइया', 'प्यासमइया' की कहानियाँ बैसाख में कही जाती है । इसमें आशा को मातृदेवी का स्थान दिया गया है और उसे सबसे श्रेष्ठ बतलाया गया है । ज्येष्ठ में निर्जला एकादशी, भादों में नागपंचमी (सर्पों ने किस मनुष्य की पुत्री को अपनी बहन माना और बहनों ने कैसे सर्प भाइयों

को स्नेह का प्रतिदान दिया), भाई-बहन के प्रेम को पुष्ट करने वाली कहानी अत्यन्त रोचक है। सावन और भादों में ऐसे कितने ही व्रत आते हैं जिनमें कहानियाँ कही जाती हैं। इनमें सर्पों का उल्लेख अवश्यमेव आता है और ये सर्प मनुष्यों के साथ उदारता और प्रेम का व्यवहार रखते हैं। भाई-बहन के प्रेम की पुष्टि सभी कहानियों से होती है। 'अहोई आठे की कहानी' संतान-कल्याण से संबंध रखती है। 'भैयादूज' की कहानी पुनः भाई के दीर्घ जीवन की कामना के लिये होती है। 'करवा चौथ' की कहानी पति और अपने सौभाग्य की रक्षा के लिये। इस प्रकार इन देवी-देवताओं, व्रतों, अनुष्ठानों की कथाओं में कौटुम्बीय प्रेम, पति-पुत्र, भाई की दीर्घायु तथा सुख-समृद्धि की भावना व्याप्त मिलती है। माताएँ, बहनें, बेटियाँ तथा बहुएँ संपूर्ण एकाग्रता और मन की समस्त श्रद्धा से इन्हें सुनती हैं। 'अनन्त चौदस' की अनोखी कहानी में विविध कुकृत्यों और फल की ओर संकेत किया गया है। 'सकटचौथ' की कहानियों में ईर्ष्या के दुष्परिणाम की ओर संकेत है। इन कहानियों को कहने-सुनने वाली स्त्रियों का स्तर ऊँचा उठता है और उनके घर में दया, प्रेम, पावनता, कर्त्तव्य और आनंद का सुखमय वातावरण बन जाता है। विशेष अनुष्ठान की कहानियों में करवाचौथ, अहोई अष्टमी, सकटचौथ, वट-सावित्री, कजरी तीज, गौरी तीज आदि की कहानियाँ आती हैं।

इन सभी कहानियों में कहानी कहने-सुनने के अतिरिक्त लौकिक पूजन का विधान है। हमारे समाज की कन्या व स्त्री सरल शब्दों में देवी या देवता के सम्मुख अपना हृदय खोल कर रख देती है। प्रार्थना के क्षणों में उसके हृदय की सभी भावनाएँ, अच्छी व बुरी प्रदर्शित हो जाती हैं। यह बहुत स्पष्ट और सहज रूप में व्यक्त होती हैं, जिनका उदाहरण लोक-कथाओं में मिलता है। यह सभी कहानियाँ व्रत के उद्देश्यों से संबद्ध हैं। ये त्यौहार कुछ समय के लिये ईर्ष्या, मोह, राग, द्वेष आदि के वातावरण से परे ले जाकर उल्लास के स्वर्गिक लोक में विचरण कराते हैं।

'रक्षाबन्धन' ज्ञान का अमृतघट लेकर हमें भगनीत्व का मान करना सिखाता है। 'भैयादोज' की कहानी भाई-बहन के प्रेम से ओत-प्रोत हैं। 'करवाचौथ' की कहानी में दाम्पत्य प्रेम कूट-कूट कर भरा है। 'होई' और 'संकटहरण' की कहानी में मातृ-प्रेम छलकता सा जान पड़ता है। 'कार्तिक-स्नान', 'तुलसी' आदि की कहानियाँ त्याग और मन की शुद्धि का पाठ पढ़ाती हैं। इन कहानियों में जीवन का एक उपयोगी 'अमर संदेश' छिपा है।

त्यौहार तथा उनकी कहानियाँ हमारे जातीय जीवन का मुख्य अंग हैं। उनमें

हमारी परम्पराओं और हमारी संस्कृति के विकास का इतिहास गुंथा है । वे हमारे लोक-जीवन की सच्ची झाँकी हैं।

कुछ सुधारक इनमें अंधविश्वास, रूढ़िवाद एवं अज्ञान का बोलबाला पाते हैं। वास्तव में देखा जाय तो इन्हीं कहानियों में नीति तथा हमारी अतीत संस्कृति बीजरूप में मिलती है। अतः इनका हर दृष्टि से अध्ययन—सामाजिक तथा धार्मिक—अत्यन्त आवश्यक है।

अनुष्ठान, व्रत, त्यौहार संबंधी कहानियों के संबंध में कह चुकने के पश्चात् यदि हम सात वारों को अछूता छोड़ देंगे तो शायद अनुष्ठान तथा व्रत संबंधी लोक-कथाओं के प्रति न्याय नहीं होगा। जैसा कि पहिले भी संकेत हो चुका है कि सप्ताह का हर दिन किसी न किसी देवता से अपना गठबन्धन किये हुए है। रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि, इन सब कहानियों की लोक-कथा साहित्य में अपना योगदान देती हैं।

१. देवी-देवता संबंधी कथाएँ—इन कथाओं में ईश्वर की महत्ता, उसका न्याय तथा विभिन्न रूपों में करुणा का दिग्दर्शन होता है। देवी-देवता करुण होने के साथ पाप तथा कष्टभंजक भी हैं। यदि कोई व्यक्ति धर्म के विपरीत चलता है अथवा अनैतिक व्यवहार करता है तो वह उसको दंड भी देते हैं। देवी-देवता संबंधी कहानियों की एक यह भी विशेषता है कि उनमें देवी-देवता मनुष्यों से बातें करते हुए पाये जाते हैं। वह उनके सुख-दुख में सम्मिलित होते हैं तथा उनके दुख का अनुभव करते हैं। इससे लोकमानव के मन में देवी-देवताओं से अधिक आत्मीयता का अनुभव होता है और वह समझता है कि देवी-देवता उसके साथी हैं तथा अपने हैं जो दुख अथवा कष्ट के समय उसके सहायक होंगे और उसका संकट निवारण करेंगे। इन कहानियों के द्वारा देवी-देवताओं के प्रति उसके मन की आस्था तथा विश्वास आध्यात्मिक होने के स्थान पर घरेलू अधिक हो जाता है।

देवी-देवता संबंधी कथाओं में नारद जी का प्रधान स्थान है। वह जन प्रतिनिधि होने के साथ-साथ भगवान् के परामर्शदाता भी हैं जो समय-समय पर भगवान् के पास जाकर जग का हाल सुनाते हैं तथा जनता के कष्टों को भगवान् के पास जाकर कहते हैं। इस प्रकार की कहानियों में नारद का चरित्र जनतंत्रात्मक अधिक है। इनके द्वारा ही भगवान् का संदेश भक्तों तक पहुँचता है। इन कहानियों के द्वारा ही लोकमानव को विश्वास होता है कि भगवान् उनके लिये अगम अगोचर ही नहीं अपितु वह उसकी पहुँच के अन्दर ही हैं।

लोक-साहित्य में इस प्रकार की बहुत सी कहानियाँ देखने को मिलती हैं। 'विष्णु भगवान् के दर्शन' नामक कहानी इसी प्रकार की कहानी है। भगवान् की

कृपा तथा परीक्षात्मक ढंग अलौकिक नहीं । जहाँ एक ओर उनके मन में इतनी करुणा तथा दया है, आपस में गहन विश्वास तथा आस्था भी है । इस प्रकार की कहानियाँ जनसाधारण से दूर नहीं । 'साऊ और बदमाश' भी इसी प्रकार की कहानी है । असज्जन व्यक्तियों का भी भगवान् अपने भक्तों से अधिक ध्यान रखते हैं । इन कहानियों में समाज, व्यक्ति तथा ईश्वरीय शक्ति का सामंजस्य है । इसमें मानव के दोनों रूप सम्मुख आते हैं तथा ईश्वरीय शक्ति उनके कर्मों को देखते हुए ही आवश्यक न्याय करती है । इन दोनों कहानी में नारद ही ईश्वर तक पहुँचाने के माध्यम हैं ।

'राम-नाम का महत्व' नामक लोककथा प्रतिनिधि लोक-कथा कही जा सकती है। वही बड़ा देवता है जो साधन कम होते हुए भी बुद्धि से जीत जाता है और अन्य सभी देवता उसके सम्मुख हार मान जाते हैं । 'राम-नाम का महत्व' तो इस कथा में है ही साथ ही साथ आवश्यक मानवीय गुणों की ओर भी संकेत किया गया है, जिनका होना व्यक्ति के लिये भी आवश्यक है । इस कथा को एक और तरह से भी कहा जा सकता है। उसमें राम-नाम की परिक्रमा करने के स्थान पर गणेश जी ने अपने माता-पिता शंकर-पार्वती की परिक्रमा कर ली थी । इसीलिए वह बड़े माने गये थे । इस कथा में शंकर-पार्वती के महत्व के साथ-साथ माता-पिता को भी बड़ा महत्व दिया गया है । वास्तव में माता-पिता में भी तो सृजन की शक्ति है ।

अन्य कहानियाँ---चुटक विनायक, सूर्य भगवान्, शिव-पार्वती, लक्ष्मी-दलिद्दर आदि भी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं । यद्यपि प्रत्येक की कथा विवेचना सविस्तार नहीं हुई परन्तु ये कहानियाँ स्वयं में देवी-देवता संबंधी कथाओं का प्रतिनिधित्व लिये हुए हैं ।

२. **ऐतिहासिक कहानियाँ**---देशकाल व परिस्थिति का समाज पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है । उस प्रभाव के अनुसार ही लोक-समाज के लोक-साहित्य का निर्माण होता रहता है । वास्तव में लोकमानव की अभिव्यक्ति के साधन तथा परिपाटी तो अपनी ही रहती है । यही कारण है, कि वह सब बातों में अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाये चलता है । वैसे लोककथाएँ भी काल और घटनाओं के अनुसार अपना रूप बदल लेती हैं । लोक-साहित्य में राम से लेकर आज तक की सम्पूर्ण लोक-कथाएँ इतिहास के रूप में सुरक्षित हैं । लोकमानव शिक्षित समाज के इतिहास से भी अधिक इन्हीं लोक-कथाओं को प्रमाण मानता है । ये कथाएँ ही उसे देश काल की सूचना देती रहती हैं । वह जानता है कि अमुक राजा कैसा था, उसका चरित्र किस प्रकार का था, उसके साधन में क्या कमी थी, न्यायप्रिय था या अन्यायी---इन सब बातों की सूचना प्रमाण रूप से इन्हीं कहानियों में मिल

जाती हैं । रामायण, महाभारत संबंधी कथाओं तथा राजा भर्तृहरि, राजा हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, ध्रुव, धृतराष्ट्र, राजा भोज, विक्रमादित्य आदि के कथानकों से भी वह चिर-परिचित है। वह सिकन्दर, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, बहादुरशाह आदि से भी अपरिचित नहीं। उनके संबंध में वह उतना जानता है जितना कि उसे आवश्यकता है ।

यद्यपि ऐतिहासिक लोक-कथाओं के सब चरित्र ऐतिहासिक पुरुष होते हैं परन्तु अधिकतर इनमें ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनका इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता । इन्हीं सब लोक-कथाओं को वह पूर्ण रूप से सत्य मानता है। वास्तव में इन कहानियों में कई बार यह भी देखने को मिलता है कि वे या तो किसी बात को समर्थन करती हैं अथवा किसी बात का अपनी ही प्रकार में प्रतिपादन करती हैं। 'शाकुम्बरी देवी' की कहानी इसी प्रकार की है । उसमें शाकुम्बरी देवी की अपार शक्ति का एक दृष्टान्त है। मनोवैज्ञानिक रूप से भी कोई अघटित घटना नहीं कि अकबर जैसा मुसलमान बादशाह हिन्दुओं की शाकुम्बरी देवी से संबंधित अलौकिक कथाएँ सुन कर उसके दर्शनों के लिये इच्छुक न हो उठे और फिर उसे बाद में ध्यान आये कि अच्छा होता यदि वह मक्का-मदीना चला जाता। इसके पश्चात् देवी का चमत्कार होना तथा अकबर का उस शक्ति के सामने नतमस्तक हो जाना। ये दोनों बातें देवी शाकुम्बरी की शक्ति का प्रदर्शन करती हैं । लोकमानव इतना समझता है कि अकबर बादशाह को भी उसकी शक्ति के सम्मुख झुकना पड़ा और उसे भी देवी को मान्यता देनी पड़ी। इस कथा की घटनाएँ तथा तर्क, दोनों ही पुष्ट हैं तथा अंत में लोक-कथा का प्रयोजन भी पूरा हो जाता है ।

इसी प्रकार 'सिकन्दर' नामक लोककथा का प्रयोजन भी एक मात्र यही दिखाना है कि आक्रमण के समय सिकन्दर ने कितना अत्याचार किया कि कब्रों तक से भी उसने रुपया निकलवा लिया । जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं कि इन कहानियों की पुष्टि इतिहास से होती है अथवा नहीं—इसकी लोकमानव को कोई चिन्ता नहीं । वह इतना ही जानता है कि सिकन्दर ने भारत पर कितना अत्याचार किया था ।

जहाँगीर को लोकमानव न्यायी तथा शील सम्राट् के रूप में जानता है। उसके दरबार में गधे की पुकार भी बादशाह जहाँगीर के कानों तक पहुँचती है तथा उसके साथ न्याय किया जाता है। इस कहानी को कह कर वह न्याय की पराकाष्ठा का दर्शन करता है क्योंकि इतिहास तो केवल इतना ही बताता है कि जहाँगीर न्याय-शील था, परन्तु उसे यह कथा इतिहास के उस संकेत को और स्पष्ट कर देती है।

औरंगजेब की संगीत-अप्रियता भी लोकमानव की दृष्टि से नहीं बच सकी।

संगीत की अर्थी ले जाते हुए लोगों को देख कर औरंगजेब यही कहता है कि इसे इस प्रकार से दफन करके आना कि फिर न निकल सके। इस कहानी में जन-साधारण की ओर से नकारात्मक विरोध होता है जिसमें वह स्पष्ट रूप से तो कुछ कह नहीं पाते हैं, औरंगजेब के सम्मुख अर्थी ले जाकर ही अपना विरोध प्रकट करते हैं। यह उस काल के समाज का चित्रण है कि उस काल में शासन की कैसी व्यवस्था थी, प्रजा की संगीत के प्रति कितनी रुचि तथा जाग्रति थी।

'बड़ी बेगम' नामक कहानी में केवल अकबर का नाम ही आता है, अन्य चरित्र अप्रत्यक्ष रूप से सम्मुख आते हैं। परन्तु अकबर से संबंधित होने के कारण यह ऐतिहासिक कहानी कही जायेगी। इसमें स्त्री के गुणों पर प्रकाश डाला गया है। इस कहानी का साराँश यही है कि 'सूझबूझ' वाली महिला दरिद्र से दरिद्र घर को भी सुधार सकती है। इस बात को बेगम बड़ी बुद्धिमत्ता तथा चालाकी से सिद्ध करती है। अन्त में बादशाह को उसके सम्मुख झुकना पड़ता है। ये कहानी आधुनिक युग की आर्थिक समस्याओं का समाधान भी रखती हैं।

राजा विक्रमादित्य से संबंधित दो कहानियाँ—'विक्रमादित्य' तथा 'रोटी का दान' बहुत महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। राजा 'विक्रमाजीत' नामक कहानी में राजा अपने वचन के कारण ब्राह्मणी की जान बचाने के लिए कर्ण के घर जाकर नौकरी करते हैं तथा देवी से जाकर अमीजल लाते हैं और सोना बनाने की झझ्झर राजा कर्ण को दे आते हैं। इस कथा में दो तीन अन्तर्कथाएँ साथ चलती हैं। बुढ़िया को जीवित करने के लिए प्रयत्न, ब्राह्मणी के बेटे को राजा की सोना बनाने की झारी लाकर देना। इन कथाओं का आधार केवल एक यही है कि राजा अपने वचन की रक्षा करने के लिये मृत बुढ़िया को जीवित करने के लिये प्रयत्न करता है। उसी के बीच दूसरी अन्तर्कथाएँ भी आकर मिल जाती हैं। इस प्रकार कहानी की उत्सुकता प्रारम्भ से बनी रहती है। इतने कष्ट उठाने के पश्चात् सब सुखी हो जाते हैं।

इसी प्रकार 'रोटी का दान' नामक कहानी में अतिथि-सत्कार का महत्व है। इस कहानी के अन्तर्गत यह भी देखने को मिलता है कि जो व्यक्ति कटुवचन कहते हैं उनको वही फल भोगना पड़ता है। पहले जीवन की कथा उसमें अन्तर्कथा के रूप में आती है जिसका सद्प्रभाव पाठकों पर स्थायी रूप से पड़ता है।

'मोरध्वज' तथा 'राजा हरिश्चन्द्र' की कथा भी ऐतिहासिक रूप में ली जा सकती है। मोरध्वज की कथा भी अतिथि-सत्कार का महत्व बतलाती है। इस कहानी के अन्त में पुत्र का बलिदान होने के पश्चात् भी श्रीकृष्ण उसको जीवित कर देते हैं। ये कहानी दृष्टान्त रूप में अवश्य हैं किन्तु इन कथाओं का लोक-समाज में ऐतिहासिक स्थान बन गया है।

राजा हरिश्चन्द्र के शाप की तथा परीक्षा की कथाएँ जगत्प्रसिद्ध हैं। राजा को शाप, इसलिए दिया जाता है कि रानी तारावती एक भंगी को गुरु मानने लगती है इस कारण राजा को संदेह होता है। वह रानी को मार देता है। वह भंगी ही अपनी आत्मिक शक्ति से रानी को जीवित करता है और राजा को श्राप देता है। इसीलिए आगे चल कर राजा हरिश्चन्द्र को चांडाल के घर पानी भरना पड़ता है। दूसरी वाली कथा में दो मुख्य कथाएँ एक साथ ही चलती हैं। शाप की पूर्ति तथा सत्य की रक्षा। सत्य की रक्षा करते-करते ही शाप की पूर्ति होती है। राजा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के दो कारण कहे जा सकते हैं। प्रथम, शाप, द्वितीय 'विश्वा-मित्र का टोटा।' इसके दोनों ही मुख्य कारण हैं। इस कहानी में चरम स्थिति भी कई बार आती है। रानी का भंगी को गुरु बनाना ही कहानी का पहला चरम-बिन्दु है। शाप देते ही कहानी का उतार आरम्भ हो जाता है। विश्वामित्र का टोटा पूरा करना, उसमें बिक जाना, इस तरह कहानी का फिर चढ़ाव आरम्भ होता है। लड़के के मरने तक कहानी फिर चरमबिन्दु तक पहुँच जाती है। तब तक वह चरमबिन्दु बना रहता है जब रानी अपना चीर देती है। उसके पश्चात् कहानी सुखान्त हो जाती है।

यह कथाएँ प्रधान रूप से चार प्रकार की हैं। एक प्रकार की कथाएँ तो शासन से संबंधित हैं। इन कथाओं में न्याय, अत्याचार, तथा दमन संबंधी कथाएँ हैं जिसमें जहांगीर का न्याय, सिकन्दर के आक्रमण का चित्र तथा औरंगजेब का दमन है जो ललित-कलाओं का विरोधी था। अकबर की कहानी दूसरी प्रकार की है जिसमें देवी-देवता का महत्व दिखलाया जाता है और कथा दो प्रधान धर्मों के, मध्य स्वर्गिक सेतु की भाँति है।

अन्य कहानियाँ—राजा हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, राजा विक्रमाजीत आदि ऐसी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं जिससे वचन-पालन के प्रति जीवन-उत्सर्ग करने की प्रेरणा मिलती है। यद्यपि ये कहानियाँ अलौकिकता लिये हुए हैं परन्तु फिर भी ये लोकसमाज के आदर्श पुरुषों की कहानी है जिनको वह पूर्णतया ऐतिहासिक पुरुष मानता है।

चौथी प्रकार की कहानियों का प्रतिनिधित्व 'रोटी का दान' तथा 'धृतराष्ट्र राजा' नाम की कथा हैं जो पिछले जन्म से संबंधित कथाएँ हैं। पूर्व कर्मों का प्रभाव अगले जन्मों पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। इस लोकविश्वास का लोकजीवन पर बहुत गहरा प्रभाव है। यही कारण है कि वे इस जीवन को दुखी बनाकर भी अगले जन्म को सफल और सुखी बनाने की चेष्टा करते हैं तथा उसी के अनुरूप प्रयत्न भी करते हैं। व्रत, दान, पुण्य करने की क्रिया में यही भावना निहित रहती है 'यहाँ का किया

हुआ', 'दिया-लिया' 'वहाँ' पर मिलेगा। 'विक्रमाजीत' को इतना निंदनीय कार्य करते हुए भी केवल दो रोटी ही का दान कर देने पर चक्रवर्ती सम्राट् का पद मिलता है। इसी प्रकार राजा धृतराष्ट्र को अन्धा होना पड़ता है क्योंकि उन्होंने सौ जन्म पूर्व एक टिड्डे की आँखों में तिनका डाल दिया था।

लोक-कथाओं की पृष्ठभूमि में लोक-कथाकार की सत्यता है। वह कहानी नहीं लिखता बस विषय को तथा अन्य उसी प्रकार के उदाहरणों को लेकर इस प्रकार से दोहरा देता है कि उसकी अपनी बात को तर्क की कसौटी पर रगड़ने की आवश्यकता कभी भी अनुभव नहीं होती और न ही वह ऐतिहासिक आँकड़े संग्रहित करता है। यह कथाएँ तो उसकी सरल, सहज अभिव्यक्ति हैं जिसके पीछे उसका कालगत अनुभव चला आता है। अपना धर्म समझ कर हर देश काल का लोकमानव परम्परागत रूप में पूर्वज द्वारा कही गयी बात को सुरक्षित रखना अपना कर्त्तव्य समझता है। ऐतिहासिक लोक-कथाएँ अपने-अपने काल का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी उत्पत्ति उसी काल के लोकमानव द्वारा हुई होगी। यह बात दूसरी है कि यहाँ तक आते-आते उसका कुछ रूप परिवर्तन हो गया हो। इन कथाओं में से कुछ कथाएँ ऐतिहासिक सत्यों की पुष्टि भी करती हैं। शायद ये सत्य इतिहास के पृष्ठों से छिटक कर लोकमानव के पास पहुँच गये होंगे। ऐतिहासिक कथाओं का यह रूप लोकसमाज की निधि है जो लोकसमाज के पास सदा उसी प्रकार बनी रहेगी।

३. **अलौकिक कथाएँ**—लोकसमाज में हास्य-कथाओं के समान अलौकिक कथाएँ भी अत्यधिक प्रिय हैं तथा उनका विशिष्ट स्थान है। मनुष्य अलौकिक तत्वों की कल्पना सदैव से किसी न किसी रूप में अवश्य करता रहा है, जो उसके सब कार्यों को सुगम बना सकें तथा जिसके माध्यम से वह अलभ्य वस्तुओं को भी प्राप्त कर सके। वह अपने जीवन का अधिक समय कल्पना-लोक में व्यतीत करता है तथा अपनी अतृप्त इच्छाओं को इसी के द्वारा पूर्ण करता है। इन सब भावनाओं की पूर्ति इन्हीं कहानियों के द्वारा होती है। अलौकिक कहानियाँ यद्यपि असत्य होती हैं और मनुष्य को वास्तविक जगत् से दूर ले जाती हैं पर मनुष्य की अतृप्त आकांक्षाओं को पूरा करती रहती हैं। इसीलिये उसे इसी प्रकार की कहानियों को सुन कर बड़ा आनन्द मिलता है जो क्षणिक ही होता है। यही कहानियाँ मनुष्य के अन्तर्मन में उपस्थित उस अद्भुत मानव की परोक्ष रूप से पूर्ति करती रहती हैं जो ऐसे दानव को विजय करना चाहता है, जो उसकी सेवा में रह सके तथा उसको धन दे सके, ऐश्वर्य दे सके और यही अन्तर का अद्भुत मानव अमीजल आदि पीकर अमर हो जाना चाहता है। इस प्रकार की

कहानियाँ ऐतिहासिक कहानियों में भी दी गयी हैं।

इन अलौकिक कहानियों में सदा यह देखने को मिलता है कि जो सत्यनिष्ठ है वह बड़ी से बड़ी विरोधी शक्तियों से भी संघर्ष करने के अंत में विजयी होता है। उदाहरणार्थ—'झिलमिल का पेड़', प्रतीकात्मक कहानी है। 'झिलमिल का पेड़' समृद्धि का प्रतीक है। राजा का बेवकूफ कहलानेवाला लड़का उसके लिए प्रयत्न करने के लिये निकल पड़ता है। रास्ते में बहुत-सी कठिनाइयाँ आती हैं—सर्प उसी कठिनाइयों का प्रतीक है जिसको वह लड़का जीत लेता है। अपने प्रयत्नों के साथ-साथ बुद्धि (बुढ़िया) का सहारा भी लिये रहता है जिसकी मदद से वह झिलमिल का पेड़ प्राप्त कर लेता है। परन्तु जब वह सो जाता है तो छद्मवेषी चार साधु काम-क्रोध-लोभ-मोह झिलमिल का पेड़ चुरा ले जाते हैं। फिर वह हीरामन तोते के रूप में अपनी बुद्धि को याद करता है। वही उसको झिलमिल का पेड़ फिर लाकर देता है तथा घर तक पहुँचा आता है। इस प्रतीकात्मकता के अतिरिक्त इस कहानी में बुद्धि तथा प्रयत्नों के सुप्रभावों की ओर भी संकेत किया गया है तथा प्रलोभनों के विरुद्ध चेतावनी भी।

अन्य कहानियाँ इस कहानी से भिन्न हैं। उनमें परी, जादू, दानव आदि प्रधान हैं। उदाहरणार्थ—अनार दे नार, बैंत की परी का तेल, बाबाजी तथा मरनी-जीनी रानी। इन कहानियों में पहली एक कहानी तो परी संबंधी कहानी है। दोनों कहानियों में ताना लगता है। पहली कहानी में भाभियों का ताना लगता है और वह 'अनार दे नार' लाने चल देता है, दूसरी कहानी में चिड़िया की बोली लगती है और रानी 'आसन्नपाट्टी' लेकर पड़ जाती है। राजा के दरबार में पान का बीड़ा और तलवार रखे जाने पर राजकुमार बेंत की परी का तेल लेने निकल पड़ता है। दोनों ही साधु से मिलते हैं तथा उसकी सेवा करके वरदान लेते हैं। वही साधु उनकी मदद करता है। उन्हें सफलता भी मिलती है। साधु के मिलने के पश्चात् ही से इन दोनों कहानियों में थोड़ा सा अन्तर हो जाता है जो विशेष नहीं है।

'बाबाजी' तथा 'मरनी जीनी रानी' में दानव-तत्व आ जाता है। बाबा छोटी रानी को मक्खी बनाकर झोली में रख लेते हैं फिर उसको घर ले जाते हैं जो उसको छुड़ाने आता है उसी को पत्थर का बना देते हैं। अंत में सबसे छोटा लड़का जाता है और वह उस बाबा जी को मार कर आता है। दोनों कहानियों में ही तोते में जान रहती है। परन्तु 'मरनी जीनी रानी' की कहानी बाबा जी वाली कहानी से भिन्न है। इस कहानी में वजीर की रानी ईर्ष्यावश राजकुमारी को मार देती है तथा राजकुमार से विवाह कर लेती है। अंत में यह सत्य प्रकट हो जाता है और वजीर

की लड़की को दंड मिलता है। बाबा जी तथा मरनी जीनी, कहानियों का विशेष लोक रूप है। बाबा जी की कहानी का संबंध जादू से है यथा—मक्खी बना लेना, राजा तथा राजकुमारों को पत्थर का बना देना। यह सब जादू संबंधी विशेषताएँ हैं जिन पर लोक-समाज बहुत आस्था रखता है। दूसरी कहानी पढ़ने से ज्ञात होता है कि उसमें दो विशेषताएँ हैं। राजकुमारी की जान तोते तथा हार में रहती है। तोता को मार डालने पर हार वजीर की लड़की पहन लेती है। जब वह उसको निकाल कर रख देती है तो राजकुमारी जी उठती है अन्यथा वह मृत रहती है। यह दोनों पक्ष भी जादू से संबंधित हैं। इन दोनों कहानियों में यही विशेषता है कि जादू के साथ-साथ इन कहानियों में परम्परागत अभिप्राय भी निहित है।

'दो भाई' कहानी में पशु-पक्षी, चकोत-चकोतरी बोलते हुए पाये जाते हैं। वे अपना-अपना उपयोग बतलाते हैं। बड़ा भाई जागता होता है। वह यह सुनकर कि चकोत को खाने से राज्य मिलेगा, उन पक्षियों को मार देता है। परन्तु छोटे भाई के हाथ चकोत लगता है और वह तो अगले दिन राजा बन जाता है परन्तु पक्षियों को मारने वाले बड़े भाई को साँप का भोजन बनना पड़ता है। परन्तु भोला पारवती उसे जीवित कर देते हैं और वह वहाँ से उठ कर चल देता है। जिस राज्य में पहुँचता है वह उसके बड़े भाई का ही होता है। वहाँ वह दाने को मारता है तब भाई से मिल पाता है। इस कहानी में चार अभिप्राय हैं। चकोत-चकोतरी खाने से राज्य मिलना तथा सर्प का काटना, पहिला अभिप्राय है; पूर्व राजा के शव के सम्मुख आ जाने से राजा बन जाना दूसरा अभिप्राय है; भोला-पारवती द्वारा मृत को जीवित कर देना तीसरा अभिप्राय है और दाने का एक भेंट रोज़ लेना तथा परदेसी के द्वारा मारा जाना चौथा अभिप्राय है। यह कहानी दो-तीन स्थानों पर अपने चरमबिन्दु पर पहुँच जाती है। इस प्रकार की कहानी से लोक-समाज का अत्यधिक मनोरंजन होता है।

'अमीजल' कहानी यद्यपि राजा विक्रमादित्य से संबंधित है परन्तु इसमें भी पहलेवाली कहानी के समान ही दो-तीन वही पक्ष सम्मिलित हैं। बैमाता से कुम्हार के लड़के की आयु के संबंध में यह जानकर कि शादी के समय इस लड़के का काल है राजा विक्रमादित्य चल देते हैं—विवाह के समय फिर राजा विक्रमादित्य को निमंत्रण दिया जाता है। उस समय लड़के के मैल से शेर बन जाता है और उसको मार डालता है। इसके पश्चात् चकोत-चकोतरी राजा विक्रमादित्य को रास्ता बताते हैं कि कैसे अमीजल मिल सकता है। वास्तव में पक्षियों को लोक-समाज ने त्रिकालदर्शी माना है। इसीलिए यह समय-समय पर आपबीती, जगबीती के रूप में यात्रियों को उनके भाग्य के सम्बन्ध में बताते हैं। राजा चकोत, चकोतरी की बात

सुनकर चल देते हैं। वह तोते को मार कर दाने को मारते हैं तथा उसकी बेटी से विवाह करके उससे कहते हैं कि इस लड़के को जीवित कर। वह अपनी कन्नी उँगली चीर कर उस पर अमीजल छिड़कती है। इस प्रकार इन दोनों कहानियों की एक कड़ी दाने से जुड़ी हुई है, जो अत्याचार करता है। कहानी में राजा विक्रमादित्य की प्रजावत्सलता भी प्रदर्शित होती है।

'मददगार दोस्त' नामक कहानी यद्यपि पशु-पक्षियों से संबंधित है परन्तु इसमें अलौकिकता का तत्व बहुत अधिक मिलता है। सामाजिक रूप से तो इसमें पशु-पक्षी, राजा के लड़के से मित्रता निबाहते हैं परन्तु पशु-पक्षियों का देह-परिवर्तन करना तथा हिरनी के शरीर से पूरा बाग़ तैयार हो जाना, यह दोनों अलौकिक तत्व हैं। इसीलिए इसको अलौकिक कहानी की श्रेणी में रखा गया है।

'कहानी की बात', 'पलंग का पाया' तथा 'बाँसुरी'—ये तीनों कहानियाँ अपना विशिष्ट चरित्र रखती हैं। पहली कहानी में एँक ब्राह्मण अपने बहनों के घर जाने के लिये निकलता है। रास्ते में वह सबको अपनी कहानी सुनाना चाहता है परन्तु सब सुनने से मना कर देते हैं। किसी को वह पत्थर का बना देता है। पीपल के पत्ते सुखा देता है, नदी का जल सुखा देता है, साहूकार की बहन की देह को कोयला बना देता है। बस एक छोटी बहन उसकी बात सुनती है। जब वह लौटता है तो सब पूछते हैं। वह बताता है कहानी न सुनने के कारण ऐसा हुआ। तब सब उसकी बात सुनते हैं और फिर 'वैसे के वैसे' ही हो जाते हैं। इस प्रकार कहानी समाप्त होती है। किसी की बात न सुनने पर अंत में कष्ट भोगना पड़ता है। जब सब अपनी भूल स्वीकार करते हैं तब कहीं जाकर उनके सुख के दिन आते हैं। और गरीब छोटी बहन जिसने सदैव माना, उसको कभी भी कष्ट नहीं उठाना पड़ा। 'पलंग का पाया' और 'बाँसुरी' भिन्न प्रकार की कहानियाँ हैं। पलंग के पाये वाली कहानी को 'जादूगर बाढ़ी' भी कहते हैं। इसमें बाढ़ी इस प्रकार का पलंग बनाता है जो दाने को मार आता है तथा पलंग में लग जाता है। पलंग में ही ऐसा जादू है कि पाये बोलते हैं तथा मनुष्य की भाँति कार्य करते हैं। वैसे तो यह बात असंभव सी लगती है परन्तु जब जादू की ही बात आती है, तो लोकसमाज इस पर बहुत विश्वास कर लेता है। 'बाँसुरी' नामक कहानी में यही विश्वास निहित है कि मृत आत्मा जब तक बदला नहीं ले लेती वह भटकती रहती है। भाभी से बदला लेने के लिए नन्द बाँसुरी बनती है तथा माँ तक पहुँचती है। जब माँ पर भेद खुलता है तब वह उन सब बहुओं को घर से बाहर निकाल देती है। इस कहानी में यही विशेषता है और अलौकिक तत्त्व हैं कि लड़की मरने पर बेरी बनती है, परन्तु उसमें चेतना बनी रहती है। वह अपने ससुराल के नाई से कहती है, जोगी से भी कहती है, भाभियों के सामने गाने

से मना कर देती है। माँ के सामने भी हिचकती है और रात्रि में सब कार्य कर देती है। अन्त में जब बदला ले लेती है तो माँ उसकी शादी कर देती है। यद्यपि वह मृत है परन्तु फिर भी वह देह धारण कर लेती है वैसे तो इस कहानी के तथ्य तर्कसंगत नहीं हैं पर लोकमानव उसमें अटूट विश्वास रखता है।

इन कहानियों से भिन्न कुछ ऐसी कहानियाँ भी हैं जो आकार में विस्तृत हैं तथा विषय में इन सब कहानियों से भिन्न हैं। इन कथाओं को मिश्रित कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। वैसे तो इन सब में अलौकिक तत्व ही प्रधान हैं परन्तु इसमें अन्य तथ्य सामाजिक, धार्मिक आदि भी आ जाते हैं। इस प्रकार की कहानियों में ये पाँच कहानियाँ आती हैं उदाहरणार्थ—गुलबकावली, घड़ा बेटा, चार-व्याह राजा का बेटा, राजा का बाग़ और छोटा बेटा, सात कोठड़ी और दो लड़के। अब इन कहानियों पर अलग-अलग दृष्टिपात करेंगे। सबसे पहले 'गुलबकावली' की कहानी आती है।

'गुलबकावली' फूल से संबंधित कहानी है। इस प्रदेश में इसी के समान 'गुल-सनोवर', 'गुलचम्पा' आदि कहानियाँ भी प्रचलित हैं। महाभारत में भी इसी प्रकार का एक आख्यान मिलता है जिसमें द्रौपदी की इच्छा पर भीम गंधमादन पर्वत से फूल लेने जाता है वहाँ पर किन्नरों और गंधर्वों को हराना पड़ता है। वास्तव में अन्य और साहित्य में भी फूल संबंधी कहानियाँ मिलती हैं। अलिफ लैला में भी फूलों से संबंधित कहानियाँ हैं—गुलसनोवर तथा गुलबकावली कहानियाँ उसी साहित्य से संबंधित कहानियाँ हैं। परन्तु लोक-समाज ने इस कहानी को अपना रूप दे डाला तथा खड़ीबोली लोकसाहित्य की अत्यधिक लोकप्रिय कहानी हो गयी। गुलबकावली कहानी के आधे भाग में कहानी का बीजारोपण तथा प्रयत्न है। अंधे राजा का बड़ा राजकुमार असफल हो जाता है, छोटा राजकुमार सफल होता है। कहानी के इस भाग में उस देश, काल और समाज की ओर संकेत है। दोनों राजकुमारों का गुलबकावली का फूल लेने जाना उनके पितृभक्ति का परिचायक है। दूसरे उस काल में कितना वेश्याओं का प्रभाव था, ये भी इस कहानी से पता चलता है। परियों का नृत्य अलौकिकता लिये हुए है।

कहानी के अगले भाग में चूहे तथा बिल्ली का महत्वपूर्ण योग है। चूहे सिखाये हुए हैं। वह खेलते समय सार बदल देते हैं, इसीलिए रानी अच्छे से अच्छे खिलाड़ी को भी हटा देती है तथा उसे बन्दी बना लेती है परन्तु बिल्ली के भय से चूहे नहीं आते। राजकुमार रानी को हरा देता है। उसका बड़ा भाई वहाँ पर कैद में होता है। वह उसे भी छुड़वा देता है।

रानी से विवाह कर जब वह आगे बढ़ता है तो राक्षस की लड़की मिलती

है जो उसे देख कर हँसती तथा रोती है। राक्षस अपनी बेटी के कहने पर उसका विवाह राजकुमार से कर देता है तथा वह ही सुरंग बनाकर राजकुमार को गुल-बकावली से मिलाती है। गुलबकावली तथा राजकुमार से प्रेम संबंध हो जाते हैं। एक दिन गुलबकावली की माँ दोनों को बात करते देख राजकुमार को ठगों के देश में फेंक देती है। फिर गुलबकावली की मौसी उसे गुलबकावली से मिलाती है तथा उन दोनों की शादी हो जाती है। कहानी के इस भाग में बहुविवाह एवं पारस्परिक सामाजिक संबंध की ओर संकेत है।

जब वह गुलबकावली तथा फूल को लेकर चलता है तो रास्ते में उससे फूल छीन लिया जाता है तथा उसे पेड़ से बाँध देते हैं। राक्षस की बेटी अपने राक्षसों को बुला कर राजकुमार को उनके द्वारा मँगाती है। अन्त में सब भेद खुलता है तथा राजकुमार बड़े भाई को क्षमा कर देता है।

कहानी के आधे भाग में ध्येय की प्राप्ति का कोई चिह्न नहीं मिलता। ये भाग केवल बड़े राजकुमार की असफलताओं तथा छोटे राजकुमार की बुद्धिमानी और सफलता का परिचायक है। वास्तविक कहानी, राक्षस की बेटी से विवाह करने के पश्चात् से प्रारम्भ होती है। इस कहानी में सब ही प्रकार की भावनाएँ, अलौकिकताएँ, सामाजिक प्रचलन, पशु-पक्षी का सहयोग आदि आ जाते हैं।

दूसरी कहानी 'घड़ा का बेटा' है। इस कहानी में पुत्रहीन राजा महात्मा के पास पुत्र की लालसा लेकर जाता है। वह खड़ाऊँ देता है जिसको आम के पेड़ में मारने से आम झड़ता है। साधु उसी आम की सात फाँक कर देता है और उन सातों फाँकों को सातों रानियों में बाँट देता है। एक रानी आम की फाँक घड़े पर रख देती है। छः रानियों के तो राजकुमार होते हैं किन्तु सातवीं रानी के घड़ा जन्म लेता है। बड़ा होने पर घड़ा भी राजकुमारों के साथ खेलने जाता है और सुनार की दुकान पर से सोना-चाँदी भर कर लाता है। अन्य रानियाँ उससे ईर्ष्या करने लगती हैं। अन्त में घड़े का विवाह हो जाता है। फेरों के समय लड़की घड़े में ईंट मार देती है तथा उसमें से एक सुन्दर लड़का निकल आता है। ईर्ष्यावश देवरानी, जिठानी उसको विष देना चाहती हैं परन्तु अपनी माँ की सीख के कारण वह बच जाता है। इस कहानी में पुत्र की लालसा के साथ ईर्ष्या का भी प्रदर्शन हुआ है। अलौकिक-तत्व ही मुख्य है।

'चार व्याह' नामक कहानी भी इसी प्रकार की मिश्रित कथा है। इसमें वजीर का लड़का और चार प्रकार की लड़कियों से विवाह करता है। बादशाह की लड़की से विवाह करने के लिए वह चालाकी से काम लेता है। सर्प के काटने पर उसे सँपेरा जीवित कर लेता है और उसको तोता बना लेता है। वजीर की लड़की उस तोते

को माँग कर ले जाती है, उससे गले का धागा टूट जाता है तो वह आदमी बन जाता है। वह वहाँ से भागता है और बनिये के घर में घुस जाता है। बनिया उसे दामाद कहकर सिपाहियों से बचाता है। इस प्रकार वजीर का लड़का बादशाह की, वजीर की, सँपेरे तथा बनिये की लड़की से शादी करके घर लौटता है।

अंत में चौथी कहानी 'राजा का बाग़ और छोटा बेटा' रह जाती है। राजा का बाग़ सूखते हुए देख कर छोटा लड़का तीन परियों से तीन बाल ले लेता है और उनसे कहकर बाग़ हरा करा देता है। फिर उन्हीं बालों की सहायता से वह स्वयंवर में विजय प्राप्त करता है और राजा की लड़की से विवाह कर लेता है। फिर वह हिरनों को मार कर अपने पराक्रम का परिचय देता है। बाग़ सूखने का संकेत वंश से है। इसीलिए राजा उन्हें सातों पुत्रों को बाग़ हरा करने के लिये भेजता है। छोटा लड़का अलौकिक शक्तियों की सहायता से विवाह करके घर को हरा भरा कर देता है। अन्त में वह हिरनों के रूप में सात शत्रुओं को भी मार देता है।

इन कहानियों की अलौकिकता में लोकमानव का इतना ही विश्वास है जितना अन्य अन्धविश्वासों में। वह दाना, परी, भूत, प्रेत, जादू आदि में विश्वास करने के कारण इन कहानियों को भी बहुत आस्था से कहता और सुनता है। कई बार ये लोग भूत, प्रेत, दाने तथा जादू भी सिद्ध करते पाये जाते हैं। एक लोकविश्वास है कि यदि पाखाने में चालीस दिन तक तेल का दिया जलाया जाय तो दाना सिद्ध हो जाता है। यह सब लोकविश्वास लोकमानव की इन्हीं कहानियों की देन है। 'अलिफलैला' में तो दाने, आबेहयात, उड़नखटोला आदि की बहुत-सी कहानियाँ मिलती हैं। इस प्रकार हमारी धार्मिक पुस्तकों में भी मय, दानव तथा अन्य राक्षसों के आख्यान मिलते हैं जिनको अलौकिक कहा जा सकता है। इसीलिए इन कहानियों पर लोक-मानव को अटूट विश्वास है और बना रहेगा।

३. सामाजिक कथाएँ—मनुष्य समाज की इकाई है। वह समाज में रह कर भिन्न-भिन्न कार्यकलाप करता है तथा सामाजिक, धार्मिक एवं अन्य सभी समस्याएँ उसी के चारों ओर घेरा बनाये हुए घूमती रहती हैं। सामाजिक लोक-कथाओं में उसी से संबंधित कथाएँ संग्रहीत हैं। उसकी भौगोलिक सामाजिक परिस्थितियाँ तथा परम्पराएँ, जीवन के मूल्य, विश्वास, नैतिक-अनैतिक भावनाएँ एवं उच्च तथा निम्न प्रतिक्रियाएँ, इन कथाओं में व्यक्त होती हैं। सामयिक समस्याएँ भी इन लोककथाओं में चर्चित रहती हैं जैसे बाल-विवाह, अत्यधिक वृष्टिकाल आदि। सामाजिक कथाओं को हमने चार उपवर्गों में बाँटा है :—

१—स्थानीय कथाएँ २—बाल कथाएँ ३—जाति-संबंधी कथाएँ ४—सामान्य कथाएँ।

स्थानीय कथाएँ—इनके अन्तर्गत खड़ीबोली प्रदेश के नगर तथा ग्रामों से संबंधित कुछ कथाएँ हैं । इन कहानियों में मेरठ, मुज़फ्फरनगर, गढ़मुक्तेश्वर, सिंधावली आदि स्थानों के संबंध में कुछ लोक प्रचलित कथाओं पर विशेष रूप से चर्चा की गई है । मेरठ के संबंध में श्रवणकुमार की कहानी है । इस नगर के संबंध में विश्वास है कि यहाँ के लोग अत्यंत अक्खड़ तथा कृतघ्न होते हैं। यह प्रभाव यहाँ के वातावरण पर छाया हुआ है । इसका प्रभाव श्रवणकुमार जैसे आज्ञाकारी पुत्र पर भी पड़ा था और यहीं पर उसने अपने माता-पिता से अपनी सेवाओं का मूल्य माँगा था।

गढ़मुक्तेश्वर में 'नरककुंड' है जिसका संबंध राजा नृग से बताया जाता है। गाय को दुबारा दान कर देने पर राजा को गिरगिट की योनि में जाना पड़ा, इसी बात का इस कहानी में उल्लेख है । इसीलिए परीक्षितगढ़ में 'नवलदेकुआ' की कहानी है जिसके संबंध में विश्वास है कि उसमें स्नान करने से कोढ़ जाता रहता है। नवलदे, राजा बासुकी की पुत्री थी जो अपने पिता के कोढ़ के उपचार के लिए उस कुएँ से अमृत लेने आई थी परन्तु बाद में राजा परीक्षत ने उस पर मोहित होकर उससे विवाह कर लिया था ।

इसी प्रकार मुजफ्फरनगर के संबंध में दो कथाएँ प्रचलित हैं। वहाँ पर डल्लू देवता का मन्दिर है । डल्लू देवता सर्प देव हैं जिनकी बहुत मान्यता है। उसके संबंध में प्रचलित कथा भी विशिष्टता लिये है ।

इसी प्रकार की एक दूसरी कथा और भी है। मुज़फ्फरनगर में ही गाजावाली नामक जोहड़ के ऊपर स्थान बना है जिसे देवता का थान कहते हैं, इस थान का संबंध किसी एक जमीदार के पितरों से है जो अब सर्प के रूप में कुल देवता माने जाते हैं और पूजे जाते हैं।

ज़िला मुज़फ्फरनगर में सिंधावली ग्राम है । इसके संबंध में किंवदन्ती है कि वहाँ के लोग बेवकूफ होते हैं । इन कहानियों से वहाँ के सैयदों की सरलता तथा अत्यधिक सीधापन प्रकट होता है । इन कहानियों का प्रयोजन केवल इतना ही है कि इन स्थानों के इतिहास तथा उनमें अन्तर्निहित विश्वास का ज्ञान सुचारु रूप से हो जाये । वास्तव में मनुष्य के समान ही स्थान-स्थान में भेद होता है और उसी के अनुरूप उसका सम्मान तथा अनादर होता है। इन्हीं सब बातों पर ये लोककथाएँ आधारित रहती हैं ।

बाल कथाएँ—यह कथाएँ दो प्रकार की हैं—लघुछंद तथा साधारण

कहानियाँ। लघुछन्द का कथाओं में प्रयोग हुआ है। यह छन्द तुकान्त रूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा इनमें एक लय बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है। छन्द भी पूरे छन्द नहीं हैं। साधारण शब्दों में दो-दो चार-चार लाइने हैं जिनका प्रयोग कहानी में, कहानी के पात्र समय-समय पर करते हैं। दूसरी प्रकार की कथाएँ साधारण कथाएँ हैं जिनमें छन्द का प्रयोग नहीं किया गया केवल लय में ही कही गयी हैं।

'बरसो राम धड़ाके से', 'गोग्गो रानी', 'काने कचरे की कहानी', 'जाट और बनिया', 'मैना और चना',—ये पाँच कथाएँ लघुछंद कथाओं के अन्तर्गत आती हैं। पहली दो कथाएँ पूर्णतया छन्द कथाएँ हैं। इन कथाओं से बच्चों का मनोरंजन होता है। 'बरसो राम धड़ाके से' लघुछंद कथा अधिकतर किसी बुढ़िया को चिढ़ाने के लिये कहते हैं। इस कथा में पूर्णरूप से प्रकृति वर्णन है। बुढ़िया का मरना गर्मी की अधिकता का द्योतक है क्योंकि गर्मियों में वह कुछ कमा नहीं पाई। इसलिये फाका (उपवास) रख कर मरना पड़ा। इसी प्रकार नाके की नानी का मरना, मछली का घबराना, धोबी के कपड़े तथा पेड़ों के पत्तों का सूखना, ये सब प्रकृति के संबंध में पूर्ण अभिव्यक्ति है। अंत में सब का मिल कर प्रार्थना करना, आस्था का द्योतक है तथा ओले गप्प-गप्प खाना मोद का प्रतीक है। इसी प्रकार 'गोग्गो-रानी' कथा में अथक परिश्रम, आशीष में आस्था तथा घर के सम्मान के प्रति जागृति निहित है। 'गोग्गो रानी' देवी के लिये प्रयोग किया गया है। वह बालक पंख लेकर कुआ खोदता है, धान बोता है, खोटता है। वह चावल निकाल कर खाया तथा कुत्ते को डाला। कुत्ते ने उसे बाच्छी (आशीर्वाद) दी। बालक की आशीष में कितनी बड़ी आस्था है कि उसके द्वारा वह राजा से घोड़ा ले आता है और घोड़ा वह डूमों को दान कर देता है। और वास्तविक प्रसन्नता उसे तब होती है जब उसके बड़ों का नाम लिया जाता है। इन दोनों कथाओं में बच्चों को शिक्षा भी मिलती है तथा इससे बच्चों की नैतिक पृष्ठभूमि पुष्ट होती है। पहली, दूसरी, दोनों कथाओं से प्रार्थना, आशीष एवं दान के प्रति बालकों के मन में विश्वास जाग्रत होता है। दूसरी कहानी में अथक परिश्रम करने की तथा मान-सम्मान के प्रति जागृत रहने की शिक्षा मिलती है।

अन्य तीन कथाएँ—'काने कचरे की कहानी', 'जाट और बनिया' तथा 'मैना और चना' पूर्ण रूप से छन्दकथा नहीं है अपितु उनमें दो-तीन स्थलों पर ही छन्द का प्रयोग हुआ है। 'काने कचरे की कहानी', 'मुर्गे का विवाह' नामक कहानी के समान है। 'काने कचरे' के समान ही मुर्गा भी अपने विवाह में पशु-कीड़ी तथा नदी को ले जाता है और राजा के अपनी लड़की से विवाह करने के लिये मना कर

देने पर वह इन्हीं मित्रों से सहायता लेता है। अन्त में राजा की लड़की से विवाह करके लाता है। कहानी में 'मुर्गे का विवाह' नामक कहानी से कुछ और भी अन्तर है। काना कचरा खाने पर लड़का भी काना ही पैदा होता है तथा उसका नाम काना कचरा पड़ जाता है। 'मुर्गे का विवाह' कहानी में छन्द का प्रयोग नहीं हुआ। ये कहानी कचरे के जीवट की कहानी है। वह अकेला राजा से जीत जाता है। दूसरी कहानी 'जाट और बनिया' की कथा में जाट की लाठी का दिग्दर्शन है। वह बनिये को यह कह कर बेवकूफ बनाता है—'सत्तूमन भत्तू कब घोला कब पीया'। बनिया यह समझ कर कि यह तो बड़ी देर का काम है जाट को सत्तू दे देता है और धान (भूंजी) ले लेता है और कहता है—

'भले बिचारे धन्नु, खोट्टे पिस्से अर चलनु'

पर जब जाट सत्तू घोल कर खा जाता है और बनिये को खोटने पीसने पड़ते हैं तब उसे ज्ञान होता है।

'चना और मैना' की कहानी बड़ी कहानी है। इसमें चना खो जाने पर मैना सबके पास जाती है कि उसका चना कोई वापिस करा दे परन्तु सब मना कर देते हैं। बाढ़ी खूंट चीरने को मना कर देता है क्योंकि खूंट ने उसका क्या बिगाड़ा था। तो वह यह कह कर कि—

खूंट चना देना, बाढ़ी खूंट चीरे ना
मैना का चना निकले तो कैसे निकले ?

निराश लौट पड़ती है। उसे बाढ़ी पर गुस्सा आता है वह साँप के पास जाती है और साँप से बाढ़ी को डसने के लिये कहती है। वह भी यही कहता है कि बाढ़ी ने मेरा क्या बिगाड़ा जो मैं उसे डस लूं फिर वह निराश होकर यही कहती है :—

खूंट चना दे ना
बाढ़ी खूंट चीरै ना
साँप बाढ़ी डसे ना
मैना का चना निकले तो कैसे निकले

इसी प्रकार वह लाठी के पास, आग के पास, बादल के पास तथा समुद्र आदि के पास जाती है, सब मना कर देते हैं। वह कहती है कि—

'मैना का चना निकले तो कैसे निकले'

अंत में राम के पास जाती है और राम जी समुद्र सोखने के लिए कह देते हैं। समुद्र सुनता है तो वह दौड़ता जाता है कि मैं बादलों को पानी दूंगा, तो बादल दौड़ते हैं, आग दौड़ती है, लाठी दौड़ती है, साँप दौड़ता है, बाढ़ी जाकर खूंट खोदने लगता है तो खूंट मैना का चना दे देती है और मैना खुश हो जाती है। इस

कहानी में यह दिखलाया गया है कि जब तक किसी शक्तिशाली व्यक्ति का प्रभाव नहीं पड़ता तब तक कार्य नहीं होता और न ही अनुनय विनय से काम चलता है। इस कहानी में ईश्वर के प्रति आस्था की पुष्टि होती है।

गीतात्मक तथा लयात्मक वस्तुओं को बच्चे बहुत जल्दी याद कर लेते हैं। इसीलिए बालकों को छन्दात्मक कथाएँ सुनाई जाती हैं। रात्रि को सोते समय ये कहानियाँ लोरी का काम करती हैं। लयात्मक कथाओं के सिवाय ऐसी कथाएँ भी होती हैं जिनमें लघुछंद बिल्कुल नहीं होते परन्तु वह कथाएँ बालकों को बहुत अच्छी तरह से याद रहती हैं तथा उनका उन पर अमिट प्रभाव पड़ता है। उनमें से कुछ कथाएँ 'अच्छे कर्मों से स्वर्ग दिखाई देता है', 'पूड़ों का पेड़', 'कन्नो-मन्नो और मैं', 'झूठा बालक सच्चा लड़का' अत्यंत प्रभावशाली कथाएँ हैं। 'अच्छे कर्मों से स्वर्ग दिखाई देता है' नामक कहानी उत्तम तथा मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसमें बालक कहानी सुनकर तथा तसवीरें देख कर स्वर्ग के बच्चों से खेलने की इच्छा करता है। बच्चे खेलने के लिये यदि बुलाने आते हैं तो वह उनके साथ खेलने के लिए मना कर देता है तथा स्वर्ग के बच्चों के साथ खेलने के लिये कहता है। वह सुबह की किरणों से पूछता है कि किरणों मुझे, स्वर्ग दिखाओ। आकाशवाणी होती है कि दिव्य दृष्टि से स्वर्ग दिखलाई देगा। वह बाजार से दिव्य दृष्टि खरीदने जाता है। शाम को बाग़ में एक परी मिलती है और वह उसे डिबिया देती है और कहती है कि जितने अच्छे काम करोगे उतने ही स्वर्ग के रुपये इसमें जमा हो जायेंगे। बुरे काम करोगे तो उतने ही रुपये निकल जायेंगे। जब स्वर्ग के रुपये जमा हो जायेंगे तब स्वर्ग दिखाई देगा। वह अच्छे काम करके सुरग के रूपए जोड़ लेता है। कहानी में एक बूढ़े के कहने पर वह अपने सब स्वर्ग के रुपये उसे दे देता है। बूढ़ा कोई देवता होता है। वह उसके दान से प्रसन्न होकर उसे स्वर्ग दिखा देता है। इस कहानी में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

प्रथम तो इस कहानी में बालक के बालसुलभ मनोविज्ञान का चित्रण है जिसमें वह स्वर्ग के बच्चों के साथ खेलने की इच्छा करता है तथा वह इतना सरल है कि दिव्य-दृष्टि बाजार से खरीदने जाता है।

दूसरे स्वर्ग को देखने के लिए वह स्वर्ग के रुपये इकट्ठे करने लगता है। परन्तु उसके सामने रुपयों से अधिक अच्छे कामों का मूल्य है, वह लालच को छोड़ कर स्वर्ग के रुपये बूढ़े को दे देता है।

इस कहानी में अच्छे कर्म करने की प्रेरणा है तथा कहानी की कथावस्तु इस प्रकार ही है कि बच्चों के मानस को पुष्ट बनाता है। 'कन्नों-मन्नों और मैं' खेल की कहानी है। इसमें बालसुलभ शैतानी है। तीर लेकर गुरसल मारना, कुकड़ी को

बाँट कर खाना तथा कन्नों-मन्नों को जोर लगाकर बाहर निकालना बच्चों की सहयोगी प्रवृत्ति है। साथ ही साथ राजा को 'हड़चो' नामक गाली कह देना भी बालसुलभ घटना ही है। कहानी का अंत भी बड़ा अच्छा है। इसमें राजा को गाली देने से वह फिसड्डी रह जाता है। 'कन्नो-मन्नो का घोड़ा' तेज चलता है। यह इस प्रकार की कथा है जिसमें बच्चों की शैतानी, सहयोगी तथा बदतमीजी करने का दंड तीनों ही देखने को मिलते हैं।

'पूड़ों का पेड़' बच्चों के लिए बड़ी रसपूर्ण कथा है। बच्चा 'पूड़ों का पेड़' उगाता है। जब पूड़े लगते हैं तो बंगालन (जादूगरनी) आकर उसे धोखे में डाल कर ले जाती है, परन्तु वह चालाकी से भाग निकलता है। वह फिर उसे धोखे से ले जाती है परन्तु वह अगली बार उसकी लड़की का सिर ओखली में कूट कर तथा उसको राँध कर माँ को खिला देता है और भाग जाता है। जब बंगालन आती है तो उसे मार देता है। ये कहानी बच्चे की चालाकी तथा तीव्र बुद्धि की परिचायक है। इसमें लड़का अपनी बुद्धिमानी से ही बंगालन के चंगुल से बच निकलता है।

'झूठा बालक' झूठे बच्चों से सबंधित कथा है जो अपनी माँ से झूठ बोलकर अपना काम बना लेता है। इस प्रकार की कहानी बच्चों के ऊपर खराब प्रभाव डाल सकती है तथा इस कहानी का दूसरा पक्ष यह भी है कि बच्चा झूठ बोलने की आदत पड़ जाने के कारण बार-बार प्रतिज्ञा करने पर भी नहीं बदल पाता।

लघुछन्द तथा साधारण कथाओं के साथ-साथ अन्य कहानियाँ भी बच्चों से संबंधित हैं। पशु-पक्षियों से संबंधित कथाएँ भी बालकों से संबंधित कथाएँ ही हैं। 'सोने के बाल वाला बंदर', 'लाँडा शेर', 'मैना का विवाह' आदि कहानियाँ ऐसी ही कथाएँ हैं। इन कथाओं के माध्यम से बालकों को बड़ा प्रोत्साहन तथा शिक्षा मिलती है। इन कथाओं के चरित्रों से छोटे-छोटे बालक अमूर्त मित्रता स्थापित कर लेते हैं तथा उसी रूप में सोचने लगते हैं। यह कथाएँ ऐसी होती हैं जिनके माध्यम से बच्चों को कुछ चीजें याद हो जाती हैं जैसे पशु-पक्षियों के नाम, स्थानों के नाम, छन्द आदि। बालक इन कहानियों का हर रूप में अनुकरण करते हुए भी देखे गए हैं।

जाति कथाएँ—इस प्रदेश में अनेक जातियाँ रहती हैं। यह सब जातियाँ एक-दूसरे के सुख-दुख में सम्मिलित होती हैं। वैसे तो सब ही जातियों में जातीय भेद-भाव होता है; परन्तु फिर भी एक प्रकार की एकता सदा से बनी रही है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर कुछ ऐसे भी कारण होते हैं जिन कारणों से जातीय-दूरी बनी रहती है। इन कारणों में स्वभाव, खान-पान तथा अन्य जातीय-विशेषताएँ आदि हैं। दूसरा कारण यह भी है कि सब लोग अपने

रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज एवं धार्मिक तथा सामाजिक मूल्यों को ही श्रेष्ठ समझते हैं और दूसरी जाति के लोगों के स्वभाव तथा रीति-रिवाजों के प्रति अत्यधिक आलोचक होते हैं अथवा उनके परिहास का विषय भी होते हैं । सब जातियों का जीवन-यापन करने का अपना एक निश्चित ढंग होता है अथवा एक प्रकार का कार्य करते रहने के कारण वह उसकी आदत में ही आ जाता है । इसी के आधार पर वह उसका जातीय गुण अथवा अवगुण बन जाता है । उदाहरण के लिये बनिया कंजूस होता है, ब्राह्मण की माँगनी-खानी जाति है, कायस्थ चालाक होता है, जाट तुरत बुद्धि होता है । यह जातिगत विशेषताएँ हैं । इस प्रकार की बातों को लेकर हर जातिवाला एक दूसरे से परिहास करता है । जाति से अलग लिंग के आधार पर भी कथाएँ होती हैं, उदाहरण के लिए स्त्री तथा पुरुष संबंधी कथाएँ । 'तोता मैना' में सम्पूर्ण कथाएँ ही स्त्री-पुरुष से संबंधित हैं । वैसे तो यह सब कथाएँ मनोरंजन के लिये ही होती हैं परन्तु उनमें जातीय मलिनता तथा कलुष भी झाँकते रहते हैं ।

इस पृष्ठभूमि के साथ हम कुछ जाति संबंधी कथाओं की चर्चा करेंगे । इन कथाओं में ब्राह्मण, बनिया, जाट, डोम, नाई, चमार, कुम्हार आदि से संबंधित कथाएँ हैं । इन कथाओं में जातीय गुण-अवगुण की ओर संकेत किया गया है । 'ब्राह्मण और बनिया' नामक कहानी में दोनों जातियों की विशेषता का सजीव उदाहरण है । इसमें बनिया पेड़ पर चढ़ कर उतर न पाने पर सौ ब्राह्मणों को खाना-खिलाने की मान्यता करता है परन्तु नीचे उतरते-उतरते केवल एक ब्राह्मण को ही खाना खिलाने की बात रह जाती है । एक ब्राह्मण जो कहीं पर यह बात सुनता होता है, वह सेठ जी के साथ चालाकी करता है, तथा ललाइन से सौ ब्राह्मणों को खाना खिलवाने का प्रबन्ध कराता है । जब लालाजी आते हैं और उन्हें मालूम होता है तो वह उसके घर लड़ने के लिए पहुँचते हैं । अन्त में यही होता है कि ब्राह्मण मरने का बहाना करके पड़ जाता है तथा लाला से और रुपया वसूल करता है । यह कहानी दोनों जातियों का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करती है तथा जातिगत कमी के प्रति सजग भी रहती है ।

'चालाक बनिया' तथा 'लोभी बनिया' यह दोनों कहानियाँ बनिये की, धन की सुरक्षा के प्रति जागृति तथा कंजूसी की कथाएँ हैं । वैसे तो पहली कहानी में ही ये दोनों बातें आ जाती हैं । पहली कहानी में बनिये की होशियारी का भी दिग्दर्शन है । वह चार चोरों को एक स्थान पर बैठा ही बैठा मार देता है तथा एक बूढ़े को सवा रुपए में एक मुर्दा फेंक आने के लिए तय करता है और उससे चारों मुर्दे फिकवा देता है परन्तु एक पैसा भी नहीं देता । इसी प्रकार से 'लोभी बनिया' की भी

कहानी है। इसमें वह तीर्थ करने जाता है परन्तु वह वहाँ एक धेला भी दान नहीं करता। अपितु चिता पर जलने के लिए तैयार हो जाता है परन्तु भगवान् उसे बचा लेते हैं और उससे कहते हैं इतनी कंजूसी नहीं करनी चाहिये।

जाट-जाटनी से संबंधित कथाएँ भी उसकी तुरत बुद्धि से संबंधित कथाएँ हैं। इन कथाओं में 'मैं तो खुदा हूँ', 'किसका खेत किसकी भैंस', 'जाट की उरली परली बात' तथा 'चालाक जाटणी' विशेष हैं। पहली कथा में जुलाहे के अपने आपको पठान बताने पर जाट उसकी जाति पूछे जाने पर बतलाता है 'मैं तो खुदा हूँ'। क्योंकि जब जुलाहा पठान बन सकता है तो फिर जाट खुदा क्यों नहीं हो सकता। यह कहानी जाट की तुरत बुद्धि की द्योतक है। दूसरी कहानी 'किसका खेत किसकी भैंस' उनकी झगड़ालू प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। बिना भैंस और खेत के हुए दोनों जाट जमीन पर खेत खींच कर तथा कंकड़ की भैंस बना कर लड़ पड़ते हैं। न वहाँ किसी की भैंस होती है और न खेत ही।

'जाट की उरली परली बात' में बड़ा भाई जाटनी से छोटे भाई का बदला लेता है। इस कहानी में यह बात भी निहित है कि व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार कार्य करना चाहिये नहीं तो जाट के छोटे भाई की तरह बेवकूफ बनना पड़ता है। 'चालाक जाटणी' में जाट उससे तरमतर हलवा और गरम दूध का 'बेल्ला' पीता है। वह अन्धा बनने का ढोंग रचता है परन्तु अन्धा नहीं होता। जब जाट के अन्धे बनने की खुशी में वह ब्राह्मण जिमाती है तो वह जाटणी को उसी के सामने पीटता है। इस कहानी में यद्यपि यह कहा गया है कि जाटनी उसको अंधा करना चाहती है परन्तु यह कहानी जाट की चालाकी पर ही प्रकाश डालती है।

अन्य कहानियों में नाई, कुम्हार, डोम तथा चमार, जुलाहे से संबंधित कहानी हैं। 'नाई की चालाकी' तथा 'सींगों वाला राजा' पहली कहानी में नाई की वाक्-पटुता का उदाहरण मिलता है।

दूसरी कहानी में नाई के पेट के थिथलेपन का ज्ञान होता है। वास्तव में नाई अधिकतर अपने जजमानों को प्रसन्न करने के लिये इधर से उधर बातें कहा करते हैं, परन्तु वह 'राजा के सिर में सींग' वाली बात उसके पेट में नहीं खपती। इसलिये वह जंगल में पेड़ की जड़ में जाकर चीखता है।

'कुम्हार' कहानी में वह अपनी कुम्हारी के बार-बार मनाने पर भी वह नहीं मानता। अन्त में वह जला दिया जाता है परन्तु वह होशियारी से निकल भागता है तथा जोहड़ में लोट जाता है और भूत का रूप बनाकर एक और कुम्हार के गधे को घर ले आता है। इस कहानी में कुम्हार की चालाकी है जिसमें वह अपनी पत्नी को नीचा दिखाना चाहता है।

'चालाक डोम' तथा 'चमार' दोनों ही भिन्न प्रकार की कहानियाँ हैं। 'चालाक डोम' नामक कहानी का अन्तिम भाग 'कुम्हार' कहानी से समानता रखता है। इस कहानी में उसे खीर खाने के लालच में ही सब झूठ बोलना पड़ता है। दशा यहाँ तक पहुँच जाती है कि उसे मरने का ढोंग रचना पड़ता है। लोग उसे जमीन में गाड़ देते हैं परन्तु वह जमीन में से निकल कर धोबी के कपड़े उठाकर भाग आता है। एक झूठ निबाहने के लिये उसे इतनी कठिनाई उठानी पड़ती है परन्तु इस कठिनाई का प्रतिफल उसे धोबी के कपड़ों के रूप में मिल जाता है। चमार कहानी 'चमार' के शेखीखोरेपन का उदाहरण है। चमार ज्योतिष नहीं जानता परन्तु वह अपन आपको ज्योतिषी घोषित करता है। भाग्य से उसकी बात सत्य हो जाती है। अन्त में वह राजा के खुश हो जाने पर दरियाई घोड़ा माँग लेता है पर वह उसको सँभाल नहीं पाता। अंत में वह अपनी ही भूल के कारण मर जाता है। अंतिम कहानी 'जुलाही' रह जाती है। यह कहानी जुलाही जाति से इतनी संबंधित नहीं जितनी यह स्त्री-पुरुष से संबंधित है। जुलाही स्त्री होकर भी अपनी होशियारी से हलवाई से रुपया निकाल लाती है जो कार्य कि पुरुष नहीं कर पाता।

४. सामान्य या फुटकर सामाजिक कथाएँ—इन सब कहानियों पर दृष्टिपात कर लेने के पश्चात् हमारे पास कुछ और सामाजिक कहानियाँ शेष रह जाती हैं जिनको कि बाल-कथाओं, स्थानीय-कथाओं तथा जातीय-कथाओं के समान किसी एक वर्ग में नहीं रखा जा सकता। यह मनुष्य की विभिन्न भावनाओं, सामाजिक समस्याओं तथा जीवन के अन्य कार्य-कलापों से संबंधित हैं। इनको हमने फुटकर रूप में एकत्र किया है। इनका वर्गभेद भी हम सामान्यतः फुटकर सामाजिक कथाओं में कर रहे हैं। संख्या में यह कहानियाँ केवल १४ ही हैं—सृष्टि की उत्पत्ति, आदमी की उमर, हुंड की बरखा, भगवान् से माँगो, सबसे बड़ा धन, अंधेर नगरी चौपट राजा, काग उड़ावनी, तिरिया-चरित्र, रूप-बसन्त, आधा सच आधा झूठ, भला बुरा आदमी, दो दोस्त, ठग की कहानी, दगाबाजी का फल।

पहली दो कहानियाँ 'सृष्टि की उत्पत्ति,' 'आदमी की उमर' मनुष्य की उत्पत्ति तथा आयु से संबंधित लोककथाएँ हैं। पहली कहानी स्त्री-पुरुष के अन्योन्याश्रित संबंधों की ओर संकेत करती है। स्त्री-पुरुष चाहे एक दूसरे से कितने भी असंतुष्ट रहें पर वह एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों में से किसी की अनुपस्थिति भी एक-दूसरे के लिए असह्य है। दूसरी कहानी में मनुष्य की विभिन्न अवस्थाओं के संबंध में दिया गया है। पहले ४० वर्ष मनुष्य के अपने हैं इसलिए वह कर्मनिष्ठ रहता है परन्तु इसके पश्चात् बैल की आयु पाने के कारण उसकी तृष्णा बढ़ जाती है। उसके पश्चात् कुत्ते की आयु आरम्भ होती है, उसमें वह चल फिर भी नहीं सकता लेकिन

शोर मचाता रहता है। अन्त में वह उल्लू की भाँति बैठा रहता है। इस अवस्था में वह कुछ नहीं कर पाता क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं।

'हुंड़ की बरखा', 'भगवान् से माँगो', 'सबसे बड़ा धन' यह तीनों कहानियाँ शिक्षाप्रद हैं। पहली कहानी में दान न देने के कारण भिखारी-भगवान् दुकानदार को सुनाकर कह जाते हैं कि बराबर वाले की दुकान में 'हूंड़ बरसेगा'। वह सुन लेता है तथा उसकी दुकान अपनी दुकान से बदल लेता है, और वह लालच में मारा जाता है क्योंकि उस दुकान में कुछ नहीं बरसता। उसकी भरी-भराई दुकान बराबर-वाले दुकानदार के पास पहुँच जाती है। 'भगवान् से माँगो' कहानी में आत्म सम्मान की भावना दृष्टिगत होती है तथा जाट का ईश्वर में अटल विश्वास दिखलाई देता हैं। तीसरी कहानी 'सबसे बड़ा धन' में एक ब्राह्मण राजा को ज्ञान कराता है कि उसके पुत्र, पत्नी सबका संबंध धन से ही है, उससे नहीं। अन्त में ज्ञान हो जाने पर उस राजा के साथ-साथ ही ब्राह्मण को भी मोक्ष मिल जाता है। 'काग उड़ावनी" 'रूप बसन्त', तथा 'तिरिया-चरित्र' यह तीनों कहानियाँ स्त्री-जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित हैं। 'काग उड़ावनी' कहानी में नारी जाति की एक-दूसरे के प्रति स्पर्धा देखने को मिलती है। इसमें एक राजा की चार रानियाँ आपस में भिन्न होते हुए भी एक के बच्चा होने पर तीनों मिल कर ईंट पत्थर रख देती हैं तथा बच्चा को नदी में बहा देती हैं। यह स्वाभाविक है कि कोई स्त्री यह नहीं चाहती कि एक के कारण दूसरी स्त्री का, पति निरादर करे। यही बात 'रूप-बसन्त' नामक कहानी में देखने को मिलती है। इसमें सौतेली माँ रूप बसन्त को निकलवा देती है। वे बड़ी कठिनाई उठा कर अपने जीवन की रक्षा करते हैं। बसन्त तो बड़ी कठिनाई से अपने भाई तक पहुँच पाता है। इस में सौतिया-डाह का भिन्न-भिन्न रूप देखने को मिलता है। पहली कहानी में तीनों रानियों के अपने बच्चे न होने के कारण वह बच्चों को बहा देती है जिससे निःसंतान रह जाने से उन तीनों का राजा के द्वारा निरादर न हो। 'रूप बसन्त' कहानी में मृत सौत के बच्चों को इसलिए निकाल दिया जाता है कि बड़े होने के कारण कहीं इन लड़कों को राज्य न मिल जाय। 'तिरिया-चरित्र' कहानी में देखने को मिलता है कि वह आदमी को मरवा भी सकती है और बचा भी सकती है। उसका चरित्र मनुष्य की समझ से दूर की बात है।

'आधा सच आधा झूठ' तथा 'अंधेर-नगरी चौपट राजा' कहानी कलियुग तथा अनियंत्रित राजा के ऊपर व्यंग्य है। 'आधा सच आधा झूठ' बोलने से ही कलियुग में जीत होती है, क्योंकि केवल सच बोलने से आदमी कभी विजयी नहीं होता। लोक कथाकार यहाँ तक कह गया है कि वह ईश्वर के विधान में भी संशय करने

लगा। जब बुढ़िया सत्य बात के लिये अपने बेटे की कसम खाती है तो वह मर जाता है उसमें झूठ मिलाकर कहने पर वह जीवित हो जाती है। 'अंधेर नगरी चौपट राजा' ऐसे राजा की कथा है जो अनुशासन के सर्वथा अयोग्य है। वह अपनी बुद्धिहीनता के कारण तथा गुरु चेले के चक्कर में आकर स्वयं को ही फाँसी लगवा लेता है।

'भला बुरा आदमी' कहानी मनुष्य के कर्मों की ओर संकेत करती है। बुरे आदमी की हड्डी के वृक्ष पर गिर जाने से पेड़ सूख जाता है। इस कहानी में प्रतीक है पापों से पुण्य-वृक्ष जल जाता है। 'दो दोस्त' कहानी में मित्रता का आदर्श उदाहरण है। समय पर दोनों दोस्त एक दूसरे की मदद करते हैं। एक दोस्त अपने बच्चे के खून से नहलाकर मित्र का कोढ़ दूर करता है।

'उल्टा-सीधा भाग्य' तथा 'मौत से कोई नहीं जीता' कहानियों में भाग्य तथा मृत्यु की प्रधानता की ओर संकेत है। पहली कहानी भाग्य से संबंधित है। यदि भाग्य में कोई वस्तु न हो और ईश्वर भी देना चाहे तो वह भी नहीं रहती। दूसरी कहानी मौत से संबंधित है। जब मौत आती है तो मौत को पहचानने वाला व्यक्ति भी उससे नहीं बच सकता।

अन्तिम कहानी ठग की कहानी है। इसमें जाट का बैल ठग ले लेते हैं। बाद मेंजाट भिन्न-भिन्न रूप रख कर खूब छकाता है तथा उनका सब धन ले आता है। इन कहानियों में सभी प्रकार की सामाजिक कहानियाँ देने का प्रयत्न किया गया है। यह कहानियाँ इस प्रदेश में प्रचलित कहानियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। बहुत ही कम ऐसे विषय हैं जो लोक-कथाकार की दृष्टि से बच पाये हों।

५. नीति तथा कहावतों संबंधी कथाएँ—कथाओं में प्रयुक्त नीति व कहावतें दैनिक जीवन के क्रियाकलापों से संबंधित हैं। इन कथाओं में लोक-व्यवहार के निर्वाह के लिये निश्चित किये गये जो आचार-विचार होते हैं, उनके अन्तर में यही भावना होती है कि जनसाधारण का इन कथाओं के द्वारा मार्ग-प्रदर्शन हो, इनसे न तो स्वयं को ही कोई हानि हो और न दूसरों के लिये ही ये कष्टदायक सिद्ध हों। कहावतों में अनुभवों पर आधारित उक्तियाँ हैं जिनके अन्दर समाजगत परम्पराओं से चले आते अनुभव समाहित हैं। इन कहावतों ने भी लोकमानव के लिए नीति का रूप धारण कर लिया है। यदि इन दोनों को आमने-सामने रख कर अध्ययन किया जाय तो कोई विशेष अन्तर नहीं मिलेगा। कहावतों की पृष्ठभूमि में भी नीति ही होती है और समाज के सामूहिक रूप से संबद्ध अनुभव होते हैं। इन दोनों को एक-दूसरे से विलग कर दोनों के मध्य एक विभाजक-रेखा खींच देना असंभव है। कारण कि जो कहावतें व्यवहार तथा दैनिक-

जीवन के कार्यकलापों से संबंधित हैं, वह भी नीतियाँ ही बन गयी हैं।

वास्तव में जो नीति तथा कहावतों को दृष्टांत के साथ कहा जाता है वही नीति तथा कहावतों संबंधी कथाएँ हो जाती हैं। इनके मूल में कथाएँ ही रही होंगी—वही कथाओं के चरमवाक्य नीति तथा कहावत बन गये। धीरे-धीरे इनसे संबंधित कथाएँ विस्मृत होती गयीं और उनका प्रतिनिधित्व यह कहावती-वाक्य ही करने लगे। दृष्टांत सहजग्राह्य बनाने के माध्यम हैं। इनके द्वारा कठिन अभिव्यक्ति सरल व सहज हो जाती है, जिसका जन-मन पर अमिट प्रभाव पड़ता है।

यह कथाएँ लोक-व्यवहार के लिये निर्धारित नैतिक आचार-विचार हैं। इनका उपदेशात्मक चरित्र लोकमानव को समय-समय पर कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर करने में सहायक सिद्ध होता है और पथ-भ्रष्ट होने से बचाता है। यह कथाएँ सामाजिक तथा व्यावहारिक संहिता का रूप धारण कर चुकी हैं। 'पंचतंत्र' का जिस प्रकार नीति-उपदेश के लिये उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार जीवनोपयोगी तथ्यों को इन कहानियों के द्वारा लोक में प्रस्तुत किया जाता है। अन्तर केवल इतना ही है कि पंचतंत्र के अधिकांश पात्र पशु-पक्षी थे जब कि इनमें अधिकांश मनुष्य पात्र हैं।

इन कथाओं का सार्वभौमिक रूप है तथा महत्व है जिनमें तत्कालीन समाज व काल के उपयोगी सत्य रहते हैं। इनमें कुछ ऐसी कहावतें भी हैं जिनका प्रसार प्रायः सभी देशों व जातियों में मिल सकता है। 'जैसे को तैसा' नामक कथा संस्कृत में 'शठे शाठयम् समाचरेत्' शीर्षक से प्रचलित है। इसी प्रकार अंग्रेजी में वह 'Tit for Tat' नाम से मिलती है। अंग्रेजी में प्राप्य कहानी की कथा-वस्तु में थोड़ा-सा अन्तर अवश्य है परन्तु अन्त में उससे निर्णय यही निकलता है कि जैसा व्यक्ति हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये।

जिन नीति तथा कहावत की कथाओं को हम यहाँ ले रहे हैं, उनमें कुछ सिद्धांत हैं जिन्हें लोकमानव अपने मन में सदा रखता है और आवश्यकतानुसार उनका उपयोग भी करता है तथा दूसरों को भी उसी के साथ परामर्श देता है। ये आस्थावान् हैं, ईश्वर पर, भाग्य पर, होनी पर तथा इन पर विश्वास करते हैं। 'भगवान् सब जगह रहते हैं', 'सत्त की जीत', 'जो भगवान् करे सब ठीक है', 'पाहुना परमेश्वर', 'पुन्न से पाप भी कट जा', 'सब अपने अपने भाग का खावै'—इन कहानियों में लोकमानव की आस्था दीख पड़ती है।

पहली कहानी ईश्वर की सर्वव्यापकता के संबंध में है। इसमें हिंसा को पाप भी घोषित किया गया है, जो ईश्वर के सम्मुख नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि गुरुजी का दूसरा चेला मुर्गे को बिना काटे ही वापिस ले आता है। इस कहानी

में गहन आस्था का भी प्रत्यक्ष दर्शन होता है। 'सत्त की जीत' भी इस प्रकार की कहानी है। द्वेष तथा पापपूर्ण भक्ति व दान का भी कुप्रभाव होता है। यदि आस्था के साथ उल्टा-सीधा नाम भी लिया जाय तो उसका प्रभाव अच्छा होता है। अपनी पड़ोसिन के कहने पर 'भैंस के सींग'—'भैंस के सींग' कह कर के ही एक स्त्री आस्था से पूजा करने लगती है और उसी के कहने से खीर जूठी करके ब्रह्मा जी को खिलाती है, परन्तु फिर भी भगवान् उसी पर प्रसन्न होकर विमान में बिठाकर उसे स्वर्ग ले जाते हैं। इसके विपरीत वह पड़ोसिन सब कुछ विधि-विधान से करती है लेकिन उतनी आस्था का उसमें अभाव है, इसी कारण उसे कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। इस कहानी में दिखाया गया है कि शुद्ध भावना तथा सरल हृदयता ही सबसे महान् गुण है। 'भैंस के सींग'—भैंस के सींग' कहनेवाली स्त्री की भावना सत्य है तथा विश्वास अटल। इसी से भगवान् स्वयं ही उसके पास आ जाते हैं। इन कहानियों के द्वारा लोकमानव का विश्वास बहुत अधिक दृढ़ होता है। 'भगवान् जो कुछ करते हैं वह ठीक ही करते हैं' इस कहानी से भी लोकमानव का विश्वास बहुत अधिक दृढ़ होता है। 'भगवान् जो कुछ करते हैं ठीक करते हैं' नामक कहानी में इसका प्रमाण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। राजा की उंगली कट जाने पर वज़ीर जब अपने स्वभावानुसार यह बात कह देता है तो राजा उस पर नाराज़ हो जाते हैं और उसे कुएँ में जाकर धक्का देते हैं। राजा जब अकेला रह जाता है तो कुछ लोग उसे पकड़ कर देवी को उसकी बलि चढ़ाने के लिये ले जाते हैं परन्तु कटी हुई अँगुलि देख कर तथा खण्डित-बलि निषिद्ध है, यह समझ कर छोड़ देते हैं। उसी समय वजीर की बात याद आती है। वह वज़ीर को कुएँ से निकालता है तथा सारी कहानी उसे सुनाता है। वजीर इसका भी ईश्वर को धन्यवाद देता है कि राजा ने उसे ही कुएँ में धक्का दे दिया। नहीं तो उसे ही बलि चढ़ना पड़ता। यह कहानी ईश्वर के विधान का पूर्ण रूप से समर्थन करती है तथा उसके प्रति मनुष्य को नत-मस्तक करने के लिए प्रेरित करती है।

अन्य तीन कहानियाँ 'पाहुना परमेसर', 'पुन्न से पाप कट जा' तथा 'सब अपने अपने भाग का खावैं' अपने-अपने प्रकार की कहानियाँ हैं। 'पाहुना परमेसर' नामक कहानी में भारतीय पद्धति के अनुसार अतिथि को देवतुल्य माना गया है। इस कहानी में इसी बात की ओर संकेत किया गया है कि अतिथि के नाम का भोजन ईश्वर स्वयं भेज देता है। जिसके घर में अतिथि आता है उसके भाग्य की सामग्री भी साथ ही आ जाती है, क्योंकि पाहुना परमेश्वर के समान होता है और ईश्वर का ही आदमी होता है। इसीलिये उसे उचित सम्मान दिया जाना चाहिये। 'पुन्न से पाप कट जा' कहानी में पापी व्यक्ति को धन मिलता है तथा साथ ही साथ पुण्यात्मा

को काँटा लगता है। इस कहानी में पुनर्जन्म के सिद्धान्त भी समाहित हैं। पिछले जन्म एक धर्मात्मा व्यक्ति बहुत पापी था। उसे इस जन्म में फाँसी लगनी चाहिये थी परन्तु उसके इस जन्म के सुकर्मों ने फाँसी के स्थान पर काँटे दंड भर दिया। इसी प्रकार उस जन्म में पापात्मा बहुत अधिक धर्मात्मा था। उसे इस जन्म में राज्य मिलनेवाला था परन्तु उसके इस जन्म के पापों ने राज्य को घटाकर केवल थोड़ा सा धन का ही लाभ होने दिया। यह कथा मनुष्य को हर स्थिति में सहायता देती है तथा व्यक्ति को पथ दिखलाती है कि मनुष्य को अच्छे कार्य करना चाहिये। यह नीति-कथा के रूप में सम्मुख आती है जो कल्याण के पथ की ओर ले जाती है। 'सब अपने अपने भाग्य का खाते हैं' यह कथा इस प्रदेश में बहुत अधिक प्रिय है। राजा के अपनी सात लड़कियों से पूछने पर कि तुम किसके भाग्य का खाती हो, छः लड़कियाँ तो यही कहती हैं कि आपके भाग्य का खाती हैं परन्तु सातवीं लड़की कहती है कि 'सब अपने अपने भाग्य का खाते हैं'—इस बात से राजा रुष्ट हो जाता है तथा उसका विवाह अत्यन्त दरिद्र और रोगी से करता है, पर अन्त में वही लड़की धन-धान्य से पूर्ण हो जाती हैं तथा राजा और उसकी अन्य छः लड़कियाँ दरिद्र हो जाती हैं। यह कथा मनुष्य को भाग्यवादी बनाती है।

ईश्वर संबंधी, भाग्य संबंधी तथा आस्था विश्वास संबंधी कहावतों की कहानियों में अलग-अलग दिन प्रतिदिन के कार्यकलापों से संबंधित कथाएँ भी हैं जो लोक-मानव का जीवन के विविध क्षेत्रों में मार्ग प्रदर्शन करती हैं। 'तुखम तासीर,'सोहबत का असर', 'चोर चोरी से बाज आ जा हेरा फेरी से बाज न आता', 'बड़ों का कहना सच होता है', 'घर खीर तो बाहर खीर', 'फूट पिटवाती है', 'दुनिया में किसी तरह चैन नहीं', 'अन्त को जवाल है', 'करने से पहले सोच लेना चाहिये', 'जितनी चादर हो उतने पैर पसारने चाहियें', 'जो किसी के लिये कुँआ खोदता है, उसके लिये खत्ती पहले खुद जा', 'बात का घाव न भरता', 'जैसे को तैसा', आदि कथाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

पहली कहानी में गड़रियों को देखकर सेठ-सेठानी के बीच बहस होती है कि 'तुखम तासीर है या सोहबत का असर है। सेठ तुखमतासीर कहता है सेठानी सोहबत का असर कहती है। सेठ उसे छोड़ कर चला जाता है। फिर सेठानी गड़रियों को अपनी सोहबत से बहुत बड़ा आदमी बना देती है। जब दुबारा सेठ विवाह करके उधर से निकलता है तो उस समय सेठानी, सेठ को बुलवाती है तथा उसे वास्तविकता बताती है, तब सेठ को उसी की बात माननी पड़ती है। इस कहानी में सोहबत पर बहुत अधिक महत्व दिया गया है। अन्तर्निहित भावना यही है कि सत्संग का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

दूसरी कहानी आदत से संबंधित है। एक चोर साधुओं के सत्संग से चोरी करना छोड़ देता है और आश्रम में उन्हीं के साथ रहने लगता है परन्तु रात में जब सब सो जाते हैं तो उस समय वह उठ कर चेले का तुम्बा, गुरु के पास, गुरु का तुम्बा चेले के पास बदल देता है। गुरु जब उठ कर पूछते हैं तब ज्ञात होता है कि ये सब उसी की करतूत है । इस कहानी में आदत को बहुत महत्व दिया गया है। नित्य प्रति एक काम को बराबर करते-करते संस्कार बन जाते हैं । उन संस्कारों को एक साथ छोड़ देना बड़ा कठिन होता है । यहाँ तक कि उनको छोड़ देने पर भी उसके अंकुर रह जाते हैं जिनका क्षीण-सा प्रभाव बना रहता है । यही बात इस कहानी में दृष्टिगोचर होती है।

अन्य कहावत तथा नीति संबंधी कथाओं में 'बड़ों का कहना सच होता है' इस कथा में पिता, पुत्र को तीन बातें बताता है। पुत्र तीनों बातों की सत्यता को परखता है और इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वह तीनों बातें सत्य हैं। इस कहानी में बेरी शत्रु की प्रतीक है जिसको अपने पड़ोस में नहीं बसाना चाहिये नहीं तो पगड़ी उतरते हुए देर नहीं लगती।

'घर में खीर तो बाहर खीर' इस कहानी में यही सारांश निहित है कि यदि घर में सुख समृद्धि है तो बाहर भी उसी प्रकार का वातावरण मिलता है। अर्थात् मनुष्य को सुखशांन्ति घर की परिस्थिति पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए इस कहानी में यही प्रमाणित किया गया है कि किसान को ससुराल जाकर भी मकी का दलिया मिलता है।

'फूट पिटवाती है' इस कथा में यही शिक्षा है कि सहयोग तथा संगठन होना बहुत आवश्यक है नहीं तो जैसे किसान ने चारों मित्र की अलग-अलग प्रशंसा करके फूट डाली थी और एक को पीटा था उसी प्रकार शत्रु, संगठन रहित मित्रों को पीट सकता है। इसी प्रकार 'दुनिया में किसी प्रकार भी चैन नहीं' नामक कहानी का यही सारांश है कि संसार की चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि संसार किसी प्रकार भी चैन नहीं लेने देता । समाज हर स्थिति में श्रेष्ठ मनुष्यों की भी आलोचना करता है ।

'अन्त को जवाल' कहानी में जीवन का यह वास्तविक रहस्य है कि हर मनुष्य की मृत्यु होती है और सब का ही अन्त जवाल है। जब समय आ जाता है तो कोई भी नहीं बच पाता। 'करने के पहिले सोच लेना चाहिये' में नेवले को मार कर औरत को पछताना पड़ता है। 'जितनी चादर हो उतने ही पाँव पसारने चाहिये' कहानी के पात्र बीरबल और राजा अकबर हैं। ये कहानी सांकेतिक है। सामर्थ्य नहीं हो

तो पाँव सिकोड़ लेने चाहिये, अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर लेना चाहिये—यही इस कहानी का एकमात्र ध्येय है।

यदि कोई मनुष्य किसी को हानि पहुँचाता है तो उसको उससे भी अधिक दुख मिलता है। यह ईश्वर के न्याय के प्रति आस्था का प्रमाण है। वज़ीर, लड़के की बुद्धिमानी देख कर ईर्ष्या करता है पर उस लड़के के स्थान पर उसके अपने ही लड़के का वध हो जाता है। इस प्रकार उसे पछताना पड़ता है।

'शेर की कहानी' आत्मसम्मान की कहानी है। लकड़हारे मित्र की बात शेर को चुभ जाती है और वह उससे अपने कुल्हाड़ी मारने के लिए कहता है। कुछ दिन बाद जब शेर उससे मिलता है और पूछता है कि इतने दिन से आया क्यों नहीं, तब वह अपनी कमर दिखाकर कहता है कि भई वैसी चोट का निशान तो मिट गया पर तेरी बात का घाव अभी तक लगा है। 'बात का घाव' कहानी इसी बात की पुष्टि करती है कि कटुवचन तलवार के घाव से भी अधिक कष्टदायी और स्थायी है।

इसी प्रकार 'जैसे को तैसा' कहानी है जिसमें एक बनिया अमानत में रखाई हुई अशर्फियों को वापिस नहीं देता और स्पष्ट मुकर जाता है। कहता है, चूहे खा गये। वह आदमी जिसकी अशर्फियाँ हैं, वह बनिये के लड़के को ले जाकर जंगल में छिपा देता है और उसके पूछने पर कहता है तेरे बच्चे को चील ले गई। अंत में पंचायत दोनों का न्याय करती है तथा दोनों एक-दूसरे की अमानत वापिस कर देते हैं।

अंत में 'तिल की चोरी' एक कथा है जो निषेधात्मक है तथा अंधविश्वासों पर आधारित है जिसमें तिल की चोरी करना पाप समझा जाता है। इस रहस्य का उद्घाटन 'बैल का ढाँचा' करता है।

६. हास्य संबंधी लोककथाएँ—लोक समाज में हास्य-व्यंग्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। उनके लिए हास्य-कथाएँ उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी ग्रामवासियों के लिए रोटी के बाद 'गुड़ की डली।' चौपाल में अथवा अन्य किसी भी स्थान पर जब कभी चार आदमी एकत्रित होते हैं तब उनकी बातों में हास्य का पुट अवश्य ही होता है। श्रमसाध्य कठोर वास्तविक जीवन से जूझने के लिये तथा जीवन में आनंद, संतोष भरने के लिये हास्य महत्वपूर्ण है, जीवन का एक विशिष्ट अंग है। प्रायः देखने में आता है कि ग्रामीण-जनता सभ्य लोगों से अधिक हास्यप्रिय होती है। इनका मानवीय भावनाओं का अध्ययन बहुत सूक्ष्म व गहन होता है। यह बहुत मीठी चुटकी लेते हैं तथा हास्य-व्यंग्य कहना और सहना दोनों ही जानते हैं। गाँवों में कुछ व्यक्ति-विशेष होते हैं, जिनका महत्व ही केवल इसलिये होता है कि वे

बात कह देते हैं जिससे सब लोग हँसते-हँसते लोट पोट हो जायें। ऐसे लोग संपूर्ण समाज में 'ताऊ' के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। यह गाँव की हँसी-खुशी के प्रतीक होते हैं। गाँव वाले भी आते-जाते इनके पास अवश्य बैठते हैं, जिससे उनका मनोरंजन होता है।

इन हास्य-कथाओं का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन ही होता है। किसी को भी अनावश्यक मानसिक आघात पहुँचाने की चेष्टा नहीं होती। कही हुई बात की पुष्टि करने के लिये, किसी पर छींटा कसने के लिये, मनोरंजन के लिए तथा हास्य के रूप में कोई सूझ-बूझ की बात कहने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर अन्य लोककथाओं की भाँति ही सम्पूर्ण हास्य-कथाओं का उल्लेख करना तो असम्भव है परन्तु कुछ प्रतिनिधि हास्य-कथाओं का विवेचन यहाँ करेंगे।

जितनी गप्प और हास्य-कथाएँ लोकसाहित्य में प्राप्य हैं, उतनी हिन्दी साहित्य में नहीं। खड़ीबोली प्रदेश के वासी, यद्यपि स्वभावत: गंभीर होते हैं, परन्तु वे हँस-मुख भी इतने ही होते हैं। इस प्रदेश के लोग जब प्रतिदिन के कार्य से निवृत्त होकर मिलकर बैठते हैं, उस समय लोग खुल कर हँसते हैं। कहानी कहना तथा सुनना ही इस प्रदेश के लोगों के लिए मुख्य मनोरंजनों में से है।

पशु-पक्षी जाति-संबंधी तथा ठगों की कथाओं में भी अनेक हास्य-कथाएँ हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना ही है। परन्तु जो कहानियाँ हम यहाँ दे रहे हैं, वह प्रधानत: हास्य-कथा के रूप में ही प्रचलित हैं तथा लोकसमाज में प्रचलित हास्य-कथाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। आकार के विचार से तो इन कहानियों में दो प्रकार की कहानियाँ हैं—एक बड़ी कहानियाँ जो कहानी कहने के विचार से ही कही जाती हैं तथा अन्य कहानियाँ लघु-कथाएँ—ये चुटकुलों के रूप में हैं, जो यदा-कदा बात पर बात के रूप में प्रयुक्त होती हैं अथवा अपनी बात की पुष्टि तथा मनोरंजन के लिये प्रयुक्त ोती हैं।

इन छोटी-बड़ी कहानियों में लाल भुझक्कड़, शेखचिल्ली, ठग तथा 'चिड़' संबंधी कहानियाँ हैं। लाल भुझक्कड़ संबंधी दो कहानियाँ यहाँ दी जा रही हैं। पहले गाँव में लाल भुझक्कड़ ही ऐसा व्यक्ति होता था जिसको गुणी तथा ज्ञानी माना जाता था। कोई भी समस्या आजाने पर सब उसके पास ही जाते थे तथा उसके निर्णय सबको मान्य होते थे। इसी प्रकार की ये दो कहानियाँ 'खुदा की सुरमेदानी' तथा 'हिरना के पैर में चक्की का पाट' हैं। तेली की लाट और टोप[1] की समस्या न समझ पाने पर ग्रामवासी लाल भुझक्कड़ के पास ही पहुँचते हैं। लाल भुझक्कड़

---

१. ओखली के प्रकार का होता है जिसमें कोल्हू की लाट लगती है।

स्वयं समझ नहीं पाता कि वह क्या है और कह देता है कि 'पुरानी होकै गिर पड़ी खुदा की सुरमेदानी ।' सब ग्रामवासी उसी को सत्य मान कर चले जाते हैं । वैसे तो कोल्हू की दीर्घलाट तथा टोप की गुरुता को देख कर ही उसका खुदा से संबंध जोड़ा गया, क्योंकि खुदा की सलाई तथा सुरमेदानी इससे छोटी क्या हो सकती है । यह भी हास्यास्पद ही दीख पड़ती है कि गाँव के लोग जो तेली के कोल्हुओं को प्रतिदिन देखते हैं उस लाट तथा टोप को देख कर समझ नहीं पाते । हास्यात्मकता के साथ-साथ इस कहानी में ग्रामवासियों का भोलापन तथा उनकी लाल भुझक्कड़ों पर अटूट आस्था का दर्शन होता है जो हास्यास्पद प्रतीत होता है । इसी प्रकार दूसरी कहानी है । उसमें भी ये कितनी अज्ञानपूर्ण बात है कि हाथी के पाँव को देख कर लाल भुझक्कड़ 'फतवा' देता है कि यह हिरन के पाँव का निशान है जो पाँव में चक्की का पाट बाँध कर कूदा है । ये दोनों कहानियाँ सामाजिक दृष्टि से चाहे महत्वहीन हों परन्तु इनमें हास्य-व्यंग्य अपने में पूर्ण है । लाल भुझक्कड़ ऐसा व्यक्ति है, जो जानता कुछ नहीं है पर हस्तक्षेप हर बात में करता है तथा उसमें आत्मविश्वास है । जिसके फलस्वरूप सब लोग उसकी बात को निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लेते हैं ।

इसी प्रकार शेखचिल्ली की भी कई कहानियाँ ली गई हैं । शेखचिल्ली लोकसमाज का एक ऐसा काल्पनिक चरित्र है, जिसके माध्यम से कुछ भी संगत-असंगत, सच-झूठ कहा जा सकता है । वह शेक्सपियर का 'क्लाउन' है तथा संस्कृत नाटक का वसन्तक है, जिसका उद्देश्य ही हँसाना है । यद्यपि इसके काम प्रायः बहुत अधिक बेवकूफी के और हास्यास्पद प्रतीत होते हैं परन्तु इनके पीछे कुछ बुद्धिमत्ता भी रहती है । सभी प्रान्तों और देशों की लोक-कथाओं में मूर्ख पात्र से मिलता-जुलता यह सामान्य पात्र मिलता है । यह पात्र बेकार मंसूबे बाँधता है, निराधार योजनाएँ बनाता है और हवाई किलों का निर्माण करता है । और क्योंकि यह अधिकतर असफल रहता है, इसी से समाज में व्यंग्य और उपहास का कारण बनता है । यह लोककथाओं का आवश्यक और चिर-परिचित पात्र है तथा बाल-समाज में तो अत्यन्त प्रिय है ही । बच्चों का तो यह और भी प्रिय पात्र है । सभी अवस्था के लोग उसकी व उससे संबंधित कथाएँ बहुत चाव से सुनते हैं । हम उस पर हँस सकते हैं पर कदाचित् उससे घृणा नहीं करते । कारण यदि हम अपने मन में आँक कर देखें, आत्मविश्लेषण करें, तो यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि हममें से हरेक व्यक्ति के भीतर एक शेखचिल्ली है । प्रत्येक व्यक्ति के मन में ऐसे क्षण अवश्य आते हैं जब वह व्यर्थ मनसूबे बाँधकर निराधार योजनाएँ बनाना और हवाई किले तैयार करना पसंद करता है । वास्तव में वह अपनी वस्तु-स्थिति से उठना चाहता है और सुन्दर

तथा समृद्ध जीवन की आशाएँ करता है। शेखचिल्ली निराधार योजनाओं की कल्पना मात्र करता है और उन्हीं पर जीवित रहता है। उनकी खूब चर्चा करता है पर क्रियात्मक रूप कभी नहीं दे पाता। अनहोनी बातों का स्वप्न देखना और हवाई किले बनाना कोई बुरी बात नहीं। किले पहले हवा में बनते हैं फिर धरती पर उतर आते हैं। मनुष्य की कल्पना भी धीरे-धीरे सशक्त और स्वस्थ होती है।

'पैसे में बहू' तथा 'चोर और शेखचिल्ली' दोनों ही कहानियों में, शेखचिल्ली की बातें देखने में बड़ी बेवकूफी की लगती हैं। पहली कहानी में जब वह बहू लाने के लिए माँ से पैसा माँगता है तो बड़ा ही हास्यास्पद-सा लगने लगता है परन्तु फिर वह पैसे का शीरा अपने कपड़ों पर डलवा कर धोबियों, घोड़ेवालों तथा बुढ़िया को बेवकूफ बनाता है, जो श्रोताओं को हँसाने के लिए पर्याप्त सामग्री हो जाती है। फिर वह पैसे में बहू लेकर ही घर पहुँचता है। इस कहानी में सब कार्य इतने क्रम से किये गये हैं कि शेखचिल्ली की बुद्धि की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। वह जानता है कि लूट के माल की ओर लोग कितनी जल्दी भागते हैं। इसीलिये वह कपड़ों पर शीरा डलवा कर धोबियों में जाकर शीरे की लूट के सम्बन्ध में कहता है। जब वह शीरा लूटने के लिये भागते हैं तो वह कपड़े चुरा लेता है और अच्छे कपड़े पहन कर वह घोड़ेवालों के पास पहुँचता है क्योंकि वह जानता है कि जब तक वस्त्र अच्छे नहीं होते तो कोई भी घोड़ेवाला उसे किसी भी दशा में घोड़ा नहीं छूने देगा। घोड़ा लेकर चल देने पर रास्ते में बुढ़िया तथा उसकी बेटी की बात सुनकर वह तुरन्त ताड़ जाता है और बुढ़िया से पूछता है कि वह थक गयी होगी, लेकिन अपनी बेटी के सामने, उसे छोड़ कर बुढ़िया कैसे घोड़े पर बैठे इसे वह समझता है। बुढ़िया उसकी आज्ञानुसार ही तुरन्त कह देती है कि मेरी बेटी को बिठा ले। वह उसकी बेटी को बिठा कर घोड़े को दौड़ा देता है। यह कहानी मानव मनोविज्ञान पर पूर्णतया आधारित है जिसका कि शेखचिल्ली पूर्ण रूप से ज्ञाता है। इसी प्रकार दूसरी कहानी में वह स्वयं बेवकूफ बन कर सब लोगों को चोरी से बचाता है। लेकिन जब एक बार उसको अवसर मिलता है तो वह बारात का सब धन व वस्तुएँ उठाकर घर ले आता है। इस कथा में भी एक शेखचिल्ली की बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है। और भी अन्य कहानियाँ हैं जो शेखचिल्ली की बुद्धिमत्ता का परिचय देती हैं। वैसे लोकसमाज में शेखचिल्ली, शेखीखोरे तथा गप्पी को भी कहा जाता है। जो लोग अत्यधिक महत्वाकांक्षी होते हैं उन्हें भी यही संज्ञा दी जाती है।

'मरद के बच्चा होने का दर्द', 'अम्मा मेरी अक तेरी' कहानियाँ व्यंग्यात्मक हैं। पहली कथा तो स्त्रियों पर प्रत्यक्ष व्यंग्य है जिसमें स्त्रियाँ ब्रह्मा जी से जाकर

कहती हैं कि बच्चे के लिए कष्ट तो हम लोग उठाती हैं और मर्द मजे में बाप बन जाता है। इसलिये ये प्रसववेदना पुरुष को होनी चाहिये । ब्रह्मा जी के ऐसा ही कर देने पर स्त्रियों की पोल खुलने लगती है और अन्त में स्त्रियाँ फिर ब्रह्माजी के पास जाती हैं और उनसे फिर पहले जैसा कर देने के लिए कहती हैं। इन कथाओं में स्त्रियों के ऊपर बहुत कटु-व्यंग्य है । उस व्यंग्य में उनके अधिकारों के प्रति जागृति को भी लपेटा गया है। दूसरी कहानी में स्त्री जाति के पति-पक्ष के लोगों के प्रति विशेष रूप से सास के प्रति जो ईर्ष्या होती है, उसी को कहानी में दिखलाया गया है। साथ ही इस कहानी में यह भी एक नीति-प्रस्ताव है कि यदि पति तनिक भी बुद्धिमानी से काम ले तो परिस्थितियों को सँभाल सकता है तथा पत्नी की बात उस पर ही उलट सकता है।

'मिठुआ' कहानी 'चिड़' की कहानी है जो श्रोताओं को हँसाने के लिये पर्याप्त सामग्री देती है। इसमें अलौकिक तत्व भी पर्याप्त मात्रा में है परन्तु हास्य की प्रधानता उसकी अलौकिकता छुपा लेती है । वैसे भी अलौकिकता उसके हास्य को बनाये रखने के लिये है। अन्त में इस कहानी के श्रोता इसी फल पर पहुँचते हैं कि बुद्धिहीन मनुष्य अपने क्रोध में मिठुआ की भाँति मरते हैं।

'सीरे की हँडिया' और 'ऊँट और घोड़ेवालों' की कहानियाँ मूर्खता की कथाएँ हैं जिनको सुनकर खूब ही हँसी आती है। 'सीरे की हँडिया' से लगता है कि ये किसी बच्चे की कहानी है जिसे रास्ता काटने के लिये रास्ते भर कुछ खाने की आवश्यकता होती है तथा उससे हाथ चिपक जाने पर वह स्वयं निकाल नहीं पाता। जब उसकी पत्नी उसे बताती है तो वह एक और मूर्खता करता है कि एक पंडित के घुटे हुये सिर पर हँडिया दे मारता है। इसी प्रकार दूसरी कहानी है जिसमें खजूर पर चढ़ा हुआ व्यक्ति ऊँटवाले तथा घोड़ेवाले को बेवकूफ बनाता है। वह जानता है कि यदि वह स्वयं ऊपर से कूदेगा तो चोट लगेगी, इसीलिये वह इनको नीचे लगा लेता है। सबसे अधिक चोट नीचे वाले को लगती है। इस कहानी का अंतिम भाग एक चुटकुले को जोड़ कर बनाया गया है। यद्यपि यहाँ पर वह भाग सफलता-पूर्वक खप गया है परन्तु उसके कारण चमार की अक्ल पीछे पड़ जाती है जब कि इस कहानी में चमार की बुद्धि ही प्रधान है।

इन कहानियों से भिन्न दो प्रकार की कथाएँ और भी हैं जो हास्य-कथाओं में विशिष्ट स्थान रखती हैं। गप्प तथा चुटकुले, 'ऊँटों की गठड़ी' गप्प में ही आती है। इन कहानियों में वास्तविकता की पुट तनिक भी दृष्टिगोचर नहीं होती है। बुढ़िया के कंधों पर पहलवानों का लड़ना, लड़के का ऊँटों की गठड़ी बनाकर भागना, चील का उसे ले जाना, यह सब इसी प्रकार की बातें हैं जिनमें केवल कथा कहने

का ही महत्व है। इस प्रकार की कथा में घटनाओं को इस क्रम से बाँधा जाता है कि ये श्रोताओं के लिये रस उत्पन्न कर देती हैं। गप्प लगाना मनुष्य की एक प्रवृत्ति है, जिसमें वह अपनी अपरिपूर्ण इच्छाओं को इस रूप में व्यक्त करता है।

'हाथी की कहानी', 'अंधा-लंगड़ा कंगला और बहरा', 'दो के चार', 'ठावै था दे मारै था', 'बीरबल का चुटकुला', ये लघुकथाएँ हैं जिनका प्रयोग उठते-बैठते, बात करते अधिकतर किया जाता है। 'हाथी की कहानी' बुद्धिमत्तापूर्ण कहानी है और इसमें हास्य की पूर्णता है। अंधे, लंगड़े, कंगले, बहरे—इन चारों की बात-चीत बहुत अधिक गुदगुदानेवाली है, हर व्यक्ति अपने आप को वह समझता है जो वह स्वयं नहीं है। अंधे को चोर आते हुये दिखलाई पड़ने लगे, बहरे को उनका शोर भी सुनाई पड़ने लगा, लंगड़े को भागने की धुन सवार हो गयी, कंगले को चिंता है लुटने की। इस कहानी में परिस्थितियों तथा वास्तविकताओं में विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है, जो हास्य उत्पन्न कर देता है। वास्तविक रूप से वहाँ पर कुछ नहीं है परन्तु उनके अपने मन की भावना है कि चोर आ रहे हैं, इसीलिए यह सब इतनी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं।

'ठावै था दे मारै था', 'दो के चार', ये कहानियाँ भी लोकसमाज की सरल बुद्धि की परिचायक हैं। पहली कहानी में बनिया, जज की पकड़ से किस प्रकार निकल भागा। यद्यपि यह साधारण बात है कि चोट लगने पर कोई भी शोर मचायेगा लेकिन बनिये को शोर मचाने के लिये भी पिटाई से फुर्सत की आवश्यकता थी। इस कहानी में बनिये की तर्क बुद्धि बड़ी तेज दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार 'दो के चार' कहानी में किसान मुल्ला जी से बदला लेता है। ये भी हास्यप्रद है कि मुल्ला जी बड़े मजे में स्वयं से प्रश्न कर उसका अपने अनुसार ही उत्तर भी दे लेते हैं। इसी प्रकार वह किसान भी करता है और मुल्ला जी के दो के बजाय चार लट्ठ जड़ देता है।

'बीरबल के चुटकुले' इस प्रदेश की बड़ी प्रिय लघु-कथाएँ हैं। बीरबल और बादशाह अकबर को लेकर लोकसमाज ने इनका सृजन किया है। बीरबल सब से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति है, जिसके पास बादशाह की हर समस्या का समाधान है, हर चोट का खरा जवाब है। उसकी बुद्धिमानी का लोहा अकबर भी मानता है, इसीलिये मुल्ला दु प्यादा उससे ईर्ष्या करता है। मुल्ला दु प्यादा को मुँहकी खानी पड़ती है। इसी प्रकार बीरबल से संबंधित अनेक चुटकुले इस प्रदेश में प्रचलित हैं।

हास्य-कथाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि दरिद्रता, भुखमरी, शोषण, सब कुछ होते हुए भी लोकमानस ने अपने जीवन के रस को कभी

शुष्क नहीं होने दिया और उन्होंने हँस-गाकर ही जीवन की कटुता को कम किया। हास्य-कथाएँ अतिशयोक्तिपूर्ण होती हैं।

६. पशु-पक्षी सबंधी लोककथाएँ—खड़ीबोली प्रदेश में उपलब्ध पशु-पक्षी संबंधी लोक-कथाओं में पंचतंत्र की परम्परा उसी प्रकार जीवित और सुरक्षित है परन्तु यह सब कथाएँ केवल नीति पूर्ण ही नहीं हैं अपितु अनेक प्रकार की और कथाएँ भी उपलब्ध हैं। ये कहानियाँ पशु अथवा पक्षी समाज से संबंधित हैं। इन कथाओं में मनोरंजन ही प्रधान है। गीदड़, बन्दर, लोमड़ी की चालाकी देख कर श्रोताओं को, विशेष रूप से बालकों को, उल्लास-सा होता है और वह आश्चर्यचकित से रह जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ इन कहानियों में शिक्षा भी मिलती है, यही इनका पंचतंत्रीय रूप है। उनका एहसानमंद होना तथा प्रतिहिंसा की भावना रखना—बदला उतारना ही प्रायः इन कहानियों में पाया जाता है। समय-समय पर पशु, मनुष्य को समयोपयोगी शिक्षा देते पाये जाते हैं। मनुष्य को शेर के चक्कर में पड़ जाने पर गीदड़ ही अपनी सलाह से बचाता है। बंदर को तो लोक-कथाकार बुद्धि में मनुष्य से भी ऊपर ले गया है। 'सोने के बालों वाला बंदर' नामक कथा इसी का प्रमाण है। गधा तो महामूर्ख माना जाता है। वह भी शेर को बेवकूफ बना देता है और उसका घर छीन कर स्वयं रहने लग जाता है।

लोककथाओं में यह प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है कि पशु-पक्षी मनुष्य के सहयोगी हैं तथा प्रकृति के उतने ही महत्वपूर्ण अंग हैं जितना वे स्वयं। उनके आपस में विवाह संबंध भी होते हैं। मैना का विवाह राजकुमार से होता है। इस कथा में दो-तीन मनोवैज्ञानिक सत्य हैं कि संतानहीन राजा रानी मैना को ही अपनी पुत्री मान कर पालते हैं। उसका विवाह राजकुमार से करते हैं। राजकुमार भी सत्य निबाहता है। अन्त में वह सुन्दरी बन जातीहै। इसी प्रकार मुर्गा भी राजा की लड़की से विवाह करने के लिए लालायित होता है। वह अपने मित्रों को साथ ले जाता है और उन्हीं के बल से वह राजकुमारी का डोला लेकर आता है। राजकुमारी का डोला लेने के लिये उसे लड़ाई करनी पड़ती है। ये लड़ाई कूटनीति की ही लड़ाई है और उसी के बल पर वह जीत जाता है। इन कथाओं में कथातत्व तो श्रोताओं के लिये पर्याप्त रूप से पुष्ट हैं परन्तु सत्य अवश्य कल्पनातीत है। ये मनोरंजन की कहानियों के अन्तर्गत ही आती हैं। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य का मनोरंजन इन्हीं बातों से होता है जो हृदय को गुदगुदा सके तथा उसके मन को चकित कर सके। यही बात इस प्रकार की कथाओं में मिलती है।

पशु-पक्षी मनुष्य की बोली बोलते हुये तो पाये ही जाते हैं इससे भी अधिक

महत्वपूर्ण है उनकी भूगर्भ के सम्बन्ध में जानने की तथा भविष्य-द्रष्टा की शक्ति। योनि-परिवर्तन, चोला परिवर्तन करना उनके लिए सहज और साधारण है। उनके शरीर में भानुमती का पिटारा है जिसका उपयोग करने पर रात ही रात में, बड़े से बड़ा उद्यान खड़ा हो जाता है और राजा के लड़के की जान बच जाती है। इसी प्रकार भविष्य-द्रष्टा पक्षी भी वृक्ष के नीचे सोनेवाले यात्रियों को भूगर्भ तथा भविष्य की बात बता देते हैं। यदि कोई कष्ट भविष्य में आनेवाला भी हो तो उसके निदान से भी वह अवगत करा देते हैं। ये पशु-पक्षी आपबीती तथा जगबीती के संबंध में जब परस्पर बातचीत या विचार विनिमय करते हैं तो उसमें उनका प्रयोजन यात्रियों को वस्तुस्थिति से अवगत कराना तथा परिस्थिति से लाभ उठाने का सुझाव देना ही होता है। इसमें उनका निजी स्वार्थ कुछ भी नहीं होता। इन पक्षियों के शरीर भी चमत्कार उत्पन्न करनेवाले होते हैं। एक पक्षी को खानेवाला राजा बन सकता है, दूसरे को खानेवाला सर्प का भोजन बनता है। ये सभी बातें लोकसमाज के लिए बड़ी मनोरंजक हैं तथा उन्हें विश्वास है कि ऐसे पक्षी अभी भी हैं परन्तु उनका मिलना दुर्लभ है।

'तोता-मैना' के किस्सों के माध्यम से तो स्त्री-पुरुष के प्रेम-संबंधी सब ही समस्याओं का विवेचन किया गया है। इनमें स्त्री-पुरुष का प्रेम तथा चरित्र पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है। यह पक्षी समाज के ग्राम्य चरित्र (Rushic Characlers) हैं, जो स्त्रीपुरुष के व्यवहार तथा उनके आचारों के संबंध में समय-समय पर अपने विचार प्रकट करते हैं। प्रेम के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की बेवफाई के जितने दृष्टान्त इन दोनों के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं, ये लोक-कहानीकार की स्वयं की अनुभूति है। तोता-मैना लोककथा साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण निधि है, हम इसको इसकी बृहत्ता के कारण यहाँ देने में असमर्थ हैं। यह प्रकाशित अधिक उपलब्ध है परन्तु इसकी उपेक्षा करना भी कथा-साहित्य के साथ अन्याय करना है। यहाँ पर हम केवल इसका उल्लेख ही कर रहे हैं।

पशु-पक्षी संबंधी कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो हर स्थान पर प्रचलित हैं—'सोने के बाल वाला बंदर[1]', 'लाँडा सेर[2]', 'कौवे की चतुराई[3]', आदि कुछ लोककथाएँ ऐसी हैं जिनका उल्लेख डॉ० सत्येन्द्र द्वारा लिखित 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' में भी 'पंचतंत्रीय कहानियों', के अन्तर्गत हुआ है। परन्तु इन कथाओं में खड़ीबोली

---

१. लोकसाहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र, पृ० ४६४
२. वही, पृ० ४८८
३. वही, पृ० ४६८

प्रदेश से कुछ थोड़ा सा अन्तर हो गया है जिस प्रकार 'सोने के बाल वाला बंदर' नामक कथा में बन्दर अंत में दुकान खोल देता है परन्तु इस प्रदेश में प्रचलित कथा में बंदर दुकान नहीं खोलता वह केवल बहू लेकर ही सन्तोष कर लेता है।

'लाँडा सेर' नामक कथा में सब जानवर गीदड़ से लोहा लेने आते हैं और हार जाते हैं। परन्तु यहाँ पर पहले सब शेर इकट्ठे होकर आते हैं और जब गीदड़ कहता है 'लाओ मेरा खांडा पहले मारूँ लाँडा' तो सबसे पहले वही नीचे से निकल कर भागता है और दूसरे शेर भी लुढ़क-लुढ़क जाते हैं। अन्त में बंदर लाँडे की पूँछ से पूँछ बाँध कर आता है। गीदड़भभकी सुनकर जब लाँडाभागता है तो बिचारा बंदर भी घिसटता जाता है। अन्त में वह घिसट-घिसट कर मर जाता है। वास्तव में बंदर भी लोमड़ी की भाँति ही चतुर माना जाता है । परन्तु बेवकूफ मित्र और डरपोंक के सम्मुख उसकी चतुराई भी समाप्त हो जाती है और उसे भी ऐसी मौत मरना पड़ता है।

इस प्रदेश में पशु-पक्षी संबंधी चार प्रकार की कहानियाँ उपलब्ध हुई हैं, जो इस प्रकार हैं :—

१—सर्वप्रथम तो वे कहानियाँ आती हैं जिनमें मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी अन्य जीव-जन्तु भी कहानी के चरित्र हैं। इन कहानियों में 'नेकी-बदी', 'सेर और जुलाहा', 'सेर औरटपका', 'मैना का व्याह', 'मुर्गे का व्याह,' 'चिड़िया और भैंस', 'सोने का जौ ', 'जाट और चिड़िया', 'कछुआ दोस्त', 'नौ करोड़ का लाल', 'गिद्दड़ और तेली', 'चिरौंट्टा भाई', 'सोने के बाल वाला बंदर' आदि कहानियाँ आती हैं। इनमें से प्रत्येक कहानी का उल्लेख अपनी-अपनी विशेषता के कारण किया गया है। वास्तव में हर कहानी एक-दूसरे से भिन्न है।

२—दूसरी प्रकार की कहानियाँ केवल पशुओं से ही संबंधित हैं । इन कहानियों से मनुष्य तथा पक्षी बिलकुल अलग हो गये हैं। ये कहानियाँ हैं—'सेर और गीदड़', 'लाँडा सेर,' 'गीदड़ और बकरा,' 'गीदड़ और ऊँट', 'गधा और सेर' आदि।

३—इन कहानियों में केवल पक्षी ही पात्र हैं । सम्पूर्ण कहानी जीवन से संबंधित हैं । इस प्रकार की कहानियाँ 'चिड़िया और कग्गा' 'कग्गा और चिड़िया', 'फ़ाख्ता' हैं।

४—अंत में दो कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें पशु-पक्षी तथा अन्य जीव हैं। इस वर्ग में केवल दो ही कहानियाँ आती हैं—'बिल्ली मौसी' तथा 'चिड़िया और मुस्सी' ।

प्रथम वर्ग की कहानियों में मनुष्य ही सब कहानियों की धुरी है। सब पशु-

पक्षी मनुष्य से संबंधित हैं। चाहे वह कहानी का नायक हो या नहीं परन्तु पशु-पक्षी किसी न किसी रूप में मनुष्य के सहयोगी पात्र रहते हैं तथा उसकी बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान करने में सफल होते हैं। कहीं-कहीं पर वह उसके विरोधी और शत्रु भी हैं जैसे डण्डे के जोर से राजा की लड़की को मुर्गा ब्याह लाता है। कहीं-कहीं पर वह बेवकूफ भी बनाया जाता है। सोने का जौ, चिड़िया और भैंस, सोने के बाल वाला बन्दर, जाट और चिड़िया आदि इसी प्रकार की कथाएँ हैं। इन कहानियों में पशु-पक्षी मनुष्य को शिक्षा देते भी पाये जाते हैं। 'नेकी और बदी' कहानी में गीदड़ मनुष्य को शेर का शिकार होने से बचाता है। इसी प्रकार 'दोस्ती' कहानी में मित्रता तथा भलाई का बदला उतारने का उत्कट प्रमाण है। चिड़ा भाई, मुर्गा आदि तो मनुष्य पर आक्रमण भी करते हैं और मनुष्य को हरा देते हैं। पशु, मनुष्य के समान ही व्यवहार करते हैं। उनकी प्रतिक्रियाएँ, उनकी संवेदनशीलता, सहयोग, सभी कुछ मनुष्य की भाँति हैं। वह अपने क्रियाकलापों में मनुष्य से किसी भी दशा में कम नहीं रहते।

दूसरे वर्ग की कहानियों में पशु-पक्षियों के आपस के क्रिया-कलाप देखने को मिलते हैं। 'सेर और गीदड़ की कहानी', गीदड़ की चालाकी की कहानी है। वह अपनी चालाकी से स्वयं को तो बचाता ही है, साथ ही साथ जंगल में अन्य जानवरों को भी शेर का शिकार होने से बचा लेता है। अन्य सब कहानियाँ भी चालाकी की कहानियाँ हैं। 'लांडा सेर' तथा 'गधा और शेर' कहानियों में गीदड़ तथा गधा शेर की माँद पर अधिकार (कब्जा) कर लेते हैं अथवा थोड़ी सी बुद्धि के कारण ही वह शेर को निकाल बाहर कर देते हैं। इसमें गधा भी शेर से बाजी ले जाता है। अंतिम कहानी के अतिरिक्त सब में ही गीदड़ रहता है तथा वह सब जानवरों के साथ चालाकी करता है जिसका आशय है कि चालाक व्यक्ति अपने निकट से निकट व्यक्ति के साथ भी चालाकी करने से नहीं बाज़ आता। केवल ऊँट ही गीदड़ को ठीक सबक पढ़ाता है। ऊँट दूसरों से बदला लेते हैं। ये सब खेती करते हैं, खाना खाते हैं, शिकार खेलते हैं, मुकदमा फैसला करते हैं, इनकी शक्ति शासन-व्यवहार आदि सब ही मनुष्य के समान हैं।

तीसरी प्रकार की कहानियों में 'फ़ाख्ता' की कहानी मानवीय भावनाओं से अधिक दूर नहीं। वह विरहिन है, उसका पति तब घर आया था जब वह घर पर नहीं थी और उसके लौट कर आने से पहले लौट गया था। जिसके कारण वह गाती रहती है, 'कुट्टे थी', 'पिस्से थी', 'आया था' 'गया था' उसे पश्चात्ताप है कि मैं क्यों चली गयी! यह पक्षियों की प्रतिनिधि कहानी है जिसमें मानवीय भावना उत्कट रूप में पक्षी द्वारा व्यक्त की गयी है। 'चिड़िया और कग्गा' कहानी में कग्गा चालाक

है। यह दोनों खेती करते हैं परन्तु कग्गा, चिलम तमाखू ही पीता रहता है। चिड़िया खेती बो देती है, पानी दे देती है, पका कर काट लेती है । लेकिन जब बाटने का समय आता है तो गेहूँ-गेहूँ तो वह ले जाता है और चिड़िया के हिस्से में केवल भूसा रह जाता है। जब वर्षा आती है तब कग्गे को उसका फल मिलता है और चिड़िया सुख से रहती है। इस कहानी में मनुष्य समाज का सत्य रूप है। कौवा पूँजीपति का साक्षात् रूप है जो अपने वैभव में सदा मस्त रहता है। कार्य दूसरे करते रहते हैं परन्तु जब लाभ का समय आता है उस समय सार-सार स्वयं ले जाता है और मज़दूर उसी में संतोष कर लेता है। जब कठिन काल आता है तो पूँजीपति अकेला रह जाता है, उस समय श्रमिक सुखशान्ति से रहता है।

अन्त में दो कहानियाँ रह जाती हैं 'बिल्ली मावसी' तथा 'चिड़िया और मुस्सी।' बिल्ली मावसी कहानी में बिल्ली की चालाकी का प्रदर्शन है। बिल्ली हर स्थिति का लाभ उठाती है। हँडिया फँस जाने पर वह उसको धार्मिक रूप दे देती है तथा चूहे, कबूतर, मुर्गे को फाँसना चाहती है परन्तु सब अपनी चालाकी से निकल भागते हैं। अन्त में वह अकेली रह जाती है। बिल्ली की तुलना यदि अवसरवादी से की जाय तो अनुचित नहीं होगा। क्योंकि बिल्ली भी अवसर का ही लाभ उठाकर अपनी स्वार्थसिद्धि करती है। चिड़िया तथा मुस्सी कहानी भी इसी प्रकार की कहानी है जिसमें मुस्सी समय पर चिड़िया की खुशामद कर लेती है परन्तु जब गुड़ बाँटने का प्रश्न आता है तो साफ कन्नी काट जाती है और चिड़िया अपना सा मुँह लेकर रह जाती है।

लोक कहानीकार ने मनुष्य समाज की भलाई-बुराई, ईमानदारी-बेईमानी, धर्म-अधर्म, इन सब को पशु-पक्षियों के माध्यम से व्यक्त किया है। वह जानता था पशु-पक्षियों की कुशाग्रबुद्धि तथा उनके सुलझे हुए व्यवहार का मानव-अन्तरमन पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। पशु-पक्षियों की चालाकी से हारने वाले मनुष्य को अपनी स्थिति का ज्ञान भली भाँति हो जाता है, उसका अहं 'मैं मनुष्य हूँ' बगले झाँकने लगता है। इन कहानियों का प्रभाव मानव पर इतना तीक्ष्ण तथा सत्य होता है कि वह ऐसे पक्षियों को आदर्श मान लेता है। बच्चों के मन पर तो उनकी अमिट छाप पड़ती है। पशु-पक्षी बालकों के निकट भी होते हैं। उनकी कहानी सुनना, उनको सबसे अधिक प्रिय है। इन कहानियों का वह सुगमतापूर्वक अनुगमन भी कर लेते हैं। कुछ कहानियाँ शिक्षात्मक होती हैं तो कुछ कहानियों से श्रोतागण गुदगुदा उठते हैं। पशु-पक्षियों की कहानियाँ मनुष्य के जीवन की ही अभिव्यक्तियाँ हैं, जो इन कहानियों के रूप में व्यक्त हुई हैं।

लोक-कथाओं के मुख्य अभिप्राय—वैज्ञानिक शब्दावली में लोक-कथा के

मुख्य तथ्य को 'अभिप्राय' कहते हैं । 'अभिप्राय' को अंग्रेजी में 'मोटिव' कहते हैं। साधारणत: अभिप्राय शब्द का प्रयोग परम्परागत कथाओं के किसी तत्व या कथानक रूढ़ि के लिये किया जाता है। अभिप्राय साधारण से कुछ भिन्न होता है अर्थात् उसमें कोई असाधारण घटना निहित होती है, जो प्राय: लोक-कथाओं अथवा लोक-समाज में पायी जाती है, उदाहरणार्थ, पिता के द्वारा किसी विशेष कारणवश बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार करना। इन अभिप्रायों में लोककथाओं का संपूर्ण तथ्य निहित रहता है। अभिप्राय का क्षेत्र विस्तृत तथा व्यापक है। लगभग सभी देशों तथा प्रदेशों में एक ही प्रकार के अभिप्राय मिलते हैं। इन्हीं अभिप्रायों के माध्यम से लोक-कथा ने अपने आपको प्रमाणित तथा प्रभावशाली बनाया है । लोक-कथाओं का वास्तविक अध्ययन भी इन्हीं के आधार पर किया जा सकता है। सत्य तो यह है कि कहानी की आत्मा उनमें बिखरे अभिप्रायों में ही निवास करती है। किसी भी कहानी के अभिप्राय कहानी से अधिक प्रसिद्ध होते हैं । यह देखा गया है कि श्रोता कहानी सुनानेवाले को अभिप्रायों की याद दिला कर वही कहानी सुनाने के लिये अनुरोध करते हैं। इन अभिप्रायों का श्रोताओं से तथा लोकसमाज से प्रत्यक्ष संबंध होता है। कहानी इन अभिप्रायों से ही उठती है तथा इनके ही चारों ओर घूमती रहती है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के मत से अभिप्राय कहानियों के अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग हैं ।

"कहानियों के लिए अभिप्रायों का वैसा ही महत्व है जैसा किसी भवन के लिये ईंट गारे का अथवा किसी मन्दिर के लिये नाना भाँति की सज से उकेरे हुए शिला-पट्टों का ।[1]"

यह भी देखने में आता है कि लोक-कथाओं के शिल्प में अभिप्राय का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है । अभिप्रायों की अधिकता अथवा कमी पर ही कहानी की रोचकता अथवा, सबलता तथा शिथिलता निर्भर करती है। जितने अधिक अभिप्राय होते हैं उतने ही कहानी में चरमबिन्दु रहते हैं ।

प्राय: यह भी देखा जाता है कि किसी भी लोक-साहित्य में अभिप्रायों का विस्तार बहुत अधिक नहीं होता अपितु कुछ अभिप्राय ही घूम फिरकर नये-नये रूप में आते रहते हैं। डॉ० श्यामाचरण दूबे का भी इस सम्बन्ध में यही मत है।

"अभिप्राय के आधार पर संपूर्ण विश्व के लोक-कथा-साहित्य का विश्लेषण हमें बतलाता है कि मानव की नये अभिप्राय निर्मित करने की शक्ति आश्चर्यजनक

---

१. लोक-कथा अंक—आजकल, मई १९५४, पृ० ११

रूप से सीमित है। थोड़े से ही अभिप्राय नये-नये रूपों में हमें मानव-जाति की लोक-कथाओं में मिलते हैं।[१]"

इसी मत का देवेन्द्र सत्यार्थी जी ने निम्नलिखित शब्दों में समर्थन किया है—

"लोककथाओं के अभिप्राय निस्संदेह एक दूसरे से इतने जुड़े हुए नजर आते हैं कि यदि उसकी बारीकी से छानबीन की जाय तो छँटकर स्वतंत्र अभिप्रायों की संख्या बहुत कम रह जायगी।[२]"

खड़ीबोली प्रदेश में संकलित की गई कहानियों को हम अभिप्राय की दृष्टि से देखेंगे। इस प्रदेश में अन्य प्रदेशों की भाँति ही अनगिनत कहानियाँ प्रचलित हैं तथा उनमें अभिप्राय भी अनेकों मिलते हैं। इन अभिप्रायों तथा कहानियों को हम नीचे एक तालिका में दे रहे हैं :—

अभिप्राय	कहानी
१—पार्वती जी के जिद करने पर भोला के द्वारा मृत भाई को जीवित कर देना।	दो भाई
२—पार्वती जी के जिद करने पर शंकर का लकड़हारे को कई बार धन देना परन्तु बिना भाग्य के धन नष्ट हो जाना, फिर भोला के द्वारा बताये जाने पर लकड़हारे का भाग्य सीधा करना तथा उसको नहला धुला कर तिलक करना और अंत में खोया हुआ धन पा जाना।	उल्टा-सीधा भाग्य
३—राजा के सात बेटा या बेटी होना, सबसे छोटे बेटा या बेटी के साथ कुछ अद्‌भुत घटना होना और अंत में उसे सफलता प्राप्त होना।	सब अपने अपने भाग्य का खाते हैं

---

१. मानव और संस्कृति—डॉ० श्यामाचरण दूबे, पृ० १८२

२. लोककथा अंक—आजकल, मई १९५४, पृ० २३

४—किसी पाप के कारण पशु-योनि में जन्म लेना, फिर पाप का प्रायश्चित्त हो जाने पर पुनः मनुष्य योनि में आना।	गंगा का न्हाण
५—पशु-पक्षियों द्वारा मनष्य का शरीर रख कर अहसानों का बदला चुकाना।	मददगार दोस्त
६—भावज का चुगली करना तथा ननद को पति द्वारा मरवा देना। तत्पश्चात् नन्द का बेरी बनकर उगना तथा उसकी बाँसुरी बनना। पुनः बाँसुरी की लड़की बन जाना तथा अपने भाई-भाभी को घर से निकलवाना।	बाँसुरी
७—क्रोध में पत्नी को मार डालने पर हरे साग के रूप में उगना, भैंस को साग खिला देने पर भैंस के शरीर में प्रवेश कर जाना, भैंस को मरवा कर जूती बनवाना, जूती में भी जीवित रहने पर जूती को कुएँ में डाल देना।	मिठुआ
८—तोते में या उसके गले में पड़े हार में प्राण होना।	मरनी जीनी रानी
९—सिरहान और पाँयत की ओर संटी को अदल-बदलकर जीवित तथा मृत कर देना।	बाबाजी
१०—झूठा पानी पीने से गर्भ रह जाना।	मरनी जीनी रानी
११—मनुष्य का मक्खी बनाकर झोली में रख लेना।	बाबाजी
१२—श्राप से पत्थर या कोयला हो जाना। नदी सूख जाना, वृक्ष सूख जाना, फिर अंत में ठीक हो जाना।	कहानी की बात

१३—दाने द्वारा या देवी-देवता द्वारा मनुष्य की भेंट लेना।	क : दो भाई ख : सकट चौथ
१४—करामाती डंडे द्वारा पिटाई करना।	क : बैंत की परी का तैल ख : झिलमिल का पेड़
१५—चकोत-चकोतरी का राजा को अमी-जल प्राप्त करने का साधन बताना।	अमीजल
१६—देवी को अपनी देह की बलि देकर उससे सोने की झारी तथा अमीजल की शीशी प्राप्त करना और उसके द्वारा अपना वचन पूरा करना।	अमीजल
१७—पलंग के पायों का बोलना तथा दाने को मार आना।	पलंग का पाया
१८—हीरामन तोते द्वारा शत्रुओं से चोरी की गई वस्तुओं को वापिस लाना।	झिलमिल का पेड़
१९—सितार बजाकर झिलमिल का पेड़ अथवा मन-चाही वस्तु प्राप्त कर लेना।	झिलमिल का पेड़
२०—अपने मतानुसार कार्य हो जाने पर राजा द्वारा अपनी लड़की का डोला, आधा राज्य तथा फौज फ़र्रा दिया जाना।	मददगार दोस्त
२१—पशु-पक्षी से डरकर राजा का अपनी लड़की से उनका विवाह कर देना।	मुर्गे का व्याह
२२—मनुष्य का पक्षी से विवाह करना तथा अंत में पक्षी का शिव-पार्वती जी की कृपा से मनुष्य बन जाना।	मैना का व्याह
२३—चूही का काम निकल जाने पर चिड़िया को धता बताना।	चिड़िया और चुहिया
२४—पशु-पक्षियों में मानवीय भावना होना और उसी तरह के काम करना।	क : फ़ाख्ता ख : सोने के बाल वाला बंदर ग : नेकी अक-बदी

२५—सत के जमाने में जो बात मुँह से निकालते थे वह पूरी करते थे।	क : राजा बीर विक्रमाजीत ख : अमीजल
२६—तीन वचन भरवा कर मनुष्य को बचनवद्ध कर देना।	क : अहोई आठे ख : करवा चौथ
२७—अपनी बात मनवाने के लिये स्त्री का हठ करना और आसन्नपाटी लेकर पड़ जाना।	बेंत की परी का तेल
२८—भाभी के ताने के कारण सबसे छोटे देवर का अपूर्व सुन्दरी की खोज में निकल जाना तथा संघर्षों के बाद उसे प्राप्त करना।	अनार दे नार
२९—दंड देने के लिए बारा वर्ष का दसोहा या दुहाथ देना।	अंजना
३०—दान-पुण्य, व्रत-उद्यापान आदि से दिन फिर जाना तथा उनकी अव-हेलना करने से बुरे दिन आ जाना।	क : छत्तीस मावस की कहानी ख : बृहस्पति की कहानी
३१—पूर्वजन्म के पाप-पुण्य को अगले जन्म में भोगना।	क : घृतराष्ट्र ख : रोटी का दान
३२—सिद्ध पुरुष के द्वारा कोई फल या अन्य वस्तु लेने से गर्भाधान हो जाना।	क : घड़ा-बेटा ख : रोटी का दान
३३—लाल बुझक्कड़ को ज्ञानी मानना तथा उसके द्वारा मूर्खता के निर्णय देना।	खुदा की सुरमेदानी
३४—पत्नी का सास तथा पति को नीचा दिखाने के लिये जाल रचना और स्वयं उसमें फँस जाना।	अम्मा मेरी अक तेरी
३५—पत्नी का पति की चोरी-चोरी अच्छे-अच्छे भोजन बना कर खाना।	चटोरी-जाटनी
३६—पत्नी से लड़ने पर मर जाने का बहाना करके पड़ जाना। बाद में चिता से निकलकर रास्ते चलते आदमियों को डराकर उनका सामान आदि लेकर घर पहुँचना।	कुम्हार

३७—मित्रता का अहसान उतारने के लिये अपने पुत्र के रक्त से स्नान कराकर मित्र का कोढ़ दूर करना और पुत्र का पुनः जीवित हो जाना।	दो दोस्त
३८—सौतिया-डाह के कारण लड़के या लड़की को जल में बहाकर ईंट पत्थर रख देना।	काग उड़ावनी
३९—राजा का, रानी को ईंट पत्थर जनने के कारण काग उड़ावनी का स्थान देना और बच्चों के लिये उसके स्तनों से दूध की धार बह निकलना।	काग उड़ावनी
४०—भगवान् के द्वारा मनुष्य की आयु का विभाजन होना।	आदमी की उमर
४१—देवरानी-जिठानी का ग़रीब और अमीर होना। ग़रीब का दयावान तथा अमीर का बेईमान होना। ग़रीब के घर भगवान् का लक्ष्मी बरसाना और अमीर के घर पाख़ाना करना।	अमीर-ग़रीब
४२—बुरे आदमी की हड्डी से पेड़ का सूख जाना।	भला-बुरा आदमी
४३—पशु-पक्षी का मनुष्य से बदला लेना।	चिरोट्टा भाई
४४—पशु-पक्षी का खेती करना।	चिड़िया और कागा
४५—मित्र की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी से पापाचार की इच्छा करना तथा अंत में उसका फल मिलना, कोढ़ी हो जाना, फिर उसी स्त्री के द्वारा छींटा देने पर निर्मल काया होना।	करनी का फल मिलता है
४६—भगवान् में आस्था रखते हुए अनुचित नाम लेने पर भी भगवान् के दर्शन होना।	सच्चे की जीत होती है
४७—पक्षियों का मनुष्य की भाषा बोलना।	मैना और चना
४८—शेखचिल्ली का अद्भुत तथा हास्यास्पद काम करना।	शेखचिल्ली (पैसे में बहू)

४९—राजकुमार का दाने की लड़की से ब्याह करना तथा दानें की मदद से मनचाही वस्तु प्राप्त करना।	गुलबकावली
५०—एक आदमी का अपना कार्य सिद्ध करने के लिये चार-पाँच विवाह करना।	गुलबकावली
५१—किसी स्त्री का सदाबरत करना तथा बिछड़े हुये प्रेमी का उस सदाबरत में मिल जाना।	चार-दोस्त
५२—बदी करने वाले भाई को भी कैद से छुड़ाना।	गुलबकावली
५३—मुसलमान राजा का हिन्दू देवी के प्रताप से प्रभावित होना।	अकबर
५४—बच्चे का स्वर्ग के रुपए जमा करना।	अच्छे कर्मों से स्वर्ग के दर्शन होते हैं
५५—गुरु और चेले का भिन्न-भिन्न रूप रखकर एक-दूसरे पर हमला करना और अंत में चेले की विजय होना।	हकीम जालीनूस

लोककथाओं में भावाभिव्यंजना—लोककथा, लोक-साहित्य की इकाई है। इसमें जो कुछ भी जुड़ता है वह इसी के बल पर दहाई बनाता है। इसकी आत्मा चेतनामय मानव के समान पूर्ण होती है। इनमें 'वसुधैव कुटुम्बुकम्' की भावना रहती है। यहाँ कल्पना के सहारे सुंदर से सुंदर चित्र सँजोए जाते हैं। यहाँ मनुष्य इच्छामात्र से सात समुद्र को लाँघता है, नौं खंड पृथ्वी की परिक्रमा करता है, किसी भी द्वीप की अनन्य सुन्दरी को अपने पौरुष से प्राप्त कर लेता है। यहाँ स्वर्ग की अप्सराएँ और पाताल की नागकन्याएँ पानी भरती हैं। सिंह और सर्प भी दोस्ती निबाहते हैं, पक्षी संदेश पहुँचाते हैं, और आवश्यकता होने पर भित्तिचित्र भी बोलने लगते हैं। शैली अत्यन्त मोहक तथा भाषा लोकोक्तियों तथा मुहाविरों से भरपूर रहती है।

कथानक प्राय: भगवान्, भाग्य और पुरुषार्थ से ही संबंधित होते हैं। इन कथाओं में कल्पना की ऊँची उड़ान, भाग्य और दैवी बाधाओं के सामने पुरुषार्थ और मानवीय साहस की जीत, वचन की रक्षा में प्राणदान की उत्सुकता, भाई-बहन का

निश्छल स्नेह और माँ की ममता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें मानवीय गुणों का तथा जीवन के व्यावहारिक दर्शन का उल्लेख मिलता है।

लोककथाएँ बालकों की मनोभावनाओं के अति निकट होती हैं। इसके दो कारण स्पष्ट हैं—एक ओर तो वह सहज, सरल और प्रवाहमयी तथा दूसरी ओर मनोरंजक और कुतूहलपूर्ण होती हैं। लोककथाओं का विषय और क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। भाव-गहनता और पारलौकिकता कम है। यह हमारे नैतिक मूल्यों को छूती है। लोककथाओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनके अभिप्रायों का विस्तार है, जो देश काल की सीमाओं से सर्वथा मुक्त है। लोककथाओं के अभिप्राय देश काल की सीमाओं से परे हैं। लोककथाओं में मानव की सहज जिज्ञासा को उभार कर कहानी को रोचक और प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास अधिक होता है। खड़ीबोली भाषा का ठेठ, सरल और स्वाभाविक रूप लोककथाओं में ही मिल सकता है।

इनमें कहानी कला के सभी तत्व मिल जाते हैं। ये सुखांत, मंगलकामना की भावना, शिक्षाप्रद, आशाप्रद और प्रेरणात्मक होती हैं। इनमें रोचकता, कुतूहलता, अलौकिकता तथा लोकजीवन का चित्रण विशेष रूप से दृष्टिगत होता है।

इनमें मनोवैज्ञानिक सामाजिक-तत्वों का प्राधान्य रहता है तथा यथातथ्य चित्रण मिलता है। मानवीकरण का पक्ष भी रहता है। यह प्रतीकात्मक होती हैं तथा इनके द्वारा मानसिक शिक्षा मिलती है। लोककथाओं में पात्रों का नामकरण प्रायः नहीं होता। पात्र जातिवाचक संज्ञाओं के रूप में आते हैं। कभी-कभी पात्र पशु-पक्षी के रूप में भी आते हैं। लोककथाओं का उद्देश्य कल्पना-मिश्रित, आदर्शोन्मुख यथार्थ-चित्रण करना होता है। लोककथाओं में विशुद्ध जनजीवन का दैनिक सुख, हर्ष-विषाद, राग-विराग होता है। यह जनजीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। लोककथाओं में कहानी के सभी गुण तथा कहानी तत्व मिलते हैं जिनमें संक्षिप्तता, एकसूत्रता, संवेदना, प्रासंगिकता मुख्य है। लोककथाओं का सच्चा स्वरूप लिखित नहीं, मौखिक होता है।

लोककथाओं में समानता का दर्शन होता है। उनकी सीता भी गगरी से पानी भर कर लाती हैं। शिव-पार्वती, जन-दुखहरण के लिये साधारण वेश में जनता के पास जाते हैं और जनता का दुःख देख कर समाधान करते मिलते हैं। 'गौरा पारवती' को अत्यन्त करुणामयी माता के रूप में समझते हैं, जो किसी की भी दुःखभरी कहानी सुन कर या करुण-दृश्य देखकर द्रवित हो जाती हैं और अपने पति-देव शंकर भगवान् से उसका दुःख अवश्य निवारण करा देती हैं। 'गौरा' जगत्माता हैं और सब के दुःखों का अनुमान कर सकती हैं। लोककथाओं में राम और कृष्ण

इसलिए ही पूज्य नहीं हैं कि वे वैभवशाली हैं बल्कि उनके राम-कृष्ण ने विश्व के कल्याण के लिये अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है। वे जनसाधारण के लिये उनके सुख-दुख में रोते हैं। विक्रमादित्य वेष बदल कर प्रजा के दुःख का पता लगाते हैं। वह आदर्श राजा थे जिनको प्रजा की वास्तविक स्थिति जानने की चिन्ता रहती थी और यथासामर्थ्य वह अपने राज्य में सबको सुखी रखना चाहते थे, इसके लिये प्रयत्नशील रहते थे। लोककथाओं में सामन्तशाही प्रथा की भी झाँकी मिलती है।

लोककहानियों में जहाँ एक ओर मानव हृदय की गहन अनुभूति मिलती है, वहीं दाम्पत्य-प्रेम के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम का रूप भी दिया जाता है। इन कथाओं में प्रेम, घृणा, प्रतिहिंसा, क्रोध आदि मानवीय भावनाओं का चित्रण मिलता है। इनमें चरित्र-चित्रण प्रधान रहता है। प्राकृतिक वर्णन का स्वतंत्र रूप में अभाव मिलता है लेकिन यह प्रकृति से दूर नहीं होती। इनमें प्रकृति मानव की चिरसहचरी है, उससे भिन्न नहीं। वहाँ पक्षी, मनुष्य के साथ वार्तालाप करते हैं, पशु उनके दुःख में कातर होते हैं। मनुष्य और पशु एक-दूसरे के सहचर हैं।

लोककथाओं में अलौकिक तत्वों का समावेश भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यह दिवंगत आत्माओं, देवताओं, विलक्षण पुरुषों या राजा-रानी और राजकुमारी से संबंधित होती हैं। इनमें असाधारण असम्भव घटनाओं का प्रदर्शन रहता है। राजा-रानी को किसी का शाप, शर्त, या कोई कठिन काम कर दिखाने, उसमें दैवी सफलता प्राप्त होने अथवा किसी साधु-संत, जादूगर या मानव की तरह सुनने और समझने और बोल-चाल वाले किसी वृक्ष, पशु अथवा पक्षी की सहायता मिलने से कार्यपूर्ति का वर्णन होता है।

स्त्रियों की व्रत संबंधी धार्मिक कथाओं में विशेष रूप से निषेधों की चर्चा होती है। कहानियों का मूल, आदि मानव के अंधविश्वासों में मिल सकता है। इसमें कल्पना-तत्व की स्पष्ट कमी होती है। स्त्रियों की कहानियाँ बहुत आदर भाव से कही-सुनी जाती हैं। सभी कहानियों को कहने की अधिकारिणी भी वे नहीं होतीं, क्योंकि कहानी का अंश भुलाया या आगे पीछे नहीं सुनाया जा सकता। ऐसी कहानी सुनने वाले दोनों ही अधिकारी निष्ठावान्, तन-मन से शुद्ध और पवित्र होते हैं। इनके द्वारा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान हो जाता है।

वैसे तो इस प्रदेश में प्रधानतः प्रेम-कथाएँ अधिक नहीं मिलतीं, यदि हैं भी तो उनमें प्रेम का आदर्श विशुद्ध रूप में दृष्टिगत होता है। इनमें प्रेम का नग्न व भद्दा प्रदर्शन नहीं है, जिसको कि हर अवस्था के लोग एक जगह बैठ कर कह-सुन न सकें। परन्तु उन कथाओं में प्रेम के साथ-साथ बहुविवाह भी देखने को मिलता है। एक राजकुमार अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिये कितनी ही राजकुमारियों

से विवाह कर लेता है, उदाहरणार्थ—गुलबकावली कहानी में राजकुमार गुलबकावली का फूल लेने के लिये चार विवाह करता है जिससे प्रेम की पवित्रता पर धब्बा आ जाता है ।

लोककथाओं का अंत सुख तथा संयोग में ही होता है । उनमें मंगलकामना की भावना रहती है, यह मंगलकामना ही उनकी विशेषता है । लोककथाकार अपनी कथा के द्वारा लोक-समाज में विषादमय, निराशाजनक वातावरण उपस्थित नहीं करना चाहता है उसका उद्देश्य तो उनमें जीवन, जगन्नियन्ता के प्रति असीम, अटूट आस्था उत्पन्न करना होता है जिससे जीवन सरल और सुखी हो सके और इस प्रकार के जीवनयापन में नैतिक पक्षों का उल्लेख सहायता करता है । लोककथाओं में हम देखते हैं कि जीवन की कटु वास्तविकताएँ भी मधुर रूप धारण कर लेती हैं । कथा के नायक व नायिका के मार्ग में आनेवाली विघ्न-बाधाएँ स्वाभाविक रूप से हटती दिखायी देती हैं । अगर वे सत्य-मार्ग पर चलते हैं तो उनको सफलता अवश्य मिलती है । सत्य, झूठ और बुराई पर विजय होना अवश्यंभावी है ।

कहानी के अंत में हम आशीर्वादात्मक वाक्य पाते हैं—'भगवान् ने जैसा उसका भला किया, उसका राजपाट लौटाया, वैसा सब का करें ।'

लोककथाओं में अलौकिक और अमानवीय तत्वों का बहुत समावेश होता है । इनमें रहस्य, रोमांच, भूतप्रेत, पिशाच, दानव, परी आदि से संबंध रखनेवाली वस्तुओं का वर्णन मिलता है और अद्‌भुत रस की प्रधानता मिलती है । रोचकता और मनोरंजकता बढ़ाने के लिये लोक-समाज में यह बहुत प्रसिद्ध है कि कहानी का सबसे बड़ा गुण सुननेवालों में उत्सुकता का भाव बनाये रखना है । जितनी ही देर तक वह अधिक उत्सुकता बनाये रहेगी उतनी ही सफल होगी । लोककथाओं में यह उत्सुकता अंत तक बनी रहती है और यही कारण है कि वह बहुत रोचक और सफल होती है ।

इन लोककथाओं में बहुत स्वाभाविक और यथातथ्य वर्णन मिलता है । कुछ विशेष 'शेखचिल्ली' आदि की कहानियों को छोड़ कर लगभग सभी में अतिशयोक्ति नहीं मिलती । बहुत सरल शैली में, छोटे वाक्यों में, बिना शब्दों के आडम्बर और कृत्रिमता के यथातथ्य सामाजिक जीवन का चित्रण मिलता है । लोकजीवन का सामाजिक तथा नृ-विज्ञान संबंधी अध्ययन करने के लिये इन कथाओं का विशेष महत्व है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही मानवीय भावनाओं और भिन्न-भिन्न स्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाओं संबंधी अध्ययन की बहुत सामग्री मिल सकती है ।

लोकमानस सब जगह एक समान है । इसी से अन्य प्रान्तों व देशों की कहानियाँ

पढ़ने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बोली और स्थानीय महत्वों तथा साधारण छोटे-मोटे भेदों के अतिरिक्त उनके कथानकों में भावनाओं की आश्चर्यजनक समानता मिलती है। कहानियाँ यद्यपि कल्पनाशील होती हैं पर उनका आधार वही जनसमाज होता है। मानव-हृदय से संबंधित भावुक परिस्थितियाँ व उनकी प्रतिक्रियाएँ सभी जगह एक-सी मिलती हैं। मनुष्य, अगर वह वास्तव में मनुष्य है और उसमें मानवीय हृदय का स्पंदन है तो उस पर समान परिस्थितियों में समान रूप से ही प्रतिक्रियाएँ भी होंगी। इन्हीं साधारण तथा अन्य कुछ अपवादस्वरूप होने वाली प्रतिक्रियाओं का उल्लेख भी इन कथाओं में मिलता है। लोककथाएँ जीवन से भिन्न धरातल पर आधारित नहीं होतीं, उनमें हमें अधिक आत्मीयता का अनुभव होता है। लोककथाकार लोक-जीवन से ही प्रेरणा पाता है और लोक-जीवन को ही प्रेरणा देता है।

खड़ीबोली की लोककथाओं का कथा-शिल्प—लोक-साहित्य उस समाज का साहित्य है जो साहित्यिक सिद्धान्तों से सर्वथा अपरिचित है। वह जब कोई कहानी कहता है तो वह घटनाओं का वर्णन अपनी ही प्रकार से करता चलता है। घटनाओं को जोड़ने तथा उसका वर्णन करने की लोकमानव की अपनी ही परिपाटी होती है जिसके ऊपर कोई भी साहित्यिक सिद्धांत लागू नहीं होता। वास्तव में इन कहानियों की रोचकता तथा कलात्मकता का लोक रूप हमें सुनने से ही पता चलता है परन्तु फिर भी हम इन कथाओं को निम्नलिखित दृष्टिकोणों से परखना चाहेंगे—

१—कथावस्तु, २—पात्र, ३—चरित्रचित्रण, ४—कथोपकथन, ५—वातावरण, ६—रस, ७—उद्देश्य, ८—शैली (कहने-सुनने की कला)।

१. कथावस्तु—लोककथाएँ कथावस्तु के क्षेत्र में अत्यधिक सम्पन्न हैं। इन कथाओं में जीवन की समस्याएँ, सामाजिक परम्पराएँ, लोकविश्वास, अंधविश्वास, नैतिकता-अनैतिकता, धर्म-अधर्म आदि सभी कुछ अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए हैं। लौकिक कथानकों के अतिरिक्त अलौकिक कथानक जैसे—परी, दानव, सिद्धपुरुष, जादू का डंडा आदि भी इन कथानकों में मिलते हैं। ऐतिहासिक कथानकों को तो लोकमानव अपनी प्रकार से तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है। उदाहरणार्थ—'सिकन्दर' कहानी में लोककथाकार सिकन्दर को अत्याचारी सिद्ध करता है। इन कथाओं से प्रकट होता है कि जीवन के हर पक्ष के संबंध में लोकमानव अपना ही दृष्टिकोण रखता है जिस पर न तो इतिहासकार प्रश्न उठा सकता है और न अन्य कोई शक्ति ही। वह अपने विचारों में निरंकुश है।

लोककथाओं में अन्तर्कथाएँ भी रहती हैं जो मुख्य कथानक को पुष्ट करती हैं। मुख्य रूप से ये अन्तर्कथाएँ अलौकिक कहानियों में ही अधिक होती हैं जो नायक को कार्यविधि में श्रोताओं की रुचि को और अधिक जाग्रत कर देती हैं। वैसे ऐतिहासिक कहानी---राजा विक्रमादित्य की कहानी में भी अन्तर्कथाएँ हैं। इन कथाओं में कल्पना भी अधिक रहती है, जो कभी-कभी अवास्तविक-सी लगने लगती हैं।

लोककथाओं में प्रतीकात्मक कथानक भी मिलते हैं, जैसे---झिलमिल का पेड़, प्रतीकात्मक कथा कही जा सकती है। कहावतों संबंधी भी कथानक हैं, जिसका सारांश एक ही वाक्य में निकल आता है तथा यह जीवन में चरम वाक्य के रूप में प्रयुक्त होते रहते हैं। शास्त्रों तथा पुराणों पर आधारित आख्यान भी लोकसाहित्य में लोक-कथा के रूप में सुरक्षित हैं जिनका महत्व धार्मिक तथा नैतिक रूप से समान है।

२. **पात्र**---किसी भी कहानी में कथानक के पश्चात् पात्रों का स्थान है। प्रकृति तथा सृष्टि का हर जड़-चेतन लोक-कथा का पात्र है तथा हर पात्र मुखर है और बात करता है। मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जन्तुओं के अतिरिक्त ईश्वर, समुद्र, गंगा, अग्नि, वृक्ष, पृथ्वी, बादल, खूँट, लाठी, सब ही बोलते हैं तथा कहानी हर पात्र की के लिए समान रूप से आवश्यकता है। 'मैना और चना' की कहानी में मैना का चना खूंट में गिर जाता है। जब वह खूँटे से माँगती है तो खूँट मना करती है। वास्तव में तो कहानी वहीं से प्रारम्भ होती है। इस कहानी में लाठी, आग, सागर, बादल आदि सब ही सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। ये कहानियाँ पात्रों की दृष्टि से तो प्रकृति का दर्पण हैं, जिसमें प्रकृति का हर रंग स्पष्ट दिखलायी देता है तथा इन कहानियों में सब को उचित स्थान मिला है। पात्रों में नायक सदा फल-उपभोग करता है, अन्य पात्रों को अपने-अपने अनुसार फल मिलता है। लोक-कथा का नायक आदर्श-वादी होता है तथा उसके साथी भी आदर्श को निबाहते हैं। अन्य पात्र, जो आदर्श के विरुद्ध चलते हैं, वह कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं। लोकमानव पर कथा के पात्रों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। वह इनका अनुकरण करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं। अधिकतर पात्र प्रतिदिन के जीवन से ही आते हैं। इसलिये भी लोकमानव उनसे अधिक निकटता का अनुभव करता है।

३. **चरित्र-चित्रण**---पात्रों की तुलना में इन कथाओं में चरित्र-चित्रण का बहुत अभाव है। वास्तव में पात्र व्यक्तिगत रूप से नहीं आते। लोककथाओं में उनका समष्टि रूप ही मिलता है। पात्र नाम से नहीं आते अपितु जाति से सम्बोधित होते हैं जैसे आदमी, औरत, बनिया, जाट, गूजर आदि। चरित्र-चित्रण भी होता है तो

समष्टि रूप में ही होता है। कहीं-कहीं राजकुमारियों का रूप वर्णन मिल जाता है। यह रूप-वर्णन भी दूतियों द्वारा तथा तोते अथवा मैना द्वारा होता आया है, जिसको सुन कर राजकुमार उनके पीछे पागल हो जाता है। परन्तु प्रधान रूप से चरित्र-चित्रण गौण ही होता है।

४. कथोपकथन तथा वातावरण——जहाँ तक कथोपकथन का सम्बन्ध है, वह इन कहानियों में बहुत ही शिथिल रहता है। इसका कारण यह भी है कि लोक-कथाएँ अलिखित रूप में ही हैं तथा इन कहानियों को सुनाने वाले भी अशिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित होते हैं जो कथाओं को सुनकर उसी प्रकार से सुना देने में विश्वास करते हैं। वैसे कहानी के कथोपकथन को कोई-कोई सुनाने वाला पुष्ट भी कर देता है। ये कहानियाँ अधिकतर वर्णनात्मक ही होती हैं। इस कारण भी कथोपकथन की अधिक आवश्यकता नहीं होती।

५. वातावरण——जहाँ तक वातावरण का सम्बन्ध है, लोककथाओं में वातावरण पूर्ण रूप से ग्रामीण ही होता है। इस पक्ष पर कहानी कहनेवाले के अपने चारों ओर के वातावरण का ही अधिक प्रभाव रहता है। इसके पात्र अपने कार्यकलापों से भी उसी प्रकार का लोक-वातावरण बना देते हैं। राजा का लड़का, बैलों की गाड़ी में ही लकड़ी बेंचने ले जाता है। कथाओं की भाषा भी खड़ीबोली प्रदेश के ग्रामों में प्रचलित भाषा ही होती है, जो हर प्रकार के वातावरण को लोकरूप में ही ढाल देती है, इसलिये कहानियों में आदि से अंत तक लोक-वातावरण ही रहता है।

६. रस——लोककथाओं में लगभग सब ही प्रधान रस रहते हैं——वीर, शृंगार, वात्सल्य, हास्य, अद्भुत, वीभत्स, शांत तथा करुण। अलौकिक कहानियों में स्थान-स्थान पर अद्भुत रस की अभिव्यंजना हुई है। 'शेखचिल्ली' की कहानियाँ हास्य-रस से ओतप्रोत हैं। 'काग उड़ावनी' कहानी में वात्सल्य का उस समय उत्कृष्ट रूप मिलता है, जब काग उड़ावनी के स्तनों से दूध की धारा बह निकलती है। अन्य सभी रस स्थान-स्थान पर लोककथाओं में दृष्टिगत होते हैं।

७. उद्देश्य——जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि यह कहानियाँ आदर्शवादी होती हैं। इनका उद्देश्य सदा नैतिक शिक्षा देना रहता है। इन कथाओं से जीवन के दिन-प्रतिदिन के कार्यकलापों से सम्वन्धित शिक्षाएँ भी मिलती हैं। ये कथाएँ लोकमानव को आस्थावान् बनाती हैं तथा इनके द्वारा उनका जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण बन जाता है। लोककथाओं का शिक्षात्मक चरित्र के अतिरिक्त मनोरंजक रूप भी होता है। इस प्रकार की कथाओं में गीदड़, लोमड़ी की कथाएँ, शेखचिल्ली की कथाएँ तथा ठगों की कथाएँ आदि ही आती हैं।

कभी-कभी इन कथाओं में व्यंग्य भी रहता है जैसे 'आधा सच आधा झूठ' कहानी में कलियुग के प्रति व्यंग्य मिलता है। 'अंधेर नगरी चौपट राजा' नामक कहानी में व्यंग्य ही है, जो राजा की मूर्खता पर किया गया है। 'चिड़िया तथा कौए' नामक कथा में पूँजीवाद की व्यंग्यात्मक आलोचना मिलती है।

८. **शैली**—इन सब तथ्यों के आधार पर हम यही कह सकते हैं कि लोक-कथा की भाषा, शैली सब ही कुछ कहानी कहनेवाले पर ही निर्भर करता है। उसकी लोकभाषा होती है तथा कहते समय वह तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर कहना चाहता है। कहानी कहने के साथ-साथ वह यह भी सोचता रहता है कि तथ्यों को किस प्रकार तोड़-मरोड़ कर, बढ़ा-चढ़ा कर, श्रोताओं के सम्मुख रखा जाय। कहानी का आरम्भ तथा अन्त तो एक-सा ही रहता है परन्तु बीच के अंश में अवश्य अन्तर हो जाता है। वास्तव में कहानी कहनेवालों की कुछ इस प्रकार की प्रवृत्ति होती है कि वह कथा को लम्बी करके सुनाना चाहता है, इसलिये कहानी कहनेवाला कई बार दुहराता भी है।

वास्तव में लोककथा की अपनी ही शैली होती है। इसके साथ ही साथ यह भी कह देना आवश्यक है कि लघुछंद कथाओं में चम्पु शैली रहती है; परन्तु छंद अत्यधिक काव्यपूर्ण नहीं होते उनमें केवल तुक और लय रहती है।

कहानी कहने और सुनने वालों के बीच एक अनुबंधन होता है जिसका पालन करना दोनों के लिये आवश्यक होता है। कहानी कहने वाला दिन में कहानी नहीं कहता। वह यह कह कर टाल देता है कि मामा रास्ता भूल जायेंगे। इसके पीछे यही भावना रहती है कि दिन के समय कहानी सुनाने वाले की एकाग्रता भंग होने की पूर्ण संभावना रहती है। इसीलिए कहानी रात्रि को सोते समय ही सुनाने का प्रचलन है। कहानी कहनेवाला श्रोताओं के द्वारा व्यवधान पसन्द नहीं करता परन्तु वह चाहता है कि श्रोता 'हुँकारा' अवश्य देते रहें नहीं तो कहानी कहनेवाले की यही भावना होती है कि श्रोता कहानी में मन नहीं लगा रहे हैं। हर कहानी सुनाने-वाला समझता है कि जो कहानी वह कह रहा है, वह बहुत अच्छी और बहुत ठीक है। इसी कारण वह उसमें किसी प्रकार का संशोधन भी स्वीकार नहीं करता।

कहानी कहना वृद्धजनों के मुख से अधिक अच्छा लगता है क्योंकि कहानियों का भण्डार भी अनुभव के समान ही बढ़ता है तथा कहने की शैली में भी परिमार्जन आता है। गाँव में कुछ लोग तो इसलिये प्रसिद्ध हो जाते हैं कि वह कहानी कहने में पारंगत माने जाते हैं। जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि लोककथाएँ अलिखित होने के कारण उनके शिल्प तथा कला पक्ष का ठीक-ठीक मूल्यांकन करना असंभव-सा प्रतीत होता है, अतः इनके कहने की शैली के आधार पर ही लोककथाओं के

कलापक्ष को समझा जा सकता है । लोककथा में शब्दों में चाहे प्रादेशिकता हो परन्तु भावनाओं, घटनाओं तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से सार्वभौमिकता रहती है। लोककथाएँ पहाड़ी नदी के समान हैं, जिनके अन्तर में नुकीले, चिकने, बहते हुए तथा स्थिर, सभी प्रकार के पत्थर हैं परन्तु वह अपना सन्तुलन बनाये, सभी को सँभाले, तेजी से बढ़ती चली जा रही है ।
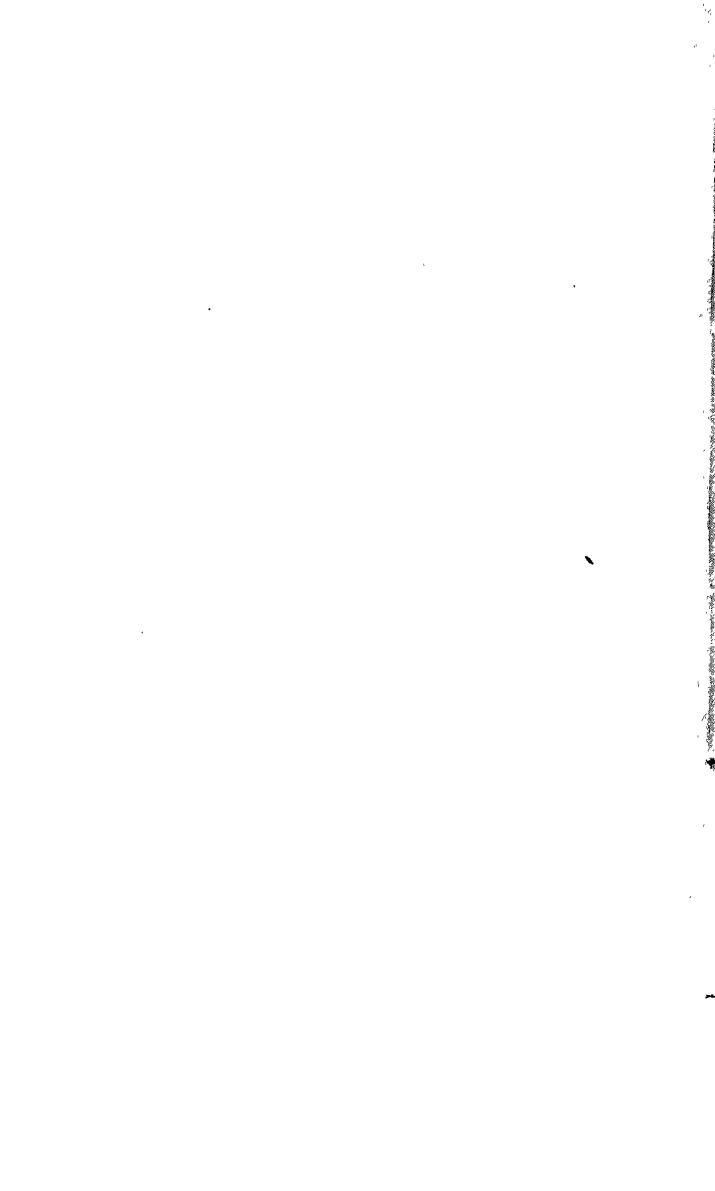
खड़ीबोली
की
लोक-गाथा
५
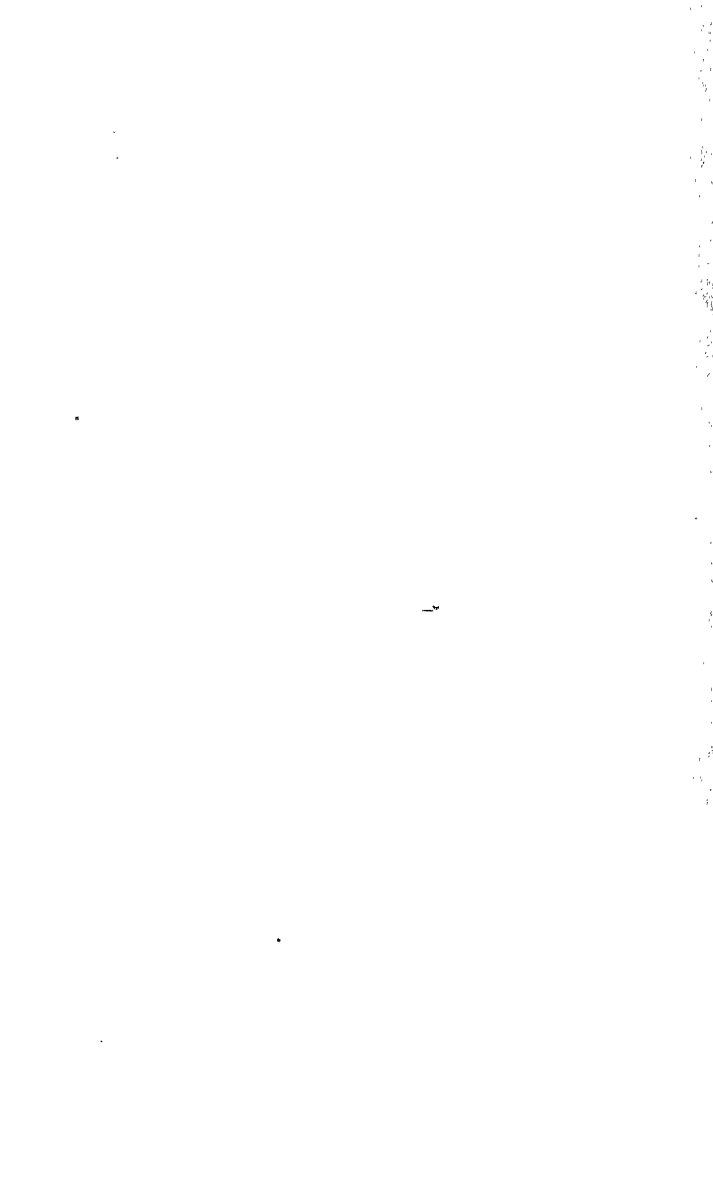
लोकगाथा लम्बा कथात्मक गीत होता है। यह अंग्रेज़ी के 'बैलेड' शब्द का समानार्थी है। इसमें किसी एक व्यक्ति के जीवन का सांगोपांग चित्रण होता है तथा कथानक प्रधान होता है। यह आकार में साधारण मुक्तक गीतों से बड़ा होता है। कथाक्रम होने के कारण यह अधिक रोचक और सजीव होता है। इसको गाने की एक विशेष परंपरा होती है तथा इसका गायन सावन, होली, विवाह तथा अन्य उत्सवों के अवसरों पर ही होता है। इसके कथा-तत्वों में असाधारण कृत्यों तथा व्यक्तियों का वर्णन रहता है। यह लोकगाथाएँ इतनी विशद तथा विविधता लिये हुए हैं कि इनमें लोकज्ञान का अनन्त-कोष भर गया है। इनमें प्राचीन रीतियों के अनुष्ठानों का भी वर्णन मिलता है।

"लिखित साहित्य से अलिखित साहित्य का महत्व कम नहीं है। यह अलिखित साहित्य शताब्दियों से लोकगाथा के रूप में प्रचलित है और जन-जन की वाणी से मुखरित होता रहा है। यद्यपि यह लौकिक-जीवन से प्रेरित हुआ है तथापि इसमें एक ऐसी आदर्श निष्ठा है, जो समाज को शताब्दियों तक स्थिर रखने में सहायक हुई है। इसे हम लोक-जीवन की और लोकोत्तर जीवन की संधि का साहित्य मान सकते हैं। न्याय भावना के विकास के संदर्भ में इस लोक-साहित्य की ओर संकेत किया गया है, जिसमें अनेकानेक जनश्रुतियाँ सम्मिलित हैं। वे प्रतीक और रूपकों के माध्यम से प्रकृति के साथ हमारा रागात्मक संबंध स्थापित कराती हैं। इस रागात्मक संबंध में 'प्रेम' का सबसे अधिक महत्व है। इसके द्वारा जहाँ हम पारस्परिक संबंधों में जीवन के संबंधों का अवलोकन करते हैं, वहाँ उसमें ईश्वरीय प्रेरणा समझ कर हम अपनी वासनाओं से ऊपर उठते हैं।"[१]

'गाथा' शब्द का प्रचार उत्तरी भारत में बहुत होता है। इसमें कथात्मकता और गेयता, दोनों का समावेश है, साथ ही यह प्राचीन परम्परानुगत शब्द भी है।[२]

सर्वप्रथम 'गाथा' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में पाया जाता है—(ऋग्वेद ८:३२:१)। यज्ञ के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा उस समय प्रचलित थी। इनके

---

१. साहित्य-शास्त्र : डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०१

२. भोजपुरी लोकगाथा : डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, पृ० २

गाने वालों को 'गाथिन' कहा जाता था ।—(ऋग्वेद १:७:१) ।[१]

"हिन्दी में यह शब्द वृत्तांत या जीवनी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। गाथाओं में आख्यानों का सूक्ष्म उल्लेख या संकेत होने के कारण कालान्तर में यह शब्द आख्यान, कहानी या जीवन-वृत्तान्त के ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, ऐसा प्रतीत होता है।"[२]

"गीत-कथा और लोकगाथा, दोनों में लोकगीत और लोककथा के तत्व सम्मिलित रूप से मिलते हैं। गीत-कथा मुख्यतः एक लोककथा, ही रहती है किन्तु रूप में वह गद्यात्मक न होकर पद्यबद्ध होती है। उसे हम लोकसाहित्य के अन्तर्गत खंड-काव्य मान सकते हैं। इसके विपरीत लोकगाथा आकार-प्रकार में गीत-कथा से बड़ी रहती है और यद्यपि मुख्य कथा-सूत्र उसमें एक ही रहता है, कथा विकास-क्रम में स्थल-स्थल पर अनेक पात्र और घटनाएँ उससे संबद्ध हो जाती हैं। इस कारण अनेक गाथाएँ एक स्वतंत्र 'कथा' की अपेक्षा 'कथा-समूह' प्रतीत होती हैं। गीत-कथा और लोकगाथा का क्षेत्र विशाल होता है। एक ही लोकगाथा भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ पाई जाती है।"[३] अनेक गाथाओं का क्षेत्र इतना विस्तृत होता है कि प्राचीन अथवा वर्तमान सामाजिक संठगन संबंधी-निष्कर्षों पर पहुँचना भ्रामक होगा।

"इन लोक-गाथाओं में सबसे बड़ी बात यह है कि ये हमारे सामने जातीय संस्कृति का अनुपम चित्र उपस्थित करती हैं। इनके द्वारा किसी युग-विशेष की समस्त परम्पराएँ अपने स्वाभाविक क्रिया-कलाप में स्पष्ट हो उठती है। ये परम्पराएँ उत्सव, त्यौहार और मंगलमय आचारों की हृदयग्राही भावनाओं और उनकी स्मृतियों से जीवन की अनुभूति को और भी सरल बना देती हैं। प्रत्येक मंगलमय त्यौहार और उत्सव, संयोग या वियोग में प्रेम का आश्रय पाकर भावनाओं के अत्यन्त समीप आ जाता है और तब हम अनुभव करते हैं कि हमारी परम्पराएँ जीवन की कितनी गहराई से उठी हैं और उनके निर्माण में कितनी जातीयता या संगठन की भावना है।"[४]

"लोकगाथा की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं जिनका उल्लेख ए० बी० गमियर ने अपनी पुस्तक 'ओल्ड इंगिलश बैलेड्स' की भूमिका में किया है—(१)

---

१. हिन्दी साहित्य कोष : पृ० २५८,

२. वही — पृ० २५९

३. मानव और संस्कृति : डॉ० श्यामाचरण दूबे, पृ० १७५

४. साहित्य शास्त्र : डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०२

उसमें आत्म-व्यंजक तत्व (सब्जेक्टिव एलीमेंट) का पूर्णतः अभाव होता है अर्थात् वह अनिवार्यतः वस्तु-व्यंजक (आब्जेक्टिव) होता है। (२) वह लोक का काव्य है। लोक द्वारा ही उसका निर्माण और विकास होता है। कंठानुकंठ प्रसार और प्रचार होने के कारण उसका निश्चित पाठ नहीं होता और न उसकी लिखित प्रतियाँ ही होती हैं। (३) उसमें श्रमसाध्य कलात्मकता नहीं होती किन्तु यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति अधिक होती है। उसमें आवश्यक भरती की सामग्री और वाग्जाल नहीं होता। (४) उसमें परम्परा प्रेम की भावना, सहजोच्छ्वास भावनात्मकता और सरल कल्पना (डाइरेक्ट-विजन) की मात्रा जितनी अधिक होती है उतनी बौद्धिकता, कल्पनाशीलता और श्रमसाध्य कलात्मकता की नहीं। (५) उसमें भाषा और विचारों की सरलता होती है और नैसर्गिकता तो ऐसी होती है जो केवल प्रारंभिक मानव समाज ही में मिलती है। (६) उसमें रूढ़ अस्वाभाविक और श्रमसाध्य अलंकारों और शब्दों का अभाव होता है। उसमें प्रयुक्त अलंकार और शब्द, व्यावहारिक जीवन से गृहीत होते हैं, परम्परागत साहित्यिक स्रोतों से नहीं। उसमें कुछ विशेष अलंकारों, मुहावरों और विशेषणों की आवृत्ति बार-बार होती है। (७) उसका छंद सीधा-सादा और सरल होता है और तुकों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। (८) उसमें गेयता होती है, परन्तु वह शास्त्रीय संगीत से भिन्न, सरल होती है। (९) उसमें कोई छोटी या बड़ी कथा अवश्य होती है।"[१]

लोकगाथा में संपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होती है। आदिम काल से ही प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक रूप से नृत्य, संगीत, गीतों एवं लोकगाथाओं की रचना में लगे हुए हैं। जैसे किसी व्यक्ति विशेष के हृदय में हर्ष-विषाद, सुख-दुःख की भावनाएँ जागृत होती हैं, उसी प्रकार समूह के लोग भी समष्टि रूप में इसी भावना का अनुभव करते हैं। उत्सवों, मेलों तथा अन्य सामाजिक अवसरों पर एकत्र होना इस बात का द्योतक है कि ऐसे अवसरों के लिये ही लोकगाथाओं की रचना की जाती रही होगी। यह मौखिक परम्परा की वस्तु है। लोकगाथाओं में घटनाओं का स्वाभाविक एवं गतिशील वर्णन तो रहता ही है, साथ ही साथ जीवन का यथार्थ चित्रण भी रहता है। लोकगाथा परंपरागत है जो प्रत्येक देश में, प्रत्येक युग में, बड़े चाव से सुनी जाती रही। प्राचीन काल में इनका आज से अधिक आदर था। राजा, सेनापति, मंत्री, कवि एवं ऋषि-मुनि सभी लोग गाथाओं का श्रवण करते थे तथा उनसे प्रेरणा ग्रहण करते थे। उस समय लोकगाथा सामाजिक चेतना एवं आदर्श को प्रस्तुत करती थी।

---

१. हिन्दी साहित्य कोष : पृ० ६८८

लोकगाथा लोक का काव्य है और लोक के द्वारा ही उसका निर्माण और विकास होता रहा है। इसका प्रचार व प्रसार एक कंठ के द्वारा दूसरे कंठ तक होता गया। लिखित पाठ कम उपलब्ध होने के कारण यह परिवर्तनशील भी रहा। जैसे-जैसे इसमें लोक तत्वों का समय-समय पर समावेश होता गया उसी प्रकार लोकरुचि और अवसरों के अनुसार रचनाएँ भी होती गयीं। लेकिन उनमें आज भी सहजता तथा स्वाभाविकता उसी प्रकार से वर्तमान है जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं कि लोकगाथाओं की उत्पत्ति लोकपर्वों, धार्मिक उत्सवों जैसे सामूहिक अवसरों पर अनायास ही हो जाती थी, पर इन लोकगाथाओं में समूह-विशेष के द्वारा मान्य स्थानीय मान्यताओं, विश्वासों और सामाजिक परम्पराओं का उल्लेख भी पूर्ण रूप से रहता था।

लोकगाथाओं में जीवन के सरल वास्तविक संबंध व संस्कार अपने स्वाभाविक रूप में रहते हैं, आत्मीयता, बंधुत्व की भावना, यह सब अपने मूल रूप में मिलते हैं तथा नायक एवं नायिका का पूर्ण व ईमानदारी का रूप दृष्टिगत होता है। इनमें धार्मिक तत्व भी मिलते हैं। यह लोकगाथाओं के द्वारा अनपढ़ जनता के सामने उदाहरण रखती हैं जिससे वह श्रद्धा से नत हो जाती हैं और धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न हो जाती है।

खड़ीबोली की लोकगाथाओं का वर्गीकरण——लोकगाथाओं के वर्ण्य-विषय, भाषा, पात्र तथा अभिप्राय आदि कथा-तत्वों के गंभीर अध्ययन के हेतु उनका कुछ दृष्टिकोणों के आधार पर वर्गीकरण करना आवश्यक हो जाता है। प्रायः ऐसा प्रतीत होता है कि लोकगाथाओं के कथा-तत्वों में मानवीय जीवन से संबंधित सभी भावनाओं का चित्रण रहता है यद्यपि हर लोकगाथा में हर तत्व मिलता है; परन्तु मुख्यरूप से एक तत्व ही प्रधान होता है। इसीलिये स्थूल रूप से एक तत्व ही प्रधान होता है। हम लोकगाथाओं को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं,——वीर कथात्मक, प्रेम कथात्मक तथा योग संबंधी या अद्भुत गाथाएँ। यह वर्गीकरण अपने में पूर्ण व स्वतंत्र नहीं हैं। इनमें सभी में एक-दूसरे से सम्बन्धित सभी तत्व आ जाते हैं। उनको वास्तविक अर्थों में विभाजित करना बहुत कठिन है। उदाहरण के लिये प्रेमगाथाओं में वीरता, अमानवीय तथा अद्भुतता सभी का समावेश रहता है। सब तत्व होने पर भी किसी भी लोकगाथा में एक ही तत्व की प्रधानता होती है और इसी एक तत्व के आधार पर हम उनको पृथक्-पृथक् श्रेणियों में रख सकते हैं। उपलब्ध गाथाओं को तीन श्रेणियों में बाँटा है——

१—पौराणिकगाथाएँ
२—वीरगाथाएँ
३—प्रेमगाथाएँ

इनकी तालिका निम्नप्रकार है :—
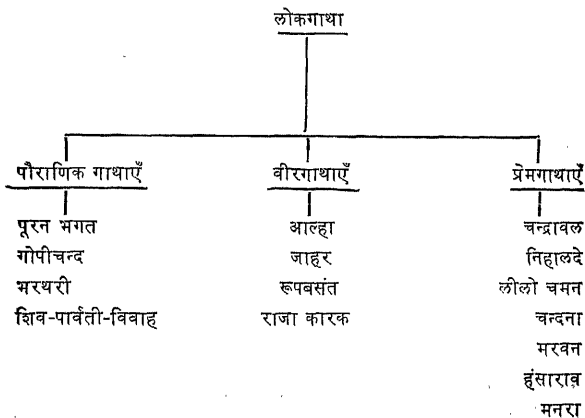
इन लोकगाथाओं में से कुछ लोकगाथाएँ सावन के गीतों में दी गई हैं। कुछ बहुत बड़ी होने के कारण परिशिष्ट में नहीं दी जा सकीं। अन्य लोक-गाथाएँ प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। पहले वर्ग के अन्तर्गत वह लोकगाथाएँ रखी गयी हैं जिनके नायक-नायिका पौराणिक पुरुष और स्त्रियाँ हैं। दूसरे वर्ग की लोकगाथाओं के नायक अपने युग के वीर सामंत हैं। तीसरे वर्ग में उन लोक-गाथाओं को रखा गया है जिनकी नायिकाएँ, प्रेमिकाएँ हैं अथवा ससुराल में अत्याचारग्रस्त स्त्रियाँ हैं। पौराणिक गाथाओं को अधिकतर जोगी ही गाते हैं। इनका वर्ण्य-विषय अलौकिक होता है तथा किसी योगी, सिद्ध, सन्यासी से संबंधित कथानक होता है।

वीरगाथाओं में स्थानीय राजाओं और रईसों का वर्णन होता है। इनमें जातीय

तत्व के साथ सामयिक शूरता का बखान भी रहता है तथा राजाओं की वंशावली का इतिहास भी मिलता है, यथा—निहालदे, ढोला। इनको भाट, चारण तथा डोम गाते हैं।

प्रेमगाथाओं में प्रेम मुख्य होता है तथा अन्य तत्व गौण होते हैं। इनमें संघर्ष भी पर्याप्त मात्रा में होता है तथा सामाजिक परम्पराओं का चित्र भी होता है। नायक-नायिका द्वारा उन परम्पराओं को तोड़ने पर उनको समाज का सामना करना पड़ता है, पर अंत में उनकी ही जीत होती है। इनको ऋतु सम्बन्धी कथागीत भी कहा जा सकता है। स्त्रियाँ इन गाथाओं को त्यौहार आदि पर गाती हैं या सार्वजनिक स्थलों पर निम्नजाति के चमार आदि गाते हैं।

लोकगाथाओं के वर्ण्य-विषय—इन लोकगाथाओं के वर्ण्य-विषय विविध हैं। इनमें जीवन का सांगोपांग चित्रण मिलता है। जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं, जहाँ लोकगाथाकार की दृष्टि नहीं गयी। लोकगाथाओं में स्वदेश-प्रेम, राष्ट्रीय-भावना, बौद्धिकता, अलौकिक प्रेम, सब से ही इनका निकट का परिचय है। इनमें परम्परागत प्रेम की भावना का वर्णन मिलता है तो इनमें प्रेम की गहनता भी उतनी ही है। लोकगाथाओं में वीरता, साहस, रहस्य एवं रोमांच अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। यही किसी जाति अथवा समाज की अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

इनमें सामाजिक, व्यक्तिगत तथा जातिगत विशेषताओं का बहुत स्वाभाविक उल्लेख मिलता है। उनकी चित्त-प्रवृत्तियाँ, धर्माचरण, सदाचरण, ईर्ष्या एवं कलह के जीवन का स्वाभाविक चित्रण लोकगाथाओं में सफलतापूर्वक हुआ है। सामाजिक अच्छी रीतियों के साथ ही उनकी कुरीतियों का भी उल्लेख करना लोकगाथाकार नहीं भूला। उदाहरणार्थ—बहु-विवाह, अनमेल-विवाह, पुरुषों के अत्याचार, विधवाओं की समस्या आदि का यथातथ्य उल्लेख इनमें समय-समय पर होता रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगाथाओं का वर्ण्य-विषय सरल, स्वाभाविक, समाज के गुण दोष युक्त जीवन का यथार्थ चित्रण रहा है।

इनमें सामाजिक, व्यक्तिगत परिस्थिति समान रूप से वर्तमान रहती हैं। उदाहरण के लिये—नायक-नायिका का पूर्वानुराग, सपत्नी की ईर्ष्या, द्वेष-प्रेम की उत्कटता, परिस्थिति-जन्य वियोग, बारहमासा, सामाजिक अत्याचारों की प्रतिक्रिया तथा अन्य आश्चर्यजनक घटनाएँ, एवं भाग्यवाद का प्रभाव, भाग्य व धर्म जो अन्योन्याश्रित हैं, उनमें विचारों की प्रौढ़ता निर्भीकता के साथ दृष्टिगत होती है। इनमें अमानवीय तत्वों का प्रभाव प्रायः देखा जाता है तथा नायक व नायिका के कष्टों में पशु-पक्षी भी सहायता देते हैं।

लोकगाथाओं में प्रयुक्त होने वाली भाषा—इन लोकगाथाओं में ग्रामीण-समाज की प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग होता है। इसमें स्वाभाविक प्रवाह और प्रभाव होता है। साहित्य के अंगों से अनभिज्ञ होते हुए भी इनमें अज्ञात रूप से इनका समावेश हो जाता है। वीर, श्रृंगार, करुणा आदि लोकगाथा के विशेष रस हैं। इनमें यद्यपि छन्द विधान नहीं है पर अलंकारादि स्वाभाविक रूप से आ ही जाते हैं।

लोकगाथा की भाषा स्थानीय व सरल तथा बोधगम्य होती है। भाषा के अनुरूप ही विचारों की सरलता भी होती है। यह नैसर्गिकता केवल प्रारंभिक मानव समाज ही में मिलती है। इनमें रूढ़, अस्वाभाविक और श्रम-साध्य अलंकारों और शब्दों का नितांत अभाव रहता ही है। इनमें प्रयुक्त अलंकार और शब्द, व्यावहारिक जीवन से गृहीत होते हैं, परंपरागत साहित्य-श्रोतों से नहीं। इनमें प्रयुक्त होने वाले अलंकारों, मुहावरों और विशेषणों की आवृत्ति भिन्न-भिन्न स्थलों पर बार-बार होती हैं। इनमें तुकों पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

लोकगाथाओं की भाषा, ग्राम्य वातावरण के कारण सदैव की जनपदीय रही है। इस भाषा में वर्णनात्मकता और भाषा का बहुत ही स्वाभाविक रूप है। आलंकारिकता और पद-लालित्य के लिये यहाँ पर कोई स्थान नहीं रहता।

लोकगाथाओं का संगीत पक्ष—संगीत पक्ष इन लोकगाथाओं की विशेषता है। यह शास्त्रीय संगीत से भिन्न व सहज होता है। लोकगाथाओं और संगीत का अभिन्न साहचर्य है। सभी लोकगाथा-गायक सारंगी बजा कर गाते हैं तथा अन्य लोक-वाद्यों का जिनमें ढोल, ढप्प, नगाड़ा, घड़ियाल आदि हैं, विशेष प्रयोग होता है। इस प्रदेश में लोकगाथा-गायकों की एक विशेष जाति होती है जो जोगी कहलाती है।

लोकगाथाओं में वर्णित धार्मिक स्वरूप तथा अमानवीय तत्व—भारत, धर्म-प्रधान देश है। यहाँ पर धार्मिक जीवन का ही प्राधान्य रहा है। इसलिये लोकगाथाओं में विशेष रूप से शैव, तथा शाक्य-धर्म की अधिकता है। नाथ-धर्म, गोरखनाथ आदि धार्मिक रूप गोपीचन्द, भरथरी, गुरु-गुग्गा जैसी गाथाओं में मिलते हैं। लोकगाथाओं में विष्णु, शिव, गणेश, पार्वती, राम, कृष्ण, हनुमान आदि का स्थान सर्वोपरि रहता है। शैव, शाक्त तथा नाथधर्म के पश्चात् लोकगाथाओं में इंद्र तथा अप्सराओं का स्थल आता है। योग-कथात्मक लोकगाथाओं को छोड़कर शेष सभी में इंद्र तथा स्वर्ग की अप्सराएँ वर्णित हैं।

लोकगाथाओं में सुमिरन और मंगलाचरण का प्राधान्य रहता है। गायक सर्वप्रथम लोकगाथा के प्रारंभ में सभी देवी-देवताओं की आराधना करता है।

इसीलिये देवी-देवता, पीर-पैगम्बर तथा राजा आदि की वंदना का लोकगाथा में प्रथम स्थान है। वह पृथ्वी, ग्राम-देवता, देवी, दुर्गामाता, गुरु, ब्राह्मण, पाँचों पांडव, हनुमान, तथा गंगा जी का स्मरण (सुमिरन) करके गाथा का आरंभ करता है। गायक किसी भी धर्म व राजा से विरोध नहीं करते । सब को बड़ा और पूज्य मान कर उनकी वंदना करते हैं । धर्म का स्वरूप व्यापक और समन्वयवादी है। चरित्रों के विकास के लिये धर्म और विश्वासों का समावेश हुआ हैं।

पात्रों की योजना इस प्रकार रहती है कि उनसे मानव-धर्म, वीरता, उदारता, सदाचार, त्याग, परोपकार तथा ईश्वर के प्रति विश्वास प्रदर्शित हो। साधारणतया मानव-धर्म लोक-गाथाओं का विशेष अंग रहता है। इनका देश की संस्कृति से निकट का सम्बन्ध रहता है, इसलिये इनमें धार्मिक उथल-पुथल का भी वर्णन मिलता है। ग्रामीणजन की भी धर्म में अटूट आस्था होने के कारण वह राजनीतिक परिवर्तन को तटस्थ भाव से ही देखता है, इसलिये राजनीतिक पक्ष लोकगाथाओं में मौन रहता है।

लोकगाथाओं में रोचक अंधविश्वास भली प्रकार से अपना स्थान बनाये रहते हैं, जिनसे सौंदर्य की वृद्धि होती है । इन गाथाओं के द्वारा अवतारवाद, पुनर्जन्म के प्रति विश्वास अति उत्तम ढंग से वर्णित रहता है। लोकगाथाओं के खलनायक जादू-टोना जानते हैं। जादूगरनी द्वारा नायकों को कष्ट मिलना, तोता बनाना, मेढ़ा बनना आदि का वर्णन लोकगाथाओं में विशेष स्थान रखता है। इनमें आदर्श चरित्रों के विकास में धर्म और विश्वास, सहायक के रूप में चित्रित हैं। इनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यह आदर्शमार्ग प्रशस्त करते हैं। अवतारों का उल्लेख कई रूपों में मिलते हैं। देवी-दुर्गा तथा गोरखनाथ की कृपा से व्यक्तियों का जन्म होता है।

लोकगाथाओं में जड़ पदार्थों का भी मानवीकरण होता है। यहाँ जड़-चेतन में समानता दिखायी गयी है—गंगा, यमुना, वनदेवी, हंस-हंसिनी, तोता-मैना, घोड़ा आदि इसमें मुखर पात्र रहते हैं। उत्तर भारत में गंगा नदी, लोगों के धार्मिक जीवन का एक विशेष अंग है। अतः लोकगाथाओं में भी इसका उल्लेख मिलता है। कोई भी लोकगाथा गंगा के बिना पवित्र नहीं हो सकती। अतएव कई स्थान पर भौगोलिक दृष्टि से ग़लत होने पर भी गंगा को गाथाओं में स्थान दिया गया है।

इन लोकगाथाओं में हमें आदर्शवाद और अध्यात्मवाद का गहरा पुट मिलता है। भारतीय जीवन में आध्यात्मिक पक्ष का पूर्णरूपेण समावेश है जो कर्मवाद से भी अपना नाता जोड़े हुए हैं। लोकगाथा सांसारिक जीवन का भारतीय

दृष्टिकोण है । इसमें मानव-हृदय और चरित्र को स्वरूप मिलता है। इनमें आस्तिकता, आदर्शता, वीरता, करुणा व त्याग, दुष्टता, ईर्ष्या, क्रोध, सदाचार और दुराचार—सभी कुछ सरल तथा लोक रूप में ही वर्णित रहता है।

लोकगाथाओं में पात्र—लोकगाथाओं में भी नाटक के समान ही अच्छे-बुरे सभी प्रकार के पात्र होते हैं। दोनों को परस्पर दिखला कर ही असत्य पर सत्य की विजय दिखायी जा सकती है । नायक के सहायकों में सभी प्रकार के पात्र होते हैं—दैत्य, राक्षस, डायन, जादूगरनी आदि । कुछ कौतुकपूर्ण कृत्यों को करने वाले भी होते हैं। कुछ दैवीय गुण युक्त चरित्र भी होते हैं जो अलौकिक शक्ति सम्पन्न होते हैं। इनके द्वारा अलौकिक व असंभव कार्य भी सम्पन्न होते हैं।

नायिका में विशेष चरित्र विमाता को प्रदर्शित किया जाता है। नायक के साथ उसके प्रेम-प्रदर्शन का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिये, पूरन भक्त की कथा में इसका मूल कारण था बहु-विवाह । युवती अपने वृद्ध पति में कोई रुचि न पाकर कुटुम्ब के युवकों पर दृष्टि डालती थी। बिचारे युवक भी अजीब संकोच और धर्मसंकट में पड़ जाते थे । स्त्री पात्रों में सच्चरित्र और दुश्चरित्र दोनों ही मिलते हैं।

डायनों का प्रयोग सदैव नायिका को पकड़ने के लिये किया जाता है। इनमें अपार शक्ति दिखायी जाती है । यह कार्य-सिद्धि के लिये हर उपाय कर लेती थीं ।

वीर-नायकों का इनमें विशेष उल्लेख रहता है। ये उत्साहपूर्वक और शौर्य-सम्पन्न कार्य करते हैं। ये पुरुष अपनी संस्कृति के त्राणार्थ प्राणों की बाजी लगाते है तो कभी शत्रुओं से बदला लेते हैं। कभी किसी अबला के सतीत्व की रक्षा करने के लिए तलवार उठाते हुए सामने आते हैं । इनमें अलौकिक वीरता का उल्लेख होता है। लोकगाथाओं में इन पात्रों का चरित्र-चित्रण बहुत ही सफलता से चित्रित किया जाता है ।

लोकगाथाओं का जन्म, उद्देश्य और विशेषता—इनकी उत्पत्ति लोक-पर्वों, धार्मिक अवसरों या किसी विचित्र सामाजिक घटना से प्रभावित होकर होती है। ऐसे सामूहिक अवसरों पर इनकी संरचना अनायास ही हो जाती है। इन गाथाओं में समूह-विशेष के स्थानीय-विश्वासों एवं मान्यताओं का उल्लेख रहता है । यह सामाजिक परम्पराओं के अध्ययन में सहायक सिद्ध होती हैं ।

इनका उद्देश्य लोक-जीवन में समन्वय उत्पन्न करना है। सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की स्थापना करना ही इनका ध्येय होता है। यह समाज में सदाचार और कर्मशीलता उत्पन्न करने की चेष्टा करती हैं । इन्हीं गाथाओं के द्वारा भारत में

आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रतिभा का विकास हुआ। सत्य की विजय और असत्य की पराजय, इनमें स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होती है। सत्य का पक्ष देवी-देवता लेते हैं और अंत में सहायक बन कर उसी की विजय कराते हैं। बीच में, आरम्भ में चाहे कितने ही संघर्ष हों, कठिनाइयों का सामना करना पड़े, अधिकारों के लिये झगड़ा करना पड़े और अत्याचार तथा अन्याय सहना पड़े पर अंत में यथार्थ स्थिति स्पष्ट हो जाती है, अधिकारी को उसका भाग मिलता है, सब में सद्भावना जागृत होती है और इस प्रकार सत्य की विजय दिखाते हुए अंत सुखद होता है, जिसका प्रभाव सुनने वालों, पढ़ने वालों, तथा दर्शकों पर बहुत ही रुचिकर और गृहणीय होता है। साथ ही सत्यपरायण, शुद्ध, सच्चरित्र जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिलती है।

लोकगाथाओं की विशेषताएँ—"इन लोकगाथाओं में जीवन की स्वाभाविक प्रेरणाएँ हैं, जो प्रकृति के प्रशांत वातावरण में निर्झर की भाँति उमड़ पड़ती हैं, हृदय की ईश्वरीय विभूतियाँ अपने सहज-सौंदर्य से दिव्य आलोक विकीर्ण करती हुई अभिव्यक्ति में सहायक हुई हैं। इनमें सहज सहानुभूति है, स्वस्थ संवेदना और प्राकृतिक वातावरण की सहायता से सशक्त वैभव है। इनमें बुद्धिवैभव भले ही न हो तथापि इनमें भावना की ऐसी विभूति है कि वह जीवन के भीषण वनों को तपोवन में परिणत कर देती है।"[1] ये लोकगाथाएँ जातीय-संस्कृति का अनुपम चित्र उपस्थित करती हैं, इनके द्वारा किसी युग-विशेष की समस्त परम्पराएँ अपने स्वाभाविक क्रिया-कलाप में स्पष्ट हो उठती है।

लोकगाथा के काव्य में जीवन के सरल संस्कार प्रचुर मात्रा में वर्तमान रहते हैं। उसमें न तो जीवन की कृत्रिमता रहती है और न मनोभावों का अतिरंजित वर्णन। मनुष्य के जीवन में जो नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ रहती हैं जैसे आत्मीयता, बंधुत्व भावना, प्रेम, घृणा, अनुराग और अपनी प्रबल इच्छा के लिये आत्मोत्सर्ग करने की इच्छा—सब कुछ ही अपने सरल तथा उत्कृष्ट रूप में प्रकट होती हैं। इनमें पुरुष अपने सम्पूर्ण पुरुषत्व से और नारी संपूर्ण नारीत्व से समाज के सामने उपस्थित होती हैं।

लोकगाथाओं की गीतात्मकता ने ही लोक-नाट्य के रूप में अभिनयात्मकता दी है। यह लोक-नाटच, लोकगाथाओं के दृश्यकाव्य का ही रूप है। इन लोकगाथाओं का मौखिक रूप ही अधिक मिलता है, लिखित रूप कम।

१. साहित्य शास्त्र—डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०२

लिखित गाथाओं में कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं मिलता। इनका प्रबंधकार अज्ञात होता है। लोकगाथाओं में स्थानीयता का पुट विद्यमान रहता है। यह काल्पनिक भी होते हैं। इन लोकगाथाओं का संगीत के साथ अभिन्न संबंध रहता है। यह नीति, आचार और उपदेश से रहित नहीं है, इनमें इनका समावेश भी मिलता है तथा चारित्रिक बल की विशिष्टता भी वर्तमान रहती है।

इनमें अभिव्यक्ति की सरलता रहती है। इनका आरम्भ भी बिना प्रस्तावना के हो जाता है तथा उपसंहार एवं भरत वाक्य आदि भी कुछ नहीं होते। गाथा-प्रवाह सर्वांगपूर्ण होता है और राग की गति भी बहुत तीव्र होती है। इनमें उच्च टैकनीक का पूर्णतया अभाव रहता है। यह शिष्य-प्रशिष्य परम्परा से मौखिक रूप में प्रचलित रहती है अतः इस प्रकार गाथा का रूप भी बदलता जाता है। लोकगाथा के रचयिताओं का अज्ञात होना एक मुख्य विशेषता है। उनमें व्यक्तिगत नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिये अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया जाता है जिससे प्रतीत होता है कि उन गाथाकारों में नाम और यश के लिये उच्च महत्वाकांक्षा थी ही नहीं।

लोकगाथाओं का मूल उद्देश्य, उपदेश या नीति की शिक्षा तथा आचार की भावना नहीं होती, ये वास्तव में विषय-प्रधान काव्य होते हैं। प्रसंगवश यह पक्ष भी आ जाते हैं पर वह बहुत स्वाभाविक रूप में नहीं। प्रवृत्ति प्रधानतया उस ओर नहीं रहती। मनोरंजन के साथ ही इनमें कुछ उपदेश व ज्ञान भी निहित रहता है। इनमें भाग्य और कर्म का संघर्ष दिखाया जाता है। इन पर प्रकाश अवश्य पड़ा है, उदाहरण के लिए गोपीचन्द, भरथरी, गुग्गा, आल्हा, पूरनभगत आदि में त्याग, तपस्या, वीरता, प्रेम, मातृ-भक्ति, देश-भक्ति आदि के प्रसंग यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं।

इन लोकगाथाओं में टेक पदों की तथा लघु अंशों की आवृत्ति गायक अपनी सुविधा के लिये करते जाते हैं। इसके कई लाभ हैं। राग की एकस्वरता दूर हो जाती है और श्रोतृमंडल के द्वारा टेक पदों की आवृत्ति होने से राग में नवीन प्राणों का संचार होता है। गायक को अवकाश भी मिल जाता है तथा थकान भी दूर होती है और विश्राम मिल जाता है। आवृत्ति के कारण गीत अधिक प्रभावशाली भी हो जाता है। यह सार्थक व निरर्थक दोनों ही प्रकार की हैं।

लोकगाथाओं में पशु-पक्षियों की कहानियों की भी अधिकता रहती है। प्रायः यह गाथा के पात्र रहते हैं और मनोवांछित व्यवहार करते हैं। यह मानव वाणी में ही बात करते हैं तथा अपने प्रिय की सहायता करते हैं। कभी-कभी यह शाप-

भ्रष्ट मानव, देवता, राक्षस, जादूगर आदि के रूप में भी होते हैं। इनमें अलौकिक अति-प्राकृत तत्वों की बहुलता होती है ।

इनमें गाथा-चक्र होता है। एक कथा के भीतर कुछ प्रधान पात्रों को लेकर उन्हीं के माध्यम से अन्य कथाएँ भी जुड़ी रहती हैं। जो गाथाएँ बहुत लोकप्रिय होती हैं, वह बहुत आसानी से विभिन्न स्थानों और जातियों में दूर-दूर तक फैल जाती हैं। जो गाथा अधिक शक्तिपूर्ण होती है उसमें अनेक गाथाएँ अन्तर्मुक्त हो जाती हैं। इस तरह किसी गाथा की मूल कथा में अनेक उपकथाएँ जुड़ जाती हैं।

यह लगभग सभी जगह प्रचलित होती हैं, केवल कुछ भाषागत भेद ही होता है। इनकी सार्वभौमिकता के मुख्य कारण होते हैं। एक तो व्यापार संबंधी जातियों के कारण लोकगाथाओं का विस्तार होता है और दूसरा, मानव मनोविज्ञान के अनुसार मानव का समान परिस्थितियों में समानरूप से सोचना-विचारना भी कारण है ।

इनमें एक ही व्यक्ति गायक होता है। शेष या तो श्रोता होते हैं या दर्शक। एक ही व्यक्ति के द्वारा लम्बी लय के साथ कथा कहने की प्रणाली है तथा स्थानीय बोली में कही जाती है। इन गीतों में कथा-कथन और वर्णन अधिक होता है।

इन गाथाओं में केन्द्र-बिन्दु के रूप में सत्य का कुछ न कछ अंश अवश्य होता है जिसके चारों ओर मनुष्य की कल्पना-प्रियता और अति-रंजनशील प्रवृत्ति के कारण कुछ ऐसी घटनाएँ जुड़ जाती हैं, जो सत्य भी हो सकती हैं और असत्य भी। गाथाओं को हम इतिहास का प्राथमिक रूप भी कह सकते हैं।

लोकगाथाओं के कथानक प्रायः पौराणिक कथाओं से लिये जाते हैं। पौराणिक-गाथाओं से बालकों तथा अन्य वयस्क सुनने वालों को बहुत प्रेरणा मिलती है ।

कहानी के प्रति सहज औत्सुक्य की भावना रहती है और उसके द्वारा सुनने वाला उसमें सन्निहित नैतिक व आध्यात्मिक अंश को सहज तथा अज्ञात रूप में ग्रहण कर लेता है। पौराणिक-गाथाओं में मनुष्य की सबसे गहरी मान्यताएँ और आध्यात्मिक तथ्य सन्निहित रहते हैं जिनके द्वारा बुद्धि का विकास होता है।

लोकगाथाओं में वर्णित जो प्रेमगाथाएँ होती हैं, उनमें पारलौकिक प्रेम से संबंधित सूफ़ी ढंग की तथा पौराणिक गाथाएँ भी मिलती हैं। यह पौराणिक गाथाएँ कल्पना-प्रसूत तथा लोक प्रचलित हैं, अधिकांशतः तो ऐहिक प्रेम और लौकिक प्रेम से ही संबंधित हैं। इनमें विवाह से पहिले प्रेम का विकास दिखाया जाता है। लौकिक-कथाओं में आध्यात्मिकता का संकेत भी मिलता है। इनमें प्रेम का प्रारंभ गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन, प्रत्यक्ष-दर्शन तथा स्वप्न-दर्शन से होता है तथा इनकी प्राप्ति

के लिए सखा-सखि, पशु-पक्षियों, गंधर्व-किन्नरों, अप्सराओं तथा शिव-पार्वती का सहारा लिया जाता है। प्रेम एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य आनंद-प्राप्ति है। प्रेम ही के द्वारा निःस्वार्थ से निःस्वार्थ भावनाओं और कर्मों को बल और स्थिति प्राप्त होती है। शुद्ध स्नेह कभी भी उन्नति के मार्ग में अवरोधक नहीं होता, वरन् प्रेरणादायक होता है।

लोकगाथाओं में एक विशिष्ट बात यह भी होती है कि मनुष्य के अनुराग-विराग की भावनाओं से मानव संसार भी प्रभावित होता है। प्रायः देखा जाता है कि नायक के कष्टों में पशु-पक्षी भी सहायता करने के लिये तैयार हो जाते हैं।

लोकगाथाओं में कथा-तत्व—लोकगाथाएँ वास्तव में एक प्रकार के कथागीत हैं। यद्यपि इस प्रकार के लोकगीत समय और स्थान के अनुसार परिवर्तित होते हैं लेकिन कुछ मूल-तत्व भी होते हैं जो सार्वभौमिक होते हैं। गाथा में जो कथा होती है, वह लोक-जीवन से संबंधित होती है। गाथाएँ घटना-प्रधान होती हैं, वह व्यक्तिगत नहीं होती। इनमें वार्तालाप भी होता है। जो कथागीत होते हैं, उनमें किसी एक व्यक्ति का सांगोपांग जीवन चित्रित होता है। इनमें कथा-विशेष होती है। सावन, होली तथा विवाह आदि में इस प्रकार के प्रबंध-गीत, कथा-गीत बहुत मात्रा में उपलब्ध हैं। उनमें से केवल कुछ का ही यहाँ पर उल्लेख है, मूल रूप परिशिष्ट में दिया गया है। पुत्र जन्म से संबंधित गीतों में लवकुश का जन्म और जगमोहन, इस प्रदेश के बहुत प्रसिद्ध कथा-गीत हैं।

विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में 'नरसी का भात' प्रसिद्ध है, जिसमें एक बहन की कथा है। उसका सगा भाई मर चुका है। स्वयं नरसी भगवान भात देने आते हैं। यह बहुत ही प्रसिद्ध और प्रचलित गीत है और इसको भात के अवसर पर अवश्य गवाया या गाया जाता है। सुनने तथा गाने वालों पर इसका अमिट भक्ति पूर्ण प्रभाव पड़ता है। श्रोता ईश्वर में दृढ़ आस्था करने लगते हैं।

'मौसी का ताना' नामक गीत भी बहुत प्रमुख है कि जिसमें पूरन की सौतेली माँ का, उस पर मोहित हो जाने का तथा फिर उसको क्रोधित होकर दण्ड दिलवाने का वर्णन मिलता है। इसमें चार बातें मुख्य हैं—

(१) सौतेली माँ का पुत्र पर मोहित होना।
(२) पुत्र का अपने कर्त्तव्य से न डिगना।
(३) पुत्र द्वारा प्रेम अस्वीकृत हो जाने पर सौतेली माँ के मन में प्रतिहिंसा जाग्रत होना।
(४) पिता पर भेद खुलना।

सावन के गीतों में भी कथा-गीतों का उल्लेख मिलता है जिनमें ऐतिहासिक वर्णन भी मिलता है। उदाहरणार्थ—'चन्द्रावल' के गीत, जिसमें मुग़लकालीन, वर्णन मिलता है। किस प्रकार एक स्त्री ने मुग़लों से अपने सतीत्व की रक्षा की, इसमें स्त्री के चरित्र का महत्व दिखाया है। यह हर प्रदेश में किसी न किसी रूप में मिलता है।

'चन्दना' नामक सावन के गीत में एक स्त्री के प्रेम का वर्णन है। इनमें प्रेम और रसिकता तथा प्रेम के सत् के चित्र विशेष हैं। प्रेम ही इन गीतों का प्राण है। यह सावन का बहुत प्रसिद्ध प्रेमकथा-गीत है।

'जाहरमियाँ' भी सावन का गीत है। इसका अनुष्ठान भी होता है। यह कई प्रान्तों में किसी न किसी रूप में मिलता है। कथा लगभग वही रहती है केवल कुछ भेद होता है तथा मुख्य भेद भाषागत ही होता है। इस पर नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव प्रतीत होता है तथा अवतारवाद का भी उल्लेख है। इनके अतिरिक्त गोपीचंद, हंसाराव, मनरा, चन्द्रहास, शिवपार्वती का व्याह आदि वर्णित हैं।

ये प्रबंध-गीत यद्यपि वस्तु और स्वभाव से भिन्न हैं पर फिर भी इनमें एक विशेष प्रकार की सामान्यता होती है। इनकी कथाओं में असाधारण कृत्यों व व्यक्तियों का वर्णन होता है। इनमें स्त्री के पातिव्रत्य की आदि से अंत तक रक्षा की जाती है।

इनमें वर्णित विवाह-पद्धति में बहुधा गंधर्व या स्वयंवर का वर्णन होता है। प्रेम दोनों पक्षों में मिलता है। यह प्रेम रूप, गुण, श्रवण तथा चित्र-दर्शन से होता है इसमें पशु-पक्षियों का विशेष समावेश व सहयोग भी होता है।

खड़ीबोली
का
प्रकीर्ण-साहित्य
६
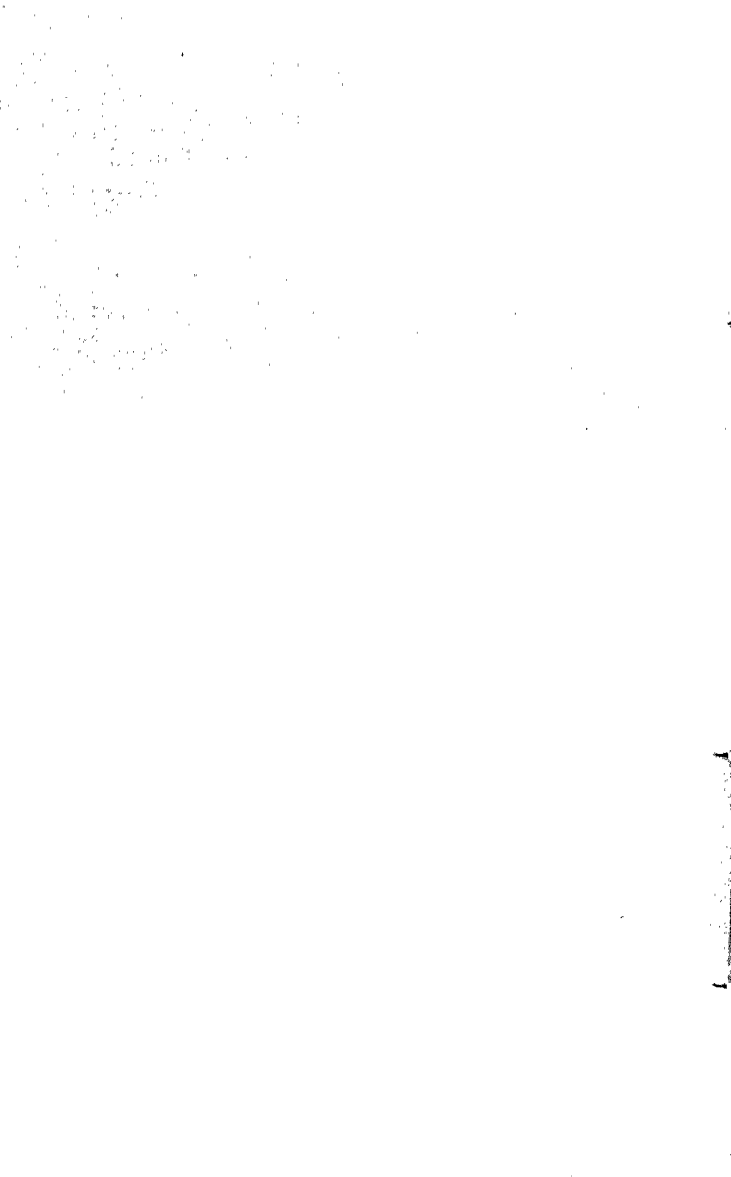
जनजीवन के मौखिक साहित्य में जिस प्रकार गीत और कहानियों आदि का स्थान है उसी प्रकार, वरन् कुछ अंशों में उससे भी अधिक, महत्वपूर्ण स्थान लोकोक्तियों का है। गीत और कहानियाँ तो समय-विशेष पर प्रयुक्त होती हैं पर लोकोक्तियाँ तो जीवन में स्थायी स्थान रखती हैं। वे सदैव ही लोकमानव के अन्तर्मन पर आच्छादित रहती हैं जो समय-समय पर अनायास ही प्रकट हो जाती हैं। ये दैनिक जीवन में इतनी अधिक व्याप्त हैं कि इनके लिये लघु प्रयासों की भी आवश्यकता नहीं होती, स्वतः ही सहज रूप से प्रकट हो जाती हैं। निरन्तर होनेवाले अनुभव, मनुष्य की चेतना के अंग बन जाते हैं और अपना गहन प्रभाव छोड़ते हैं, जो यदा-कदा लोकोक्तियों के रूप में व्यक्त होते रहते हैं। लोकोक्तियों की निधि वृद्धों के पास सुरक्षित रहती है जिसको वह आवश्यकतानुसार छोटों को देते रहते हैं। इनसे उनको एक विशेष प्रकार का मोह होता है, क्योंकि इनमें उनके अनुभावों का सारांश निहित है। इसलिये ये उनके पथ-प्रदर्शन तथा नैतिक संबल के रूप में मस्तिष्कों में निरन्तर कार्य करती रहती है। उनके जीवन में इनकी बहुत उपयोगिता है। उनका सहज विश्वासी हृदय इन पर श्रद्धा तथा विश्वास रख कर अपने जीवन की गुत्थियाँ सुलझाने में इनसे समय-समय पर सहायता लेता रहता है। परोक्ष रूप से ये उनके परामर्शदाता के समान हैं। ये जनजीवन के अर्धचेतन मन में इतनी समाविष्ट रहती हैं कि चेतना में आने के लिए केवल एक प्रेरणा चाहिये और उस प्रेरणा के लिये किसी भी ऐसी अनुरूप घटना की आवश्यकता होती है जिस पर कि वह उक्ति ठीक घटित हो सके। ये तत्काल बुद्धि की परिचायिकाओं और अनुभवों की सूत्रात्मक अभिव्यक्ति तथा जनजीवन की सहज-संगनि हैं।

लोकोक्तियों की परम्परा——लोकोक्तियों का आरम्भ जनजीवन के आदिकाल से ही हुआ है। ये सार्वभौमिक हैं जो देश-काल व बोली की भिन्नता की उपेक्षा कर सभी जगह प्रचलित हैं। जन-जीवन में इनका स्थान नीति-शास्त्र के समान है। इनमें अनर्गल कथन नहीं है। ये जीवन के मूल्यवान् अनुभवों पर आधारित सूक्ष्म उक्ति ही होती हैं। जन-जीवन की ये चिन्मय सम्पत्ति होती है, जिसको वह अपनी प्रिय थाती के समान सदैव सँजोकर रखता है तथा विरासत के रूप में

आनेवाली पीढ़ियों को दे जाता है। इनकी परम्परा अब शिष्ट समाज में भी मिलने लगी और भविष्य में भी निरन्तर बनी रहने की आशा है, क्योंकि यह सहज हृदयों की वास्तविक अनुभूतियों के प्रमाण हैं। इनको जीवन से निकाल देना मानव-जीवन को अनुभवहीन कर देना है । लोकोक्तियों की परम्परा के मुख्य दो ही रूप दृष्टिगत होते हैं—सामाजिक तथा ऐतिहासिक ।

सदैव से ही समाज के वास्तविक चित्रांकन के लिये लोकोक्तियों की सहायता लेनी आवश्यक रही है। समाज के रीति-रिवाजों, धार्मिक, नैतिक-परम्पराओं तथा जाति संबंधी पारस्परिक सम्बन्धों अर्थात् जीवन तथा समाज से संबंधित सभी बातों का उल्लेख इनमें सरलता से मिल सकता है। साहित्य समाज का दर्पण है, इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि लोक-साहित्य में लोकोक्तियाँ ही समाज का दर्पण हैं, जिनमें हर काल विशेष का चित्रण समय-समय पर होता रहता है।

ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार हम देखते हैं कि पौराणिक ग्रन्थों, प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों तथा संस्कृत में इन सूक्तियों का समय-समय पर बहुत उपयोगी ढंग से प्रयोग हुआ है। हर काल में सदैव ही इनसे पथ-प्रदर्शन हुआ है।

परिभाषाएँ—लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ लोक की उक्ति है । इससे इसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है, पर आज यह शब्द 'कहावत' व अंग्रेजी 'प्रोवर्ब' के रूप में ही रूढ़ हो गया है। जनजीवन के द्वारा अनुभव के आधार पर बनायी गई धारणाओं को संक्षिप्त शब्दों में जब किसी उक्ति के रूप में कहा जाता है तो वह लोकोक्ति कहलाती है। लोकोक्तियों की अनेकों परिभाषाएँ हैं—यहाँ पर हम केवल एक दो ही देंगे ।

"लोकोक्ति, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पहले बोलचाल की भाषा में बनती है, रूढ़ होती है, फिर वही अनेक बार अपनी लोकप्रियता के कारण साहित्य की भाषा में भी अपना आसन जमा लेती है। किन्तु साहित्य में आते-आते लोकोक्ति को बहुत-सा समय लग जाता है[१] ।"

"लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य-रश्मि नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है । उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटनेवाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियाँ प्रकृति के स्फुल्लिंग (रेडियो एक्टिव) तत्वों की भाँति

---

१. राजस्थानी कहावतें-एक अध्ययन : कन्हैयालाल सहल, पृ० ४८

अपनी प्रखर किरणों को चारों ओर फैलाती रहती हैं। उनसे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। लोकोक्ति का आश्रय पाकर मनुष्य की तर्कबुद्धि शताब्दियों से संचित ज्ञान से आश्वस्त-सी बन जाती है और उसे अँधेरे में भी उजाला दिखायी देने लगता है, वह अपना कर्त्तव्य निश्चित करने में तुरन्त समर्थ बन जाता है[1]।"

"लोकोक्तियाँ जन-समूह के बिखरे हुए रत्न हैं। किसने ये रत्न बिखेरे, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु बहुत संभव है कि कहावतों का प्रथम उत्स मनुष्य के मन में तभी उत्सारित हुआ होगा, जब उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति अपने सरस वेग के साथ सहज भाषा में निःसृत हुई होगी। एकान्त में बैठ कर कहावतों का निर्माण नहीं किया गया किन्तु जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताओं ने कहावतों को जन्म दिया है। किताबों की आँखों से देखने वाले निरे बुद्धि विलासी व्यक्ति कहावतों के निर्माता नहीं थे, कहावतों के रचयिता जीवन के द्रष्टा थे[2]।" किसी ने ठीक ही कहा है कि लोकोक्तियों में ज्ञान, नीति और मनोरंजन की त्रिवेणी बहती है, वे मानव-मनोविज्ञान के घनीभूत रत्न हैं।

वास्तव में लोकोक्तियाँ या कहावतें, शताब्दियों के अनुभव द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण के बाद बने स्थिर सिद्धान्त हैं। इनमें बहुत अमूल्य ज्ञान रहता है जो बहुत गहराई तक मनुष्य की चेतना में मिल जाता है। इस ज्ञान को व्यक्त करने का माध्यम ये लोकोक्तियाँ ही होती हैं।

लोकोक्तियाँ किसी एक ही व्यक्ति की उक्ति नहीं होतीं, यह तो भिन्न-भिन्न अवसर पर कही गई लोगों की अनुभवजन्य उक्तियाँ हैं। लोकोक्तियाँ जनजीवन के बहुत निकट हैं और उनके जीवन का अभिन्न अंग हैं। इनमें साधारण घरेलू जीवन की वस्तुओं के माध्यम से उनके सादृश्य एवं तुलना आदि के द्वारा कितनी ही सूक्ष्म अनुभूतियों को अंकित किया गया है।

लोकोक्तियों में स्वभावतः समास-प्रवृत्ति प्रधान है। इनके रचयिताओं ने गागर में सागर भरने का अथक प्रयास किया है। यह यद्यपि देखने में छोटी होती हैं, पर उनमें विशाल भावराशि सिमटी रहती है।

लोकोक्तियाँ गद्य और पद्य दोनों ही में उपलब्ध हैं। इनकी भाषा बहुत सरल होती है। इनकी सरलता की सबलता ही मानव हृदय पर अमिट प्रभाव डालती है।

---

१. पृथ्वी पुत्र : वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १११
२. राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन : कन्हैयालाल सहल, पृ० ३८

खड़ीबोली की लोकोक्तियाँ—अभी तक हमने लोकोक्तियों का सामान्य परिचय पाया तथा उनकी सामान्य प्रकृति को पहचाना। अब हम अपने प्रदेश की लोकोक्तियों पर दृष्टिपात करेंगे। ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि अन्य प्रादेशिक बोलियों के समान ही खड़ीबोली में भी अपने प्रदेश की प्रायः समान भाव वाली होने पर भी, कुछ भिन्न, स्थानीय लोकोक्तियाँ मिलती हैं। इनमें देश, काल व बोलीगत अंतर अवश्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, परन्तु जिस प्रकार एक ही प्रकार के कपड़े की साड़ियों को भिन्न-भिन्न रंग में रँगने से भी उनके मूल कपड़े में कोई अन्तर नहीं आता, उसी प्रकार उनमें अन्तर्निहित अर्थ व भाव प्रायः समान ही रहते हैं। भौगोलिक प्रभावों के कारण कुछ चारित्रिक व स्थानीय विशेषताएँ मिलती हैं, उनका उल्लेख भिन्न-भिन्न प्रदेश की लोकोक्तियों में अपनी विशिष्ट बोली में मिलता है। हर प्रान्त का अपनापन इनमें दृष्टिगत होता है।

खड़ीबोली लोकोक्तियों के संग्रह में कुछ विशेष और भिन्न अनुभव हुए कि वे एक स्थान व एक ही व्यक्ति से उपलब्ध नहीं की जा सकतीं। उनका अवसर-विशेष होता है, वह किसी व्यवहार या घटना को देख कर याद आ जाती हैं जो उसी से संबंधित होनी आवश्यक है। कहावत का स्वतंत्र महत्व नहीं होता, उसका जन्म घटनात्मक होता है और उसका प्रयोग भी घटना के अनुसार ही किया जाता है। इसी कारण संग्रह में कठिनाइयाँ भी हुईं। गीतों के समान इनका कोई भी समय, अवसर-विशेष निश्चित नहीं होता और स्त्रियाँ या पुरुष बिना किसी प्रसंग या घटना के केवल पूछने से ही, लोकोक्तियाँ बताने में असमर्थ हो जाते हैं। कहावतों का संग्रह करने के लिये मनुष्य को हर समय सतर्क रहने की आवश्यकता है। मैं अपनी दादी या नानी से बातें करते समय प्रायः नोटबुक साथ रखती थी और उनकी कही हुई बात तुरन्त उनसे दोहराने को कहती और लिख लेती। वह प्रायः मेरी इस क्रिया पर हँसती थीं कि इसके सामने तो बोलना भी कठिन है, यह हर बात लिख लेती है, इसे भी क्या किताब में देगी? इस प्रकार कानों को सतर्क करने पर ही मैं बहुत कठिनाई से ये कहावतें संग्रह कर सकी। मेरा स्त्री-समाज से ही अधिक सम्पर्क रहा, अतः मेरे संग्रह में उन्हीं के साहित्य की अधिकता रही। परन्तु पुरुष-समाज में प्रचलित कहावतों का भी नितान्त अभाव नहीं। कृषि-संबंधी कहावतें भी कम ही संग्रह कर सकी। पहले लोकोक्तियों का संग्रह केवल संग्रह के लिये ही किया, बाद में उसी के आधार पर वर्गीकरण करने की चेष्टा की है। वर्गीकरण की अपनी ही कठिनाइयाँ हैं पर फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए यह नितान्त आवश्यक भी है।

लोकोक्तियों से जीवन का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहता है। इनके विषय

बहु-पक्षीय होते हैं। एक ही पक्ष की व्याख्या कर ये मौन नहीं हो सकती। इनमें प्रदेश-विशेष के लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन, स्वास्थ्य, घरेलू-चिकित्सा धार्मिक विचारों व अन्य विश्वासों के संबंध में पर्याप्त तथ्य मिल जाते हैं। कुछ स्थानीय व ऐतिहासिक बातों का भी उल्लेख मिलता है, जिसका अपना स्वतंत्र स्थान होता है। कहावतों का क्षेत्र बहुत व्यापक है और उनमें मानव-जीवन का एक विशिष्ट रूप देखने को मिलता है। इनके द्वारा हम मानव-हृदय को भली प्रकार देख सकते हैं। यह विचारों के कोण हैं। इनमें वर्ण्य-विषय की दृष्टि से हर विषय मिल जाता है। धर्म व जीवन-दर्शन से संबंध रखनेवाली, ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने वाली, शकुन संबंधी, जातिगत चेतना से संबंधित, भाग्य संबंधी, कृषि-विषयक, वर्षा संबंधी, पेड़-पौधों के संबंध में, खेल तथा आशीर्वाद आदि की कहावतें भी मिलती हैं।

वास्तव में लोकोक्तियाँ बहुत अधिक निष्कर्षों का परिणाम होती हैं। इनमें जीवन की व्यावहारिक धर्म-संबंधी सभी बातों का बुद्धिमानी से उल्लेख मिलता है। इनके द्वारा मानव जीवन की हर भूल का परिष्कार संभव है। जन-साधारण की आत्मा की ध्वनि आप इनमें सरलता से सुन सकते हैं तथा उनके अन्तर्निहित रहस्यों का भी पता लग सकता है। लोकोक्तियों में पापों के लिए चेतावनी मिलती है तो साथ ही अन्य व्यावहारिक लोगों के लिये, भाग्योदय के लिये प्रलोभन भी मिलते हैं। नैतिक आस्था के प्रमाण तो पग-पग पर स्वयं ही मुखरित होते रहते हैं, जो बौद्धिक और नैतिक विरासत के रूप में लोक-मानव को सहज प्राप्य है। इनमें ज्ञान की विशाल निधि रहती है। सामाजिक जीवन के विविध-पक्षों का प्रतिबिम्ब मिलता है एवं प्रचलित अंधविश्वासों से परिचय होता है। नारी का समाज में क्या स्थान है, उसके प्रति लोगों की क्या धारणाएँ हैं, इसका स्पष्ट प्रमाण अगर चाहें तो किसी भी समाज की लोकोक्तियों के अध्ययन से मिल सकता है। इनके अन्तर्गत मानवीय जीवन का तथा व्यवहार संबंधी सभी विषयों पर, लोक-धारणाओं का पता चलता है। मानव का मानसिक, सामाजिक, नैतिक, व्यावहारिक तथा प्राकृतिक कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता नहीं रहा है। जीवन का हर दृष्टि से सूक्ष्म और गहन अध्ययन मिलता है। लोकोक्तियाँ मानव-जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण, विश्वास, त्रुटियों और अनुभवजन्य धारणाओं का परिणाम हैं, इसी से उनमें सत्य का अंश अवश्य उपलब्ध होता है।

वर्गीकरण—लोकोक्तियों का उचित वर्गीकरण किन आधारों पर किया जाय, यह वास्तव में एक जटिल प्रश्न है, क्योंकि कहावतों के कहने व समझने में भी मानवीय दृष्टिकोणों की भिन्नता, भेद उत्पन्न कर देती है। फिर कहावतों के

विषय विविध होते हैं। सर्वप्रथम हम कुछ विद्वानों द्वारा किये गये वर्गीकरण का उल्लेख करेंगे।

डॉ० महादेव साहा के द्वारा किया गया वैज्ञानिक वर्गीकरण उल्लेखनीय है[1] जो इस प्रकार है:—

(१) विदेशी प्रभावों का अध्ययन (२) भाषा-शास्त्र संबंधी लोकोक्तियाँ
(३) नृ-विज्ञान संबंधी (४) राजनीति-कानून संबंधी
(५) भौतिक विषय संबंधी (६) ऐतिहासिक
(७) इन्द्रिय विषयक (८) व्यंग्यपूर्ण

यह वर्गीकरण यद्यपि अन्य विषयगत वर्गीकरणों की अपेक्षा अधिक व्यापक है, लेकिन मैंने इसको आधार नहीं माना, कारण मेरे पास इस वर्गीकरण के अनुसार अपर्याप्त सामग्री है और न ही मेरा इतना व्यापक अध्ययन ही है।

'Behar Proverbs' के सम्पादक ने कहावतों को निम्नलिखित छः वर्गों में विभक्त किया है[2]:—

(१) मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियों तथा अवगुणों का संबंध
(२) सांसारिक ज्ञान-विषयक (३) सामाजिक और नैतिक
(४) जातियों और विशेषताओं से सम्बद्ध (५) कृषि और ऋतुओं संबंधी
(६) पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से संबंधित

रूप और वर्ण्य-विषय दोनों को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का अध्ययन किया। रूपात्मक अध्ययन करते समय मैंने तुक छन्द, अलंकार, लौकिक अध्याहार, संवाद, संख्या, व्यक्ति आदि उन सभी तत्वों पर विचार किया है, जिन्होंने राजस्थानी कहावतों को किसी न किसी अंश से प्रभावित किया है।

(१) ऐतिहासिक कहावतें (२) स्थान संबंधी कहावतें
(३) राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र—
क—जाति-संबंधी कहावतें ख—नारी-संबंधी कहावतें
(४) शिक्षा, ज्ञान और साहित्य—
क—शिक्षा संबंधी कहावतें ख—मनोवैज्ञानिक कहावतें
ग—राजस्थानी साहित्य में कहावतें
(५) धर्म और जीवन दर्शन—

---

१. Oriental Proverbs डॉ० महादेव साहा, अनुवादक-उदयनारायण तिवारी
२. राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन—कन्हैयालाल सहल, पृ० ५८

क—धर्म और ईश्वर-विषयक कहावतें ख—शकुन-संबंधी कहावतें
ग—लोक-विश्वास संबंधी कहावतें घ—जीवन-दर्शन संबंधी कहावतें
(६) कृषि-संबंधी कहावतें—(७) वर्षा-संबंधी कहावतें—
(८) प्रकीर्ण कहावतें[१]

खड़ीबोली लोकोक्तियों का वर्गीकरण—यद्यपि वर्गीकरण के लिये मैंने लोकोक्तियों संबंधी अनेक विद्वानों की पुस्तकों का अध्ययन किया, पर किसी का भी वर्गीकरण पूर्णरूपेण ग्राह्य नहीं हो सका। अतः वर्गीकरण अपने संग्रह के आधार पर ही किया है। डॉ० सहल का वर्गीकरण बहुत समीचीन है। मैं इसका आधार अवश्य ले रही हूँ लेकिन अपने ऐतिहासिक कहावतों को एक भिन्न श्रेणी में रखा है। आपके पास, इससे सम्बद्ध सामग्री थी जैसा कि अपनी पुस्तक में उद्धरण दिये हैं, पर खड़ीबोली लोकोक्तियों में यह मुझे बहुत कम उपलब्ध हो सकी हैं, अतः इनको भिन्न नहीं रखा। मैंने सामाजिक व ऐतिहासिक, एक ही में सम्मिलित कर लिया है, जिसमें सामाजिक सामग्री पर्याप्त है पर ऐतिहासिक कम हैं। इनका वर्गीकरण निम्नलिखित करने की चेष्टा की है इसमें त्रुटियाँ हैं पर अपने संकलन के अनुसार ही यह किया है—

(१) सामाजिक कहावतें
क—जाति-संबंधी ख—नारी-संबंधी
ग—ऐतिहासिक घ—सामाजिक व्यवहार-ज्ञान संबंधी
(२) भाग्य-संबंधी कहावतें (३) खान-पान तथा स्वास्थ्य संबंधी
(४) लोक-विश्वास (५) मनोवैज्ञानिक
(६) कथा संबंधी (७) भाषाविज्ञान संबंधी
(८) प्रकीर्ण

अब हम हर वर्ग के विस्तार में जायेंगे।

सामाजिक कहावतें—समाज जिस तथ्य को स्वीकार करता है वही कहावत के रूप में प्रचलित हो पाता है। इसलिये किसी भी प्रदेश के सामाजिक जीवन से परिचय प्राप्त करने के लिये उस प्रदेश की सामाजिक स्थिति का अध्ययन हमें अभीष्ट है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह आदि के संबंध में उस समाज के क्या विचार हैं, सामाजिक संस्थाएँ वहाँ किस रूप में विकसित हैं, मनुष्यों के जीवनादर्श किन सिद्धान्तों पर अवलंबित हैं, कौन से व्यवसायों को वह समाज में आदर की दृष्टि से देखता है और किन्हें वह हेय समझता है, इन सब

---

१. राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन—कन्हैयालाल सहल, पृ० ५८-५९

की जानकारी जितनी कहावतों के द्वारा हमें प्राप्त हो सकती है उतनी अन्य किसी साधन द्वारा नहीं। सामाजिक कहावतों का वर्ग सबसे व्यापक है। इसमें जाति-संबंधी, नारी-संबंधी, ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा सामाजिक-व्यवहार ज्ञान संबंधी कहावतें आती हैं।

जाति-संबंधी कहावतें—हर जाति की अपनी चरित्रगत विशेषता होती है जिनका उल्लेख कहावतों में प्रशंसा, व्यंग्य आदि के रूप में समय-समय पर किया जाता है। इनसे विभिन्न जातियों की मनोवृत्तियों का पता चलता है, जो इस प्रकार है:—

जाट—खड़ीबोली प्रदेश की बहुत ही वीर, उत्पाती तथा शक्तिशाली जाति है। यह बहुत साहसी और पराक्रमी होते हैं। इनके संबंध में कहावतें प्रसिद्ध हैं— 'जाट मर्‌या तब जाणिये जब बरसोड्ढी हो लेय'—यह कहावत भी उनके पौरुष का प्रमाण है। इसी प्रकार जाट-खोपड़ी भी अपनी विचित्रता के लिए प्रसिद्ध है। जाट की 'तुरत-बुद्धि' भी प्रशंसनीय होती है:—

अणपढ़ जाट पढ्या बरोब्बर,
पढ्या जाट-खुदा बरोब्बर।

जाट कार्य-कुशलता के लिये युक्तियाँ काम में लाने में प्रसिद्ध है। इसी से इससे संबंधित मुहावरा 'जटविद्या' भी प्रसिद्ध है। यह कृषि संबंधी कामों में भी बहुत अधिक चतुर होते हैं तथा अशिक्षित व परिश्रमशील होते हैं।

जो आदमी जिस तरह का व्यापार करता है, जिस प्रकार के वातावरण में रहता है उसका ध्यान उसी ओर जाता है। जाट ने गंगा-स्नान किया तो पूछ बैठा— इसको खुदवाया किसने ? 'जाट गंगाजी न्हायो—कह खुदाई कुण है' ? गंगा की पवित्रता की ओर उसका ध्यान नहीं गया, उसका ध्यान खुदाई की ओर ही गया। जाट दूध बेचने को पुत्र बेचने के बराबर समझता है।

गूजर—खड़ीबोली प्रदेश की प्रसिद्ध जाति जो जाट ही के समान प्रसिद्ध, कृषक तथा परिश्रमी जाति है और बलवान भी होती है। इस प्रदेश में इनकी प्रधानता रही है। यह वाह्य रूप से झगड़ालू व अक्खड़ प्रकृति के प्रतीत होते हैं जिसके कारण सभी अन्य जातियाँ इनका लोहा मानती हैं पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह कठोर व निर्दयी होते हैं। इनका चरित्र सिंह के समान होता है, जो अकारण ही नहीं उलझता पर अवसर पड़ने पर पीछे भी नहीं रहता। जाट, गूजर जातियाँ सहोदरा हैं और उनका प्रयोग भी समानता के रूप में होता है जिस प्रकार ब्राह्मण-बनिए का। यद्यपि इनमें अंतर होता है पर फिर भी समानता होती है। कहावत प्रसिद्ध है—

अहीर, गूजर, कंजर, बिल्ली, बंदर, कुत्ते,
ये छऊ ना होते तो बिना खिड़कियाँ सोते।

ब्राह्मण—ब्राह्मणों में कुछ विशिष्टता भी है तथा अनेक उपजातियाँ हैं जैसे तगे ब्राह्मण आदि जो पूर्वीय जिलों में नहीं मिलते। ब्राह्मण स्वभाव ही से अहंवादी होते हैं, उनकी अपनी स्वभावगत व चरित्रगत विशेषता होती है। वे अपने को बहुत चरित्रवान्, विद्वान् तथा पवित्र समझते हैं। समाज में अपना एक विशिष्ट सम्मान व स्थान आज के युग में भी बनाये रखना चाहते हैं। यह ईर्ष्यालु तथा स्वार्थी प्रवृत्ति के होते हैं जिसका अभ्यास उनके सामाजिक आचार-विचारों से मिलता है। ये अपनी निश्चित सीमाएँ निर्धारित रखते हैं और प्रायः अपनी ही जाति के विरोधी प्रमाणित होते हैं। ये कहावतें इस सत्य को पुष्ट करती हैं :—

'बाम्भन कुत्ता हाथी, ये न जात के साथी'

तथा—

'तीन कनौजिये तेरह चूल्हे'

यह उनके आपसी मतभेद को ही प्रकट करता है। ब्राह्मणों का मिष्ठान्न खाने के प्रति विशेष मोह होता है जिसके लिए वह 'पेटू' कुप्रसिद्ध हैं:—

आये कनागत फूले काँस
बाम्भन उछले नौ नौ बाँस
गये कनागत टूटी आस,
बाम्भन रोवै चूल्हे पास।

ब्राह्मणों में मूर्खता, भिक्षा-वृत्ति, मिष्ठान्नप्रियता तथा दक्षिणा-लिप्सा आदि ही मुखरित हुई है।

बनिया—बनिया व्यापारी जाति है और व्यापार-जगत् तथा समाज में विशिष्ट स्थान रखती है। यह जीवन में धन ही को विशेष महत्व देते हैं। इसी का उपार्जन करने में तथा एकत्र करने में जीवन का ध्येय समझते हैं। व्यापार के समय वह मित्रों तथा संबंधियों का भी लिहाज़ नहीं करते। उन्हें भी आड़े हाथ ही लेते हैं। वह सभी को एक ही तराजू पर तोलते हैं। कहावत है—

'जाण मारे बाणिया, पहचान मारे चोर'

यह स्वभाव से ही संग्रहशील होते हैं, इसी से इनको 'कंजूस, मक्खीचूस' विशेषण से विभूषित किया गया है। बनियों में भी बहुत-सी उपजातियाँ होती हैं परन्तु सबसे उच्च अग्रवाल बनिये ही समझे जाते हैं और उनमें भी गर्ग गोत्र

वाले। इसकी पुष्टि लोकोक्तियों में भी मिलती है—**'गर्ग गोयले, बाकी सब कोयले'**।

बनिये स्वभाव से ही स्वार्थी होते हैं तथा धनलोलुप। उनके अधिकतर संबंध इसी नाते होते हैं तथा उनके सोचने का मापदंड भी यही होता है—

'बनिये का बेट्टा कुछ सोच कर ही गिरेगा'

बनियों की लिखाई बहुत घसीट और अस्पष्ट होती है। उसके संबंध में एक राजस्थानी कहावत है—**'लिखे, बणिया पढ़े करतार'**—अर्थात् बनिया जिस घसीट लिपि में लिखता है उसे भगवान् ही पढ़ सकता है।

कायस्थ—कायस्थ वाक्चातुर्य, व्यावहारिक ज्ञान के लिये तथा चालाकी, लम्पटता के लिये प्रसिद्ध हैं तथा इनमें जातिगत पक्षपात बहुत होता है। यह अपेक्षाकृत स्वार्थी भी अधिक प्रसिद्ध हैं—

'कायस्त कौवा कूबरा, ये तीनों मिल खायें।'

कायस्थ विश्वासपात्र जाति नहीं है और यह स्वार्थ ही के साथी होते हैं—

कायस्त मीत ना कीजिए, सुन कंथा नादान,
राजी हो तो धन हरे, बैरी हो तो प्रान।

कायस्थ बुद्धिमान होते हैं, विशेषकर उनमें व्यावहारिक-बुद्धि बहुत मिलती है। इन पर लक्ष्मी जी से अधिक सरस्वती जी की कृपा रहती है। पर वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और तत्काल बुद्धि के लिये प्रसिद्ध हैं। 'कायस्थ खोपड़ी' मुहावरा भी इसी से प्रसिद्ध हो गया है जो इसी बात की पुष्टि करता है। इनकी सूझ दूर की होती है।

नाई—नाई जाति अपनी चालाकी के लिए प्रसिद्ध है—

'जानवरों में कौवा, आदमियों में नौवा'

नारी-संबंधी—लोकोक्तियों के अध्ययन से हमें स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वहाँ के समाज में नारी का क्या स्थान है? यही वहाँ की सभ्यता व संस्कृति का द्योतक है। स्त्री-समाज में अभी भी पुस्तकीय ज्ञान का अभाव है और उनका आदर घरेलू काम में निपुण होने पर ही होता है। स्त्री का सबसे बड़ा सौभाग्य उसका पुत्रवती होना है। मातृत्व पद का बहुत विशिष्ट महत्व है और उस स्थिति में पहुँच कर उसके साधारण दोष भी उपेक्षित हो जाते हैं—

'दूध की गइया और पूत की मैय्या की लात भी सही जात है'

या,

'दूध की गइया और पूत की मइया सब को प्यारी लगे'

पुत्रवती नारी को तो सौभाग्यवती कहा ही जाता है, ज्येष्ठी कन्या को जन्म देने वाली नारी को भी अच्छा माना जाता है—

'वो ही नार सुलच्छना,
जिसने जाई पहले लच्छमी'

अपनी माँ की महत्ता बहुत अधिक है। उसके स्नेह की तुलना किसी से नहीं की जा सकती है और इसी से उसकी ताडणा भी शुभचिन्तक होने के नाते सराहनीय ही होती है जब कि अन्य किसी को भी असहनीय हो उठती है—

'अपनी माँ मारनी फिर भी वुच्या धारणी'

अथवा,

'अपनी माँ मार कर भी छांमें डालेगी'

संसार में माँ का ही एक ऐसा संबंध है जो सर्वस्व अर्पण कर सकता है, इसकी पुष्टि लोकोक्तियों में स्थान-स्थान पर मिल जाती है—

'माँ पिस्सनहारी भी पाल लेगी, बाप लखपती भी नीं पाल सकता'
'भादों के बरसे और माता के परसे दुनिया अघावै'

अन्य सांसारिक सम्बन्धों के विषय में जो उल्लेख मिलता है, उनमें सर्वोपरि माँ का ही सम्बन्ध है—

'आस का बाप, निरास की माँ
होते की बहन, अनहोते का मित्र'

तथा,

'माँ टोट्टे की, बाप नफ़े का
बहन हुए की, यार बखत का'

माँ और बेटी का साहचर्य चौबीसों घंटों का होने के कारण बहुत निकटता व अभिन्नता होती है। माँ को निरन्तर बेटी से अपने सभी कार्यों में सहायता मिलती रहती है परन्तु बेटी पराया धन होती है, विवाह के पश्चात् वह अपने घर चली जाती है और माँ को वृद्धावस्था में स्वयं ही सब गृहस्थी का भार उठाना पड़ता है। इसी से कहावत भी है—

'धी की माँ राणी, बुढ्यान्त भरेगी पानी'

स्त्री त्यागमयी होती है, वह निस्वार्थ निश्छल स्नेह करती है। इसी कारण कठिन समय में वही काम आती है। स्त्री का सबसे बड़ा सौभाग्य है अपने पति की प्रिया होना—इसके लिए लोक-समाज में पहचान भी है—

'जिसको पिया चाहें वही सुहागन'

तथा,

'सास प्यारी की मेंहदी,
पिया प्यारी का पान'

अथवा,

'जो साजन की प्यारी वही सुहागन'

यह नारी के उज्ज्वल पक्ष के संबंध में संकेत था, अब उसके कृष्ण पक्ष के संबंध में वर्णन करेंगे।-नारी, सास और सपत्नी के रूप में पुरुष हो जाती है तथा कुप्रसिद्ध है। सपत्नी के संबंध में कहते हैं—

'काँटा बुरा करील का और बदली का घाम
सौत बुरी है चून की और साझे का काम।'

'सास' का स्वभाव बहुओं के कार्य में हस्तक्षेप करने का होता है, इसी से वह झगड़ालू व बदनाम होती हैं। वृद्धावस्था में वह बेटे पर आश्रित होती है जब कि ससुर प्रायः पोषण करने वाला होता है तथा घरेलू बातों से प्रायः उदासीन रहता है। इसी से सास व ससुर के संबंध में बनी हुई धारणाएँ इस प्रकार हैं:—

'रंडवा ससुर सब को भावै
रांड सास किसी को ना भावै'

तथा,

'सास मरी, बहू को ठौर'

सास अपनी जीवित अवस्था में बहू को घर में अधिकार नहीं देती। इसी कारण उनका संघर्ष होता है और शनै-शनैः उसमें सास से पृथक् रहने की भावना जन्म ले लेती है।

'धी रूस्सै सौरे जाने को,
बहू रूस्सै न्यारी होने को'

शक्तिशाली पति की पत्नी सब के लिए पूज्य होती है। शक्तिहीन तथा कमज़ोर की पत्नी को दूसरे लोगों का हर प्रकार का व्यवहार सहन करना पड़ता है जिसका आभास निम्नलिखित उक्ति में मिलता है। कहा जाता है कि स्त्री को अनुशासन में ही रखना ठीक है, नहीं तो पुरुष-समाज उसको विपथगामी बनाता है। इसी कुप्रवृत्तियों के कारण उनको सुरक्षित रखा जाता है—

'ठाड्डे की जोरू सब की दाद्दी
अर माड़े की जोरू सब की भाभी'

इसी प्रकार अन्य निकट संबंधों के ऊपर भी अनेकों लोकोक्तियाँ उपलब्ध हैं जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—

'बहन के घर भाई कुत्ता
ससुर घर जमाई कुत्ता
सब कुत्तों का सरदार
जो बाप रहे धी के बार'

तथा,

'सीखैं री सीख पड़ोस्सिन की,
घर में सीख जिठाणी की'
'दूर जमइया फूल बराबर, शहर जमइया आधा
घर जमइया गधा बराबर, मन आया जब लाद्दा'

ऐतिहासिक कहावतें—कुछ कहावतें ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण मिलती हैं, जिनके द्वारा इतिहास पर या क्षेत्रीय बात पर ध्यान जाता है। कहावतों तथा कहानियों में राजा भोज का उल्लेख मिलता है—

'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली'

तथा,

'राजा भोज भरम के भूले
घर घर बार मटियाले चूल्हे'

सामाजिक व्यवहार-ज्ञान संबंधी कहावतें—सामाजिक कहानियों के अन्तर्गत ही सामाजिक व्यवहार-ज्ञान संबंधी अनेक कहावतें मिलती हैं जिनसे इस प्रदेश-विशेष के अन्तर का आभास होता है तथा यहाँ की संस्कृति का आभास मिलता है। परम्परागत विचारों व विश्वासों के अनुसार जो व्यवहार हम करते हैं वही रीति-रिवाज है। नीति-शास्त्र भी स्व-निर्मित पाप-पुण्य का मापदंड है। क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए, इस संबंध में भी अनेकों लोकोक्तियाँ मिलती हैं। नीति-संबंधी लोकोक्तियों का पथ-प्रदर्शन के लिये बहुत महत्व है। इनके द्वारा उचित-अनुचित का भान होता है। लोकसमाज में जनता के आचार-विचार इनके द्वारा अनुशासित मिलते हैं। इनके द्वारा ही इस प्रदेश की विशेषता का आभास मिलता है। खड़ीबोली प्रदेश के निवासियों का यह स्वनिर्मित नीति-शास्त्र है, जिससे उनका समय-समय पर पथ-प्रदर्शन होता है। जिनमें से कुछ का उल्लेख हम यहाँ पर कर रहे हैं—

'बड़े का कहा और आँवले का खाया पीछे से मीठा लगता है'
'दूरों फूल सुहावने, धोरे आये कुम्हलाये'

'थोड़ा खाया अंग लगाया, बौहता खाया अंग बधाया'
'त्यों-नारी का काम ना करें, अर फूहड़ के लौंडे को न खिलायें'
'काम प्यारा है चाम नहीं'
'सीखे री सीख पड़ोसिन की, घर में सीख जिठाणी की'
'गुरु कीजै जान, पानी पीजै छान'
'ना अंधे को नौत्ते, अर ना दो जनै आवैं'
'मुहब्बत दूर की, खटाई अमचूर की'
'धरा ढंका तो भूल जा, लिखा ना भूला जा'
'एक दिन पाहुना, दूसरे दिन अनभावना'
'टूटे को जोड़ना और रूठे को मनाना आसान नहीं'
'थोड़े मारा रोवै और ज्यादा मारा सोवै'
'सुख दुख सब में धूप-छांव की तरह आवै है'
'धरम की कमाई की मिस्सी कुस्सी भी पूरी पकवान से बढ़ कर है'
'धरम की जड़ सदा हरी'
'नाम बिगोवा बच्चा भगवान दुसमन को भी ना दे'
'रांड से परै, कोसना क्या'
'घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध'
'मारे और रोवन ना दे'
'बंदा जोड़े पल्ली-पल्ली, और मेहमान उड़ावें कुप्पी'
'जाट की बेट्टी, बाब्बा जी नाम'
'खात्ते पीत्ते नियत बुरी'
'जो पहले बोल्ले सो कुंडा खोल्ले'
'बेटी की माँ का, पेट और घर दोन्नों खाली'
'हाक्कम के अगाड़ी और घोड़ी के पिछाड़ी कभी न रहे'
'देज्जू की जोड़ी, और साहब की घोड़ी आग्गे आग्गे ही कुद्दे'
'बटेऊ का आस्सन देवता बराबर'
'ब्याह जोड़ी संजोग की, बिहानी घड़ी बलवान'
'बैर और प्रीति बराबर वालों में ही होवे है'
'भगवान ने मुंह एक दिया है कान दो'
'मौत न घड़ी भर पहले आती है न पीछे'
'राजा, जोगी, अग्नि, इनकी औंधी रीत
डरते रहिये परस राम, थोड़ी पालें प्रीत'

'लाचारी पत्थर से भी भारी'
'हाट बाट में एक से दो भले'
'मन मिले का मेला, नहिं सबसे भला अकेला'
'जोरू जोर की, नहीं तो और की'
'साज्जा, गू का खाज्जा'
'कमाऊ आवै डरता, निखट्टू आवै लड़ता'
'सोना पहरे ढक के चलिये, पूत जनेगी नीके चलिये'
'राजा भोज भरम के भूले, घर घर बार मटियाल्ले चूल्हे'
'दूध की गइया और पूत की मइया सबको प्यारी लगै'
'दुधारी गाय की दो लात भी सही जाती है'
'सूत जैसी फेट्टी, माय जैसी बेट्टी'
'अपनी अक्कल और दूसरे का धन सब को दुगना दिखाई दे'
'एक इलाज सौ परहेज'
'एक अनार सौ बीमार'
'जबान शीरी और आलमगीरी'
'गरम खावै आप कू, नरम खावै जग कू'
'साठा पाठा'
'नावा गंठ का और विद्या कंठ की'
'बड़ी मिरच, बड़ी मिरच, छोटी मिरच सुभानअल्लाह'
'खावै मन भावता और पहरै जग भावता'
'चुपड़ी अर दो द्दो'
'खावै घी से नहीं जावै जी से'
'पूत की जात को सौ जोक्खो'
'मुसीबत कह के नी आती'
'मुसीबत अकेल्ली नी आत्ती'
'आग्गे खत्ती पिच्छे कुंआ'
'भगवान जब देवै छप्पर फाड़ के देवै'
'गेहूँ की रोटियों को फौलाद का पेट चाहिये'
'जाड्डा रूई से या दुई से'
'काना खोत्ता कायरा
इनसे बात जब करे, जब हो हाथ में ईंट'
'बैहता पानी उड़ता पंछी इनकी क्या परतीत'

'भूख न देखे तवा परात
नींद न जाने टूटी खाट
इश्क न देखे जात कुजात'
'घर का भेदी लंका ढावे'
'गरब तो राजा रावन का भी ना रहा'
'छाज बोले तो बोले, छलनी बी बोल्ले जिसमें बहत्तर छेद'
'डंडा सी पूंछ बुढ़ाने का रस्ता'
'मीरा पुरी बगल में छुरी'
'मा पर धी, पिता पै घोड़ा
बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा'
'कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा
भानुमती ने कुनबा जोड़ा'

भाग्य संबंधी कहावतें—लोकसमाज के जन-जीवन में प्रायः यह देखा जाता है कि यद्यपि उनमें आत्मविश्वास और परिश्रम आदि पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है पर फिर भी वह अहंवादी नहीं होते तथा बहुत आस्तिक होते हैं । वह भाग्यवादी और कर्तव्यपरायण होते हैं । आस्थावान् तथा धार्मिक होते हैं और वास्तविक रूप में व्यावहारिक तथा गीता-ज्ञान के अनुयायी होते हैं। उनके भाग्यवादी दृष्टिकोणों तथा आस्तिक आस्थाओं का पता हमें लोकोक्तियों में स्थान-स्थान पर मिलता है। यही भाग्यवादी दृष्टिकोण उनके अभावपूर्ण जीवन को सरस बनाता है तथा विषम परिस्थितियों के प्रति सहिष्णु व संतोषी बनाता है। जन्मान्तर-व्यवस्था तथा कर्म-सिद्धान्त की जड़ भारत में बहुत दृढ़ है। उसी के फलस्वरूप अपनी स्थिति से संतोष कर लेना हमारी प्रवृत्ति बन गई है। 'हरि इच्छा बलवान है' कह कर भली बुरी सभी बातों को स्वीकार कर लेना हमारा स्वभाव हो गया है। ऐसा कहा जाता है कि—

'बिंध गया सो मोत्ती, रह गया सो पत्थर'
'अनहोनी होती नहीं, होनी होय सो होय'
'जन्म घड़ी और मरण घड़ी टाले नहीं टलती'
'करमहीन खेती करै, बैल मरे या सूखा परै'
'चुपड़ी अर दो दो'
'काणी के व्याह को सौ जोक्खों'
'रूप की रोवें भाग की खावें'
'अपनी-अपनी करनी सब भोगें'

'माँ ने जाये सात पूत, कोई हाली कोई बालधी
अर कोई करै बिगानी आस।'
'राजा की बेटी करम की हेठी'
'दे दो बाबल भाड़ में
अर खावेगी अपने कपाल में'
'कदी घी घणा, कदी मुट्ठी भर चणा
अर कदी वो भी मना'
'होणी अच्छे अच्छों को नाच नचा देवै है'
'माँ ने जाये सात पूत, करम ने दीनै बाँट'
'क्वारी के भाग से व्याही मरे'
'जिसकी यहाँ पूछ उसकी वहाँ पूछ'
'सुख दुख सब पै धूप छांव की तरह आवै है'
'कभी तो भैंस पसर को चली, अर तिलसंड्डों में जा अड़ी'
'भगवान अपने गधों को भी हलवा खिलाता है'

खान-पान तथा स्वास्थ्य संबंधी लोकोक्तियाँ—"उस प्राचीन काल में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें न थी किन्तु कहावतों में स्वास्थ्य-विज्ञान के निर्देश मिल जाते थे। उस समय अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की कोई शास्त्रीय व्याख्या उपलब्ध न थी किन्तु आर्थिक जीवन से संबंध रखने वाले व्यावहारिक संकेत कहावतों के रूप में अवश्य सुलभ थे। दर्शनशास्त्र और धर्मग्रंथ, उस समय न थे किन्तु कहावतों के रूप में जो लोक-विश्वास प्रचलित हुए होंगे वे ही उनके लिये दर्शनशास्त्र और धर्मग्रन्थों का माप देते होंगे। शास्त्र और दर्शन-ग्रंथों के प्रति जिस प्रकार आदर भावना देखी जाती है उसी प्रकार कहावतों के प्रति भी सामान्य जनता में बड़ा आदर पाया जाता है।"[1] इनका लोक-जीवन में बहुत महत्व है। इनके अनुसार चलने से स्वास्थ्य तथा सुखी रहने में सहायता मिल सकती है तथा लाभ उठाया जा सकता है—

'नीबू का अचार जितना पुराना हो उतना ही अच्छा होवै है'
'थोड़ा खाया अंग लगाया, बौहता खाया कूड़ा बधाया'
'आँत भारी तो माथ भारी'

---

१. राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन—कन्हैयालाल सहल, पृ० ४५

'भादवें का मट्ठा कुत्तों कू, अर कात्तक का पुत्तों को' या
'जाड्डे खरसाव में पुत्तों कू, अर भादवें में कुत्तों को'
'किसी को बेंगन बायले, किसी को बेंगन पच्चे'
'सावन करेला, भादों दही, मौत नहीं तो जहमत सही'
'जाड्डा पूस न माह, जाड्डा लागा ब्याल का'
'खिचड़ी तेरे चार यार दही, पापड़, चटनी, अचार'

लोक-विश्वास संबंधी लोकोक्तियाँ—जनजीवन लोक-विश्वासों से ओत-प्रोत है। आधुनिक शिक्षित लोग बिना अनुभव की कसौटी पर कसे 'अंधविश्वास' कह कर इनकी उपेक्षा करते हैं पर ये बहुत महत्वपूर्ण हैं। उन्हीं के आधार पर शकुन या 'अपशकुन' की गणना की जाती है।

आधुनिक मनोविज्ञान के विशेषज्ञों का कहना है कि अपशकुन पर विचार करने वाले व्यक्ति के मन में कोई मानसिक ग्रंथि रहती है। रहस्यमय भविष्य के अज्ञान के कारण आशंका से अपशकुनों की ओर उन्मुख होता है। अनागत घटनाएँ शकुनों के रूप में पूर्वाभास दे जाती हैं।

इनका संबंध कार्य से नहीं, सामाजिक संस्कारों से होता है। जिस जाति में जिस मनुष्य का जन्म हुआ, वह उस जाति के विश्वासों भावनाओं आदि को उत्तराधिकार के रूप में अनायास ही प्राप्त कर लेता है। मनुष्य जो कुछ बचपन से निरन्तर सुनता आता है उस पर अविश्वास नहीं कर पाता। इसी से ये धारणाएँ मान्य होती हैं।

'शकुनशास्त्रियों की मान्यता है कि शकुन चाहे भविष्यवाणी के रूप में न हों किन्तु इस प्रकार की चेतावनी के रूप अवश्य हैं जिनसे लाभ उठाने पर हम अनागत विपत्तियों से बच सकते हैं।

अत्युच्च बौद्धिक तथा वैज्ञानिक विकास होने पर भी मनुष्य जाति शकुन जाल से अपने आपको मुक्त नहीं कर सकेगी। जब तक ससीम मानव अपनी सीमाओं में बँधा है तब तक भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण विषयक उसका ज्ञान तथा प्रकृति और मन की शक्तियों पर उसका नियंत्रण कभी भी संपूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकेगा। अज्ञात और अज्ञेय की भावना उसे सर्वदा दिग्भ्रान्त करती रहेगी। प्रकृति और मन की शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिये वह छटपटाता रहेगा। एक क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर लेने पर नित्य नये-नये क्षेत्र उसकी कल्पना के सामने आते रहेंगे। यदि अनागत का आवरण हट जाय, विश्व का रहस्य ज्ञात हो जाय तो शकुन-अपशकुन का प्रश्न ही न रहे।"

यद्यपि इन शकुनों का क्षेत्र विस्तृत है। प्रकृति में होने वाली अद्भुत घटनाओं,

सामाजिक जीवन की घटनाओं, विशिष्ट पशु-पक्षियों की क्रियाओं, शरीरजन्य अवस्थाओं, मानसिक परिस्थितियों तथा स्वप्नों के दर्शन से शकुनों के शुभाशुभ मानने की प्रवृत्ति शिक्षित, अर्धशिक्षित एवम् अशिक्षित सभी प्रकार के मानव समाज में पायी जाती है। इनके वर्गीकरण के अन्तर्गत प्राकृतिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, मानसिक क्षेत्र, शारीरिक क्षेत्र, स्वप्न-जगत् तथा अंधविश्वासों से उत्पन्न शकुनापशकुन हैं, जिनमें हमने यहाँ पर कुछ के ही उदाहरण दिये हैं। यह विषय स्वयं शोध का है, अतः विस्तार में जाना मेरे लिए संभव न था फिर भी कुछ सामाजिक जीवन से प्राप्त शकुनापशकुन का यहाँ कहावतों में उल्लेख है। उदाहरण के लिए—जाति-संबंधी—ब्राह्मण, व्यापारी, योद्धा, शूद्रादि से प्राप्त शकुनापशकुन ।

विकलांग मनुष्यों के दर्शन संबंधी—काना, कुबड़ा, कोढ़ी आदि से प्राप्त विभिन्न अवस्थाओं से संबंधित ।

स्त्री पुरुषों में—विधवा, सधवा, कुमारी, युवती, वृद्धा, बालक ।

विभिन्न वस्तुओं के दर्शन से—जलपूर्ण अथवा रीता पात्र, ईंधन, शव, अग्नि, किसी वस्तु के टूटने, गिरने आदि से ।

शारीरिक अवस्थाओं से प्राप्त—शरीर के किसी अंग-विशेष के स्फुरण से प्राप्त—आँख, भुजा, छींक ।

यात्रा संबंधी शकुन—

'सोम सनीच्चर पूरब काला'
'पड़वा गमन न कीजै जो सोने की होय'
'मंगल करै दंगल, बुध बिछोह होय'
'जुमेरात की खीर खा के, जुम्मे को जाना होय'

नया कपड़ा पहनने के संबंध में लोग कहते हैं—

'कपड़ा पहने तीन बार
बुध, बृहस्पति शुक्रवार, भूले चुके रविवार'
'जीभ दाँतों के नीचे जाने पर कोई बुराई करता है'

सिर न धोने के संबंध में—

'बुद्धा खोलिये न जुड्डा'
'तेरस और तीज' यह दो दिन शुभ माने जाते हैं।

शारीरिक अंग-विचार संबंधी अनेक शकुन प्रचलित हैं—

'काना व्यक्ति देखना अपशकुन है'

'भूरीआँख' एवं छोटे कद व गर्दन वाले व्यक्ति विश्वासघाती समझे जाते हैं।

इंद्रिय संबंधी लोक-विश्वास—आँख, हाथ या कोई भी अंग फड़कना विशिष्ट घटना का सूचक है। छींक यद्यपि एक स्वाभाविक क्रिया है परन्तु इसके संबंध में भी अवसर के अनुसार अनेक धारणाएँ हैं।

कुछ व्यक्ति विशेष शुभ या अशुभ समझे जाते हैं। विधवा अशुभ तथा सुहागिन लड़के सहित शुभ मानी जाती हैं। यात्रा में शव देखना शुभ है। दाहिनी ओर बैल देखना शुभ है। नीलकंठ शुभ शकुन वाली चिड़िया है। बिल्ली का रास्ता काटना, उल्लू का बोलना और कुत्ते का रोना निश्चित रूप से अशुभ है।

शकुन-शास्त्रियों की दृष्टि में सुनार का दायें-बायें किसी ओर भी मिल जाना एक प्रकार का अपशकुन समझा जाता है। यात्रा के समय तेली का मार्ग में मिल जाना अशुभ माना जाता है—

'एक तेली मारग मिलै महा असगुन होय
सौतेली घर में बसे सगुन कहाँ ते होय'

आटा, काठ, घी का घड़ा, विधवा स्त्री, भेड़िया, सुनार, बिना तिलक किये हुए पंडित ये अगर यात्रा के समय मार्ग में मिल जायँ तो बहुत अशुभ माना जाता है।

कौवे का बोलना प्रिय के आगमन की सूचना देता है।
पैर में खुजली होना तथा जूती पर जूती चढ़ने से दुखद यात्रा करनी पड़ती है।
हथेली में खुजलाहट इस बात की द्योतक है कि शीघ्र ही कहीं से रुपया मिलेगा।
बार-बार हिचकी आना किसी के स्मरण करने की पहचान है।

पशु-पक्षियों के द्वारा शकुन निर्धारण—खर, शृगाल, गाय, तीतर, शकुन चिड़िया, तथा नीलकंठ आदि पशु-पक्षियों को दायें-बायें देख कर शकुन निर्धारण किया जाता है—

दाहिनी ओर आया हुआ बैल पद-पद पर लाभप्रद होता है।
सुसज्जित हाथी यदि सामने मिले तो शुभ समझा जाता है।
यात्रा के समय यदि हिरण आ जाय तो मृत्यु हो जाती है।

गधे का रेंकना, मरा गधा, शव, बच्चे को दूध पिलाती गाय, भरी मश्क लिये भिश्ती, भंगन, मछली, कन्या, दही यह सब अच्छे शकुन होते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहावतें—कुछ कहावतों के द्वारा मानव-मन का भली प्रकार अध्ययन किया जा सकता है। उनमें जीवन की व्यावहारिक सच्चाई की इस प्रकार

अभिव्यक्ति होती है कि उनके द्वारा मानव के अचेतन मन की प्रक्रियाओं का भी आभास मिल जाता है।

वास्तविक वस्तु या व्यक्ति को छोड़ कर किसी के भाव-प्रवाह का दूसरी ओर प्रवर्तित हो जाना मनोविज्ञान की भाषा में स्थानान्तरीकरण (Projection) कहलाता है।

'कुम्हार का कुम्हारी पर बस न चला तो गधी के कान ऐंठ दिये'

आदत मनुष्य के स्वभाव का अंग बन जाती है जिससे जानते हुए भी बचना संभव नहीं होता।

'चोर चोरी से गया तो क्या हेरा फेरी से भी गया'

'कुत्ते की पूंछ बारह बरस नलकी में रही फिर भी टेढ़ी की टेढ़ी'

प्राय: देखा जाता है कि अभावग्रस्त या हीनभाव वाला मनुष्य ही अपनी प्रशंसा के हेतु कुछ ऐसा अनोखा काम करता है जिससे लोगों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो। मनुष्य की यह स्वाभाविक मनोवृत्ति है कि वह दूसरों की दृष्टि में नगण्य नहीं रहना चाहता। कहावत है—

'कमाऊ आवै डरता निखट्टू आवै लड़ता'

तथा,

'थोथा चना बाजै घना'

प्राय: मनुष्य दोषी होते हुए भी अपने दोष को स्वीकार करने का साहस इसलिये नहीं करता कि कहीं वह दोषी ठहरने पर दूसरों की दृष्टि में नीचे न गिर जाये। दुर्बल व्यक्ति को अधिक क्रोध आता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। क्रोध, वस्तुत: क्षति-पूर्ति का प्रयास मात्र है।

"जिस कार्य में कमी होती है वह उस कमी को ढँकने के लिए अपनी प्रशंसा करता है। जिसमें ज्ञान नहीं होता वह बढ़-बढ़ कर बातें बनाता है, जो ज्यादा धमकी देता है वह धमकी के अनुसार काम नहीं कर पाता। ज्ञान की कमी, चातुर्य का अभाव, अंग-विकार, अनेक कारणों से मनुष्य अपने ही भाव सा अनुभव करने लगता है। कहावतों में हीन भाव का कोई सैद्धान्तिक विश्लेषण नहीं मिलता किन्तु वह हीन भाव किस प्रकार अपने आपको अभिव्यक्त करता है इसके अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं।[१]"

'जो गरजता है बरसता नहीं'

---

१. राजस्थानी कहावतें—कन्हैयालाल सहल, पृ० १८७

कथा संबंधी लोकोक्तियाँ—लोकानुभव प्राय: घटनामूलक होता है। कोई घटना घटित होती है और हमारे जीवन संबंधी अनुभव में वृद्धि कर जाती है। हम देख पायें चाहे न देख पायें मानव जाति के प्रत्येक अनुभव के पीछे एक छोटी-मोटी कहानी छिपी रहती है जिसका वह संकेत देती है।

कुछ कथाओं का अंतिम चरम वाक्य ही कहावत का रूप ले लेता है। यह बहुत मर्मस्पर्शी व प्रभावशाली होता है, उसमें तीखा व्यंग्य होता है। यही वाक्य कहावत के रूप में प्रचलित हो जाते हैं। प्राय: लोकोक्ति से संबद्ध कोई न कोई अन्तर्कथा रहती है जो उसको अधिक स्पष्ट कर देती है। उदाहरण के लिये उनमें कुछ ये हैं—

'माया तेरे तीन नाम, परसा, परसू परसराम
टोट्टे तेरे तीन नाम, लुच्चा, भड़वा बेइमान'
'बड़ी बहू बड़े भाग, छोटो बनड़ो घणो सुहाग'
'जो तुझे कह गया वो मुझे भी कह गया'

तथा,

'बनिये का बेटा कुछ देख कर ही गिरता है'

इसकी कथा संक्षिप्त में इस प्रकार है—

'एक बनिये का लड़का सिर पर तेल की हाँडी रखे बाजार में से जा रहा था। एक जगह वह गिरा तो हाँडी फूट कर सारा तेल सड़क पर बिखर गया। किसी ने बनिये से जाकर कहा कि तुम्हारा लड़का आज रास्ते में गिर गया और तेल की हाँडी फूट गई, तो बनिया बोला—

'बनिये का बेटा यों गिरने वाला नहीं, कुछ देख कर ही गिरा होगा'

घर आने पर बाप ने बेटे से पूछा तो पता लगा कि रास्ते में एक अशर्फी देख कर वह गिरा था, यों झुक कर अशरफी उठाता तो कोई देख लेता। अशरफी पर गिरा और चुपके से उसे अंटी में रख लिया। अत: इससे यह स्पष्ट हो गया कि—

'बनिये का बेटा कुछ देख कर ही गिरता है।'

भाषा-विज्ञान सबंधी लोकोक्तियाँ—कुछ कहावतों के द्वारा भाषा-विज्ञान संबंधी तथ्यों का पता चलता है तथा उस दृष्टि से अध्ययन के लिये ये कहावतें महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं। खड़ीबोली में द्वित्व प्रधान है, जिसका वास्तविक रूप हमें लोकोक्तियों में देखने को मिलता है—

'ठाड्डे की जोरू सब की दाद्दी
अर माड़े की जोरू सब की भाब्बी'

द्वित्व के अतिरिक्त वर्ण संयुक्ति भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। देख्या, कर्‌या, सुन्या आदि ।

'सब दिन चंगी, तिव्हार दिन नंगी'

खड़ीबोली में 'है' के स्थान पर आवै, जावै, खावै आदि का प्रयोग होता है—

'निखट्टू आवै डरता,
कमाऊ आवै लड़ता'

प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ—लोकोक्तियों के रचयिता जीवन-द्रष्टा होते हैं। वास्तव में जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताएँ ही उनको जन्म देती हैं। लोक मानस की दृष्टि व्यापक है, उसमें सब ज्ञान समाहित है, अनदेखा कुछ नहीं ।

खड़ीबोली पुरुषार्थी लोगों की बोली है जिनका व्यवसाय साधारणतया कृषि है। जीवन की सब सुख-सुविधाओं से पूर्ण तथा स्वस्थ ये लोग बड़े मसखरे तथा प्रत्युत्पन्न मति के होते हैं। इनकी बोली में हास्य-व्यंग्य तो मानो पूंजीभूत हो गया है। इनमें कभी-कभी असंभव अभिप्राय भी रहते हैं—

'इस तरह चले गये जैसे गधे के सिर से सींग'
'आँख के अंधे नाम नयन सुख'

कहीं अतिशयोक्ति भी मिलती है—

'फूहड़ चाल्ले नौ घर हाल्ले'
'बावली या तो चले नी, चलै तो रुकै नीं'

कहावतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। मानव जीवन की कोई भी ऐसी गतिविधि नहीं, जो इसके चक्र से बाहर हो। कहावतों में जीवन के सभी सुख-दुख, हर्ष-विषाद, रुचि व ग्लानि, विविध वर्णों में समाहित होकर मिलते हैं। जातियों के आचार-विचार, रीति-परम्परा आदि की अभिव्यंजना में कहावतों ने सदैव ही सहयोग दिया है। देश-भेद के आवरण के पीछे मानव-मानव एक है। मानव प्रवृत्ति सर्वत्र एक है ।

लोकोक्तियों में जीवन-जगत् के किसी न किसी पक्ष की अनूठी झलक है। लोक-साहित्य का अध्ययन इस मौखिक साहित्य के बिना अधूरा ही है।

साहित्यिकता की दृष्टि से खड़ीबोली की लोकोक्तियाँ अत्यन्त सारगर्भित हैं। इनका चयन कर हम हिन्दी को अधिक समृद्ध बना सकते हैं। इस प्रदेश की बोली अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना से अधिक सम्पन्न है और प्रायः लोग गूढ़ार्थ भाषा का प्रयोग करते हैं।

कहावतों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वास्तव में किसी भी जाति की सभ्यता तथा संस्कृति का उच्च स्वरूप उसकी बोली में प्रचलित

कहावतों से ही जाना जा सकता है । कहावतों में अतीतकाल के अनुभव और ज्ञान बीज रूप में सुरक्षित रहते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि खड़ीबोली की लोकोक्तियाँ अपने में पूर्ण हैं यद्यपि उनका संकलन पर्याप्त मात्रा में नहीं हुआ ।

कहावतों में अनायास ही उपयोगी तत्व भी मिल जाते हैं । कहावतों से साहित्य का भी सौंदर्य बढ़ता जाता है । अलंकार-शास्त्र में तो 'लोकोक्ति' नामक एक अलंकार भी है ।

मुहावरे—लोकोक्तियों के समान ही मुहावरों का प्रयोग भी दैनिक जीवन में निरन्तर होता है । लोकोक्तियों में एक पूर्ण सत्य के विचार की पूरी अभिव्यक्ति होती है । वह इसी भाषा का अंश नहीं बनता वरन् एक स्वतंत्र वाक्य होता है । मुहावरों की लाक्षणिक शक्ति से भाषा में संयम आता है और आवश्यक विस्तार दूर हो जाता है ।

मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाले ये अपूर्ण वाक्यखंड हैं, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज और रोचक बना लेते हैं । मुहावरा लोकोक्ति के समान अपने में पूर्ण नहीं होता वह वाक्यांश होता है और उसकी सार्थकता वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही होती है । उसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता । यह सदैव अपने मूल रूप में प्रयुक्त होता है । शब्द में परिवर्तन करने से अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है । संसार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बहुत कौतूहल से देखा-समझा, और बार-बार उनका अनुभव किया, उन्हीं को शब्दों में बाँधा है, यही मुहावरे कहलाते हैं ।

भाषा-शास्त्रियों का कहना है कि मुहावरों की उत्पत्ति का रहस्य है मानव की प्रयत्न-लाघव प्रियता । वह छोटे से छोटे शब्दों में अपने को व्यक्त करना चाहता है । मनुष्य स्वभाव से रहस्यात्मकता-प्रिय भी है । वह कुछ गोपनीय कहने का आदी भी है, इसी से साधारण शब्दों में न कह कर भिन्न भाषा में प्रयोग करता है । मुहावरे सदैव गद्यात्मक होते हैं तथा बहुत लघु होते हैं ।

मुहावरों की परंपरागत व्यापकता—इनका इतिहास भाषा के ही समान प्राचीन है । मुहावरों का प्रयोग बहुत प्राचीन है । हजारों वर्षों से दैनिक जीवन में बार-बार प्रयुक्त होते रहने से वह हमारे पक्के साथी बन गये हैं । मानव-जीवन से संबंधित किसी भी पक्ष की उपेक्षा इसमें नहीं है ।

मुहावरों में जन-जीवन की स्पष्ट और सत्य झाँकी देखने को मिलती है । इनमें सामाजिक प्रथाओं, रूढ़ियों तथा परम्पराओं का उल्लेख भी पाया जाता है । साधारण जनता की आर्थिक दशा कैसी है, इस पर भी प्रकाश पड़ता है । भारतीय

संस्कृति का दर्शन भी इनमें मिलता है तथा इनके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों का भी पता चलता है।

इन मुहावरों में पौराणिक कथाएँ, स्त्रियों के आचार-विचार, जातिगत विशेषताएँ तथा शकुन संबंधी धारणाएँ भी मिल जाती हैं। उदाहरणार्थ, उल्लू बोलना, कौआ बोलना, आँख फरकना, हाथ फड़कना, पैर खुजलाना आदि। कुछ क्षेत्रीय मुहावरे इस प्रकार हैं जिससे भाषा-शास्त्र संबंधी तत्व भी ग्रहण किए जा सकते हैं—

'बेरवा बिरान होना'
'बारह बाट होना'
'लेना एक न देना दो'
'सेर का भाई बघेरा, वो कुद्दे नौ, वो कुद्दे तेरा'
'नाक की सीध चलना'
'सिर खुजलाना' 'हाथ खुजलाना'
'करेल्ला और नीम चढ़ा'
'ना सावन सुक्खा ना भाद्दौ हरा'
'बुखार की तरह चढ़े आना'
'दाँत काट्टी रोट्टी'
'रोट्टी यहाँ खाना तो पानी वहाँ पीना'
'आँख का अंधा गाँठ का पूरा'
'आँख में सूअर का बाल होना'
'ताक झांक करना'
'कनसुए लेना'
'होली दिवाली नहाना'
'बोल्ली लगना'
'गाली लगना'
'आँखें दिखाना'
'भांजी मारना'

मटियाले चूल्हे, जाट की खोपड़ी, कायस्थ खोपड़ी, परवा पछवा न जानना, सब दिन चंगी तिव्हार के दिन नंगी, दिद्दे फोड़ना, गऊ के जाय, धौले आणा, बटले करणा, बुड़क मारना, कम्पनी के बैल, लगा लूतरी होना, बेरवा बिरान होना, पेट पतलाना, तग्गा तोड़ बात करना, ठोस्सा दिखाणा, कुंच्चा लगाना, दिवाली के दिण कूड़ी पै भी दीवा जलणा, मूं बिटारना।

मुहावरों में भी यद्यपि बहुत साम्य है परन्तु लोकोक्तियों से कम,क्योंकि इसका संबंध बोली से ही अधिक है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तो यह बहुत ही उपयोगी है। खड़ीबोली में द्वित्व की प्रधानता है, जो हमको मुहावरों में प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं—बोल्ली रोट्टी आदि। क्रिया में 'है' की अन्तर्मुक्ति है तथा वर्ण-संयुक्ति के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं—ग्या, देख्या, कर्या आदि।

मुहावरों की उपयोगिता भाषागत है। इनके प्रयोगों से भाषा अधिक प्रभावशाली हो जाती है, स्पष्ट चित्रमय हो जाती है। इनके द्वारा हम जो कुछ कहना चाहते हैं उसका स्पष्टीकरण मुहावरों द्वारा अधिक अच्छी तरह होता है। मुहावरों से भाषा को सबल बनाने में सहायता मिलती है। व्यंग्यवाणों के लिए भी इससे अधिक अच्छा शस्त्र मिलना संभव नहीं। मुहावरों का अध्ययन करते समय संस्कारगत प्रथाओं का उल्लेख होता है। उदाहरण के लिए—हाथ पीले करना, कुल बखानना, संकरात पूजना।

कुछ पौराणिक कथांश भी मुहावरों में मिल जाते हैं जिनका ऐतिहासिक तथा पौराणिक महत्व है। उदाहरण के लिए—द्रौपदी का चीर, रामबाण, ईद का चाँद, सुदामा के चावल, विदुर का साग आदि।

शकुन संबंधी मुहावरे—इनके द्वारा भविष्य के लिए चेतावनी व संकेत मिल जाता है, यथा—

हथेली खुजलाना, पैर खुजलाना, आँख फड़कना, बाँह फड़कना, माथा ठनकना गाज गिरना आदि।

कुछ मुहावरों में जातिगत विशेषताओं व व्यंग्योक्तियाँ भी होती है। मुहावरों का वर्गीकरण विषयगत होना कठिन है। मानव जीवन से संबंधित सभी विषयों पर मुहावरे मिलते हैं जिनमें कुछ विशष को ही यहाँ दिया जा रहा है—

साँग भरना, झावे की चिड़िया होना, पके पान होना, बेटी का बाप, चूड़ी ठंडी होना, पेट में लाट्ठी घूमना, जड़ों में मट्ठा देना, कूच्चा लगाना (आग लगना), सावन के गुड़ सा ढीला, आँखों लगना, दुहाग देणा, कौन सा मेरे ऊपर सोने का मैडा फिरवा देगी (मेढ़ा एक प्रकार का औज़ार जो एक सा करने में काम आता है), सारी रात रोये पर एक मरा, वह भी सुबह उठ कै भाग गया। अकड़ फू होना, आँखों सुख, कालजा ठंडा होना, कान पक जाना, कुण्ठा होना, कच्ची गोली न खेलना, कोल्हू के बैल की तरह पिलना, कौन मक्खी ने छींका है, खाट से लग जाना, घर आई गंगा में गोता न लगाना, छठी का दूध याद आना, ठकुरसुहाती कहना, धन में साँप होना, पैर नौ नौ मन के होना, फूटी आँख न सुहाना, पेली पट्टियों राज करना, बैठी-बैठी को खेना, बोलते में फूल झड़ना, मिली भगत होना, मिट्टी पलीत करना, राज

रजना, साँठ-गाँठ करना, सात पीढ़ी बखान डालना, सौन कुसौन हो जाना, डंडे पेलना, हाथ लगाये मैली होना, मन मैला न करना, हड्डी पसली इकट्ठी करना ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुहावरों में जन-जीवन के दर्शन होते हैं। लोक-समाज का यथार्थ चित्रण तथा उनके सामाजिक आचार-विचार एवं संस्कृति-सभ्यता का पूर्ण परिचय इन्हीं के द्वारा मिलता है। यह हमारे व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि भी करते हैं। इनके द्वारा खड़ीबोली की शक्ति का परिचय मिलता है। इनका अध्ययन करने से यहाँ के लोगों के स्वभाव का भी ज्ञान होता है। साहित्यिकता की दृष्टि से खड़ीबोली के मुहावरे अत्यन्त सारगर्भित हैं। इनका चयन कर हम हिन्दी को अथक शक्तिशाली बना सकते हैं।

खड़ीबोली की पहेलियाँ—भारतीय जन-जीवन में मनोरंजन के विविध साधनों में पहेलियों का भी विशिष्ट स्थान है। प्रतिदिन के व्यवहार में रहने वाली अनुभवगम्य अनेक वस्तुओं तथा क्रियाओं के संबंध में यह जोड़ी जाती हैं। यह प्रायः पद्यमय ही होती हैं। साधारण से साधारण वस्तु भी पहेली की पकड़ से नहीं बचती। यह युगों से थोड़े से शब्दों के अंतर के साथ चली आ रही है। इनमें वर्षों का मनन, चिन्तन और विश्लेषण छिपा है। इनका स्थान कुछ मात्रा में लोकोक्तियों से भी अधिक प्रतिष्ठापूर्ण है क्योंकि ध्वनिमय और छोटी होने के कारण यह अधिक समय तक स्मृति में स्थायी रूप धारण कर सकती है। इनके बूझने, बुझाने से बुद्धि का विकास होता है और मर्म की विविध बातें ज्ञात होती हैं। बुझौवल में जिस वस्तु का वर्णन होता है उसके गुण, रूप-रंग, आकार-प्रकार, उपयोग या स्वभाव के बारे में श्लेषात्मक संकेत रहता है। बस, उसी को पकड़ कर मूल-वस्तु की खोज की जाती है। पहेलियों के द्वारा ज्ञान-वृद्धि की प्रतियोगिता होती है तथा कल्पना-शक्ति की वृद्धि होती है।

पहेलियों में एक शब्दचित्र होता है। प्रश्नकर्ता उस चित्र को उपस्थित करके अर्थात् पूर्व पक्ष की स्थापना करके अपने प्रतिपक्षी से उस चित्र के उत्तर की आकांक्षा करता है। पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है। पहेलियों में छिपाने की प्रवृत्ति रहती है जिससे बुद्धि-कौशल के द्वारा ही उनके मर्म को जाना जा सके। पहेलियों के द्वारा मनोरंजन की नहीं वरन् लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति भी होती है। पहेलियाँ जाड़े की लम्बी रातों के काटने के लिये या बैठे-ठाले अपनी बुद्धिमत्ता की धाक जमाने के लिये गर्वमिश्रित सयानेपन के साथ लोग कहते हैं। पहेलियाँ तीक्ष्ण निरीक्षण शक्ति की परिचायिका हैं।

पहेलियों का प्रचलन बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद में इसके उदाहरण मिलते हैं।

अंतर केवल इतना ही है कि वह उच्चकोटि के ज्ञानियों के लिए होती थीं और यह सर्वसाधारण के लिए, उसके अनुसार सहजगम्य ।

पहेलियों में ज्ञान की अमूल्य निधि है । मानव प्रकृति रहस्यात्मक है। जब मनुष्य चाहता है कि उसके कथन को सर्वसाधारण न समझ सके तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है, जो जन-साधारण की समझ से परे होती है। मनुष्य की यही गोपनीय प्रवृत्ति पहेलियों की उत्पत्ति का कारण है ।

संस्कृत में पहेली को पहेलिका कहा गया है और ब्रह्मोदय भी कहा गया है। पहेलियों की परम्परा अत्यंत पुरातनकाल से चली आ रही है । डॉ० सत्येन्द्र के मतानुसार पहेली-साहित्य को लोकोक्तिसाहित्य का एक अंग माना जाता है। पहेलियों द्वारा वस्तु के संबंध में कुछ विशेषताओं के साथ संकेत रहता है। रूप, रंग, गुण, आकार-प्रकार भी सांकेतिक रूप में व्यक्त किये जाते हैं तथा उन्हें आधार मान कर उत्तर निकाले जाते हैं। गाँवों में तो इनका प्रयोग मुख्यतः मनोरंजन ही के लिये होता है। स्त्रियाँ तो इन्हें अपना अस्त्र ही समझती हैं। ससुराल में दामाद की परीक्षा लेने के लिए स्त्रियाँ पहेलियों की झड़ी लगा देती हैं। कोहबर में विवाह के पश्चात् पूछी जाने वाली पहेलियाँ 'छन' कहलाती हैं। यह वास्तव में पहेलियों का ही एक रूप होता है ।

जन-जीवन से संबंधित सभी वस्तुओं के संबंध में पहेलियाँ पाई जाती हैं जिनमें खेत संबंधी, भोज संबंधी, घरेलू तथा प्राणी संबंधी, प्रकृति संबंधी तथा अंग-प्रत्यंग संबंधी विविध विषयों पर प्रचुर मात्रा में मिलती है । यहाँ पर हम एक तालिका द्वारा पहेलियों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न करेंगे—
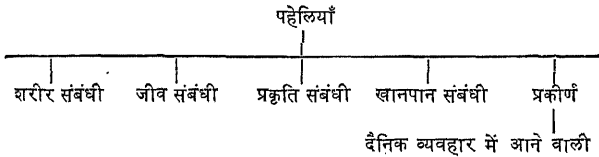
शरीर संबंधी पहेलियाँ—वह पहेलियाँ जिनका शारीरिक क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं से संबंध रहता है, इनका संबंध इन्द्रियों से है ।

'गरमी में वो पैदा होवै धूप पड़े लहरावै ।
हे सजनी वो इतना कोमल, हवा लगै कुम्हलावै ।।' (पसीना)
'लाख कहूँ लागै नहीं, बरजत लागै बार ।
कोई पहेली एक में, दीजौ चतर बताय ।।' (ओठ)
'काले काले बेंगना कुटियार भरे जाँ ।
राजा माँगै मोल तो दिये ना जाँ ।।' (आँख)
'बीस्सों का सिर काट दिया ।
ना मारा ना खून किया ।।' (नाखून)

जीव संबंधी पहेलियाँ—इनका संबंध जीवन-जगत् से पशु-पक्षियों से होता है । इनमें उनके प्राकृतिक गुण-अवगुण का वर्णन होता है—

'तुम उत्ते बड़े, हम इत्ते बड़े ।
हमने छू दिया तुम रो पड़े ।।' (बिच्छू)
'हेली री हेली तू हल्दी से पेली
छटाँक चुम्मा ले गई, परम दुख दे गई ।' (ततैया)
'उज्ज्वल बरन अधीन गत एक चरन दो ध्यान ।
दीखत मैं साधु-सा, निरी कपट की खान ।।' (बगुला)
'एक जनावर ऐसा जिसकी दुम पर पैसा ।' (मोर)

प्रकृति सबंधी पहेलियाँ—इन पहेलियों से प्रकृति से संबंधित वस्तुओं का ही रहस्योद्‌घाटन होता है—

'चार खूंट चौबारे, जिसमें खेले दो बणजारे ।' (चाँद-सूरज)
'चाँद सूरज में हुई लड़ाई,
मंगती आई छुड़ावन ।' (ग्रहण)
'चार नरम, चार गरम, चार बादसाही
सेर मिठाई उसे मिले, जिसने बात बनाई ।' (एक वर्ष)
'भरी परात गिने ना जा ।' (आसमान के तारे)
'बड़ हाल्ले बढ़ियाल्ला हाल्ले
ठाढ़ा पिप्पल कही ना हाल्ले ।' (कुंआ)
'लम्बा हाथ छाँह नी ।' (रास्ता)
'एक नगर में आग लगी एक नगर में धुंआ
एक नगर में बास करै एक नगर में कुंआ ।' (हुक्का)
'छोटी सी मीमनी सबसे पहले जीमनी'
'कटोरे में कटोरा, बेट्टे बाप से भी गोरा'

'कटोरे में कटोरा, कटोरे में अंडा
बता तो बता नई मारूँ सिर में डंडा'
'गधा उदासा क्यों था, मुसाफिर प्यासा क्यों था'
'सगरी रैन मोहे संग जागा, भोर हुई तो बिछरन लागा
वाके बिछरत फाटै हिया, हे सखी साजन ना सखि दीया'
'हाथ जोड़ बेगम खड़ी, सिर पर धरे अंगार
जब बजाई बाँसरी, निकला काला नाग'
'एक कहानी मैं कहूँ सुनले मेरे पूत
बिन परों के उड़ गया बाँध गले में सूत'

खान-पान संबंधी पहेलियाँ—मनुष्य को सबसे प्रिय खान-पान की वस्तुएँ होती हैं। दैनिक जीवन में इनका बहुत महत्व है, अतः इनसे संबंधित बहुत ही पहेलियाँ मिलती हैं, जिनका उत्तर बहुत रोचक होता है—

'अक्कल की कोठरी, बक्कल के किवाड़
मोतियों के झुमके, पानियों के दरयाव।' (तरबूज)
'राजा के राज में नीं, माली के बाग में नीं
फोड़ो तो गुठली नीं, छिल्लो तो छिल्लक नी।' (ओला)
'महता रे महता तू कौन गली में रहता
ठीकरी का पानी पीता पत्ते निच्चे रहता।' (बेंगन)
'इधर भी खूंट्टा, उधर भी खूंट्टा
गाय मरखनी दुद्धा मीट्ठा।' (सिंघाड़ा)
'स्याम बरन सिंगा धरै, तन काले दिल स्वेत
मइया बाकी जल बसै पिता बसै अकास
पुराने चाहिए तो भेज दें, नये तो कात्तक मास।' (सिंघाड़े)
'आगे आगे बहना आई, पीछे पीछे भइया
और दाँत निकाले बाबा आये, और बुरका ओढ़े मइया।' (भुट्टा)
'जब थी मैं याणी बाली, सात परदों की थी राणी
जब हुई मैं लोग्गम लोग, टुकड़ी ठाठा देक्खें लोग।' (भुट्टा)
'अक्कास मारा मीमला, पत्ताल काढ़ी खाल
ऐसा जानवर कौण सा, जिसकी भित्तर-बाल।' (आम)
'घर में उपजे घर बह जाये
खेत में उपजे सब कोई खाये।' (फूट)

'चार कबूतर चार रंग, महल में जाकै एक रंग।' (पान)
'आती थी जब आध सेर, सूख गई तब सेर भई
सज्जन सोच विचार उत्तर दीजिये मेज सही।' (रोटी)
'एक ही नाम दो बार, एक ही नाम धरा करतार
एक छोटी एक बड़ी कहाई, एक मेंहगी एक सस्ती।' (इलायची)

प्रकीर्ण पहेलियाँ—इनमें क्षेत्रीय बोली का पुट रहता है, जिससे उनके उसी प्रदेश का होना प्रमाणित होता है। यद्यपि विषय सामान्य ही रहता है पर शैलीगत-भेद ही उनकी विशिष्टता होती है—

'एक नारी उसके दाँत कटीले,
पिया ने पकड़े खींच आती है तो आ री।' (आरी)
'राँड की राँड मटकती जाय
गज का डोरा लटकता जाय।' (सुई-डोरा)
'पहाड़ से आये बुगले, हरी टोपी लाल झगले।' (लालमिर्च)
'अस्सी गज का चौतरा, नव्बे गज का डोर
सीता चली बाप के, कौण उड़ावै मोर।'
'पेली है पर पेली, बेसन की नहीं
बनाते हैं, पर खाते हैं।' (अठमासी)
'चाची के दो कान, चाचा के वो भी नहीं
चाची चतुर सुजान, चाचा कछु जानै नहीं।' (कढ़ाई-तवा)
'धौंली धरती काला बीज
बोवन वाले गावें गीत।' (किताब)
'स्याम बरन द्वारिका बासी, पै नाहीं भगवान
चिन्ता हरन सबन की, राखत सकल जहान।' (ताला)
'पहाड़ से आये रोड़े, आत्तो ही सिर फोड़े।' (अखरोट)
'एक जना ईयाजना, नदी किनारे चुगता है
सोने की सी चोंच निकले, दम दम पानी पीता है।' (दीवा)
'एक कहानी मैं कहूँ सुनले मेरे पूत
बिना पैरी के उड़ गया, बाँध गले में सूत।' (पतंग)
'हंसी की हंसी, ठिठोली की ठिठोली
मरद की गाँठ लुगाई ने खोली।' (ताली)
'सोने की वो चीज कहावै, दाल भात के मोल बिकावै
बुरज लगै है उसमें चार, बुरज बुरज पै पहरेदार।' (खाट)

'माली की री माली की तू, आँगुरी पहरे जाली की
खड़ी सलाम करै बैट्ठी तो काम करै।' (खाट)
'जनाब आली, सिर पै जाली
पेट खाली पसली अगगिन।' (मूढी)

यह सब उन्हीं कुछ वस्तुओं के उदाहरण हैं जो साधारण जीवन में प्राय: प्रयुक्त होती हैं। यहाँ पर संग्रहित कुछ वही पहेलियाँ दी गयी हैं जिनका प्रयोग क्षेत्रीय है या बोलीगत विशिष्टता है। यहाँ पुस्तकों का आधार नहीं लिया गया है।

गाहें-पल्हाये (मल्हौर)—लोक-साहित्य में लोकोक्ति साहित्य, मुहावरे व पहेलियों के अतिरिक्त पल्हाया मंत्र तथा दोहों के रूप में अनन्त जन-साहित्य की राशि सुरक्षित है, जिनसे हम कम परिचित हैं।

पहेलियों के समान ही 'मल्होरे'[1] पल्हाया' भी प्रश्नोत्तर के रूप में पहेलियों का ही एक प्रकार है जिसका परम्परागत व परिष्कृत रूप, अथर्ववेद, ऋग्वेद, महाभारत तथा ब्राह्मण-गाथाओं में मिलते हैं। "पहले इनको कुछ भागों में 'गाहा' भी कहा जाता था।"[2]

"'गाहा' प्रचीन गाथा का प्राकृत रूप है। गाथाओं का प्रयोग प्राय: वैदिक छन्दों के बाहर लोकगीतों के लिये किया जाता था।"[3] प्राचीन गाथाओं की ही कुछ परम्परा 'मल्होर' या गाहाओं में बच गयी। 'मल्होर' का दूसरा नाम 'पल्हाया' भी लोक में मिला। यह संस्कृत 'प्रवल्हिका' का प्राकृत रूप है। 'एतश प्रलाप' का ठीक अनुवाद 'बावली मल्होर' है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण-ग्रंथ और महाभारत में ऐसी कितनी ही प्रश्नोत्तरी शैली की गाथाएँ हैं। 'मल्होर' की गाथाएँ उसी परम्परा की स्मारक हैं। "बावली मल्होरों की शैली में कुरुजनपद के ऐतश प्रलाप, प्रवल्हिका, आजिज्ञा-सेन्या, प्रश्नोत्तरी आदि शैली के लोक-साहित्य की परम्परा छिपी है।"[4]

'मल्होर या पल्हाया' कुरु-प्रदेश में गाये जाने वाले श्रमगीतों का नाम है, जो विशेषतया 'कोल्हूगीत' भी कहलाते हैं। पहले जब चीनी की मिल नहीं थी, इस प्रदेश में गन्ने की अधिकता होने के कारण जगह-जगह प्रत्येक गाँव में कई कोल्हू चला करते

---

१. मल्होर—कुरु जनपद में गाये जाने वाले कोल्हू गीत जो श्रमगीत है।
२. जनपद—गणेशदत्त गौड़, पृ० ७७, खंड १—अंक २, जनवरी ५३
३. जनपद—वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० ७०
४. वही पृ० ७१

थे, और उसके पास ही भट्टी जला कर गुड़ बनता था। यह गुड़ बनाने का काम जाड़ों की रात में ही होता था। रात्रि के समय को कम नीरस बनाने के लिये तथा काम की अधिकता व कठिनता को मनोवैज्ञानिक रूप से सरल बनाने के हेतु ही जन-समाज ने गीतों का, दोहों का, तथा प्रश्नोत्तरी का सहारा लिया जिसके द्वारा वह मनोरंजन कर सकते थे। इससे समय का सदुपयोग भी हो जाता है और बौद्धिक वृद्धि भी।

'मल्होर' को कुछ भागों में 'गाहा' भी कहा गया है क्योंकि इस गीत के माध्यम से छोटे-छोटे कथानक गाये जाते थे। ग्रामीणों का सामाजिक दर्शन, उनके शृंगारिक भाव तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण हमें मल्होरों के रूप में प्राप्त होते हैं। इन मल्होरों में अभिव्यक्तिभावधारा का सूक्ष्म अध्ययन करने से पता लगता है कि कबीर की साखी, बिहारी के शृंगारिक दोहे, हाल की शप्तसती की गाथा तथा तुलसी, वृंद और रहीम के दोहों से इनका घनिष्ठ संबंध है। शृंगारिक मल्होरों और बिहारी के दोहों में कहीं-कहीं बहुत समानता मिलती है तथा कबीर की साखियाँ और वैराग्य-पूर्ण मल्होरों में बड़ी घनिष्ठता है। मल्होरों में दोहे और छंद होते हैं तथा पीछे एक विशेष प्रकार की टेक होती है—'रे मेरी बावली मल्होर'।

यद्यपि मल्होरों का प्रमुख विषय शृंगार ही है पर इनके अतिरिक्त नैतिक, सामाजिक, तथा वैराग्य संबंधी भी पर्याप्त मिल जाते हैं जिनसे जन-जीवन के विस्तृत दृष्टिकोण का पता लगता है। इन्हीं के द्वारा उनकी भावनाओं की विविधता का ज्ञान होता है। कार्यारंभ करते समय वह ग्राम-देवता की स्तुति करते हैं। यह मंगलाचरण का रूप सब जगह उपलब्ध है—

'धन खेड़े धन भूमिया, कोई धन बसावणहार
धन खेड़े के चौधरी रे तेरा खेड़ा बसे गुलजार'

मल्होरों का अध्ययन व वर्गीकरण करने से हमें उसमें तीन-चार पक्ष विशेष-रूप से दृष्टिगत होते हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) **दार्शनिक पक्ष**—वह 'मल्होर' जिनमें जन-जीवन के दार्शनिक दृष्टि-कोण का परिचय मिलता है कि उनकी जीवन संबंधी क्या विशिष्ट धारणाएँ होती हैं, वह भाग्यवादी होते हैं तथा आस्थावान्। यह उनके चरित्रगत आदर्शों का परिचय देते हैं। इनको सुन कर कबीर की साखियों का स्मरण हो जाता है। जीवन की विचारधारा परिवर्तित करने के लिए कभी-कभी छोटा-सा उदाहरण भी पर्याप्त होता है। इस नश्वर संसार की साधारण घटनाओं को देख कर ही मनुष्य की आँखें खुलती हैं और वह अपने जीवन पर भी उसको घटाने लगता है तथा

कुछ क्षण-विशेष के लिये उसका दृष्टिकोण दार्शनिक हो जाता है। उदाहरण के लिये—

'कित बोये कित उबजे रे,
बीरा कहाँ लड़ाये लाड़
ऐ जी कुदरत का ब्यौरा नहीं
कोई कहाँ खिडा दे हाड़
रे मेरी बावली मल्होर'

इनमें भाग्यवाद तथा भविष्य के संबंध में अनिश्चितता मिलती है जिनके कारण मनुष्य का अहं नष्ट हो जाता है और उसके जीवन में एक प्रकार की असीम शांति तथा संतोष का समावेश हो जाता है—

'पत्ता टूटया डालते रे
कोई ले गई पवन उड़ाय
ऐ जी अब के बिछड़े कद मिले
कहीं दूर पड़ेंगे जाय
रे मेरी बावली मल्होर'

और,

'पीले मुंह की पीपली रे,
बीरा कर गई हंस हंस जवाब
हम आये तम चल पड़े
ऐ जी ह्यां अपनी अपनी बार
रे मेरी बावली मल्होर'

कबीर का निम्नलिखित दोहा इसी से मिलता जुलता है—

माली आवत देखकर कलियन करी पुकार।
फूल्ले फूल्ले चुन लिये काल्ह हमारी बार॥

इनमें जीवन के प्रति निराशा ही स्पष्ट होती है तथा उनका निराशावादी व भाग्यवादी दृष्टिकोण ही मिलता है।

मल्होर में शृंगार-पक्ष तो है ही पर इससे भी अधिक शृंगारिक वर्णन, संयोग व वियोग के अतिरिक्त, एक तीसरे प्रकार की अवस्था भी मिलता है और वह है अनमेल विवाह की परिपाटी का द्योतक। पति-पत्नी की अवस्थाओं में पर्याप्त अन्तर होना साधारण बात है। पत्नी तो सदैव ही पति से कुछ छोटी आयु की होती है पर कभी-कभी बहुत छोटी भी होती है। कभी-कभी जब इसके विपरीत परिस्थिति होती है, पत्नी-पति से बड़ी होती है तब समस्या बहुत विषम होती है।

ऐसी स्थिति में सुहागिन पत्नी संयोगावस्था में होने पर भी वियोगिनी के ही समान रहती है तथा उसकी मनोगत लालसाएँ उपेक्षित ही रह जाती हैं। इसके संबंध में बहुत ही सुंदर व उपयुक्त मल्होर प्रचलित हैं, इनमें भावनाओं का बहुत ही सूक्ष्म वर्णन है जो इस प्रकार हैं—

'रतन कटोरी घी जलै रे बीरा,
चुल्हे जलै रे कसार
घुंघट में गोरी जले, जाके याणे हों भरतार
रे मेरी बावली मल्होर'
'महल जलै माढ़ी जलै बीरा, बिच बिच जलै वलान
घुंघट में गोरी जलै जिसके कंत नादान'

तथा,

'कल्लड़ सुक्खी काँगनी रे, कोह ढ़ेरो सुक्खे धान
मरवन सुक्खी बाप के ऐ जी कोई केला कैसी गोभ
रे मेरी बावली मल्होर'

जिस संयोग-वियोग के मध्य की स्थिति का यहाँ सूक्ष्म वर्णन है, वह बहुत ही मनोवैज्ञानिक है पर साहित्य में अल्प प्राप्य ही है। इसका उल्लेख कम मिलता है। यह अवस्था बहुत ही अधिक दुखदायी होती है क्योंकि इसमें दूसरे लोग उनकी व्यथा का अनुमान भी नहीं लगा सकते और वह संयोगवश तथा परिस्थितिवश कुछ भी कहने में असमर्थ रहती है। अतः अधिकाँश वेदना स्वयं ही उठानी पड़ती है। लोक-साहित्य में मल्होरों के इन रूपों का भी प्रहेलिका के समान ही महत्व है। यह प्रश्नोत्तर के रूप में तो है पर इनमें मानवीय भावनाओं का बहुत ही सूक्ष्म चित्रण मिलता है। इनमें उपमायें, कल्पनाएँ, दूर की सूझ तथा अतिशयोक्ति भी मिलती है—

'जो मैं ऐसा जाणती रे,
आँगन बोत्ती खजूर
वा पै चढ़ के देखती
मेरा साज्जण कित्ती दूर
रे मेरी बावली मल्होर'

निम्नलिखित मल्होर में बारह महीनों का बड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण है—

'साम्मण आम्मण कह गया रे,
कोई बीत्ते बारहमास

छप्पर पुराने पड़ गये जी
कोई चटकन लाग्गे बास
रे मेरी बावली मल्होर'

श्रृंगार-रस से संबंधित पल्हाये जिनमें रूप-यौवन का वर्णन मिलता है, इनमें विशेषता यह है कि कल्पनाएँ व्यावहारिक जीवन से ही ली गई है। उदाहरण के लिये—

'अम्बर में तारै खिलें, थल में खिलें बबूल
गोरी का जोबन नूं खिलै, जैसे खिले कमल का फूल'

श्रृंगारिक मल्होर प्रश्नोत्तर के रूप में भी पर्याप्त हैं—

प्रश्न— **'लंबा खेत ज्वार का रे प्यारे**
दो गोरी रखवाल
कौन सी गोरी ऐसी जो गोपफे[1] देय चबवाय
रे मेरी बावली मल्होर'

उत्तर— **'गोपफे म्हारे कचकचे,[2] नूह[3] पारो रस जाय**
उल्टे से फेरा करना मुसाफर
गोफे देंगे चबवाय'

एक नायिका, नायक की प्रतीक्षा में स्वतः कहती है—

'गोपफे हमारे पक गये, बोये १२ खेत
ए सखी ना बाहवड़े[4] जिसने गोपफे माँग्गे खेत रे'

ऊपर लिखी तीन मल्होरों के दो अर्थ हैं। दो युवतियाँ जो पहले अज्ञात यौवना थीं, अब एक वर्ष की अवधि तक पूर्ण यौवना हो गईं और अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करती हैं। यहाँ 'गाफे' की आड़ में कितनी सुंदर भावाभिव्यक्ति है। निम्नलिखित मल्होर रूपगर्विता नायिका के मुँह से कहे गये हैं—

'सुरमा सारूँ तो दस मरैं,
बिंदी लाऊँ तो बीस मरैं
माँग भरूँ सिन्दूर की, तौ मर जावें पूरे तीस
रे मेरी बावली मल्होर'

---

१. ज्वार के ऊपर की बाल।
२. कचिया, दूधिया।
३. नाखून लगाते ही।
४. लौटना, लौटे।

'सुरमे की म्हारे आन है, बिन्दी लावैं बलाय
पलक उभार कर देख लूं, जग परलो सी होय'
'महल तुम्हें बतलाती, आना आप जरूर
जो नर करे इसक, तेरे गिनै क्या हूर'
रे मेरी बावली मल्होर'
'अपने कोठ्ठे मैं खड़ी, खड़ी सुकाऊँ केस
यार दिखाई दे गया, भर जोगी का भेस'
रे मेरी बावली मल्होर'
'नील्ली घोड़ी, छब छबीली पातलिया सवार
गजब पड़ा तेरे रूप पर, चलता मुसाफर बियामार'
'अम्बर बरसै रस चुवै भीग्गे नौलखहार
घने दिनों की दोस्ती आज हो गई निरास'
मेरी बावली मल्होर'
'जोबन था जब रूप था गाहक थे सब कोय
बाला रतन गमाय के मैं रही निमाणी होय'
'जोबन भी चल्या रूठ कै, पड़ लिया लम्बी राह
कैसे भी पकड़ूं दौड़ कै मेरे गोड्डों में दम नाय'
रे मेरी बावली मल्होर'
'जोबन तेरे लाड़ करूँ, रिस भर रांधूं खीर
न्यौत जिमाऊँ बालमा, कहीं सगी ननद का बीर'
रे मेरी बावली मल्होर'

धार्मिक तथा नैतिक उपदेशों के संबंध में जिनमें जन जीवन का दर्शन मिलता है, महत्त्वपूर्ण है—

'पर नारी पैनी छुरी, कोई मत लाओ अंग
रावन की मुक्ति हुई, पर नारी के संग'

धार्मिक मल्होरों में अटूट आस्था मिलती है—

'राम बढ़ाये सब बढ़े, बल कर बढ़ा न कोय
बल करके रावन बढ़ो, वो दिया छनक में खोय'

अहं, दंभ की निस्सारता तथा जीवन की नश्वरता के प्रति मार्मिक संकेत है। कुछ प्रश्नोत्तर के रूप में मल्होर मिलती है, जिनका ज्ञान-वृद्धि ही उद्देश्य रहा होगा—

प्रश्न– 'कौन तपस्वी तप करै, अर कौन नित उठ न्हाय
कौन तो उगले सब रसन को, अर को सब रस खाय'
उत्तर– 'सूरज तपसी तप करै, बिरमा नित उठ न्हाय
इनदर उगलै सब रसन को, धरती सब रस खाय'
प्रश्न– 'नदी किनारे रूखड़ा, मैं जानूं कोई होय
जाकै कारन जोगन भई, वही न जलता होय'
उत्तर– 'नदी किनारे रूखड़ा, गोरी मल मल न्हाय
कछुआ चुम्बा ले गया, बगला नाक लगाय'
प्रश्न– 'मछली बिकती मैं सुनी, धीवर के दरबार
ए मछली मैं तुझे बूझता, कैसे फंस गई जाल'
उत्तर– 'पानी में म्हारा बास है, रहती ताल पताल
कलक खाती बन गई, मैं इस विध फँस गई जाल'
रे मेरी बावली मल्होर'

इस प्रकार हम देखते हैं कि खड़ीबोली प्रदेश के लोक-साहित्य में इन पल्हायों का अपना विशिष्ट तथा मौलिक स्थान है। इनके अतिरिक्त कुछ और पल्हाये और भी यहाँ दिये जा रहे हैं जो मिश्रित हैं–

'अंगिया तेरी रेसमी, लग्या हजारी सूत
घूंघट के पट ना खुलैं, तेरा मरो गोद का पूत
रे मेरी बावली मल्होर'
'अंगिया मेरी रेसमी, ना लग्या हजारी सूत
घूंघट के पट खोलिये, तेरा जीवै गोद का पूत
री मेरी बावली मल्होर'
'कोट्ठे उप्पर कोठरी, उसमें घड़ै सुनार
बिछुवे घड़ दे बाजणे, जो चार सुणे झन्कार
री मोरी बावली मल्होर'
'जोबन तेरे कारणे, छोड़े माई बाप
सात्तन छोड्डी सात की, हिरना बरगी नार'
'लील्ला लेहू लील का, फेंकूं पेले पात
सीसा फोड़ूं ले दूं दमकणा, जो चले म्हारे साथ
मेरी बावली मल्होर'
'हर बड़े हिरना बड़े, सुगनी बड़े किसान

अर्जन रथ को हाँक दे, भली करें भगवान
मेरी बावली मल्हीर'
'संध्या सुमरन आरती, भजन भरोसे दास
मनसा बाछा करमना, जब तक घट में आस'
'चेंटी ब्याई मुंड में खीस दिया मन तीस
गुरूसिस्स सब छक रहे, बचा खेस मन बीस'—मेरी बावली०
'माला मन से लड़ पड़ी, प्यारे क्या भिड़ावै मोय
मन को निहचें राखिये, राम मिला द्यूंगी तोय'—री मेरी०
'कर साँसा की सुमरनी, अन्या का कर जाप
प्रेम तत्व का ध्यान धर, सोहे आयो जाय'—रे मेरा०
'गाड़ी के गड़वा लिया, तेरी गाड़ी भरी है मसूर
हौले हौले हाँकिये अभी, मंज्जिल पड़ी है दूर'—रे मेरे०
जिनका ऊँचा बैठणा, जिनके खेत निवाण
तिनका बैरी क्या करै, जिनके मीत दिवाण'—रे मेरे०
'मारू मारू सब कहै, मारू यहाँ का देस
मारू यहाँ के रूखड़ा, तू अपनाई मारग वेख'—रे मेरे०
'बुध राजा के बाग़ में, प्यारे उतरे ढ़ोल कंवार
बंगला मरवन नार का, कहीं बैठे आसुन मार'—रे मेरे०
'फुलका पो दो लपझपे, हरियल धर दे साग
लम्बी सी दे दे लाकड़ी, गौसे पै धर दे आग'—रे मेरे०
'किस राजा जी के चने, किसके बाड़ी बाग़
किस राजा की स्त्री, काहे ते तोड़े साग'—रे मेरे०
'ढोला भी वहाँ से चल दिया, होकर के असवार
पीछे से सेना आलई, कहीं समन्वर मैं पकड़े जाय'—रे मेरे०
'अपने कोठे पै खड़ी, तले खड़ा मेरा जेठ
ढाई पाट का ओढ़ना, कहीं मूं ढकूं कै पेट'—रे मेरे०
'चालन दे अब चाकरी, प्यारे पीसण दे अब नाज
जो साँई के लाल हैं, लें मोती की लड़ आज'—रे मेरे०
'कीकड़ काटूं कस करूँ, कस कर करूँ मलान
काटन वाले चल बसे, अब किस पर करूँ गुमान'—रे मेरे०
'चलती चाकी देख कै, प्यारे दिया कबीरा रोय
दो पाटों के बीच में, कहीं साबत रहा न कोय'—रे मेरे०

'राम झरोके बैठ के, सब का मुजरा लेय
जैसी जाकी चाकरी, उसको वैसा ही देय'--रे मेरे०

दोहा-साहित्य (पत्रों में लिखे जान वाले दोहे)--पत्रों का मानव जीवन की भावनाओं के आदान-प्रदान से बहुत गहरा संबंध है। प्राचीन काल में जब पढ़ना-लिखना सामान्य जन के लिये नहीं था और आवागमन के साधन भी विकट थे, तब की, उन पत्रों की शैली तथा सामग्री आज अध्ययन तथा मनो-विनोद का कारण बन सकती है। उनमें बहुत घनी पीड़ा और मूल्यवान् अपनापन था। हमारी ग्रामीण नारियाँ जो प्रायः अशिक्षिता ही होती थीं और उनकी अपनी भावनाओं के अभिव्यक्ति के साधन भी सीमित थे, पति व्यापार के लिये परदेस जाते थे, अतः उनकी कुशल-क्षेम पाना तथा अपनी विरह-व्यथा का संदेश भेजना उनके लिए एक समस्या हो जाती थी। वह भोली नारियाँ जो स्वयं पत्र भी नहीं लिख सकती थीं, अपनी भावनाओं को लिखित रूप में व्यक्त करने में असमर्थ थीं। नारी सदा से ही भावना प्रधान होती है। पहले दोहों में लिखने की प्रथा थी जिनमें जन-साहित्य की विशेषता तो है ही, साथ ही इनसे नारी-हृदय के प्रेम का भी परिचय मिलता है। यह दोहे उसी प्रेमाभिव्यक्ति के माध्यम हैं। तब दोहों के रूप में ही भाव-प्रदर्शन का प्रचलन था। इनमें उनकी अनोखी सूझ और प्रेम की गहनता ओत-प्रोत रहती है। प्राचीन महिला-जगत् में महिलाएँ अपने स्मृति-पटल पर इनको अंकित रखती थीं और इनका अपने दैनिक जीवन में समय-समय पर प्रयोग करती थीं। हृदय की घुटन तथा अपनी कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के साधन सीमित थे, परन्तु विरहिणी-स्त्री की वेदना असीम थी। पत्रवाहन के लिए संदेशवाहक-मनुष्य ही नहीं होते थे वरन् पक्षी भी पाले जाते थे। मानव-जीवन की भावनाओं के आदान-प्रदान में इनका विशेष योगदान है। इनके अभाव में भावनाएँ पंगु होती हैं। पक्षियों द्वारा समाचार भिजवाने का हमारे प्राचीन-साहित्य में बहुत वर्णन है। कबूतर इस कार्य के लिए बहुत व्यवहार में आते थे। नल के पास दमयन्ती ने हंस के द्वारा पत्र भेजा था। आज कल जापान में कबूतरों द्वारा बहुत काम लिया जा रहा है। आधुनिक संसार को यह जापान की आविष्कृत बात मालूम होती है, पर भारत के लिए यह नई नहीं है। तोते भी पत्र ले जाते थे। वे घर की, प्रिय की विरह-दशा का वर्णन करते पाये गये हैं। वे बहुत प्रेमपारखी तथा अनुभवी थे तथा रूप-गुण वर्णन एवं विरह-वर्णन करने में निपुण होते थे। इनसे संबंधित बहुत बड़ी-बड़ी प्रेम-गाथाएँ भी मिलती हैं।

यों तो पत्रों के अनेक रूप मिलते हैं—व्यापार-संबंधी, कुशल-क्षेम के घरलू

पत्र, तथा विवाह-शादी में निमंत्रण के रूप में—पीली चिट्ठी, पति-पत्नी के पत्र तथा मृत्यु-सूचक पत्र जो कोनाकटी चिट्ठी कहलाती है। यहाँ पर हम केवल उन्हीं प्रेम-पत्रों पर ध्यान दे रहे हैं, जिनमें दोहे भी लिखने का विशेष प्रचलन था।

प्रेम, मानव की शाश्वत-भावना है और आँखों से ओझल होने पर तो इसकी अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम पत्र ही रह जाता है। प्रेमी जगत् में इसका मुख्य स्थान है और रहेगा।

प्रारंभ के पत्रों में जब कि लोग अधिकांश निरक्षर भट्टाचार्य होते थे, वे स्वयं पत्र न लिख सकने के कारण आवश्यकता होने पर किसी पढ़े-लिखे व्यक्ति से लिखाते थे। पत्र, सीधा पति या पत्नी को न लिखवा कर अपने लल्ला, बहन या माँ को लिखवाते थे। उनका संबोधन होता था मुन्नी के बाप, नन्दी के बीर, देवर जी के भाई। पति का उत्तर भी माँ या पत्नी के नाम होता था। लल्ला की अम्मा को मालूम हो—आगे समाचार यह है कि यहाँ सब कुशल है, आप की कुशल श्री भगवान् जी से नेक चाहती हूँ। और इसके बाद वह घर-गृहस्थी और गाँव के हर पहलू पर प्रकाश डालती थीं—गाँव में कौन मरा, कौन पैदा हुआ—किसकी शादी हुई, किसके बच्चे हुए, यहाँ तक कि किसके घर झगड़ा हुआ, अपने घर में कितने प्रकार के अचार पड़े, गाय, भैंस कितना दूध देती हैं, कौन सी गाय ब्याने वाली है, किसके घर भात देना है। इनमें व्यक्तिगत प्रेम नहीं प्रदर्शित किया जाता था। अंत में लिखती थीं—लल्ला और मुन्नी आपको याद करते हैं मानों लल्ला और मुन्नी की याद में ही वह अपनी याद मिला देती थी।

यह तो साधारण पत्नी का पत्र होता था। पर तब के प्रेम-पत्रों में यह मुख्य विशेषता होती थी कि वह पत्रों में व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व चाहते थे, बल्कि यह कहिये कि उनमें कलेजा ही निकाल कर रख दिया जाता था। इन पत्रों की कागज और स्याही भी साधारण भौतिक रसायनों से न बन कर दिल और आँखों से तैयार की जाती थी। आँखों की स्याही को घोल कर रोशनाई बनाकर लिखे हुए पत्र की विशेषता होती थी कि 'जब तुम इसे देखो, मरी आँखें तुम्हें देख लेंगी'—प्रेमिका लिखती है—

लिखती हूँ पत्र खून से स्याही न समझना,
मरती हूँ तेरी याद में जिन्दा न समझना।

स्त्रियों में सदा से ही मौखिक ज्ञान की विशेषता रही है। उनकी स्मरण-शक्ति विशेष तीव्र होती है और वह बहुत ही प्रत्युत्पन्नमति की होती हैं। प्रेम तो

उनके जीवन में सर्वत्र व्याप्त रहता है। वह प्रेम की अभिव्यक्ति की भावना, कविता या दोहों के रूप में करती हैं। उनके सोचने का माध्यम भी पत्र ही था। स्वयं न लिख सकने के कारण वे जाने वाले परदेसियों के द्वारा ही समाचार कहलाती थीं। प्रिय की दिशा में जाने वाला परदेसी भी उनके लिये प्रिय हो जाता था। वह उसके सम्मुख गंभीरता से अपने मनोभावों को व्यक्त करती थीं। उधर परदेसी भी उनको जो वचन देता था, उसको सच्चाई से निभाता था। वह सुंदर विश्वासों का युग था। ऐसी ही राह चलते लोगों से वह पत्र लिखवा लेती थीं जिनका वर्ण्य-विषय होता था उनकी प्रिय के लौटने के संबन्ध में उत्सुकता, उनके देर से लौटने के कारण वह उनको बेमुरव्वत कह कर उलाहना देती थीं। उनका देर तक खबर न लेना 'मुंह देखे की प्रीत' कहलाती थी। साथ ही वह विरहावस्था का हाल भी लिखाती थीं कि वह कितनी कृशगात हो गयी हैं। प्रिय की दिशा में जाने वाला वह परदेशी जो प्रिय को संदेश देने वाला है—नायिका को बहुत प्रिय होता था। प्रेम से सराबोर यह पत्र वह बहुल प्रेम से भेजती थीं क्योंकि उन सरल हृदयों का यह अनुमान रहता था कि उनका प्रिय, पत्र को देख कर तथा उनके हृदय के भावों को यथातथ्य समझ कर, उनकी आँसू भरी आँखों को याद कर तुरंत ही चला आयेगा। प्रेम-पत्रों को भेजने और पढ़ने की यह साधारण प्रथा थी।

इसके बाद स्वयं चिट्ठी बाँचने व लिखने की योग्यता रखने पर तो वह गुलाबी रंग के लिफाफे में गुलाबी कागज पर उसमें सेंट लगा कर और गुलाब की पंखुड़ियाँ रख कर भेजती थीं। इनमें भी दोहों का माध्यम अपनाया जाता था। तब साहित्यिक अध्ययन से प्रभावित होने के कारण पत्रों की भाषा व शैली में भी उनके अंशों का ही प्रयोग होता था। उनमें स्पष्ट भावना व्यक्त नहीं होती थी, वरन् प्रकृति-वर्णन के माध्यम से तथा उससे तादात्म्य कर भूमिकाएँ बाँधी जाती थीं। उनमें प्रयुक्त भाव और उपमाएँ साहित्य से ही ली गई होती थीं —यह स्वाभाविक नहीं कि वे हृदय से कम संबंधित एवं बुद्धि से, पुस्तकीय ज्ञान से अधिक संबंधित होती थीं। इसका कारण पर्याप्त अवकाश और नये-नये साहित्य अध्ययन का प्रभाव ही कहते हैं, इनमें दोनों को लिखने की भी बहुत प्रथा थी। गद्य से अधिक पद्य को अभिव्यक्ति का साधन मानते थे। एक दोहे में वह अपनी स्थिति का वर्णन करती है कि मैं तुम्हारे बिना निर्जीव सी हूँ—

शीशी भरी गुलाब की भेजूं किसके हाथ,
धड़ हमारा यहाँ पड़ा, दिल तुम्हारे पास।

इन दोहों का विषय प्रेमाभिव्यक्ति ही थी । परदेसी के प्रति जो निर्मोही है, कोई उलाहना देती है तथा अपने वियोगी हृदय का यथातथ्य और स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत करती है । वह कहती है—

हरा नगीना दम दमा, उँगली में दुख देय,
ऐसे के पाले पड़ी, हँसे न उत्तर देय ।

प्रतीक्षा की भी कोई सीमा होती है । हरे-भरे वृक्षों को मुरझाया देख कर यौवन और जीवन दोनों के गुजर जाने का आभास हो जाता है । वह अपने संदेह को पत्र में प्रकट करती है—

नदी किनारे रूखड़ा, पात गये सब सूख,
गोरी सूखे बाप के, तोरी कैसा फूल ।

प्रेम की अधिकता से कागज़ और उसको व्यक्त करने की उसकी असमर्थता का बोध होना स्वाभाविक है । इसी भाव को बहुत सुंदर शब्दों में व्यक्त करती है—

कागज थोड़ा हित घना, क्योंकर लिखूं बनाय,
सागर में पानी घना, गागर में न समाय ।

प्रिय का पत्र न आने पर वह व्याकुल हो उठती है तथा उसका विश्वासी हृदय भी एक बार आशंकित हो उठता है —

साजन पाती ना लिखी, बहुत दिना गये बीत,
हम जानत हैं जगत में, मुख देखे की प्रीत ।

फिर वह कहती है कि आपके विरह में मेरी क्या दशा है—यह केवल अनुभव करने की बात है, कहने की नहीं—

कहन सुनन की है नहीं, लिखी पढ़ी नहीं जात,
अपने जी से जानिये, मेरे जी की बात ।

एक दोहे में वह कहती है, प्रियतम ही तो सुहागिन के जीवन की एकमात्र शोभा है । वह अन्य उपमाओं के साथ तुलना करते हुए उसके महत्व को समझाती है—

डाल की शोभा कमल है, घन की शोभा दान,
मेरी शोभा आप हैं, जैसे मुख में पान ।

कहीं पर वह लिफाफे को संबोधित करके कहती है—

चला जा रे लिफाफे तू कबूतर की चाल,
मोहब्बत होगी गर, तो देंगे जवाब ।

उसे पूर्ण विश्वास है कि उसका प्रेमी, प्रेम-विभोर होकर अवश्य ही उत्तर देगा। उसकी दृष्टि में प्रेम का आदर्श बलिदान ही है—

प्रीति ऐसी कीजिए, जैसे लोटा डोर,
गला फंसाबे आपना लावै पानी बोर।

यहाँ पर बहुत मनोवैज्ञानिक चित्र है, मनुष्य जब कहने या लिखने बैठता है तो अपनी असमर्थता का अनुभव करता है—

लिखना था सो लिख दिया, लिखना था कुछ और,
कलम हाथ से छूट गया, कागज है बेगौर।

इस प्रेमविभोरावस्था में भावुकता के कारण वह बहुत कुछ न कहने वाली बातें तो लिख जाती है और लिखने वली बातें उससे छूट जाती हैं। तब के पत्रों में आर्थिक व पारिवारिक कष्टों व दुःखों का वर्णन, स्त्रियों के प्रेम की सच्चाई का वर्णन, बहुत ही मर्मस्पर्शी भावनाओं के साथ मिलता है।

उस समय के पत्र, व्यापार-संबंधी या साधारण होते थे जो नीरस और भावशून्य होते थे तथा स्पष्ट शैली में होते थे। उस समय पारिवारिक घरेलू पत्रों का भी एक निश्चित रूप था, उदाहरणार्थ—पिता के पत्र पुत्री के नाम, माता के पुत्री के लिये, इनकी शैली उपदेशात्मक होती थी तथा इनके द्वारा समाज में प्रचलित मान्य, नैतिक व सामाजिक शिक्षाओं का पता चलता था जो साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से अपना मूल्य रखते हैं। तब लोगों का ध्येय आदर्शवादी जीवन व्यतीत करना तथा करवाना होता था जो देश, काल और सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप होते थे। उनमें सामाजिक मान्यताओं का उल्लेख मिलता है।

आज के पत्रों में परिस्थिति और वातावरण के अन्तर के कारण अभिव्यक्ति में भी अन्तर आ गया है। इनमें उस समय की नारी की मनोदशा की प्रतिक्रिया है। तब नारी दबी हुई, दीन, दुर्बल, असहाय व पराधीन थी जब कि आज की नारी शिक्षित होने के साथ ही साथ, आत्मविश्वासी, स्वतंत्र और सबल है। आज प्रेम किताबी ही नहीं, कुछ अंशों में व्यावहारिक हो गया है। यद्यपि नारी ने संघर्ष करके बहुत से बंधन तोड़ डाले हैं पर फिर भी प्रेम और विरह, ये दो शाश्वत भाव अब भी वर्तमान हैं और सदैव रहेंगे।

युगों के परिवर्तन के बाद उनमें किंचित् मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। आज के व्यस्त जीवन में किसी को भी इतना समय नहीं और न ही आज का युग केवल प्रकृति-चित्रण का है। अब भाव सरल शब्दों में प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त किये जाते हैं, शब्दों के जाल में ही उलझे नहीं रह जाते।

यह सरल, स्पष्ट शब्दों की अभिव्यक्ति अपना प्रभाव डालती है। आज के स्वच्छन्द और शिक्षित वातावरण में पत्र-व्यवहार एक अति साधारण घटना है, अतः वह जीवन का एक स्वाभाविक अंग बन गया है और इसी से यह कृत्रिमता और साहित्यिकता से भिन्न है।

पत्रों का यह क्रमिक विकास साहित्य व समाज के अध्ययन में सहायक सिद्ध हो सकता है। इनका संग्रह, विश्लेषण व अध्ययन उपयोगी है। कुछ अन्य दोहों को यहाँ दिया जा रहा है, जो इस प्रकार हैं—

हाय दई कैसी भई, अनचाहत का संग
दीपक को भाये नहीं, जल जल मरे पतंग।
प्रीत करै ऐसी करै, जैसो लीलो रंग,
धोये से छूटै नहीं, जाय प्राण के संग।
सक्कर भरी परात, चाखो एक डली,
फूहड़ की सारी रैन, चतर पिया की एक घड़ी।
आँख की स्याही को, स्याही में मिला कर खत लिखा,
पढ़ते समय आँखें हमारी, देख लेंगी आपको।
प्रीति ऐसी कीजिए, जैसे कच्चा सूत,
उलझे से सुलझे नहीं, गाँठ पड़ी मजबूत।

खड़ीबोली
का
लोक-नाट्य

७

लोक-नाट्य से हमारा तात्पर्य उन नाटकों से है जिनके अभिनय के लिये रंगमंच और प्रसाधन की तैयारी नहीं करनी पड़ती। इनमें संगीत प्रधान होता है। लोक-नाट्यों का जन-जीवन में एक विशेष महत्व है। विशेषतया लोक-समाज में उल्लास के क्षणों को इनके द्वारा ही उचित मान्य अभिव्यक्ति मिलती है। इनमें जीवन का यथातथ्य चित्रण मिलता है। यथार्थवाद व आदर्शवाद की अधिकता तथा कल्पना का अंश कम होना ही इनकी विशेषता है।

"लोक-नाटक सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक-कथानकों, लोक-विश्वासों और लोकतत्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।[१]"

"संसार के प्रायः सभी देशों में नाटक के आदि रूप का उदय किसी न किसी धार्मिक भावना अथवा चेतना के फलस्वरूप हुआ है। वीरपूजा की भावना अथवा धार्मिक आदेश जो कि प्रायः प्राणिमात्र के हृदय में किसी न किसी अंश में निहित रहता है, धीरे-धीरे नाटक का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि अपने आदि रूप में यह नाटक बड़ा ही साधारण और अपरिमार्जित होता है।[२]"

जन-जीवन में इन नाटकों का एक विशेष महत्व था तथा हिन्दीभाषा-भाषी प्रदेश के प्रांत-प्रांत में लोगों की सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी भिन्न-भिन्न हुआ करती थीं। वह अपनी रुचि के अनुसार ही अपने इष्ट देवता तथा उनसे संबंधित पौराणिक-कथा चुना करते थे। इन नाटकों का उद्देश्य न केवल मनोरंजन वरन् जनता का नैतिक उन्नयन करना ही होता था। राम-लीला और रासलीला इन नाटकों का एक सामान्य रूप है जो थोड़े बहुत अंतर के साथ सभी जगह प्रचलित है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम देखते हैं कि मानव आत्माभिव्यंजन करने वाला प्राणी है। बिना शारीरिक क्रियाओं, मुख-मुद्राओं और कायिक अभिनय से उसके

---

१. भारतीय नाट्य-साहित्य---संपादक : डॉ० नगेन्द्र, पृ० ८४

२. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन—वेदपाल खन्ना, पृ० १५

संतुष्टि नहीं होती। जब हम शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति करने में असमर्थ रहते हैं तो स्वाभाविक रूप में हाथों से स्थिति स्पष्ट करते हैं तथा वह भी अभिनय का ही एक रूप है। आदिनिवासी तो इस प्रकार भाव-विभोर होकर नाच भी उठते थे। सभ्यता और संस्कृति के साथ धीरे-धीरे मानव ने अपनी भावनाओं का नग्न-प्रदर्शन संयत कर लिया और अब वह सभ्य रूप में संयमित अभिव्यक्ति करता है। यही संयत अभिव्यक्ति नाटकों का आदि-स्रोत मानी जाती है। इनमें शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का योग है।

भारतीय नाटकों की तथा अभिनय कला की उत्पत्ति धार्मिक समारोहों तथा पर्वों पर ही विशेष रूप से हुई है। लोकनाट्यों के यही धार्मिक व सामाजिक रूप शनैः-शनैः अनुभव के द्वारा तथा शिक्षा के द्वारा शास्त्रीय नाटक का रूप ले लेते हैं। लोक-नाट्य में हमें नृत्य, संगीत और अभिनय, यह तीनों तत्त्व मिलते हैं। यह तीनों ही तत्व उद्दाम प्रेरणाओं की, कामनाओं की कलापूर्ण अभिव्यक्ति हैं। इन लोक-नाट्यों में आधुनिक एकांकी नाटकों के मूल-तत्त्व, संक्षिप्त, अभिनय, रंगमंच और कथोपकथन आदि अविकसित रूप में मिल सकते हैं। यह एकांकी नाटक बहुत ही शक्तिशाली माध्यम है। परिष्कृत साहित्यिक नाटकों की आधारभूमि यही लोक-नाट्य हैं।

"लोकनाट्यों की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है। लोक-जीवन से उसका अंग-अंगी का नाता है। वाह्याडंबरों और नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं के बिना लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास केवल 'लोकधर्मी नाट्य शैली' में ही संभव है। लोकवार्ता का एक स्वतंत्र अंग होने के कारण लोकजीवन में इन नाटकों का अपना अनोखा आकर्षण है।[१]"

"हिन्दी नाट्य परम्परा का मूलस्रोत यह जन-नाटक ही है जो 'स्वांग' आदि नाम से प्राचीन रूप में अब तक विद्यमान हैं। क्रमशः इन जन-नाटकों की एक शाखा ने विकसित होकर साहित्यिक रूप धारण किया। इस चिरन्तन प्रवाह में काल तथा देश के संयोग से संस्कृत आदि भाषाओं के स्रोत भी आ मिले। इस सम्मिलन से यह प्रभाव अधिकाधिक रम्य तथा गतिशील होता रहा है। निष्कर्ष यह है कि हिन्दी नाटक मौलिक है, अन्य भाषाओं से अपहृत नहीं।[२]"

लोकनाट्यों की विशेषता उनके विभिन्न अंगों में स्पष्ट दिखायी पड़ती है

---

१. लोकधर्मी नाट्य परम्परा—श्याम परमार, पृ० ७

२. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास—डॉ० दशरथ ओझा, पृ० ४२

जिनके प्रत्येक पक्ष का हम विस्तृत अध्ययन आगे करेंगे। यहाँ स्थूल रूप में कुछ विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं जो सामान्यतः मिलती हैं।

इन समस्त नाट्यों में व्यक्ति का महत्व नगण्य है। समूह, जाति अथवा समाज़ की भावनाएँ मंडलियों के संयुक्त अभिनय द्वारा व्यक्त होती हैं। अभिव्यक्ति का माध्यम भावावेश से संबंधित होने के कारण पद्यमय अधिक और गद्यमय कम होता है। गद्य भी स्थानीय और सरल रंगों से पूरित होता है। पद्य में साधारण बातों का उल्लेख एवं लोकगीतों की बँधी-बँधायी रूढ़ शैली का प्रवाह होता है।

खड़ीबोली के प्रचलित विभिन्न रूपों में—नौटंकी, स्वांग, भगत और ख्याल आदि प्रचलित रूप हैं। रामलीला और रासलीला तो इन नाटकों का एक सामान्य रूप है, जो थोड़े बहुत अन्तर के साथ सभी जगह प्रचलित है।

खड़ीबोली प्रदेश में नाटकों का एक रूप नौटंकी भी प्रचलित है। इसको संगीत भी कहते हैं। 'सांगीत' में संगीत और पद्य की प्रधानता है। इसका विषय रामायण, महाभारत, पुराणों एवं महापुरुषों की घटनाओं से लिया गया है। कभी-कभी लौकिक वीरों और प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का प्रदर्शन भी रहता है। इनमें वार्तालाप का माध्यम पद्य रूप में ठेठ लोकभाषा ही रहती है। पात्र, गद्य कम ही बोलते हैं।

'नौटंकी—स्वांग और लीला के समान ही नौटंकी भी लोकनाट्य का प्रमुख रूप है। इसका प्रारंभ मुग़लकाल से पहले का है। रामलीला के समान इसका रंगमंच भी अस्थिर, कामचलाऊ और निजी है। इसमें छोटे-छोटे बालक, स्त्रियों का वेश धारण करते हैं और उनका अभिनय किया करते हैं। "नौटंकी का वर्ण्य-विषय भी पौराणिक आख्यान ही होते हैं। लौकिक वीर प्राणी, साहसिक, भक्त पुरुषों के कार्यों से भी संबंध होता है। उन्हीं का इनमें अभिनय व प्रदर्शन होता है। उदाहरण के लिए—गोपीचन्द, हक़ीकतराय, पूरनभगत, रूपबसंत आदि।[१]"

खड़ीबोली लोक-जीवन में 'स्वांग' जिसे साँग भी कहते हैं, जनता को बहुत प्रिय है। एक तरह से इसे 'ओपेनएयर थियेटर' कहा जाना चाहिये। 'स्वांग भरना' विचित्र वेशभूषा पहनकर नक़ल करना या अभिनय करना कहलाता है। 'स्वांग भरना' हिन्दी का प्रचलित मुहावरा भी है। लड़के ही स्त्री का भी अभिनय करते व नाचते हैं।

"पश्चिमोत्तर उत्तरप्रदेश दिल्ली और विशेषतः पंजाब के दक्षिणी भागों

---

१. हिन्दी साहित्य कोष—ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, पृ० ४२५

में नायक का एक तीसरा भाग भी प्रचलित था जिसे नौटंकी या 'सांगीत' कहा जाता था। रास धारी मंडलियों के समान ये नौटंकियाँ भी दूरवर्ती स्थानों की यात्रा करके अपनी कला का प्रदर्शन करती थी। रासलीला की भाँति इनका भी अपना घरेलू ढंग का कामचलाऊ-सा रंगमंच होता था। इन सांगीतों में संगीत और पद्य की प्रधानता होती थी और अधिकतर रामायण, महाभारत तथा पुराणों के महापुरुषों के जीवन की घटनाओं को इन नौटंकियों की लीलाओं का विषय बनाया जाता था। कभी-कभी लौकिक वीरों और प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का प्रदर्शन भी इनमें रहता था। गोपीचन्द, पूरनभगत और हक़ीकतराय की कहानियाँ, जो कि आज भी पंजाब में बड़ी लोकप्रिय हैं, इन नौटंकियों में बहुत प्रचलित थी।[१]"

'नौटंकी' अथवा 'सांगीत' के उदय के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। जैसा कि डॉ० सोमनाथ गुप्त का विचार है, सांगीत शब्द की व्युत्पत्ति 'संगीत' शब्द से हुई होगी। नौटंकी या सांगीत में संगीत की प्रधानता होने के कारण इस मत की पुष्टि भी हो जाती है। अथवा 'सांगीत' शब्द को साँग (नकल) के अर्थों में ग्रहण कर लिया गया होगा। मध्यकाल में प्रचलित आमोद-प्रमोद के साधनों में 'सांग' या 'स्वांग' का विशेष स्थान है।

"सरल जनता में किसी बात को प्रभावोत्पादक ढंग से कहने-सुनने के लिये अनुकरण—स्वांग को अपनाया जाता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति अथवा घटना का चित्रोद्घाटन ही नहीं होता बल्कि ऐसा करते हुए आदमी दूसरों का पर्याप्त मनोरंजन भी करता है। स्वांग गाँवों में बड़ा लोकप्रिय है। स्वांग अनुकरण (नक़ल) का ही परिवर्तित-परिवर्द्धित रूप हैं। किन्तु नक़ल प्राय: हास्य विषय को ही लेकर की जाती है जब कि स्वांग की परिधि में आने वाले विषय हैं— धार्मिक (मोरध्वज, नरसी, हरीचन्द), ऐतिहासिक अथवा सामाजिक (प्रताप शिवाजी, अथवा दयाराम, रघुवीरसिंह आदि), स्वांगों में राष्ट्रीय अथवा स्थानीय चरित्रों का चित्रण रहता है, या उनका आधार सत्य वा अर्धसत्य प्रेमगाथाएँ हुआ करती हैं।[२]"

"इन सांगों में जीवन से संबंधित सभी मूल भावनाओं का चित्रण रहता है किन्तु इनमें अधिकतर वीर, शृंगार, करुण, अथवा भक्ति की भावनाओं का ही विस्तार किया जाता है। कदाचित् 'सांग खेलना' वाक्य में ध्वनि है कि

१. हिन्दी नाट्य साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन—वेदपाल खन्ना, पृ० १७
२. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—डॉ० सोमनाथ गुप्त पृ० १६

ग्राम्यों में स्वांग, वीर-योद्धाओं के रण-कौशल की अनुकृति के रूप में ही चले । कुरुप्रदेश में स्वांगरचयिता कवि काफ़ी संख्या में हुए हैं, इनकी शिष्य परम्परा भी विशाल है ।"[१] सांग नाटकों में प्रायः सभी विषयों का समावेश मिलता है जिनमें पौराणिक ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनैतिक मुख्य हैं ।

स्वांग में शृंगार रस भी प्रधान होता है तथा लौकिक-प्रेम की भी प्रधानता मिलती है । इनकी अभिनयव्यवसायी मंडली गाँव-गाँव में भ्रमण करती हुई दिखायी देती है । स्वाँग का ही दूसरा नाम संगीत नाटक है । इन नाटकों में ही सुल्ताना डाकू से लेकर भर्तृहरि और अलाउद्दीन बादशाह से भक्त पूरनमल जैसे महात्मा बनाये जाते हैं । इसमें अभिनेता नृत्य-कुशल होते हैं और संपूर्ण कथानक का अभिनय नृत्य के द्वारा प्रदर्शित करते हैं । इन्हें संगीत का पूरा ज्ञान होता है तथा सभी रागों के गीत इन्हें कंठस्थ होते हैं । इनमें कथोपकथन भी कविता के माध्यम से होता है । ये लोग भजन, गज़ल, गरबा, रास, दुहा, दोहरा, साखी, सोरठा, छप्पय, रेख़्ता आदि का प्रयोग करते हैं ।

"स्वांग नाटक के मुख्यतः दो रूप प्राप्त होते हैं—पूर्वी और पश्चिमी । पूर्वी रूप—हाथरस, एटा आदि ज़िलों में प्रचलित है और पश्चिमी रूप हरियाणा और रोहतक में । पूर्वी रूप के आधुनिक कवि नथाराम और पश्चिमी के लक्ष्मी एवं हरदेवा माने जाते हैं । हरियाणा ब्रजभूमि और मेरठ कमिश्नरी के विस्तृत भू-भाग में लोकनाटकों की यह परम्परा शताब्दियों से निरन्तर चली आ रही है ।"[२]

"यह स्वांग-परम्परा शताब्दियों से मौखिक आ रही थी । लेखबद्ध स्वांग का प्रमाण १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिलता है । पं० रामग़रीब चौबे स्वांग की व्युत्पत्ति के संबंध में लिखते हैं कि अम्बाराम नामक एक गुजराती ब्राह्मण सहारनपुर में निवास करते थे । सर्वप्रथम आधुनिक शैली में उन्होंने स्वांगों के नामों की रचना की और सन् १८१९ के आसपास इनका अभिनय हुआ ।"[३]

उपलब्ध स्वांग-साहित्य हाथरस और रोहतक की दो शैलियों में लिखे जाने के कारण दो रूपों में मिलता है । देहात में यह वार्ता अति प्रचलित है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में दीपचन्द नामक स्वांगी था । उसमें काव्य-

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, १६ वाँ भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ५०५

२. भारतीय नाट्य साहित्य—संपादक : डॉ० नगेन्द्र पृ० ८३

३. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास : डॉ० दशरथ ओझा, पृ० ३६

प्रतिभा के साथ-साथ अभिनयकला संबंधी गुण भी थे। उसने अश्लील और श्रृंगारी स्वांगों का बहिष्कार करके वीररसपूर्ण स्वांगों की रचना की और जनता में वीरता के प्रति उत्साह पैदा किया। उसकी शिष्य-परम्परा रोहतक में अभी तक चली आ रही है। उसके नाटक पौराणिक, राजनीतिक तथा सामाजिक होते हैं। हास्य-रस का स्वाद स्थान-स्थान पर मिल जाता है।

आजकल जनसमाज में स्वांग के कई रूप प्रचलित हैं। आधुनिक स्वांग नाटकों में गद्य का प्रवेश स्पष्ट रूप से साहित्यिक नाटकों का प्रभाव है यथा—नौटंकी, निहालदे, हीररांझा, नवलदे। स्वांग के अतिरिक्त होली के समय ग्रामीण जनता 'भांड' नामक नाटक द्वारा मनोविनोद करती है।

"नौटंकी का कथानक प्रणय वीरता, साहसपूर्ण घटनाओं से भरा रहता है। वह किसी लोकप्रसिद्ध वीर, साहसी या भागवत पुरुष की कथा पर अवलंबित रहता है। इसमें अनेक स्त्री-पुरुष पात्र होते हैं। स्त्री-पात्रों का अभिनय या तो विवाहिता या कुमारी स्त्रियाँ करती हैं अथवा वेश्याएँ करती हैं। वेश्याएँ दृष्टांत में, मंच पर आकर अपने नृत्य-गान, हाव-भाव, मुद्राओं से जनता का मनोरंजन करती हैं और नैपथ्य में अभिनेताओं को रूप-सज्जा आदि करने का अवकाश देती हैं। रंगभूमि में एक ओर गायकों, वाद्य-वादकों का समूह भी रहता है जो अभिनय, संवाद, नृत्य की तीव्रता, उत्कटता बढ़ाता रहता है। तबला और नगाड़े का विशेष प्रयोग होता है। तबले के तालों और नगाड़े की चोटों की गूँज रात में मीलों सुनाई पड़ती है जिसके आकर्षण से सोते हुए ग्रामीण भी नौटंकी देखने पहुँच जाते हैं। रुचि-वैचित्र्य के समाधान, स्वाद के परिवर्तन और शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिये हास्यपूर्ण प्रसंगों की योजना रहती है जिसमें नारी-पुरुष के रूप में पात्र प्रहसन उपस्थित करते हैं। प्रायः संवाद पद्यप्रधान होते हैं। अभिनेता मंच पर दर्शकों की ओर जा-जाकर उत्तर-प्रत्युत्तर देते हैं और प्रश्न करते हैं। इस प्रकार संवाद प्रायः प्रश्नोत्तरात्मक होते हैं। उनमें उत्तेजना, साहस और दर्पपूर्ण उक्ति का बाहुल्य और प्रेम-प्रसंगों का आधिक्य रहता है। अधिकतर किसी वीर नायक को प्यार के फाँस में फँसा दिखाया जाता है जिसके कारण उसका पतन हो जाता है। अन्त में परिणाम, उपदेशपूर्ण दिखाया जाता है। उदाहरण के लिये हम 'सुलताना डाकू' को ले सकते हैं। जहाँ भक्त-चरित को दिखाया जाता है वहाँ भक्त के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ दिखायी जाती हैं, अंत में उसकी विजय प्रदर्शित की जाती है। यद्यपि नौटंकी के समाप्त होने तक उद्देश्य प्रकट कर दिया जाता है तथापि सूत्रधार अंत में फिर मंच में आकर भलाई करने और बुराई से बचने, सत्य-धर्म के निबाहने की शिक्षा देता है।

नौटंकी रात के ८ बजे से सवेरे ५ बजे तक चलती है।"[1]

प्रायः नौटंकी कार्तिक-मार्गशीर्ष अथवा चैत्र-वैशाख के महीनों में हुआ करती है। मेलों के अवसरों पर इनका विशेष आयोजन होता है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों—फ़र्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर, एटा, इटावा, मैनपुरी, मेरठ, सहारनपुर आदि की नौटंकी विशेष प्रसिद्ध हैं। ग्वालियर की नौटंकी भी प्रख्यात हैं। रास मंडलियों के सदृश नौटंकी की भी मंडलियाँ होती हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थानों पर घूम-घूमकर नौटंकी के प्रदर्शन किया करती हैं। नौटंकी ग्रामीण जनता की नाट्य-वृत्तियों का समाधान करने वाले मुख्य साधनों में अत्यधिक महत्वशाली हैं।

नौटंकी, स्वांग, भगत प्रायः पर्यायवाची हैं। भगत, भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम है। स्वांग में प्रारंभिक सरस्वती वंदना रहती है। स्वांग का धार्मिकता से कोई संबंध नहीं, हालाँकि स्वांग मूलतः संगीत रूपक है। इसमें प्रसिद्ध लोककथा खेली जाती हैं। शृंगार-रस-प्रधान अथवा प्रेमगाथा की कोटि की रचनाएँ ही प्रधानता पाती रही हैं। प्रेमलीला अथवा रोमांस का संस्पर्श किसी न किसी रूप में होना ही चाहिये। नौटंकी मूलतः किसी प्रेम कहानी की केवल नौटंक वाली कोमलांगी नायिका रही होगी।

इन सब का मुख्य छंद चौबोला है। इसके दो रूप मिलते हैं—लम्बी तान और छोटी तान। प्रत्येक चौबोल का आरम्भ दोहे से होता है जिसका अन्त चरण कुण्डलियों से होता है। इसके सहकारी वाद्यवृन्दों में नगाड़ा अनिवार्य है।

लोकनाट्यकार कथानक का कोई भी बंधन नहीं मानता। यद्यपि अधिकांश सामाजिक-जीवन व समस्याओं से ही संबंधित होते हैं पर वह आवश्यकता पड़ने पर तथा उपयुक्त प्रतीत न होने पर अपना कथानक पुराणों से भी ले सकते हैं तथा इतिहास के अंश से भी ले सकते हैं। यह किसी लोक-कथा तथा कल्पना से भी काम चलाता है। वे किसी काल्पनिक राजा या रानी का संबंध किसी भी राजघराने से जोड़ सकता है क्योंकि उसका उद्देश्य इतिहास कहना नहीं अपितु भावाभिव्यक्ति है और यही कारण है कि उसका कथानक इतिहास सिद्ध न होते हुए भी अमर रहता है। उसके लिये देश-विदेश का भी कोई बंधन नहीं रहता। वस्तुतः वह समाजवादी दृष्टिकोणों को लेकर लिखता है। कथानक के

---

१. हिन्दी साहित्य कोष—ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृ० ४२५

द्वारा समाजवाद के सिद्धान्तों का प्रचार करने का लक्ष्य दिखायी पड़ता है— उदाहरण के लिये ज़मीदारों का अत्याचार, भाई-भाई के झगड़े, स्त्री-पुरुष के झगड़े, पुरुषों की कामान्धता तथा उसकी शिकार स्त्रियाँ । खड़ीबोली प्रदेश में भी अन्य स्थानों की भाँति स्त्री-शिक्षा का अभाव है । युग-युग से पुरुष जाति ने स्त्रियों पर कितना भयंकर अत्याचार करके उन्हें घर में ही बंदी बना रखा है, उन्हें किस प्रकार उनके जन्मसिद्ध अधिकारों से अपरिचित रखा है, इन सभी का वर्णन इन नाटकों, नौटंकियों, ख्याल, भगत, लावनी, तथा स्वांग आदि में स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है ।

पुरुषों के व्यभिचार तथा शराब आदि व्यसनों में ग्रस्त रह कर अपने गार्हस्थ्य-जीवन के कर्त्तव्यों की उपेक्षा करने का सजीव चित्रण लोक-नाट्यों में अपने यथार्थरूप में दृष्टिगत होता है । लोकनाट्यों में समाज की अस्वस्थ और दुखदायी स्थिति को जनता के सम्मुख नाट्यरूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य, सुधार ही रहता है । इनमें जमींदारों, साहूकारों, मिल-मालिकों, राजा-महाराजा आदि की पोल तथा उनके वास्तविक चरित्रों का वर्णन रहता है । ग्रामीण किसान, पूंजीपति साहूकार और मिल-मालिक के दुहरे पाटों के बीच में पड़कर किस प्रकार पिसा जाता है, इसका मर्मस्पर्शी चित्रण दिखाया जाता है । इसमें जमींदार और मिल-मालिक, किसान तथा मजदूरों को जोंक की तरह चूसते हैं ।

लोकनाट्यों में, अंग्रेजों के द्वारा शासन में किये गये परिवर्तनों, अत्याचारों तथा सुधारों पर भी ध्यान दिया जाता है । सामाजिक समस्याओं को भी इनमें प्रदर्शित किया जाता है तथा धार्मिक और राजनैतिक समस्याओं को भी अपने दृष्टिकोण से उपस्थित किया जाता है । कुछ नाटकों में भारत के स्वतंत्र होने के बाद का उल्लेख मिलता है । इसके अनेक मनोरम चित्र लोकनाट्यों में उपलब्ध हैं ।

अधिकांश लोकनाट्य प्रेमगाथाओं से संबंधित होते हैं । प्रेम, मानव-जीवन की शाश्वत अनुभूति है जिसकी अपूर्व महिमा है । इसी से संबंधित त्याग, सुख, दुख, सहानुभूति, ईर्ष्या इत्यादि का उल्लेख मिलता है । मानव-जीवन किसी भी परिस्थिति में हो, उसका हृदय प्रेम या विरोध एवं प्रतिक्रिया तथा घृणा से ओतप्रोत रहता है जिसकी उपेक्षा करना देवत्व-गुण है, जो संसार में दृष्टिगत नहीं होता । अतः लोकनाट्य में सबसे स्वाभाविक और अधिक प्रचलित कथा प्रेमतत्व संबंधी मिलती है । इन प्रेम संबंधी लोकनाट्यों में जातिभेद दिखलाया जाता है जिस पर प्रेम की विजय होती है । अनेक संघर्षों के पश्चात् अंत में विजय सच्चे प्रेम की ही दिखलायी जाती है । सच्चे प्रेम के द्वारा, लौकिक-प्रेम को ही पारलौकिक प्रेम का आधार माना जाता है ।

इन कथानकों में कथाप्रवाह होता है यद्यपि प्रारम्भ शिथिल होता है पर मध्य में द्रुत गति, लोकभावनाओं के अनुरूप चलती है। चामत्कारिक अभिनय और अस्वाभाविक कथनों से नाटक के प्रति जनाकर्षण अधिक होता है। जन से संबंधित रीति-रिवाजों, प्रथाओं, मान्यताओं और विश्वासों का बोलबाला सभी तरह के लोकनाट्यों में रहता है। लोकनाट्यों में स्त्रियों की पर्याप्त महत्ता दिखाई गई है। इतिहास एवं पुराण से अनेक योग्य महिलाओं का चारित्रिक इतिवृत्त बनाया गया।

लोकनाट्यों के पात्रों में स्थानीय वैशिष्ट्य अवश्य होता है। प्रत्येक पात्र किसी सामाजिक प्रवृत्ति-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। कला की सूक्ष्मताओं के अतिरिक्त उनमें एक अनगढ़ व्यक्तित्व होता है, जो उनकी स्थूल विशेषताओं के कारण प्रकट होता रहता है। यह अपनी विशिष्टताओं से विभूषित होते हैं, जो प्रायः जाने-पहिचाने एवं प्रचलित समाजगत प्रवृत्तियों के वाहक होते हैं—खूसट, बुड्ढा, सौत, दुर्गुणी पति, ढोंगी साधु, कर्कशा औरत आदि। लोकनाट्यों में पात्रों को अभिनय की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। अधिकतर चार या दो स्त्री-चरित्र रखने से काम चल जाता है। उस समय हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं था अतः अधिकतर मुसलमान ही अभिनय करते थे।

इनमें Prompter (सत्वरक) भी होते थे। वे निर्देशन करते थे और लय आदि सिखाते थे। गाने वालों को अलग-अलग जगह से बुलाया जाता था और कई महीने तक इनका अभ्यास कराया जाता था। स्वांग में, अभिनय में भूल होने पर उसके लिए क्षमा न होती थी और अभिनेता को जला तक देते थे।

स्त्रियों के अभिनय के लिए पुरुष ही वेश धारण करते हैं, अतः स्त्रियों के चरित्र-चित्रण में लालित्य की कमी रहती है। 'विदूषक' अपने हास-परिहास से चरित्र की आन्तरिक बातों पर प्रकाश डालता है। नाट्य की विशेषताओं को प्रकट करने की अपेक्षा उसके द्वारा खलनायक और अन्य पात्रों की विकृतियाँ अधिक सच्चे ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं।

रूप-योजना-प्रसाधन—लोकनाट्यों में लम्बे-चौड़े प्रसाधन, अलंकार, भड़कीले वस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। कोयला, काजल, खड़िया, गेरू आदि पोत कर तथा मुखौट लगाकर एवं रंगीन वस्त्र धारण कर पात्र मंच पर प्रवेश करते हैं।

वेशभूषा—इनमें धोती, अंगरखा, घाघरा, छड़ी आदि का उपयोग होता है। धोती के पहनने तथा छड़ी के धारण करने के ढंग से पात्र राजा या फकीर,

पंडित या कृषक, मंत्री या सिपाही बन जाता है। इनमें सबसे विलक्षण पहरावा ओढ़नी है। ओढ़नी को सिर पर धारण करने की शैली और मुखमुद्रा के परिवर्तनों के द्वारा पात्रों की मनोवृत्ति आंशिक रूप में अभिव्यक्त होती है।

स्वाँगादि के पात्रों की वेशभूषा कभी-कभी बहुत कीमती भी हुआ करती थी। पुरुष चूड़ीदार पाजामा, अचकन, और शादी के समय पहने जाने वाले कमख़्वाब के जोड़े पहनते थे। यह राजसी-पोशाक का काम करती थी। पोशाक पत्तीदारों के घरों से किराय पर भी मिलती थी। यह Make up (मेकअप) करने में भी विशेषज्ञ होते थे। उस समय वह बिल्कुल स्वाभाविक से प्रतीत होते थे। यह लोग असली जेवर भी पहनते थे। अगर किसी कारणवश नहीं पहन सके तो दर्शक उनके अभावों की आलोचना करते थे। इस अवसर पर और भी वास्तविकता लाने के हेतु वातावरण में बहुत-सी नवीन वस्तुओं का निर्माण कर लेते थे, जिसका उदाहरण, हमें देव बन्द में सोरठ का कुआ देखने को मिला। पता चला कि यह सोरठ का सांग खेलते समय सोरठ के पानी भरने के लिए बनवाया गया था, जो अब तक विद्यमान है।

खड़ीबोली प्रदेश में देवबन्द,[1] स्वांगों के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यह खेलने के लिये भी तथा रचयिताओं के लिये भी प्रसिद्ध है। पहिले देवबन्द में होली पर स्वांग खेलने की प्रथा थी। जो स्वाँग खेले जाते थे वह यहीं के रचयिता ही स्वयं लिखते थे। यह लोग पुराना या किसी दूसरे का लिखा हुआ स्वांग खेलने में अपना अपमान समझते थे। अतः हर वर्ष होली के अवसर पर नये-नये स्वांग रचे जाते थे। यह देवबन्द की ही विशेषता थी। यहाँ के जीवित स्वांग रचयिता[2] इसका उल्लेख गर्व से करते हैं। अन्य स्थानों पर मुज़फ्फरनगर, मेरठ आदि खड़ीबोली प्रदेश के ज़िलों में स्वांग का चुनाव व अभिनय करते समय लोग इस पर ध्यान नहीं देते थे और उनके इस कार्य पर कोई आपत्ति नहीं होती थी। उनमें रचयिता की प्रतिभा का अभाव भी था। अब तो इस प्रतिभा का लोप हो रहा है। पिछले २५ वर्ष से देवबन्द में भी इसका अभाव मिलने लगा है। यहाँ पर हम देवबन्द के स्वांग के संबंध में विशेष विस्तार से चर्चा करेंगे।

देवबन्द में स्वांग फागुन सुदी एकादशी से आरम्भ होता था और फाग-दुलहंडी-पड़वा के दिन समाप्त होता था। इन पूरे पाँच-छः दिनों में एक ही

---

१. सहारनपुर जिले में एक बड़ा कस्बा।
२. प० ज्योतिप्रसाद मुख्तार।

कहानी खेली जाती थी। इस का समय रात्रि के १० बजे से ४ बजे तक रहता था। इसमें अभिनय करने वाले सब पात्र पुरुष ही रहते थे और वही आवश्यकता पड़ने पर स्त्रियों का भी अभिनय कर लेते थे। यहाँ पर स्वांग खेलना और खिलवाना एक प्रकार का शौक था जिसमें बहुत व्यय किया जाता था। इसका सब प्रबन्ध करने वाले व इस पर रूपया व्यय करने वाले पत्तीदार कहलाते थे। उनकी भी एक पार्टी होती थी। वह किसी न किसी उस्ताद को नियुक्त करते थे। स्वांग कई स्थान पर होते थे—एक ही समय में चार-चार स्थान तक में। उनमें तुलना, आलोचना तथा स्पर्द्धा होती थी, इसी कारण इनमें बहुत सावधानी भी रखने की आवश्यकता होती थी। दर्शक व अन्य पार्टी के लोग बहुत ही सूक्ष्म-निरीक्षण करते थे तथा कड़ी आलोचनाएँ भी होती थीं। दर्शकों में कुछ तो शायरी से संबंधित होते थे। वह प्रायः स्वाँग के अभिनय की आलोचना उसी समय करते थे, पीछे नहीं और अभिनय करने वाले तथा करवाने वाले उसका उत्तर-प्रत्युत्तर भी उसी समय दते थे। इससे प्रतीत होता है कि वे लोग बहुत साहसी, तथा उत्साही प्रकृति के होते थे और हर प्रकार के आक्षेपों को सुनकर, अपमानित होकर भी हतोत्साहित नहीं होते थे, वरन् उसमें सुधार के संकेत खोजते थे और आवश्यक सुधार करते भी थे।

रंगमंच—इनके लिये रंगमंच की, या लोकमंच की आवश्यकता हुई। सर्वप्रथम तो रामलीला, रासलीला और नौटंकी आदि का अभिनय करते समय ही उसकी आवश्यकता का अनुभव हुआ। उनका रंगमंच बहुत साधारण तथा घरेलू ढंग का होता था। लोकनाट्य के मंच खुले होते थे। मन्दिर के आँगन या चौराहे पर, किसी ऊँचे स्थान पर बल्लियों के सहारे तख्त डाल कर बनाये जाते थे। एक-दो पर्दों के द्वारा की गयी सजावट ही पर्याप्त होती थी। इनमें पर्दे बदलने की व्यवस्था नहीं होती थी।

सांग मंच के लिये कुछ भिन्न आवश्यकताएँ भी होती थीं। नीचे कई तख्त बिछाकर स्टेज बनाया जाता था और ऊपर शामियाने होते थे। शामियाने कम या अधिक सामर्थ्यानुसार ही होते थे। तख्त कड़ियों तथा लोहे की पत्ती आदि से तीन दरवाजे बनवाते थे। उसके आगे भी तख्त बिछाकर उस पर चौकियाँ बिछाते थे जिससे ऊँचाई रहे। इसी पर चढ़ कर लड़के गाते थे। एक या दो लड़कों को ऊपर के स्थान पर, महल में, बिठा देते थे जिससे लोगों को उत्सुकता रहे कि यह भी कुछ कहेंगे। जो अतिरिक्त लोग महल में होते थे उनकी संख्या केवल चार या पाँच होती थी। इनमें भी असली दो ही होते थे—नायक तथा खलनायक। तख्त के ऊपर दरी या चाँदनी बिछाई जाती थी। यह सांग मंच, 'ओपेनएयर'

थियेटर का ही मूल रूप है—अनगढ़ रूप में । इसमें पर्दों का प्रयोग नहीं होता था जो भी होता था, वह वास्तविक दृश्यों में सबके सामने ही होता था ।

कुछ दृश्य ऐसे अवश्य होते थे जिन्हें मंच पर नहीं दिखाया जा सकता था। अथवा वे दृश्य जिन्हें मंच पर दिखाना अभीष्ट न होता, उनका काम केवल सूचनामात्र से लिया जा सकता था । उदाहरण के लिये कोलाहल, आग लगना, खून खराबी, हत्याकाण्ड—आदि दृश्यों के लिये नेपथ्य काम में लिया जाता था ।

दर्शक, आडम्बरों की ओर ध्यान न देकर कथा व कथोपकथन ही अधिक ध्यान में रखते हैं। ऐसे मंचों पर अभिनेताओं को अनेक प्रकार की सामाजिक स्वतंत्रताएँ प्राप्त होती हैं जो न तो दर्शक को अखरती हैं और न नाटक मंडलियों में ही कभी आलोचना का विषय बनती हैं ।

वाद्य—स्वांग में वाद्यों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होता है। सबसे आवश्यक वाद्य सारंगी और तबला होते हैं । सारंगी के बिना स्वांग नहीं चलता । बोल को वही अदा करती है । सारंगी की विशेषता होती है कि इसमें बोल स्पष्ट सुनायी पड़ते हैं । उस समय सारंगी बनाने वाले भी विशेषज्ञ होते थे । स्वांग में प्रयुक्त होने वाले अन्य वाद्य हैं—ढप्प, (चंग पर ख्याल आदि गाते हैं), नक्कारा, ढोलक, चिमटा, हारमोनियम, खड़ताल, घड़ा, घंटा, फूल की थाली, कटोरदान, अलगोजा (दो बाँसुरी), सारंगी तथा एकतारा ।

संगीत नाट्यों की शक्ति है—ढोलक, झाँझ, मंजीरे, करताल, बाँसुरी तथा हारमोनियम । ढोलक व नगारे के बिना भी काम नहीं चलता । इसपर पूर्णरूपेण आंचलिकता का प्रभाव है। ऊँची आवाज़, सामूहिक ध्वनि तथा आदि से अंत तक वाद्यों का बजना, सबको प्रभावित करता है ।

सांग आरम्भ होने से पहिले बहुत देर तक नगाड़ा बजता रहता है जिससे सब गाँववालों को ज्ञात हो जाता है कि अमुक स्थान पर सांग होने वाला है । नगाड़े की ध्वनि बहुत ऊँची होती है, सांग प्रारम्भ होने पर सभी वाद्यों का प्रयोग किया जाता है जिनमें हारमोनियम, सारंगी, नगाड़ा मुख्य होते हैं । अलगोजे का भी प्रयोग किया जाता है । कुछ सांगी घड़े का भी प्रयोग करते हैं। आवाज तेज करने के लिये यह लोग एक कान पर हाथ रख कर गाते हैं । सांग में समयानुरूप सभी वाद्यों का प्रयोग होता है । इन वाद्यों के सम्बन्ध में हम तीसरे अध्याय के अन्तर्गत विस्तार से कह आये हैं ।

कथोपकथन—लोकनाट्यों में भावाभिव्यक्ति का माध्यम अधिकतर पद्य ही होता है । पद्य बहुत सरल होता है जिसको सर्वसाधारण जनता समझ सकती है । यही ८० वर्ष पहले 'हिन्दुस्तानी' का रूप था, जो आधुनिक हिन्दुस्तानी का

प्राचीन रूप माना जाता है । उनमें प्रयुक्त होने वाली भाषा पद्यमय गद्य होती है । भाषा जब भी काव्यमयी होती है, गद्य का प्रयोग कम होता है। यह केवल भाड़ों के हास्यात्मक अभिनय अथवा इतिवृत्तात्मक प्रसंगों से किया जाता है। यह गद्य भी पद्यात्मक होता है ।

पद्य में उर्दू और फ़ारसी के शब्दों का भी प्रयोग रहता है। उर्दू और फ़ारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करना उस समय की विशेषता थी । यह जन-साधारण की भाषा थी । इनमें अलंकारों का प्रयोग भी रहता ही है और इनमें सुन्दर रूपक, उपमा आदि भी मिलती हैं जो भाषा में स्वाभाविक रूप से ही आ जाती हैं । यह ऊपर से थोपी हुई नहीं प्रतीत होती हैं । इनपर संस्कृत शैली का भी प्रभाव है । इसमें ख्याल शैली का रूप भी दृष्टिगत होता है ।

इनके कलापक्ष पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि इनमें छंद का आग्रह उतना नहीं है जितना तर्ज का । तर्ज या रंगत, जिनमें कविगण स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर उनको नित-नूतन नाम देते हैं, इस बात का प्रमाण है। स्वांग में चौबोले की तोड़ होती है जिसे चलन कहते हैं । ख्याल और झूलना कहने वाले, पिंगल के नियमों का पालन कुछ अच्छी रीति से करते हैं। जिन रागों का व्यवहार अधिक है वह आसावरी, मल्हार और जोगिया हैं । इन स्वांगों में गायन इतनी जोर से होता है कि ८-१० हजार लोगों का समूह उसको भली प्रकार सुन सकता है, आव.ज जोरदार और सुरीली होती हैं। पहले आधुनिक लाउडस्पीकर नहीं थे, पर जनता को उनकी आवश्यकता नहीं अनुभव होती थी ।

तर्ज-लय—स्वांग में प्रयुक्त होने वाली तर्ज विशेष प्रकार की होती थी। ये सब अपने-अपने ढंग की अलग हैं। इनके उदाहरण अन्त में दिये गये हैं। यहाँ पर केवल नामों का उल्लेख कर के उनका परिचय ही दिया गया है यथा—लावनी, ख्याल, भेंट, रागिनी, भजन, ग़ज़ल, दोहा, चौपाई, रेख्ता, दौड़, तोड़, शेर, गाना, मुनादी, जिकड़ी, तिकड़ी, चौबोला, बहरे-तबील, झूलना, कड़ा आजकल सिनेमा के गानों की तर्ज़ पर भी इनका गायन होने लगा है ।

इनमें प्रयुक्त होने वाली मुख्य ताल नग़मा, तीनताल, सोलह मात्रा, कहरवा, चारताल तथा रूपक हैं । स्वांग के आरम्भ में सबसे पहले निरगुन गाया जाता है । जिसके द्वारा देवी-देवताओं का मंगलाचरण करते हैं, इसे भेंट कहते हैं फिर प्रार्थना । उसके बाद जो उस स्वांग का उस्ताद होता है वह अपने स्वांग का परिचय देता है। किसी भी स्वांग के अखाड़े के उस्ताद को 'पाधा जी' कहा जाता है । वह अपने गुरु की स्तुति करता है ।

इन स्वांगों में कहीं पर भी नीरसता नहीं आने पाती थी, पहले दो चार चौबेले,

फिर रागिनी तथा अन्त में भी रागिनी ही होती है। बीच-बीच में कोरस गान भी होता है और अन्त में जय-जयकार होती है। यह स्वांग कम से कम तीन-चार घंटे तथा अधिक से अधिक रात भर होते हैं। इनमें कोई भी अर्धविश्राम नहीं होता।

स्वांग खेलने के अवसर-विशेष भी होते हैं। साधारणतया तो यह होली से पहले खेले जाते हैं पर होली के अतिरिक्त विशेष अवसरों पर भी कराये जाने की प्रथा है उदाहरणार्थ—मन्दिर बनवाना, कुंआ खुदवाना, धर्मशाला के चन्दे के लिये, स्कूल के चन्दे के लिये अथवा मुहूर्त्त आदि के समय, तालाब बनवाने के अवसर पर तथा विवाह आदि के अवसर पर और कभी-कभी पुत्र-जन्म की प्रसन्नता के समय भी लोग स्वांग कराया करते हैं।

स्वांग अधिकांश सुखान्त ही होते हैं। इनमें सदैव सत्य व अच्छाई ही की विजय दिखायी जाती है जिसे जनता उसको देख व सुन कर अपने जीवन में भी आदर्श उपस्थित करे तथा घर जाते समय जीवन व जगत् के प्रति एक अच्छी धारणा मन में लेकर जाये।

स्वांग का आधुनिक रूप—स्वांग का चलन, ढाँचा वही है जो पहले था। इतना परिवर्तन अवश्य हुआ है कि उसकी तर्जों में अब फिल्मी गानों को तथा उनकी तर्जों को भी ले लिया है। अब शब्दों में भी कुछ परिवर्तन होता जा रहा है।

इधर मुजफ्फरनगर व मेरठ तथा सहारनपुर आदि खड़ीबोली प्रदेश में जो स्वांग अत्यधिक प्रचलित हैं, उनमें से कुछ के नाम ये हैं—रूपबसन्त, पूरनभगत, हरिश्चन्द्र, अमरसिंह राठौर, पिरथीसिंह, किरणमयी (पतिव्रता), मोरध्वज, राजा नल, शाही लकड़हारा, चन्द्रहास, भगतधुरू, लैला-मजनू, शीरी-फरहाद आदि। पर ये स्वाँग करना तो सांगी अपनी साख के विरुद्ध समझते हैं। हाँ, कभी-कभी छोटे-छोटे सांगी गाँव आदि में अवश्य कर लेते हैं।

इधर मुजफ्फरनगर में अधिकतर सांग बुन्दू व पीर के चलते हैं, जो नाबीना थे तथा खानपुर जिला मेरठ के रहने वाले थे। इसी प्रकार मुसद्दी सांगी मुजफ्फरनगर में प्रसिद्ध है वैसे मंगलसैन, रामचन्द्र, छोटेलाल भी है। रामचन्द्र खटीक है और छोटेलाल हरिजन। मुसद्दी का उस्ताद हरदेव पाधा था, जो करवाड़ा जिला मुजफ्फरनगर का रहनेवाला था।

आजकल प्राय: स्वांग एक ही रात में समाप्त हो जाते हैं। यह केवल परम्परागत पेशा है और जीविकोपार्जन का साधन है। प्रतिभा तथा लगन के अभाव में अब मौलिक रचनाएँ नहीं मिलती हैं। यह प्राय: दूसरों की रचनाओं का ही अभिनय करते हैं। पहले लोग दूसरों के द्वारा रचित रचनाओं का अभिनय करना अपना

अपमान समझते थे। वह स्वयं ही रचना करते थे और यह सब विशेष रुचि, शौक के कारण ही होती थी तथा उसमें प्रतिद्वन्दताएँ भी होती थीं। तब इनका उद्देश्य केवल धनोपार्जन ही नहीं था। स्वांग का निमंत्रण यह लोग इलायचियाँ बाँट कर करते थे, परन्तु अब केवल मनादी करा देते हैं।

उस समय ख्याल के भी दंगल हुआ करते थे। स्वामी नारायणानन्द जी ने इस पर पुस्तक लिखी है। वह भी देवबन्द ही में रहा करते थे। इसमें भी दो-दो पार्टियाँ हुआ करती थीं--कलगी और तुर्रा। अब इस प्रकार के दंगलों का प्रचलन नहीं रहा, क्योंकि ख्याल की कविता कठिन होती थी, इसमें शब्दचयन का बहुत ध्यान रखते थे। आधुनिक स्वांगों में लावनी और चौबोलों का प्रयोग होता है। वास्तव में लावनी भी ख्याल का ही रूप है। लावनी सबसे पहले 'बनारसीदास' ने लिखी तथा 'चौबोली' की रचना 'बालकराम योगी' ने की। ये पंजाब के थे तथा कनफटे साधु थे। सांगीत की दो प्रमुख तर्ज होती है--बैठीताल तथा खड़ीताल। बैठीताल के प्रवर्तक घनश्यामदास हैं तथा खड़ीताल के प्रवर्तक परशादीलाल, बलवन्तसिंह, बुद्धूमीर, सगुवासिंह।

सांगीत में चन्द्रलाल के सांगीत भी बहुत चलते हैं। उन्होंने भावों के ऊपर विशेष महत्व दिया है तथा उसमें धार्मिक दृष्टान्त व ब्रह्मज्ञान का आधिक्य है। इस प्रकार के सांगों में 'जाहरपीर', 'ढोला मारू' तथा 'निहालदे' आदि अधिक प्रचलित हैं। इस प्रदेश के आधुनिक भजन, होली, निरगुन, सांगीत तथा ख्याल रचयिताओं में निम्नलिखित लोक कवियों का नाम प्रसिद्ध है--

चौधरी घीसाराम, फूलासिंह, मीरदाद, सेठूसिंह, बालकराम, घीसा (संत), घनश्यामदास, लटूरसिंह (शिष्य खिम्मनसिंह)।

पहले स्वांगों में नृत्यों का समावेश नहीं था। सभी भावभंगिमाएँ हाथों से व इशारों से होती थीं। परन्तु अब नृत्य ही प्रमुख होता है।

देवबन्द में सावन में राधावल्लभ के मन्दिर में झूले होते हैं जिसमें हमें रास का रूप मिलता है। यह स्वांग का रूप है, यहाँ जुलूस आदि बहुत अच्छी तरह से निकलते हैं। सन् १९११ से पहले रामलीला सूक्ष्म रूप में होती थी पर १९११ से बलवा होने पर बन्द हो गयी। अब सन् १९४८, १९४९ से यह फिर आरम्भ हुई। दो साल तक बाहर की पार्टियाँ आकर रामलीला करती थीं। अब तो यहीं के लोग करने लगे हैं। यहाँ पर रामलीला भी नाटक के रूप में होती है, रामायण के आधार पर नहीं।

होली के अवसर पर दिन में स्त्रियाँ स्वांग अलग करती थीं। स्त्रियों के गाने

पृथक् स्वररचित होते थे। यह भी स्वांग का ही एक रूप है। विवाह आदि में खोड़िए पर जो अभिनय होता है वह भी स्वाँग का ही रूप है।

खोड़िया—यह स्त्रीसमाज का लोक-नाटच है। इसमें स्त्रियाँ बहु-बन्ने बनती हैं। दो स्त्रियाँ इसका अभिनय करती हैं तथा विवाह किया जाता है। यह कृत्रिम विवाह होता है। इसका उद्देश्य होता है असली वर-वधू का आधि-व्याधि टालना। कहीं-कहीं पर विवाह पहले वृक्ष आदि से कराया जाता है। खोड़िये में विवाह के अतिरिक्त स्त्रियाँ गीति-नाटच भी करती हैं जिनके लिये वे गूजरी, मनिहारी, लला, व्याही या मुर्गा के गीत गाती हैं। पुरुषों के न रहने पर वे इस अवसर पर अश्लील गीत भी गाती हैं। यह केवल स्त्रियों का ही उत्सव होता है।

सांगी बेहूसिह—देवबन्द (सहारनपुर) में बेहूसिह प्रसिद्ध सांगी हुएहैं। उन्होंने लगभग ४० स्वाँग लिखे भी थे तथा लिखवाये भी थे। यह काम वह अपने निर्देशन में ही करवाते थे जिससे उसमें कोई त्रुटि नहीं होती थी। देवबन्द के चौबोलों का एक विशेष रूप था। इनकी तर्ज (रंगत) बिलकुल भिन्न थी। यद्यपि पंडित बेहूसिह निरक्षर थे पर वह बहुत ही अद्‌भुत स्मरणशक्ति के व्यक्ति थे। आपकी स्मरण शक्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि आप चटाई पर बैठ कर एक चौबोला बनाकर एक-एक तिनका तोड़ कर चटाई के नीचे रख देते थे। इस प्रकार दिन भर में २०-३० चौबोले, ख्याल, रागिनी, रेख्ता, कड़ा बना लेते थे। शाम को उमराव सिंह को एक-एक तिनका उठाकर लिखा देते, फिर तिनका फेंक देते। उनका संकेत तिनकों में रहता था। आप से पहले स्वांग निम्नकोटि की कविता थी, जो वासनापूर्ण और अश्लील हुआ करती थी। आपने उसमें परिवर्तन किया और दार्शनिकता का पुट दिया। आपकी भाषा बोल-चाल की सरल भाषा थी। आप उसमें उर्दू और फारसी का प्रयोग करते थे। आपके पुत्र उसको उर्दू लिपि में ही लिखा करते थे। आपके स्वांगों की हस्तलिखित प्रतियाँ भी मिलती हैं, जो ८० वर्ष पूर्व की हैं। जिनका अनुवाद होना आवश्यक है। आपके सांग 'राजाभर्तृहरि' के दार्शनिक पक्ष का कुछ भाग यहाँ उदाहरण के लिए दिया जाता है—राजा भर्तृहरि पिंगला की मृत्यु पर शोक कर रहे हैं तथा कहते हैं—

'मेरी हाँडी फूट गई, मैं जलकर मरूँगा'

तभी बाबा गोरखनाथ जी आते हैं और राजा से एक हंडिया मँगवाते हैं, राजा हंडिया लाते हैं, वह जानबूझ कर उसे गिरा कर तोड़ देते हैं, हंडिया के गिर जाने पर राजा से कहते हैं कि तू मेरी हंडिया वापिस लाकर दे, इस पर राजा कहते हैं—

'एक गई दो-चार मंगाई, सोना चाँदी कूटी
वो वस्तु ना मिले, जो मेरे हाथ से छूटी'

गोरखनाथ जी राजा से हठ करते हैं, तो राजाजी कहते हैं—

'मैं समझूं था नाथ जी, पाँच तत्व का अंग
उन पाँच्चों के और भी पाँच रहे हैं संग।
ए गुरुजी पाँच रहे हैं संग, काम उत्पत फल बोत्ता,
जो ना होत्ता मोह, जगत काहे को रोत्ता।
ए गुरुजी, उसी संग की सिला, उसी पत्थर का मोत्ती
पारस भी पासाण, लाल पत्थर की जोती
ए गुरुजी, जो गीता, बेदाँत भू पठते सारे
ना धरती आकाश रवि होत्ते तारे'

तब बाबा गोरखनाथ जी कहते हैं—

'कौन सासतर से पढ़ा तैं राजा ये गियान
इसी वास्ते जगत से लोप हुए सतवान
लोप हुए सतवान, विधि ने यही बाच रक्खा था
पाप बेल बो लई धरम से, सतबीज हरना था
तीनों युगों से खाली नरक कुंड भरता था
अपने तन में होत है सुई लगे दुख ढेर
और बिगाने अंग में पड़ी लगै शमशेर
ए बच्चा रे, पड़ी लगो शमशेर, लगे जिसके वही जाने
अनलागत में मस्त दर्द किसका पहचाने,
ए बच्चा रे—
माटी की एक हंडिया सोइ सोइ रानी
तके दूसरा भेद, मूढ़ जग में वो प्रानी
ए बच्चा रे—लख चौरासी जून, सब यही की माया
तैं राजा क्या चीज, नारी की समझी काया'

इसप्रकार मिट्टी का बरतन मँगाकर तोड़ना तथा उसी को लेकर राजा भर्तृहरि को उपदेश देना, बाबा गोरखनाथ जी की इसी वार्ता को सुनकर तथा प्रत्यक्ष उदाहरण देखकर राजा को वैराग्य हो जाता है, संसार की निस्सारता समझ में आ जाती है। आपके स्वांग सभी हस्तलिखित हैं जिनमें कुछ के नाम हैं—

लवकुश, भर्तृहरि, राजा विक्रम की कहानी, चन्द्रभान, वैतालपचीसी की ११ वीं कहानी, पूरनमल, नवलदे, सोरठ का सांग, चन्द्रकला, रूपकला, मदनसिंह। आपका केवल एक स्वांग 'स्याहपोश' ही प्रकाशित हुआ है।

इन स्वांगों के कथानक प्रायः लौकिक प्रेम ही को लेकर लिखे गये हैं। इनमें

तीन बातें प्रमुख होती हैं—नायक, नायिका का प्रेम, मिलन तथा बिछोह। पहले योग-गाथाएँ भी मिलती थीं। इनमें दो प्रकार की रंगत प्रमुख थी।

खड़ी रंगत, चलती रंगत—पूरनमल के स्वाँग में से इन दोनों तर्जों के उदाहरण यहाँ पर दिए जाते हैं—

चलती रंगत—'अजी, भौंरे में बेटा मेरा, बीच में कइं साल
रवि दरसन होत्ता नीं पूरन मेरे लाल'

चौबोल— 'पूरन मेरे लाल हवा ना लगे तुम्हारे तन के
जिससे ऐश खुशी ना होवै आग लगे उस धन के
जैसे सरप पड़ा पटियारी, दे दे मारे फन को
चन्द रोज में बाहर चलेंगे, क्यों भटकावै मन को'

दोहा

खड़ी रंगत— 'भीड़ पड़ी सिमरूँ तुझे, तैं कर माता कल्यान
पाँच चोर तन भस्म हों, तो दे मुझको वरदान।'

चौबोला

'दे दीजै बरदान मेरी, हे लाड्डो ज्वाला जी
मावर के मन्हर चला, राखिये लाज माता जी
क्या जी मावर, कै जी मनु चला
दे दीजै राखिये लाज
ए चरनों में सीस धरूँ, नूं ना अजमाइयो जी
मैं बालक नादान करो प्रान सहाई, माता प्रान सहाई
क्या जी मैं बालक नादान—करो'—

खड़ी रंगत की विशेषता यह है कि इसको बहुत खींच कर गाते हैं। इसी प्रकार स्वांगों से पहले सुमिरन या भेंट गाने की प्रथा थी जो इस प्रकार होती थी—

'बिघन हरन मंगल करन, गिरजा पुत्र गनेस
अरधंगी गिरजा सहित रच्छा करो महेस।'

चौबोला— 'रच्छा करो महेस आज एक गम का लिखूं फँसाना
चन्द्रकला पै प्रेमसैन दिल से हुआ दिवाना
उस शमा रूप पर हुआ एकदम दिल उसका परवाना
उसके इसक में उसने जाकर कुले वीराना छाना।'

बेहसिंह जी के द्वारा रचित स्वांग में 'लवकुश' में बारहमासा का यह रूप अब तक प्रचलित है जो इस प्रकार है—

'त्यागी बन के बीच, हरी मैं क्या अवगुन कीना
तड़प रही बेचैन अकेली, पीट रही सीना'

आषाढ़— आया घनघोर बरसता रिमझिम रिमझिम रिमझिम बारी
सुन कोयल की कूक इस जग में खौफ लगे भारी
बोले चातक भोर भंवर गूंजै डारी डारी
मारग हो गये बन्द, भरे जल थल क्यारी क्यारी

सावन— दामिनी, दमदम दमकै
घन घन घूमै जुगनू चम चम चमकै
सो सदमें दिल पर गम गम गमकै

भादों— कारी रैन अंधेरी है मुसकिल री जीना
तड़प रही अकेली पीर
लगा असौज मास, कनागत करने की रुत आई
जागै पितर निरास पास नहीं मेरे रघुराई
कौन पायता करै, कौन पूजै दुरगा माई
खाली चले तिव्हार, करम ने गरदिस खाई
तड़प रही अकेली—

कातक— सब करें दिवाली, भई रोसनी घर घर आली
इस मौसम मुझको बन डारी, कैसे कटै उमर मेरी बाली

मंगासीर— जाड़ा पड़े लगै है सीतल पसमीना,
तड़प रही अकेली—

पोह— पाला जोर शोर कर एकदम से आया
मुझ पापन को छोड़ गया लछमन घर को धाया
चढ़ी बदन में लहर, जुदाई का जलवा छाया
धरनी पर सिर धुनूं पड़ी ज्यूं जहर का खाया
तड़प रही अकेली—

माह— अम्बा मौलें उटकै
सहज सहज सर्दी रितु सटकै
हरी मिलन को ये दिल भटकै
यहाँ सह रही विपता के झटकै
तड़प रही अकेली—

फागुन— होवै फाग मेरा दिल होता ग़मगीन
तड़प रही अकेली—

चैत—　　चित्रा बढ़े देख कर, केसू बन फूले
　　आ रही तरु सुगंध, हरी बिन हमको सब सूले
　　बिना खता क्यूं करी हमें लछमन ने अनकूले
　　था हम पर सनेह राम का क्या कारण भूले—
　　　　तड़प रही अकेली—

बैसाख—　　है बैसाख महीना भारी, भरी अगन की, जल रही कारी
　　बेहूसिंह बतला हुशियारी, दासी तारा चरण शरण तुम्हारी

जेठ—　　भानु तपै, मेरा खूं गर्मी में पीता—
　　　　तड़प रही अकेली—

बेहूसिंह जी के समकालीन ही उस्ताद मूलराज थे । सीताराम जी, रामकरणगिरि के शिष्य हैं तथा यह भी स्वांग रचयिता हैं । आपने बैतालपचीसी ११ वीं कहानी का स्वांग लिखा । मूलराज जी ने भी बहुत स्वांग बनाये और उर्दू में ही लिखे । आपके सभी स्वांग खेले गये । सीताराम जी ने भी उर्दू में स्वांग रचे पर वे खेले नहीं गये । वह रामायण की कथा पर आधारित थे ।

बेहूसिंह जी के परिवार में आज भी स्वांग लिखने की परम्परा है । आपके बाद आपके पुत्र श्री धुम्मनलाल जी (धूमसिंह) ने कई स्वांग लिखे और खेले । आपके पोते श्री ज्योतिप्रसाद जी मुख्यतार जो जीवित हैं, उन्होंने भी कई स्वांग लिखें । जब आप ७ वीं कक्षा में थे तभी नल-दमयन्ती का स्वांग लिखा । आपके स्वांग खेले नहीं गये । आप भी स्वांग, भजन, चौबोले, राग, रागिनी तथा ख्याल आदि बोल कर लिखवाते हैं । आप में अद्भुत प्रतिभा है । दमा के रोगी होने पर भी तथा अब कार्य से अवकाश प्राप्त करने और अत्यन्त कृशगात होने पर भी साहित्य सेवा में रत रहते हैं—सुनाने व बनाने दोनों में ही आपकी बहुत रुचि है । आप बहुत सरल स्वभाव के हैं । ज्योतिप्रसाद जी के द्वारा रचित साँग के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

भेंट १—　　'बाला सुन्दरी[1]' मात को सिमरूँ बारम्बार
　　हाथ जोड़ बिन्ती करूँ खड़ा तेरे दरबार
　　खड़ा तेरे दरबार मात मैं आया सरन तुम्हारी
　　बेहू सिंह उस्ताद रहूँ नित उनका आज्ञाकारी ।'

भेंट २—　　'सिमरूँ प्रथम गणेश, धरूँ गुरू का ध्यान
　　किस्सा अमर कवार का, कथ के करूँ बयान

---

१. देवबन्द में बालासुन्दरी देवी का एक प्रसिद्ध मन्दिर है जिसकी मानता बहुत दूर-दूर तक है।

कथ के करूँ बयान प्रभु आ करो हृदय में बास
दो बुद्धि वरदान तुम्हारे हूँ चरनों का दास

कड़ा ३— ऐ प्रभु जी पूरन करना आस, कहूँ दिलचस्प कहानी
जोधपुर के दरम्यान थे एक राजा और रानी।

ख्याल— 'जैसा जो बावै बीज प्राणी वैसा फल पात्ता
बोए खार का बीज, बता फिर आम कहाँ से खात्ता
फलै न हरगिज जुलम हमेशा जालिम दुख उठात्ता है
खुद होत्ता है तबाह, किसी को नाहक जो सतात्ता है
जैसा जो बोवै बीज—
रावन ने किया जुलम देख वह तड़प तड़प मर जात्ता है
हिरनाकुल को देख, जुलम क्या उसकी गती बनात्ता है
करे जुल्म क्यों ख़ौफ़ खुदा से नहीं घबरात्ता है
ए मूरख जाने क्यों बकवास लगात्ता है।'

पं० ज्योतिप्रसाद जी का ही एक बारहमासा इसमें इस प्रकार दिया गया है—

'रो रही है बेचैन आह का भर रही है नारा
बरसें दोनों नैन अशक की बह रही है धारा।
कहाँ प्रीतम आप सिधारे, नहीं सुनते बचन हमारे
मैं मरूँ, आह के भर रही नारे'

दोहा— लगा महीना साढ़ का बरस रहा घनघोर
उमड़ उमड़ कर नाचते फिर रहे बन में मोर

शेर— दामिनी दमके अंबर गरजे जिया डरपा रहा
जिनके प्रीतम संग में, बस लुत्फ़ उनको आ रहा

दौड़— आया सावन मास एक बार, करैं तीज्जों का तैवहार
झूल पड़ रहे घर बार जी,
रलमिल झूले सब नरनार, मेरी किस्मत की मार
मैं तो हो रही बेज़ार जी

उड़ान— रात भाद्दों की अन्धियारी पति बिन है कटनी भारी
कभी उठती है घटा कारी

तोड़— बिना पिया चल रहा, मेरे दिल पर गम का आरा
असौज में बिप्र जिमावैं, नित नित सराध का मौसम आवैं
पायताँ पूज्जें खुशी मनावैं

दोहा—— कात्तक में दीपमाल का, हो बड़ा तिव्हार
आला आत्मा रोशनी, होती घरबार
शेर—— मुझ अभागन को कहाँ अच्छे लगे तिव्हार
रोते रोते काटतीं है सब यूँ ही लो निहार
दौड़—— मंगसिर में यही मलाल, मेरी करता जान हलाल
मुझको रहता यही ख़याल जी
कर दिया किस्मत ने पामाल सारा जाता रहा जलाल
अब तो आ ही गय ाजवाल जी
उड़ान—— आया पोह का मास निराला
पड़ने लगा तभी से पाला
बीरन ने किया मुझे तह बाला
तोड़—— 'सरदी का है जोर पती तुम बिन किसका सहारा है
माह में अंबा मौले कोयल कूक बोले है
कूक पिक जिगर को धोले है
दोहे—— फागन में रलमिल सखी गावें उमदा राग
पी संग मिल मिल नार सब खेलें होली फाग
शेर—— रंग भर पिचकारियाँ कोई कोई मलता गुलाल
मुझ अभागन के रहे, हर बख्त ही दिल में मलाल
दौड़—— हुए चैत के असार लगी मौसम बहार
मेरे दिल में दरार जी
कहाँ दिल को करार हुई मैं तो बेमार
रही पी को पकार जी
उड़ान—— मेरे निकले प्रान, हुई अकल हैरान
लगा ईश्वर से ध्यान
तोड़—— लगा माह बैसाख, चलै लू तपै सारा जहाँ
गरमी ने बदन तपाया मुझको बेमार बनाया
ईश्वर ने क्या दुख दिखाया
दोहा—— शिद्दत से गरमी पड़ी, लगा जेठ का मास
नार सभी पंखा करे, बैठी प्रीतम पास
शेर—— आतिशे फुर्कत से मैं जल गई मिस्ले कबाब
चैन एक पल को नहीं तड़पूँ बनी भट्टी की आग
दौड़—— मेरी निकली जाती जान नहीं बचने के प्रान

पति मुझपै कुरबान जी
लिया क्या जी में ठान--पती कहाँ सी है धियान
हुई मैं तो परेसान जी

उड़ान-- पती क्या है देरी खबर आ लो मेरी
मैं तो थारी चेरी

तोड़-- लगा महीना लौंद--मेरा जी घायल कर डाला
रो रही--

ज्योतिप्रसाद जी का एक भजन इस प्रकार है--

'मन किस उलझन में पड़ा, हाय सुमिरता क्यों नहीं कृष्णमुरार
भगतों का दुख हरने वाला, सारे जहाँ का रखवाला
आखिर सब का वही सहारा, उसी का सब संसार
मन किस उलझन में पड़ा. . .
भाई बन्धु पिता और माता
स्वारथ का है नाता
बेटा पोता बीबी भ्राता, सब मतलब के यार
मन किस उलझन में पड़ा. . .
मोह ममता के त्याग डगर को
हिरस हवा के छोड़ सफर को
होश में आ भज ले ईश्वर को
करे वो बेड़ापार
मन किस उलझन में पड़ा. . .
धन दौलत और बाग बगीचे
संग न जाये कभी किसी के
तू क्यों भूला फिरे बावरे संग जा धरम उपकार
मन किस उलझन में पड़ा. . .'

खड़ी बोली के लोक-नाट्यों की विशेषता--लोकनाट्यों के अध्ययन करने पर हम इन निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं :--

लोकनाट्य, समाज व समुदाय की वस्तु है। यह व्यक्तिविशेष का कार्य नहीं है। अतः इसमें सम्पूर्ण समाज ही का दायित्व होता है। इसी कारण यह अधिक सफल भी हो जाता है।

लोकनाट्य पद्य-प्रधान होते हैं। इनमें गद्य का अभाव होता है पर फिर भी कभी-कभी उसका प्रयोग अवश्य होता है। पद्य अधिक प्रभावोत्पादक होता है तथा

सहजग्राह्य होता है और याद भी सरलता से हो जाता है, इसी से इनमें पद्य का ही प्रयोग विशेष रूप से होता है ।

स्वांग में अधिक आडम्बर नहीं होता, अत: यह ग्रामीण जनता की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं व अभिरुचियों के अनुकूल होता है । ये प्राय: खुले में होते हैं । तख्तों का ऊँचा मंच बनाकर उसके चारों ओर बाँसों का घेरा बना लिया जाता है । पट-परिवर्तन का विधान नहीं होता । प्रवेश व प्रस्थान सब दर्शकों के समक्ष खुले में होते रहते हैं । दर्शक मण्डल इस मंच के तीन ओर बैठ जाता है । इनमें कुछ भी अंक आदि नहीं होते । समस्त कार्य क्रमपूर्वक होते हैं । गीत-नृत्य और बीच में वार्त्ता भी चलती रहती है । इन स्वांगों में संकेतों का प्रयोग भी बहुलता से होता है ।

इनका रूप परिवर्तनशील होता है । कथानक प्राय: पुराण, इतिहास एवं वर्तमान जीवन की घटनाओं से लिया जाता है जो सभी जनमत को अनुरंजित करने वाले होते हैं । कथानक ढीलाढाला भी होता है । इनमें गति एक-सी नहीं होती । पूर्वार्द्ध में शिथिल गति से बढ़ती है और उत्तरार्द्ध में द्रुतगति हो जाती है ।

इनकी प्रेमकथाओं में प्रेमियों के बीच लम्बे कथोपकथन की सृष्टि की जाती है और फिर कवि उन दोनों के प्रेममार्ग की कठिनाइयों का विस्तृत ब्यौरा स्वयं उपस्थित करने बैठ जाता है । रस की दृष्टि से यह बतरस है । यहाँ जीवन की झाँकियाँ बड़ी चित्ताकर्षक और स्वाभाविक मिलती हैं ।

मण्डली का प्रत्येक सदस्य अभिनय करना जानता है । वह हर पात्र का अभिनय कर सकता है । आपस में ही कोई एक व्यक्ति निर्देशन कर लेता है । अतिरिक्त निर्देशक कोई नहीं होता । हर व्यक्ति हर प्रकार के उत्तरदायित्व को निभाने को प्रस्तुत रहता है ।

इनमें लोकमान्यताओं का पूर्णरूपेण समावेश मिलता है । परम्परागत रीति-रिवाज तथा अभिप्राय किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं । इन स्वांगों में स्थानीय तत्व अवश्य मिलते हैं तथा समसामयिकता की छाप रहती है । काव्य में ठेठ लोकभाषा का ही व्यवहार होता है पर वक्रता और विदग्धता के साथ । इसी कारण वह जनसाधारण के लिए ग्राह्य होती है । इसमें सरल शब्दों में उपदेश की प्रवृत्ति का आधिक्य रहता है ।

इनमें शास्त्रीय पक्ष का अभाव रहता है । पिंगल और संगीत, दोनों का ही अनुकरण रहता है, समावेश रहता है, लेकिन उसम त्रुटियाँ दृष्टिगत होती हैं, वास्तव में उनका उद्देश्य यह नहीं होता । इन रचनाओं के कलापक्ष पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि इनमें छंद का आग्रह उतना नहीं है जितना तर्ज़ का ।

तर्ज़ व रंगत जिनमें कविगण स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर उनको नूतन नाम देते रहते हैं, इनकी प्राण हैं।

दोहा, चौबोला, चौपाई, कड़ा, दौड़, तोड़, छंद, लावनी, आल्हा, झूलना और ख्याल स्वांग में चौबोली की जोड़ होती है जिसे चलन या मुक्ताल नाम से पुकारा जाता है। ख्याल और झुलना कहने वाले पिंगल के नियमों का पालन कुछ अच्छी रीति से करते हैं। इसमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है। जन-साधारण के जीवन पर आदर्श सुझावों का अमिट प्रभाव पड़ता है। वे उनका अज्ञात रूप से भी अनुकरण करने लगते हैं।

लोक-नाट्यों के रचयिता : लोक-कवि—लोकनाट्यों के ज्ञात और अज्ञात रचयिताओं के लिए लोककवि की ही संज्ञा उपयुक्त है। यह लोककवि मूलत: लोक-गाथाओं की रचना करते हैं जिनको हम प्रबन्धगीत तथा लघुरूप में कथागीत भी कह सकते हैं। इसके हम दो भाग कर सकते हैं :—प्रथम, वह जो केवल गेय हैं तथा दूसरे वह जो अभिनेय हैं। जो गेय है वह लोक-गाथा की श्रेणी में आते हैं और जो अभिनेयतत्व रखते हैं वे लोकनाट्य की संज्ञा में। खड़ीबोली प्रदेश में इन लोककवियों का बाहुल्य है। उनके नाम इस प्रकार हैं[1]—

नाम	ग्राम	प्रसिद्ध रचनाएँ
१—सेढूसिंह	हापुड़ (जि० मेरठ)	होली, भजन, रागिनी
२—घीसा	भटीपुर "	होली
३—फूलसिंह	नगला कबूलपुर	भजन
४—शंकरदास	जिठौली	भजन
५—साधु गंगादास	जिठौली	भजन
६—लटूरसिंह	मउ खास	भजन (निर्गुन)
७—बुल्ली	भगवानपुर नांगल	स्वांग, रागिनी
८—प्रिथीसिंह बेधड़क	शिकोहपुर	रागिनी, भजन
९—बख्शीदास	शिकोपुर	"
१०—खूबी जाट	टीकरी	भजन रागिनी
११—चन्द्रलाल जाट	टीकरी	"
१२—नत्थू	मीरापुर (जिला-मुजफ्फरनगर)	"
१३—मास्टर न्यादरसिंह		"

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—१६वाँ भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ५०६

१४—बुन्दू	मुजफ्फरनगर	स्वांग
१५—बलवन्तसिंह	"	"
१६—चन्दरवादी	दत्तनगर	"
१७—तोफासिंह	कोटवालपुर	होली

इनके अतिरिक्त कुछ भक्त लोक-कवि भी हुए हैं। इनकी रचनाओं की प्रकाशित सूची परिशिष्ट में दी गयी है। वास्तव में लोक-कवि जनता से भिन्न कोई नहीं होता वह उत्पादक और उपभोक्ता दोनों ही की श्रेणी में है। ये अपने विषय से सुपरिचित होते हैं और उसकी गहराई में उतरने का प्रयास करते हैं।

इन लोककवियों को लोक-साहित्य की परम्परा ने ही जन्म दिया। मैं इनकी रचना को, जिनका इस प्रदेश में अनन्त भण्डार है, विशुद्ध लोक-साहित्य नहीं मानती। लोक-कवि अर्धशिक्षित जनता का मनोरंजन करते हैं परन्तु ये लोकजीवन के समीप हैं और उनके साहित्य की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन पर महत्व देन के अनेक कारण हैं :—

(१) इन लोककवियों ने आधुनिक सभ्यता और संस्कृति के वातावरण में भी प्राचीन कथाओं, गीतों, कथानकों आदि को सुरक्षित रखा। उनके इस उपकार के लिये लोक-साहित्य तथा उससे प्रेरित हिन्दी-साहित्य, उनका अनुगृहीत है।

(२) लोककवियों ने ही उस व्यक्तित्वहीन लोक-साहित्य की परम्परा को हर दृष्टि से बढ़ाया है। इन्होंने अपनी रचनाओं से योगदान किया है।

(३) इनकी भाषा ठेठ लोकभाषा से कुछ परिष्कृत है। इनमें पिंगल और संगीत दोनों का रूप मिलता है, यद्यपि किसी का भी पूर्ण ज्ञान नहीं।

(४) लोक-कवि अपने अनुभवजन्य तथा पंडित-ज्ञान के मिश्रित आधार पर रचनाएँ करते थे। इनमें प्रतिभा से अधिक साधारण ज्ञान और भावुकता है।

इस प्रकार के लोक-कवियों का इस क्षेत्र में बाहुल्य है। इनकी जीवनी, व्यक्तित्व, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियाँ व इनकी कृतियां जिनमें शृंगार व भक्तिरस का प्राधान्य है, एक पृथक् अध्ययन व अनुसंधान का विषय हैं। यहाँ पर स्थानाभाव व समयाभाव के कारण मैं इसके विस्तार में न जाकर केवल प्रकाशित सामग्री की सूची व मुख्य लोक-कवियों के नाम ही परिशिष्ट में दे रही हूँ। यहाँ के लोक-जीवन में ये रचनाएँ बहुत अपना ली गयी हैं और जनता इनका होली तथा सावन और अन्य अवकाश व मनोरंजन के अवसरों पर बहुत ही स्वतन्त्रता से उपयोग करती है। एक पढ़ा हुआ व्यक्ति इसको पढ़ कर सुनाता है और अन्य इसको कंठस्थ कर लेते हैं। इन कवियों के द्वारा ही संरक्षण और

संम्वर्द्धन हुआ। लोक-साहित्य को सुरक्षित रखने का श्रेय इन्हीं को है।

"लोक-कवियों से बढ़ कर प्रचारक कोई नहीं हो सकता। इस काम के लिये इनके पास उपयुक्त भाषा, सरलभाव और नैसर्गिक अभिव्यक्ति, ऐसी वस्तुएँ हैं जो साहित्यकार अथवा अन्य किसी प्रचारक में नहीं मिल सकतीं। इसके लिये इनका उपयोग किया जा सकता है। ये समाज में पारस्परिक सौहार्द्र, सांस्कृतिक जीवन में रुचि, समता और वीरता की भावनाएँ भर सकते हैं।

इसका प्रमाण स्वांग, झूल , ख्याल तथा कव्वालियों के वे दंगल हैं जिनमें अपार जनता एकत्रित होती है। ये कवि चलते-फिरते पुस्तकालय ही नहीं, अपितु ये 'जंगमतीर्थराज' हैं। गंगा-यमुना के इस प्रदेश—कुरुजनपद—में आज भी ऐसे अनेक कवि हैं तथा यहाँ की उर्वरा भूमि के गर्भ में विशाल वटवृक्ष बनने वाले न जाने ऐसे और भी कितने कवि-बीज छिपे हुए हैं[1]।"

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—१६वाँ भाग—नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ५०६

खड़ीबोली
की
लोक-संस्कृति
८

संस्कृति, अन्तर की तथा वाह्य जीवन की अभिव्यक्ति है। इसके अन्तर्गत हमारे जीवन के सभी भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्य आ जाते हैं। वास्तव में हर समाज के मूल में कुछ नैतिक स्तर, धार्मिक विश्वास, संस्कार, सामाजिक नियम तथा अन्य सामाजिक क्रिया-कलाप होते हैं जिनको सामाजिक तथा धार्मिक स्वीकृति प्राप्त होती है। इस सब की पृष्ठभूमि में युगों-युगों से चला आता इतिहास छिपा रहता है। हर देश तथा समाज की उत्कृष्ट संस्कृति की आधारशिला वहाँ का लोकसमाज होता है। इसी लोकसमाज की संस्कृति—लोक-संस्कृति कहलाती है। लोक-संस्कृति पंक्तिबद्ध कोई लेखा नहीं अपितु ये एक मानसिक धरोहर तथा विश्वास है जो लोकमानव को युगों से पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत के रूप में मिलती रही है। यद्यपि सभ्यता, इस संस्कृति में सामयिक परिवर्तन करती रहती है परन्तु लोकमानव इस सभ्यता की ओर से मूक रह कर संस्कृति के प्रति उत्तरदायी रहता है। वह अपनी सभ्यता भी उसी संस्कृति को मानता है तथा मानना चाहता है। यदि वह परिवर्तन करता भी है तो परिस्थितिगत विवशता के कारण ही करना पड़ता है। इसीलिए किसी भी देश की लोक-संस्कृति में स्थायित्व होता है।

वैसे तो सम्पूर्ण भारत ही संस्कृतियों का देश है और सब संस्कृतियाँ अपना ही महत्व रखती हैं परन्तु खड़ीबोली-प्रदेश की लोक-संस्कृति इतिहास के पथ में मील के पत्थर की भाँति है जिस पर भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक प्रगतियाँ अपना चिह्न छोड़ती गई हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो इस प्रदेश को केवल हिन्दू-धर्म का ही क्षेत्र नहीं माना जा सकता। इस्लाम-धर्म पिरानकलियर तथा देवबन्द में अपने स्तम्भ लिये स्वतंत्र रूप से खड़ा है। जिला मेरठ में सरधना है। यहाँ इसाइयों का गिरिजा आज भी ईसाई धर्म की कहानी कह रहा है। तल्हेड़ी बुजुर्ग का मन्दिर जो सहारनपुर जिले में है, अपनी वाममार्ग की परम्परा निबाह रहा है। हिन्दू-धर्म के बिरवे तो हरिद्वार, शाकुम्बरी देवी, शुक्रताल, हस्तिनापुर, गढ़मुक्तेश्वर, दारानगर गंज, विदुर आश्रम में लोक-जन की आस्था को सहारा देकर बढ़ाये चले जा रहे हैं।

इस प्रदेश में विभिन्न धर्मावलम्बी होते हुए भी सब के विश्वास एक हद तक अन्योन्याश्रित हैं। यहाँ पर हिन्दू तथा मुस्लिम, दोनों ही संस्कृतियों का अपूर्व

समन्वय है जिसका उदाहरण हमें यहाँ के गीतों, रीति-रिवाजों, त्योहारों तथा भाषा आदि में लक्षित होता है। हिन्दू, मुसलमानों के पीर मुर्शीद पर चादर जोड़ा शीरनी चढ़ाते हैं, तो मुसलमान भी अखाड़े में उतरते समय 'बजरंग बली' का लाल 'लंगोट' धारण करते हैं और हनुमान जी का प्रसाद बाँटते हैं। इसी प्रकार हिन्दू-मुसलमान, ईसाई सभी धर्म के लोग एक-दूसरे के यहाँ विवाह-शादी में आकर मुक्त रूप से भाग लेते हैं व हाथ बँटाते हैं। कहीं-कहीं पर यह भी देखा जाता है कि ईसाइयों के दिन-प्रतिदिन के जीवन में भी कुछ हिन्दू धर्म में प्रचलित रिवाजों को माना जाता है—जैसे संध्या समय दीपक जलाते समय हाथ जोड़ना। इस धार्मिक सहनशीलता का एक विशेष कारण यह भी है कि ये प्रदेश दिल्ली से बिल्कुल ही लगा हुआ बसा है। दिल्ली के हर उथल-पुथल को इस प्रदेश ने खुली आँखों से देखा है। हर संस्कृति, सभ्यता तथा धर्म ने इसी देश पर अपना सबसे अधिक प्रभाव डाला है परन्तु इस प्रदेश ने उन सबको अपने रंग में रंग कर अपना लिया है। यही कारण है कि यहाँ का वासी अपनी स्पष्टवादिता, अक्खड़पन के साथ ही साथ दयालु, धर्मभीरु तथा सत्कार करने वाला भी रहा है।

यहाँ की धरती किसान का साथ देती है, उसकी मेहनत को कई गुना कर उसी को वापिस देती है। यही कारण है कि यह प्रदेश समृद्धिशाली भी रहा है। यहाँ का व्यक्ति केवल कृषक ही नहीं वह मशीन का उपयोग करना भी खूब जानता है। हलों के साथ-साथ वह ट्रेक्टर से भी खेती करता है तथा ढेकली, अरहट के साथ 'ट्यूबवेल' भी उसको प्राप्त है। फिर भी वह धर्मावलम्बी तथा धर्मभीरु है। वास्तव में लोक-समाज का एक विशाल जीवनदर्शन होता है जिसको वह अपना धर्म मानता है और जो उसके आचार-विचार तथा दैनिक कार्यकलापों में मुखर रहता है। उसकी कथनी और करनी में अधिक अंतर नहीं होता और यही उसके जीवन का मुख्य गुण है। उसका आचरण सीधा, सच्चा व धर्म-परायण होता है। वह पाप-पुण्य के प्रति जागरूक रहता है। वह अपने जीवन में झूठ बोलना, चोरी करना, धोखा देना, हिंसा करना आदि महापाप मानता है और अपने को पाप से बचाने के लिये ही इनसे यथासम्भव दूर रहता है और पुण्य-लाभ करने के हेतु परोपकार करता है। दोनों ही कृत्यों में उसका स्वार्थ निहित होता है। वह इस लोक की सुख-सुविधाओं के लिये अपना परलोक नहीं बिगाड़ सकता क्योंकि पुनर्जन्म व कर्मवाद में उसकी अडिग आस्था है। यही दो विशिष्ट धारणाएँ उसको सत्पथ पर ले चलने में सहायक होती हैं।

लोकधर्म—लोक संस्कृति के अन्तर्गत जनजीवन का व्यापक लोकधर्म आ जाता है। विज्ञ-समाज का धर्म वेदों, शास्त्रों, तर्कसंगत तथ्यों, तथा अन्य वैज्ञानिक दृष्टि-

कोणों पर आधारित होता है । उनके लिए धर्म तथा उससे संबंधित समस्त अंग मीमांसा तथा आलोचना के विषय होते हैं परन्तु लोकमानव के लिए वेद, शास्त्र तथा धर्म, नाम से ही श्रद्धा की वस्तु हैं। इनके सम्मुख धर्मभीरु लोकमानव नतमस्तक हो जाता है । उसके पास भावनामय हृदय है, तर्कभरा मस्तिष्क नहीं । उसके धर्म में सृष्टि का हर अंग प्रकृति, जलवायु, आकाश, पृथ्वी, मानव, पशु-पक्षी पूज्य बन कर आता है। सृष्टि की सम्पूर्ण वस्तुएँ जो उसके इस जगत् अथवा दूसरे जगत् में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी रूप में सहायक हैं, उसकी उपासना के अंग हैं। उसकी अनुभूति व्यापक है । जीवन की वास्तविकताओं से उसका सहज साहचर्य्य होता है। उसके जीवन को जो प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, वह उसके मूर्त देवता हैं तथा जो अप्रत्यक्ष तथा अलौकिक रूप से उस पर प्रभाव डालते हैं, वे तो अमूर्त तथा सामर्थ्यवान् शक्तियाँ हैं ही । इसीलिए लोकधर्म को हम सहज रूप से दो अंगों में बाँट सकते हैं—प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष।

लोकधर्म के प्रत्यक्ष अंग के अन्तर्गत वे सभी सृष्टि के अंग आ जाते हैं जिनकी पूजा खड़ीबोली का लोकमानव जान कब से करता आया है। वह सूर्य, चन्द्रमा तथा सितारों को भी पूजता है। प्रतिदिन प्रातः ही हर व्यक्ति सूर्य को प्रणाम करता है तथा अर्घ्य चढ़ाता है तथा रविवार को व्रत रखता है। चक्र बनाकर उसकी पूजा करता है तथा सूर्यास्त से पूर्व ही व्रत खोलता है । इस प्रकार चन्द्रमा की पूजा में पूर्णिमा का व्रत रखा जाता है तथा विभिन्न त्योहारों पर चन्द्रमा के दर्शन करके ही स्त्रियाँ पानी पीती हैं तथा भोजन करती हैं। 'चन्दनछठ' पर तो छोटी लड़कियाँ भी व्रत रहती हैं। जल की पूजा नदियों, कूपों तथा कुंडों के रूप में की जाती है। गंगा-जमुना आदि नदियाँ बहुत पूज्य मानी जाती हैं क्योंकि इनमें ध्वंस करने की अलौकिक शक्ति है तथा पालन की क्षमता भी है। खड़ीबोली प्रदेश के लोग नदियों पर शराब की धार चढ़ाते हैं, नदियों की तामसिक पूजा करते हैं तथा दलिया चढ़ाते हैं। कूप तथा कुंडों की भी पूजा की जाती है। परीक्षित गढ़ का नवलदे कुंआ बहुत पूज्य है। कहा जाता है कि इसमें स्नान करने से कोढ़ तक दूर हो जाता है। इसमें भीम नें नागलोक का अमृत रखा था। इसी प्रकार मेरठ का सूर्यकुंड तथा देवबन्द का देवीकुंड तथा परीक्षित गढ़ का गांधारी का तालाब हरिद्वार का सतीकुंड, भीम-गोड्डा आदि भी इसी प्रकार मान्य व पूज्य हैं। इन सबकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई ऐतिहासिक घटना घटी है। इसी प्रकार पंचतत्वों—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा सभी का अपनें-अपने रूप में पूजन होता है। ये शक्ति के द्योतक हैं। वृक्ष भी लोक-मानस के विश्वास तथा श्रद्धा के मुख्य पात्र हैं। पीपल, वड़ तथा तुलसी लोकमानव की पूजा के विशेप पात्रों में से हैं। पीपल तथा बड़ की भी विभिन्न त्योहारों पर पूजा

होती है। तुलसी की पूजा तो प्रतिदिन ही होती है। आम, ढाक, जाँड आदि लड़कियाँ हवन की समिधाएँ हैं ही। आम की पत्तियाँ ही मंगलकलश में डालते हैं तथा बन्दनवार बनाने आदि शुभ कार्यों में प्रयुक्त की जाती हैं। सिरस की टहनी दिवाली पर दरवाजे पर लगायी जाती है। इससे वायु दूषित नहीं होती। इसके अतिरिक्त लोक-समाज में कुछ असाधारण परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति भी पूज्य माने जाते हैं। यह व्यक्ति असाधारण शक्ति सम्पन्न होते हैं। पठन-पाठन, भक्ति पूजा, जप-तप आदि ऐसे ही कार्य हैं। इसी से लोकमानव ब्राह्मण को देवता की भाँति पूजता आया है। ग्रामों में आज भी प्रचलित है कि ग्राम के ब्राह्मण अथवा पुरोहित को अन्य जातियाँ देवता मानती हैं, इसीलिए उसको 'बाम्भन देवता' के नाम से संबोधित किया जाता है। यहाँ तक कि ब्राह्मण के बच्चे तक को 'बाब्बा' कहा जाता है। उसका नाम नहीं लेते। वह व्यक्ति भी उसके लिये पूज्य है जो मंत्र झाड़-फूँक आदि जानते हैं। उनको लोक-भाषा में 'भगत जी' के नाम से पुकारा जाता है। अतिथि भी देव-तुल्य माने जाते हैं। अतिथि देवता कहलाते हैं। इसीलिए अधिकतर घर के बड़े-बूढ़े अतिथि भी प्रतीक्षा करके ही स्वयं भोजन करते हैं। राजा भी ईश्वर का रूप माना जाता है, अतः पूज्य है। यद्यपि ये परम्परा अब समाप्त हो गयी है परन्तु लोक-समाज में प्रचलित कथाओं से हम इस बात का समर्थन पाते हैं। कन्या को देवी का रूप मानते हैं। विभिन्न देवी के त्योहारों में विशेषकर नवरात्र में तथा गाय के ब्याने पर भी कन्या ही जिमाई जाती है। देवी अष्टमी के दिन कन्या जिमा कर उसके पाँव पूजते हैं, टीका लगाते हैं और वस्त्र-द्रव्य आदि सामर्थ्य तथा प्रथानुसार देते हैं। पहली लड़की को लक्ष्मी का रूप मानते हैं।

इसी प्रकार धार्मिक पुस्तकों का भी पूजन किया जाता है। सत्यनारायण जी की कथा की पुस्तक, हनुमान चालीसा, गीता, रामायण, विष्णुपुराण, विष्णु सहस्रनाम तथा भागवत आदि पुस्तकों को लोक-समाज पूजा में रखता है और पूज्य समझता है। वास्तव में अशिक्षित होने के कारण वह पढ़कर तो पुण्य उठा नहीं पाता, अतः पूजा करके ही पुण्यलाभ कर लेता है।

लोकजन के संसार में पशु-पक्षियों को भी उचित स्थान मिला है। पशुओं में गाय, विशेष रूप से काली तथा कपिला गाय तो सभी से अधिक पूज्य होती है। घुड़चढ़ी के समय घोड़े को भी पूजते हैं। काले कुत्तों को माता का वाहन मान कर उसे दही पेड़ा आदि खिलाते हैं। बैल का भी पूजन होता है तथा गोबरधन के दिन तो घर के धन (पशु-गाय भैंस, घोड़ा) के गोबर से आकार बनाकर उसकी पूजा की जाती है। कुछ पशुओं की पूजा तो नहीं की जाती पर मान्य अवश्य है उनकी हत्या करना पाप समझते हैं जिनमें हाथी, बन्दर लंगूर, सूअर, लोमड़ी आदि आते हैं।

हाथी, बन्दर, लंगूर, सूअर आदि पशुओं का देवताओं से सम्बन्ध माना जाता है।

कुछ पक्षी भी पशुओं की भाँति पूज्य होते हैं जिनमें नीलकंठ, हंस, मोर आदि आते हैं। इस प्रदेश में हंस तो देखने को नहीं मिलता केवल कल्पना तथा धार्मिक ग्रन्थों तक ही सीमित है—लेकिन नीलकंठ अवश्य सहज दृश्य है। नीलकंठ का सीधा सम्बन्ध विष्णु भगवान् से है, ऐसा लोक विश्वास है। दशहरे के दिन इसको देखना अत्यन्त शुभ माना जाता है। इसी से लोग नीलकंठ के दर्शन हेतु मीलों तक चले जाते हैं। मोर के पंखों से 'बाच्छी' अर्थात् आशीर्वाद दिया जाता है। साईं लोग अधिकतर मोर के पंखों को झाड़ू की भाँति बाँध कर रखते हैं और इसी से ये लोग, बाच्छी देते हैं। श्राद्ध के दिनों में कौवों को भी 'ग्रास' दिया जाता है।

जीव-जन्तुओं को भी शुभ माना जाता है जिनमें सर्प मुख्य है। सर्प को लोग मारना नहीं चाहते तथा इनको देव-पितर माना जाता है और दूध पिलाते हैं। कहीं कहीं पर सर्पों के मन्दिर भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ—मुजफ्फरनगर में डल्लू देवता का मन्दिर इसी प्रकार का है।

इसी प्रकार चाक, कुंआ आदि का भी विवाह में तथा पुत्रजन्म के अवसर पर पूजन होता है। ये भी लोक मानव की श्रद्धा और विश्वास के अंग हैं।

अब हम संक्षेप में अप्रत्यक्ष शक्तियों का उल्लेख करेंगे। जिनसे जन-जीवन का अटूट सम्बन्ध है। इनमें देवी-देवता, व्रत-त्योहार, लोक-विश्वास आदि आते हैं। लोक-मानव यद्यपि वेदों तथा शास्त्रों से बिल्कुल ही अनभिज्ञ हैं परन्तु वह अपनी सब क्रियाओं तथा अनुष्ठानों को शास्त्रसंगत मान कर ही करता है। अधिकतर अनुष्ठान तामसिक तथा तान्त्रिक विधियों पर ही आधारित होते हैं परन्तु लोकमानव उनको परम पवित्र मानता है। सिद्धियों में उनका बहुत विश्वास है। उल्टा सीधा मन्त्र मिल जाने पर वह उसी को जपता रहता है तथा अशास्त्रीय साधनों से भी सिद्धि करना चाहता है। वह देवी की सिद्धि, माँस मदिरा से करता हुआ पाया जाता है। भूतप्रेतों, दानव आदि को भी वह शक्ति मानता है तथा विभिन्न क्रियाओं से उनको प्राप्त करने का वह प्रयत्न करता है। वह पीर की पूजा करता है तथा श्मशान में जाकर स्वार्थ सिद्धि के लिए सयानों से 'हँडियाँ' आदि छुड़वाकर विभिन्न उपचार कराता है। शास्त्रीय विधियों को लोकमानव ने लौकिक रूप दे डाला है, वह उसकी अपनी निधि बन गयी है। जिसका उसे ज्ञान नहीं होता, उसको भी वह सत्य व पूज्य मान कर अटूट आस्था से निरन्तर मानता रहता है। यदि उसे विश्वास हो जाता है कि किसी वृक्ष पर प्रेत अथवा दानव रहता है तो वह उसे कटवाता नहीं, अपितु उस वृक्ष के नीचे दीपक जलाने लगता है। लोक-विश्वासों का इसके जीवन पर इतना अधिक प्रभाव है कि बीमारियों की चिकित्सा भी उसने अपनी तरह से

अपने लोक-समाज में ही पा ली हैं । गला खराब हो जाने पर चाकू से पानी को काट कर पी लेने से वह ठीक कर लेता है। इसी प्रकार अन्य बीमारियों के इलाज भी लोक मन्त्रों द्वारा करते हुए देखा जाता है तथा उसके जीवन के बहुत से आस्था-विश्वास उसमें अपने लोकविश्वास में ही पलते हैं । जिन वस्तुओं को लोक-मानव बचपन से देखता आया है उनके अनुरूप चलना उसके जीवन का विधान है। यदि वह इसके विपरीत चला जाता है तो उसके जीवन में कोई भी अनिष्ट का कारण उपस्थित हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक-मानव का एक अपना निजी लोकधर्म है जिसको वह शास्त्र-संगत मानता है। उसकी अपनी एक सरल और सहज लीक बन गयी है और वह उसी पर निरन्तर सच्चाई से चले जाता है । यदि वह उसकी सत्यता के सम्बन्ध में कभी शंकित होता है उससे पाप हो जाता है और अनिष्ट के कारण उपस्थित हो जाते हैं । यदि हम ऊपर कहे गये 'निजी लोक धर्म' की विवेचना करें तो हम वहाँ पर मुख्यत: उसके लोक-विश्वासों को ही प्रधान रूप से उपस्थित पायेंगे । इन लोक-विश्वासों के अन्तर्गत उसके दिन प्रतिदिन के क्रिया-कलापों को प्रभावित करने वाले अन्धविश्वास, मन्त्र, टोने-टोटके, देवी-देवताओं की उपासना तथा वनस्पति पूजन आते हैं ।

ये लोक-विश्वास सर्वव्यापी हैं तथा इनमें व्यक्तिगत धार्मिक, सामाजिक सभी परम्परागत तत्व मिलते हैं। लोक-जन के जीवन पर इनका इतना अधिक प्रभाव है कि बड़े से बड़े कार्य को रोक देने तक की शक्ति इनमें है। इसी प्रकार किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने की प्रेरणा भी यही देते हैं। इनका सच्चे अर्थों में वर्गीकरण करना तो बहुत कठिन है, फिर भी हमने स्थूल रूप में वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। इसी वर्गीकरण की सहायता से हम अन्धविश्वासों का अध्ययन करेंगे। इन अन्धविश्वासों को दो मुख्य भागों में रखा जा सकता है—प्रथम, सामाजिक लोकविश्वास तथा दूसरा, पौराणिक लोक विश्वास ।

सामाजिक लोकविश्वासों को हमने छः दृष्टिकोणों से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है जो इस प्रकार है—

१—मनुष्य संबंधी २—तिथि, वार तथा मास संबंधी
३—पशु-पक्षी संबंधी ४—प्रकृति-संबंधी
५—स्वास्थ्य संबंधी तथा ६—मिश्रित ।

१—मनुष्य संबंधी—सामाजिक लोकविश्वास जो बालक के जन्म-दिवस, विवाह, मृत्यु तथा स्वप्न आदि से सम्बन्धित है, उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया गया है। यद्यपि यह पूर्ण नहीं है, परन्तु फिर भी अधिकांश भाग यहाँ लेने का हमने प्रयत्न किया है ।

जिन लोगों के बच्चे नहीं जीते हैं, बच्चे के जन्म के समय कान छेद दिये जाते हैं और जिह्वा पर गर्म सलाई से 'ॐ' लिख दिया जाता है । माथे पर दाग लगा दिया जाता है तथा वर्ष भर तक या पाँच साल तक या किसी विशेष समय तक माँगे हुए कपड़े (पुरानी कतरनें) पहनाये जाते हैं । गंगा माँ को बालक चढ़ाया जाता है। बाप बच्चे को जल में फेंकता है, बुआ या पुरोहित जल में खड़े रहते हैं तथा तुरन्त जल में सम्भाल लेते हैं। उनको रुपये देकर बच्चा उनसे मोल लिया जाता है। इस प्रकार फिर वह बालक गंगा माँ का दिया हुआ प्रसाद रूप में माना जाता है।

बालक के जन्म तथा जीवन के लिए जिनकी मनौती मानी जाती है, उनमें शाकुम्बरी देवी, हरिद्वार तथा गढ़गंगा आदि हैं । यहाँ पर बाल उतरवाने की भी मनौती मानते हैं । गढ़ की गंगा में नाव भी चढ़ायी जाती है । जो बच्चे किसी देवी-देवता की मनौती मानने पर उत्पन्न होते हैं, उनका नाम उन्हीं देवी-देवताओं के नाम पर रख दिया जाता है । इसी प्रकार से दिनों के ऊपर भी नाम रखे जाते हैं। ठाकुरों में तथा कुछ जातियों में बच्चे के जन्म के लिये जिस देवी-देवता की मनौती मानते हैं, जन्म लेते ही माँ बच्चे को उसी स्थिति में डोली में ले जाती है तथा मंदिर के द्वार से ही लौट आती है ।

जन्म के अवसर पर घर से बाहर कोई न कोई स्त्री बैठकर रखवाली करती है और सौर-गृह के दरवाजे पर अग्नि, लोहा, बेल का काँटा आदि वस्तुएँ रखी जाती हैं । इसी भांति सतिये रखने तथा बरतन चीतने की परम्परा के पीछे भी वेद की अपेक्षा लोक की प्रधानता रहती है । जन्म के बाद सौर-गृह में बिल्ली को नहीं जाने देते । इसके पीछे यही भावना होती है कि कहीं बच्चे की 'सूंडी' न तोड़ लाये । छठी के दिन वैमाता बालक की भाग्यरेखा लिखने के लिये आती है । मूल नक्षत्र में जन्म होने पर २७ कुओं का जल, २७ पेड़ों के पत्ते तथा २७ अनाज आदि से मूल शान्ति करते हैं । बालक के नाम के सम्बन्ध में भी कुछ लोक-विश्वास है कि यदि पुत्र मामा के घर उत्पन्न होता है तो उनका नाम 'मामराज' भी रखा जाता है और अगर नाना के यहाँ तो 'ननकू', 'नानक' आदि नाम रखे जाते हैं ।

बच्चे के ऊपर वाले दाँत यदि पहिले निकलें तो वह मामा के ऊपर भारी होता है । मामा इसका उपाय—चाँदी की कटोरी, सतनजा (सात नाज) तथा अन्य कुछ वस्तुएँ उजाड़ में—जहाँ कोई देख न सके—फेंक कर करता है ।

बालकों के बाल व कपड़े इधर-उधर नहीं फेंकते, क्योंकि बन्ध्या-स्त्री टोने-टोटके कर देती है । बच्चों को मीठा खिलाकर घर से बाहर नहीं निकलने देते क्योंकि भूत-प्रेत लगने का डर रहता है। अगर भेजना ही पड़े तो बाद में उपलें (गोसे)

या कंडे की राख चटा देते हैं। इसके पीछे यही धारणा रहती है कि इससे 'अलाबला' बच्चे पर प्रभाव नहीं डालेगी । सोते हुए अगर लड़कियाँ दाँत किटकिटाती हैं तो माता-पिता के लिये अशुभ होती हैं। लड़का सोते हुए अगर दाँत किटकिटाए तो शत्रु को अशुभ होता है। जिन लड़के-लड़कियों के गालों में हँसते हुए गड्ढा पड़ जाता है उनके सास नहीं होतीं । जिस लड़की की पीठ पर भाई होता है तो उस बहन की पीठ पर गुड़ की 'भेल्ली' फोड़ी जाती है । इसके पीछे यही भावना रहती है कि बहन की पीठ पर लड़की होने के कारण जो भार रहता है वह भाई ने जन्म लेकर समाप्त कर दिया। छठें महीने में बालक के दाँत निकलना शुभ होता है ।

छोटे बच्चों को, प्रसूता अथवा नव वर-वधू को पीर के स्थान पर अकेले नहीं जाना चाहिये। कहा जाता है कि ऐसा करने से उन पर अलाबला का प्रभाव हो जाता है । तीन बेटों के बाद भी बेटी भाग्यशालिनी होती है पर तीन बेटी के बाद का बेटा अभागा । बेटी गर्भ में हो तो माँ मोटी होती जाती है, बेटा हो तो कमजोर हो जाती है । जिस स्त्री का तलुआ पोला हो और सिर ऊँचा उसका पति असमय ही मर जाता है । पुरुष की छाती पर बाल न हों तो उसका विश्वास नहीं करना चाहिये । स्त्री की छाती पर बाल हों तो वह बन्ध्या होती है। कोई फूल, विशेषकर चमेली लेकर सती की थान के पास नहीं घूमना चाहिये । चाँदनी रात में मिठाई-पान खाकर या दूध पीकर कहीं बाहर नहीं जाना चाहिये । किसी कब्र या समाधि पर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। वस्त्रों में सुगंधित द्रव्य या बालों में सुगंधित तेल लगाकर निर्जन में नहीं जाना चाहिये । बूढ़े अगर अधिक खाने लगें तो दरिद्रता आती है। ऐसा भी लोक-विश्वास है कि जब वृद्ध अधिक खाने लगते हैं तो उसका अन्त समय आ जाता है।

ग्रहण के समय गर्भवती स्त्रियों को कुछ काम नहीं करना चाहिये और न अपना कोई अंग मोड़ना चाहिये, नहीं तो बालक अंग-भंग रूप में जन्म लेगा । गर्भवती स्त्रियों के लिये ग्रहण देखना भी ठीक नहीं होता। उस समय गर्भवती स्त्रियों के हाथ-पाँव के नाखून गेरू से रंगे जाते हैं तथा पेट पर सतिया (स्वस्ति) चिह्न बना दिया जाता है ।

लग्न के बाद से वर को तथा लड़की को अपने हाथ में लोहे की वस्तु पहननी पड़ती है। उसको घर से बाहर भी नहीं जाने दिया जाता है। लड़के और लड़की के हाथ का कंगना इसी का द्योतक है। बारात जाते समय पंचतत्वों की पूजा करके उन्हें बन्द करके रखते हैं, जब तक कि वर निर्विघ्न वधू को लेकर घर

नहीं लौट आता । बिजली कड़कते समय मामा भान्जे एक साथ बैठ कर खाना नहीं खाते । जेठे लड़के, साँप, भैंस तथा काली वस्तु पर जल्दी ही बिजली गिरने का डर रहता है । दिन में कहानी नहीं सुनाते हैं, कहते हैं इससे मामा रास्ता भूल जाते हैं ।

मकरसंक्रान्ति के दिन से या माघ मास में प्रतिदिन प्रातः पति का चरणोदक लेकर पीने से महात्तम (माहात्म्य) होता है और सौभाग्य वृद्धि होती है । मंगली लड़की का विवाह पहले तुलसी, केला या पीपल से करते हैं, बाद में असली वर से । इससे वैधव्य योग का खण्डन हो जाता है । रात के समय खाट नहीं कसते हैं, नहीं तो केवल लड़कियाँ ही लड़कियाँ होती हैं । बालकों के सिर पर नहीं मारना चाहिये इससे 'लच्छन' झड़ जाते हैं ।

बालकों के दाँत टूटने पर चूहे के बिल में डाल देते हैं और कहते हैं कि जैसे नेवले के दाँत तेरे बच्चों के निकलते हैं, ऐसे ही मेरे निकलें । यह गोबर में लपेट कर छत पर फेंक देते हैं या किसी पौधे के नीचे दबा देते हैं । कोई भी कार्य प्रारंभ करते समय प्रायः यह दोहा कहने की प्रथा है—

सदा भवानी दाहिनी गौरी पुत्र गनेस ।
पाँच देव रक्षा करें, ब्रह्मा विष्णु महेस ।।

कुछ व्यक्तियों के नाम नहीं लिये जाते हैं । किसी कंजूस, कम्बख्त या निपूते का नाम भी सबेरे-सबेरे नहीं लेते । कहते हैं कि सबेरे नाम लेने से दिन भर खाना नहीं मिलेगा ।

पति, पत्नी का तथा पत्नी, पति का नाम नहीं लेती । जेठे (ज्येष्ठ) बेटे का तथा अपना स्वयं का नाम भी नहीं लिया जाता । रात के समय साँप तथा उल्लू का नाम नहीं लेते । तथा सबेरे बन्दर का नाम नहीं लेते। प्रातः अधिकतर लोग सबेरे सर्वप्रथम अपने हाथ की हथेलियाँ देखकर या धरती छूकर उठते हैं ।

स्वप्न में चाँदी का देखना शुभ होता है । सोना देखना अशुभ माना जाता है । स्वप्न में मिठाई खाना बीमारी का द्योतक है । स्वप्न में विवाह होना भी अशुभ है, ऐसे स्वप्न से किसी संकट की संभावना की जाती है । स्वप्न में जिस व्यक्ति की मृत्यु देखो, उसकी आयु की वृद्धि होती है । स्वप्न में पाखाने से भर जाना शुभ होता है । खराब स्वप्न को 'पाखाने' में कह देने से उसका दोष हट जाता है । देहली पर बैठ कर खाने से कर्जा होता है । खड़े होकर दूध पीने से गाय-भैंस का दूध सूख जाता है । थाली में उल्टी रोटी देना अशुभ होता है । उल्टी खाट खड़ी करना अशुभ होता है, किसी की मृत्यु होने के बाद ऐसा किया जाता है ।

किसी के यात्रा पर जाने के बाद घर में तुरन्त झाड़ू नहीं लगाना चाहिये—मृत्यु के बाद शव को ले जाने पर ऐसा करते हैं। शाम को दोनों समय मिलने पर (संधि काल) धोबी को कपड़े नहीं देना चाहियें। अगर पुरुष दायें हाथ की हथेली खुजलावे तो आमदनी होती है। वायें हाथ की हथेली खुजलाने से खर्च होता है। इसके विपरीत स्त्रियों का बायीं हथेली खुजलाना आमदनी का द्योतक तथा दायीं हथेली खुजलाना खर्च का द्योतक है। स्त्री की बाँयी आँख फड़कना शुभ कहते हैं 'साईं मिले या बीर'—पर दायीं आँख फड़कना अशुभ माना जाता है। पुरुष की दायीं आँख फड़कना शुभ तथा बायीं आँख फड़कना अशुभ। हथेली पर नमक देने लेने से लड़ाई हो जाती है। पैर का तलवा खुजलाना यात्रा का सूचक होता है। चप्पल पर चप्पल चढ़ना अशुभ माना जाता है। पिता के जीवित रहते हुए पुत्र का मूँछ मुड़वाना पिता के लिये अशुभ माना जाता है।

स्वप्न में सर्प दिखना पितरों का रूप माना जाता है। मृत्यु के समय यदि दूध पिला दिया जाय तो मनुष्य दूसरे जन्म में सर्प की योनि में जाता है। शंकर जी का प्रसाद गृहस्थ नहीं खाते हैं। जो व्यक्ति कर्ज लेकर मरता है, वह बैल बन कर अदा करता है।

बालक के जन्म पर राशि का नाम रखते हैं या देवी-देवता या ईश्वर के नाम पर यथा—रामचन्द्र, किशनलाल, देवीदत्त; पवित्र तीर्थों के नाम पर—हरद्वारी लाल, मथुरादास, काशीप्रसाद, प्रयागसिंह, गंगा, जमुना, भागीरथी, सरयू आदि। पवित्र पौधों के अनुसार भी नाम रखे जाते हैं जैसे—तुलसीदास, गेन्दासिंह, अशोक आदि। अशुभ ग्रहों की उपशान्ति के लिए असुन्दर नाम भी रखते हैं—मंगलू, घसीटा, बुद्धू, बदलू, रामलोटन, गंगू आदि।

गर्भवती स्त्रियों के लिये बहुत से विधि और निषेध होते हैं जो इस प्रकार हैं :—

वह नये कपड़े नहीं धारण कर सकती। नई चूड़ियाँ नहीं पहन सकती। मेंहदी, स्याही और बिन्दी नहीं लगा सकती। साध पहरने का दिन निश्चित हो जाने पर ५ अथवा ७ दिन पहले स्नान व श्रृंगार नहीं कर सकतीं। इसे मैल छोड़ना कहते हैं।

गर्भवती स्त्री के स्वप्नों के भी आशय निकाले जाते हैं। अगर गर्भवती स्त्री को जौं का खेत और हरी-हरी दूब लहरें लेती हुई दिखायी दे तो लड़का होने का सूचक होता है। अगर स्वप्न में अम्बुआ का पेड़ झलर-झलर करे तो वह पुत्रजन्म

का द्योतक है । स्वप्न में लौकी देखना लड़की होने का सूचक है । पुत्र-जन्म की शुभ सूचना पास-पड़ोसियों को फूल की थाली बजाकर दी जाती है ।

जच्चा के लिए भी नारी समाज में कई विधि और निषेध प्रचलित हैं :—

जच्चा को कभी अकेले नहीं रहना चाहिये । उसके सिरहाने चाकू या छुरी रख देते हैं। सौर-गृह में आग कभी नहीं बुझाते और उस पर धूनी डालते रहते हैं । बिल्ली को अन्दर नहीं घुसने देते । छठी से पहिले बच्चे को कपड़े नहीं पहनाते । अगर बालक कृष्ण पक्ष में हो तो जच्चा का प्रथम स्नान शुक्लपक्ष में होता है । यदि गर्भवती स्त्री का चलते समय पाँव पर अगली ओर ज़ोर पड़ता है तो पुत्र का जन्म होता है और यदि पीछे की ओर पड़ता है तो कन्या का जन्म होता है ।

अविवाहित युवक की मृत्यु हो जाये तो उसे कंधे पर नहीं उठाते । बालक का नाम रात को नहीं लेते क्योंकि कोई उल्लू सुन लेगा तो वह दोहरायेगा और बच्चा मर जायेगा । जब तक बालक को दाँत न निकले उसे शीशा नहीं दिखाना चाहिये । शीशा देखने से दाँत निकलने मे कष्ट होता है । प्रायः बड़ी अवस्था होने पर लोग सबसे अधिक पसन्द फल या सब्जी, किसी तीर्थ पर जाकर स्वर्ग में मिलने की आशा के लिये छोड़ देते हैं । किसी व्यक्ति को यात्रा पर या किसी शुभ कार्य के लिए जाते समय टोकना नहीं चाहिये । अगर कोई टोक दे तो पान खाकर जाना चाहिए ।

बीमारी में शीशा नहीं दिखाते । मृत्यु के समय भी शीशा नहीं दिखाया जाता। शाम के बाद शीशा देखने से आयु कम होती है । रात को देखने से आदमी भूत होता है । जो मेहमान अपने मेज़बान के घर नाखून काट कर डालता है, वह उसके घर में ग़रीबी बुलाता है । जो कोयले से धरती पर लिखता है उसके घर में कर्ज होता है । जो व्यक्ति जनेऊ गलत कंधे पर पहिनता है उसके माता-पिता की आयु कम होती है । तीर्थयात्रा करके लौटने वाले व्यक्ति के सब छोटे सम्बन्धी पैरों के नीचे से धूल लेकर लगाते हैं, उनके पैर धोकर सब पर छिड़कते हैं । बाँझ स्त्री से फल का पेड़ नहीं लगवाना चाहिये । दोहद की पूर्ति न होने से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री या पति की कोई न कोई हानि हो जाती है अथवा गर्भस्थित बालक या उस स्त्री की भी क्षति हो सकती है ।

तिथि वार, और मास संबंधी लोकविश्वास—'पड़वा' को यात्रा पर नहीं जाते—कहावत भी है—'पड़वा गमन न कीजिए जो सोने की होय ।' एक भाई की बहन सोमवार और मंगल को सिर नहीं धोती ।

बुधवार को भी सिर नहीं धोते हैं। कहावत है—'बुद्धा खोलिए न जुड्डा'। बृहस्पति को एक भाई की बहन और एक बेटे की माँ सिर नहीं धोतीं, तथा सुहागन भी नहीं धोती। इससे धन व परिवार की हानि होती है। शनिवार को भी सिर नहीं धोना चाहिये, कहते हैं कि इससे शनि चढ़ता है। शनिवार को पीपल वृक्ष की पूजा करते हैं, सब देवताओं का वास इसमें रहता है। बुधवार को चूड़ियाँ नहीं पहननी चाहिये। स्त्री को रविवार तथा मंगल को चूड़ी पहनना मना है और जूड़ा खोलना व बाँधना भी मना है, इन दिनों में करने से सिरदर्द होता है।

स्त्री का पुत्रजन्म आदि के बाद प्रथम बार बृहस्पति को नहाना अशुभ समझा जाता है। विवाह में, हल्द, बान आदि, मंगल, बुध और बृहस्पति को नहीं होते तथा शनिवार को भी नहीं होते। शुक्रवार को अच्छा दिन मान कर करते हैं। बुधवार को बहू-बेटी विदा नहीं होती, कहते हैं कि बुद्ध-बिछोह नहीं होना चाहिये। इतवार या सोमवार को आने वाला बृहस्पतिवार को ही जा सकता है। कहावत भी प्रसिद्ध है—

मंगल करै दंगल, बुध बिछोहा होय,
जुमेरात की खीर खा के जुम्मे को जाना होय।

मंगल और शनिवार को दाढ़ी और नाखून नहीं बनवाते। शुक्रवार को दामाद को टीका नहीं करते हैं। नया कपड़ा बुध, बृहस्पति तथा शुक्रवार को पहनना चाहिये। शनिवार को नया जूता और कपड़ा नहीं पहनते। मंगल और बुध को चारपाई नहीं बुनवाते। शनिवार, रविवार तथा मंगल को आधासीसी का दर्द झाड़ते हैं। बुधवार को यात्रा के लिये प्रस्थान नहीं करते पर दिशाशूल का भी ध्यान रखते हैं। कहावत है—

सोम सनीच्चर पूरब न चालू,
मंगल बुध उत्तर दिसि कालू।

शास्त्रीय ज्योतिष के मत से शनि में पूर्व, शुक्र में अग्निकोण, बृहस्पति में दक्षिण बुध में नैऋत्यकोण, मंगल में पश्चिम, सोम में वायुकोण और रविवार में उत्तर दिशा में काल रहता है। इसका परिहार इस प्रकार है—

अगर रविवार को घृत, सोम में दूध, मंगल में गुड़, बुध में तेल, बृहस्पति में दही, शुक्र में जव तथा शनि में माण भोजन करके यात्रा करे तो दिशाशूल का दोष मिट जाता है। शनिवार को खाली बार और बृहस्पति को रोगी बतलाया जाता है, इसीलिए स्त्रियाँ इन दोनों दिनों में से किसी को भी शुभकार्य नहीं करतीं।

जेठ के दिनों में गंगा दशहरे के दिन मरने से सीधे स्वर्ग मिलता है। श्राद्ध

(कनागतों) के दिनों में मरने से खुले किवाड़ों जाते हैं। लोकविश्वास है कि उन दिनों स्वर्ग के दरवाजे सबके लिए खुले रहते हैं। इतवार को नमक नहीं खाते हैं। जो आदमी सोमवार को दाढ़ी बनाता है, उसके लड़के की आयु कम होती है। जो स्त्री सोमवार को सीती है, उसके लड़के की आयु कम होती है। इतवार को चने खाने से दरिद्रता होती है। शनिवार को चने खाना और दान करना अच्छा होता है।

होली से पहली रात और दिवाली की रात को दूध नहीं पीते क्योंकि इन रात्रियों में प्रेतात्माएँ वातावरण में भ्रमण करती हैं।

देव उठावनी एकादशी को देव उठते हैं। उस दिन से शुभ कार्य आरम्भ किया जाता है। देव सोने के समय खाट नहीं बुनते, ब्याहली बहू को बिदा नहीं कराते तथा नया काम भी आरम्भ नहीं करते। पथरा चौथ के दिन चाँद देखने से दोष लगता है। अगर चाँद दिख जाता है तो उसका दोष समाप्त करने के लिए चाँद को पत्थर से मारते हैं। जो पत्थर लोगों की छत्त पर आकर गिरते हैं तो, कहते हैं कि जितनी गाली मिले उतना ही दोष उतरता है। बृहस्पति के दिन काजल या सुरमा नहीं लगाते। कहते हैं कि उस दिन पीर रशीद अपनी दरगाह से निकलते हैं तथा अन्य प्रेत्मात्माएँ भी वातावरण में निवास करती हैं। पुत्र-जन्म के बाद शनिवार, रविवार और मंगल को कुँआ नहीं पूजते हैं।

चैत में बाहर खाट नहीं निकालते; कहते हैं कि चैत में चिन्ता होती है। पूष में ब्याह नहीं होते। देव उठावनी एकादशी को बिना बिचारे भी सब तरह की शादी हो सकती है। सावन-भादों में उपले नहीं पाथे जाते। सावन में पाथने से पति के लिए अशुभ होता है तथा भादों में भाई के लिये।

माघ मास की सन्तान बाघ की तरह बलवती होती है। जेठ की सन्तान हीन होती है। जेठ में जेठे लड़के (बड़े लड़के) का विवाह नहीं करते। सूक डूबने पर (शुक्रास्त) भी शुभ कार्य नहीं करते। विशेष रूप से बहू-बेटी ससुराल आदि नहीं आती-जातीं—यदि आती-जाती हैं तो उसका उपाय करना पड़ता है या तो वे सूक में ही लौट आती हैं या वे रात को मन्दिर में जाकर ठहरती है, जिससे सूक का प्रभाव टल जाता है।

जुताई-हलाई के आरम्भ के लिए मंगलवार वर्जित माना जाता है। बुधवार विशेषतः शुभ दिन माना जाता है। बुध को बुवाई आरम्भ करनी चाहिये और शुक्र को कटाई। प्रत्येक पक्ष की प्रतिपदा तथा चतुर्दशी को जुताई और बुवाई आरम्भ नहीं करनी चाहिये, कनागतों में बुवाई करना अहितकर माना जाता है। खेती के बैलों को अमावस्या के दिन काम में नहीं लिया जाता। माघ मास में

संक्रान्ति को कुआ, गाड़ी और हल नहीं चलाते हैं। पशु क्रय-विक्रय के लिए मंगल तथा शनिवार अशुभ माने जाते हैं ।

पशु-पक्षी सबंधी लोकविश्वास—मेरठ में पशु-देवता के रूप में चाँमड़ की पूजा होती है, इसको विशेषतः भैंसे की स्वामिनी कहा जाता है। बन्दर का नाम सबेरे नहीं लेते, कहते हैं उस दिन खाना नहीं मिलता। रात को साँप तथा उल्लू का नाम नहीं लेते । ऊँट, सियार, सूअर, कुत्ता, उल्लू तथा भेड़िये को भी अशुभ माना जाता है । नेवला देखना शुभ तथा घर में रहना भी शुभ माना जाता है ।

काले कुत्ते का घर में आना अशुभ मानते हैं, यह बीमारी का द्योतक है । उसे दही पेड़ा खिलाते हैं—माता का वाहन मान कर। घर में कानखजूरा निकलना शुभ माना जाता है। यह लक्ष्मी का द्योतक है। कुत्ते तथा बिल्ली का घर के बाहर रोना अशुभ सूचक है। बिल्ली को नसैनी, कमबख्त तथा मनहूस कहते हैं, वह चाहती है कि सब घर के लोग अन्धे हो जायें तो खूब खाने को मिले। कुत्ता खैरख्वाह, शुभचिन्तक माना जाता है। वह चाहता है कि परिवार और अधिक बढ़े जिससे मुझे खूब टुकड़े मिलें। गाय को बहुत पूज्य मानते हैं, पहली रोटी गाय की निकालते हैं। गऊ-ग्रास का भी बहुत महत्व है। जब बछड़ा होता है तो गाय रोती है तथा जब बछिया होती है तो प्रसन्न होती है।

जो बैल या बछड़े खड़े-खड़े हिलते रहते हैं वे अशुभ माने जाते हैं । जिन बछड़ों की जिह्वा पर साँपन होती है तथा उसे हर समय बाहर निकाल कर घुमाते रहते हैं, वह स्वामी के लिये अशुभ होते हैं । गाय यदि अपने आप दूध पीने लगती है तो वह कम्बख्त मानी जाती है। जिन गाय या भैंसों के थन सख्त होते हैं, उनके नीचे घी बहुत होता है। छोटे थन वाली गायों के नीचे दूध कम होता है, बड़े थन वाली गायों के नीचे अधिक । पहली-दूसरी बार ब्याई गाय उत्तम होती है और काफ़ी दूध देती है। भैंस तीसरी या चौथी बार की ब्याई बहुत अच्छा दूध देती है। उत्तम गाय अथवा भैंस वह होती है जो बच्चे को भी थनों में सरलता से हाथ डालने देती है। कपिला गाय सबसे उत्तम मानी जाती है तथा उसके खुर भी लाल होते हैं । काली गाय भी असली और अच्छी होती है, उसका दूध उत्तम तथा शक्तिशाली माना जाता है । लम्बी पूंछ वाले बैल अच्छे होते हैं तथा लम्बे सींग वाले बैल भी अच्छे माने जाते हैं । नाटा बैल ताकतवर माना जाता है। झोंटे को खेती के काम में नहीं लाते, क्योंकि वह यमराज की सवारी माना जाता है ।

घोड़े का उसके बाल तथा बोहरी से बिचार किया जाता है। कुछ बोहरियाँ विभिन्न आकार बना देती हैं। पंच कल्याण जिसके माथे पर सफेद तिलक तथा चारों पैर सफेद होते हैं, वह उत्तम होता है। जिन घोड़ों की जीभ पर साँपन होती है वह अशुभ माना जाता है। घोड़े की पीठ पर यदि साँपन होती है तो वह सवार के लिए अशुभ होता है। अगर घोड़े की गर्दन पर साँपन होती है तथा उसका मुँह सवार की ओर होता है तो वह भी सवार के लिय अशुभ माना जाता है। जिन घोड़ों के दोनों नेत्रों के बीच में गोल बोहरी होती है, वह अच्छे होते हैं परन्तु जिनकी बोहरी आँखों के नीचे होती है वह रोगी रहते हैं। ऐसी बोहरी को 'आँसू ढाल' बोहरी कहते हैं। सबसे उत्तम घोड़ा काला ही माना जाता है। अरबी घोड़ा बहुत तेज तथा हमदर्द होता है। जो घोड़े खड़े-खड़े जमीन में एक पाँव मारते हैं वह भी अशुभ माने जाते हैं।

पशुओं की बीमारियों के लोकोपचार--अधिकतर गाय या बैल मुँह तथा पैर से आ जाते हैं, गाय के मुँह में छोटे काँटे होते हैं जो सख्त हो जाते हैं तथा चुभनें लगते हैं। उनको मोची बुलाकर कटवाया जाता है। पैरों में छाले पड़ जाने को पैरों से आना कहते हैं। इसमें पैरों पर चोकर बाँधा जाता है। अधिकतर पैरों से आने की बीमारी गेहुओं की फसल में होती है जब बैलों को लान गाहना पड़ता है। इन्हें छेरने की बीमारियाँ भी होती हैं जिसमें सेंधा नमक चटवाया जाता है। जब गाय तथा बैलों को गोबर नहीं होता तो उस समय नाल से मट्ठा तथा तेल देते हैं। मट्ठा, तेल बछड़ों तथा कटरों को वैसे भी दिया जाता है। ये स्वास्थ्यप्रद होते हैं। चने की दाल, बैल व घोड़ों के लिये शक्तिशाली मानी जाती है। बिनौले, गाय व भैंस को दिया जाता है जिससे दूध बढ़ता है। हरी घास भी इनके लिये उत्तम होती है। बरसीम तथा एवरग्रीन आदि घास भी इनके लिये विशेष घास होते हैं। गन्नों के महीने में गौले भी जानवरों को खिलाये जाते हैं। साधारणतः गाय-बैलों को भूसा दिया जाता है। जई की घास, घोड़ों के लिये उत्तम होती है। बरसीम घोड़ों को भी दिया जाता है। घोड़ों को विभिन्न प्रकार के मसाले भी दिये जाते हैं।

घोड़ों को कभी-कभी चाँदनी लग जाती है, ये बीमारी कभी-कभी चाँदनी में बँधे रहने के कारण हो जाती है। इसमें घोड़े के पेट में दर्द होता है और वह मर जाता है। घोड़ों के पावों में बैजे हो जाते हैं और घोड़े लंग करने लगते हैं। घोड़ों के घुटनों में छोटी-छोटी गाँठें पड़ जाती हैं इनको बैजे कहते हैं--ये बढ़ जाते हैं और घोड़ा चलने से विवश हो जाता है।

पक्षी--उल्लू के सामने किसी का नाम लेकर नहीं पुकारते क्योंकि उल्लू नाम

रटने लगता है, और वह व्यक्ति धीरे-धीरे सूखता जाता है और अन्त में मर जाता है। उल्लू का किसी के घर में बैठना या बोलना अशुभ मानते हैं। दिवाली को शराब पिलाकर इससे धन के संबंध में पूछते हैं, क्योंकि जन विश्वास है कि इसको खजानें का पता मालूम रहता है। मरने के बाद उल्लू के अंग तान्त्रिकों के काम आते हैं। गिद्ध तथा चील का घर के ऊपर बैठना अशुभ मानते हैं। मुसलमान, गिरगिट को बुरा समझते हैं और मकड़ी को अच्छा। कारण जब हसन मियाँ लड़ाई से भागे थे तो वे कुएँ में जाकर छिप गये थे और मकड़ी ने ऊपर से जाला पूर दिया था। जब शत्रु पहुँचे, उसी समय गिरगिट ऊपर से कूद पड़ा और जाला टूट गया, दुश्मनों ने उनको पकड़ लिया, तभी से गिरगिट को मुसलमान अशुभ मानने लगे। हिन्दू, गिरगिट को नहीं मारते तथा शुभ मानते हैं क्योंकि राजा नृग को गिरगिट की योनि में रहना पड़ा था। नीलकंठ देखना बहुत ही शुभ माना जाता है। विशेषकर दशहरे के दिन तथा यात्रा को जाते समय नीलकंठ को देख कर जानें की कामना करते हैं——

'नीलकंठ पटवारी तुम नीले रहना
मेरी बात राम से कहना
सोते हों तो जगा के कहना
जागते हों तो कान में कहना'

प्रात: कौवे का घर की मुँड़ेर पर बोलना पाहुना आने का द्योतक है। कौवे का बोलना सुनकर कहते हैं 'कौन आएगा—कोई आने वाला है तो उड़ जाओ'। अगर वह तुरन्त ही उड़ जाता है तो पाहुन का आना निश्चित हो जाता है। काले कौवे का सिर पर या बिस्तर पर बैठ जाना अशुभ मानते हैं। सर्प नमक के निकट नहीं जाता।

प्रकृति सम्बन्धी (वृक्ष)—हर वृक्ष की आत्मा होती है, अत: उसे चेतन की तरह समझना चाहिये। इसीलिये रात को पेड़ नहीं छूते——कहते हैं कि वह सो जाते हैं—— उनको सोते से जगाना पाप है। पीपल, बेल, गूलर, बरगद और आम के वृक्षों का लगाना पुण्य समझा जाता है। इनके पास चबूतरा बना कर देवी-देवता की स्थापना भी करते हैं। नीम का वृक्ष लगाकर देवी को प्रसन्न करने की भावना निश्चित होती है। पीपल को बहुत पवित्र मानते हैं। कहते हैं, इसमें विष्णु जी का वास होता है। इसको हिन्दू अपने हाथ से नहीं काटते, पाप समझते हैं तथा पीपल के नीचे मल-मूत्र त्यागने का भी निषेध है।

सोमवती अमावस्या को तथा शनिवार को सौभाग्यवती स्त्रियाँ इसकी पूजा

तथा प्रदक्षिणा करती हैं जिससे सौभाग्य की वृद्धि होती है और सन्तान-प्राप्ति होती है। वट वृक्ष को काटना भी निषिद्ध है। जेठ में बड़मावस को बड़ की पूजा विशेष रूप से होती है। इसे सुख-सौभाग्य का देने वाला मानते हैं।

चैत्रमास में नवरात्र में नीम की पूजा विशेष रूप से होती है। अगर इस समय इसकी सेवा न करें तो देवी रुष्ट हो जाती हैं। माता निकलने पर नीम का झाड़ा दिया जाता है। बेल की पत्तियों को बहुत पवित्र मानते हैं तथा इसको शिव जी के ऊपर चढ़ाते हैं। खण्डित बेलपत्र चढ़ाने से दोष लगता है। बेल की लकड़ी घर में जलाने से दोष लगता है। इस वृक्ष के नीचे मल-मूत्र त्यागना वर्जित है।

कार्तिक मास में आँवले की पूजा करते हैं, विशेषकर 'आँवला एकादशी' को। आम की पत्तियाँ हर शुभ कार्य पर प्रयोग में लायी जाती हैं। इसको मंगलघट में लगाते हैं, बन्दनवार बनाते हैं। आम की सूखी लकड़ियाँ हवन की समिधाओं में प्रयोग की जाती हैं।

बृहस्पति के दिन कन्याएँ केले की पूजा सुयोग्य वर पाने के लिए करती हैं। कार्तिक मास में इसकी विशेष पूजा होती है। यह बहुत पवित्र माना जाता है। सन्तान-प्राप्ति के लिये तथा सौभाग्य के लिये इसका पूजन होता है। तुलसी का बिरवा घर-घर में हर हिन्दू के यहाँ होता है तथा बहुत पवित्र माना जाता है। कार्तिक मास में विशेष रूप से इसकी आरती तथा दीपदान करते हैं। तुलसी को माता का रूप मानते हैं और देवउठानी एकादशी को तुलसीविवाह करते हैं। रविवार और मंगल को तुलसी तोड़ने का निषेध है।

फलों के बाग़ में बरगद तथा पीपल भी लगवाते हैं और उनका विवाह अन्य वृक्षों से कर देते हैं, ऐसा करने से बाग़ में ठीक फल आते हैं।

स्वास्थ्यसंबंधी सामाजिक लोकविश्वास तथा उनके उपचार—शेर का नाखून अथवा मूँछ के बाल को गले में ताबीज बना कर बाँधने से बच्चे को डर नहीं लगता। इसी प्रकार यदि किसी स्त्री के बच्चे नहीं जीते तो बच्चे को शेरनी का दूध पिलानें पर वह जी जाता है। शेर का गोश्त भी सुखाकर रखा जाता है। यह भी बच्चे को सर्दी लग जाने पर घिस कर पिलाया जाता है। रीछ के बाल का ताबीज़ बच्चों के गले में नज़र व डर के लिए बाँधते हैं।

कबूतर की बीट बच्चों को सर्दी हो जाने पर दी जाती है। कबूतर के पंखों में से निकली हुई हवा बच्चों के लिये शुभ होती है। इसलिये बच्चों के घरों में कबूतर पाले जाते हैं।

बच्चों के निमोनिया को मीठा कहते हैं। जिन बच्चों को मीठा रोग हो जाता है उनको लेकर स्त्रियाँ मस्जिद के द्वार पर खड़ी हो जाती हैं—नमाज़ पढ़-पढ़कर

लोग निकलते जाते हैं तथा उस पर फूंक लगाते जाते हैं। गौरैया की बीट भी बच्चों की बीमारी में काम आती है। आधासीसी के दर्द में शनिवार और रविवार तथा कोई-कोई मंगल को भी झाड़ते हैं. यह झाड़ दो प्रकार की होती है—

१—रीठा पढ़ के दिया जाता है और उसको कूट कर कपड़े में बाँध कर गले या हाथ में बाँध देते हैं।

२—धूप में परछाई को मंत्र पढ़ कर कीलते हैं। यह सूर्य निकलते ही झाड़ते हैं। कुछ लोग दोपहर को १० बजे झाड़ते हैं।

दाँत कीलना—जिसके दर्द होता है वह अगर बाँये दाँत में दर्द है तो दाँये हाथ से पकड़ कर और दाँये दाँत में दर्द है तो बाँये हाथ से पकड़ कर किलवाता है और कीलने वाला व्यक्ति कागज़ पर कुरान की आयत लिखकर कील से कीलता रहता है।

कमहड़ा—बच्चों की बड़ी ख़तरनाक बीमारी है। इसमें एक विशेष घास का उपयोग किया जाता है। उस घास का रंग सफेद होता है।

बवासीर के लिए एक घास-विशेष कूकरछलनी का प्रयोग किया जाता है। वायु व पेट के दर्द के लिये निम्नलिखित चूर्ण को प्रयोग में लाते हैं—

सूंठ सुहागा सोंचले[1] गाँधी[2]
सौंजने के अर्क में गोली बाँधी
सत्तर सूल बहात्तर बाय
कह धनत्तर तुरत जाय'

चोट लग जाने पर दूध में हल्दी घोल कर पिलाई जाती है। हड्डी टूट जाने पर भेंड़ के दूध में—साँवक के चावल उबाल कर बाँधते हैं। ज़ख्म हो जान पर मकड़ी का सफेद जाला अथवा रेशम जला कर उसमें भर दिया जाता है।

ज़िला मुजफ्फरनगर में हरसौली ग्राम में एक मुसलमान जाट है। उसके खान-दान को किसी फकीर का वरदान है कि वह किसी भी मनुष्य की टूटी हुई हड्डी को किसी भी तरह तोड़ कर बाँध दे तो वह तुरन्त जुड़ जाती है। यह वरदान उसके परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी चलेगा जब तक कि वह उससे धन उपार्जन नहीं करता।

यदि कोई मनुष्य आम के बौर को जिसे वह पहले-पहल देखता है, तोड़ कर दोनों हाथों पर मल लेता है तो उसके ऊपर बर्रे तथा बिच्छू के काटने का प्रभाव नहीं होता। यदि दूसरे मनुष्य के भी जिसे बर्रे या बिच्छू ने काट लिया हो—वह

१. काला नमक २. हींग

मनुष्य उस स्थान को हाथ से मल देता है तो 'झल' नहीं होती। इसी प्रकार चर्मरोगों के लिए गंगा जी के रेत को मल-मल-कर नहाते हैं।

'चौथइया' बुखार के लिये कीकर की पूजा करते हैं। पीपल के पत्ते को गर्म करके तथा सरसों का तेल लगा कर फोड़े या फुन्सी पर बाँध देते हैं तो वह पक कर फूट जाता है। ताँबे के बरतन में रात भर रखे हुए पानी को पीने से बवासीर ठीक हो जाती है। अष्टधातु का छल्ला पहनने से भी बवासीर ठीक हो जाती है। कुछ लोग बवासीर के लिए एक कड़ा बनवा लेते हैं। आबदस्त लेते समय कड़े पर पानी डाल कर ही आबदस्त लिया जाता है।

शीतला के प्रकोप के दिनों में बालकों के कुरतों पर या पीठ पर गेरू से सतिया काढ़ दिया जाता है। बालकों के गले में सोने या चाँदी का बना सूर्य का चिह्न भी डालते हैं। गला खराब होने पर चाकू से पानी काट कर पिला देने से गला ठीक हो जाता है। कमर में चनका आने पर ऐसे व्यक्ति से जिसका जन्म उल्टा हुआ हो (पैर की ओर से), बाँये पैर से पाँच अथवा सात बार कमर छुवाते हैं। ऐसा करने से दर्द जाता रहता है। आक की पूजा से तीसरे दिन का बुखार जाता है।

नीम का, सूर्य पूजा और बहुत सी औषधियों में प्रयोग करते हैं। नीम का झाड़ा चेचक में लाभदायक होता है। भूत भगाने के लिए नीम की पत्तियों का प्रयोग करते हैं। इसका सम्बन्ध सूर्य से भी होता है। नीम का मद खून की सफाई के लिए भी काम में आता है। बेल की पत्तियाँ औषधि के काम में आती हैं। खुजली या खारिश में मुलतानी मिट्टी लगाने से या दूध में गंधक मिला कर पीने से भी लाभ होता है। गर्म पानी के चश्मे में नहाना भी लाभदायक सिद्ध होता है।

शीतला के सम्बन्ध में लोक-विश्वास—किसी के माता निकलने पर जल का लोटा भर कर उसमें गेहूँ के दाने व फूल अथवा चावल, गंगाजल व लौंग का जोड़ा डाल कर नित्य सायंकाल रोगी के सिरहाने रखते और मुँह-अन्धेरे ही उसके सिर से पैर तक पाँच या सात बार उतार कर घर से बाहर द्वार के कौले पर या चौराहे पर या नीम में सिला देते हैं। माता निकली होने पर रोगी की कोठरी के द्वार पर नीम की टहनी टाँग दी जाती है और स्नान करने के अनन्तर उसके पास कोई नहीं जाता। बिना खाये-पिये भी रोगी के पास जाना निषिद्ध है।

परछावा पड़ने के भय से ऋतुमती या कोई अन्य स्त्री जो गंदी रहती हो, जैसे भंगिन, चमारिन, कुम्हारिन आदि रोगी के पास नहीं जातीं। यदि रोगी की माँ ऋतुमती हो तो उसके लिये छूट होती है।

'माता का उठावना' (एक टका गंगाजल से धोकर तुलसी के गमले में या किसी

शुद्ध स्थान में रखते हैं तथा कहते हैं कि रोग शान्त होने पर हम तेरी जात देंगे, मैया जल्दी हाथ दे, इससे रोगी शीघ्र ही ठीक हो जाता हैं । अगर घर में किसी को माता निकले तो छौंक नहीं लगाते । इससे आँखों के खराब होने का भय रहता है । रोगी के अच्छा होने पर नीम की टहनी से छींटा दिया जाता है ।

मिश्रित लोक-विश्वास—मिश्रित लोक-विश्वास के सम्बन्ध में हम वह सब लोक-विश्वास दे रहे हैं जिनको पहले दिये गये किसी भी वर्गीकरण में स्थान नहीं मिला है। इनका एक अलग मिश्रित परिवार बन गया है । यहाँ पर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित सब ही लोक-विश्वास उपलब्ध हो गये हैं। यह भले-बुरे सभी प्रकार के लोक-विश्वास हैं ।

चूड़ी मौलाना—वैसे तो मौलाना शब्द का प्रयोग अधिकतर वृक्षों के बौरने के लिये ही किया जाता है। जब नीम पर बौर आता है अथवा कोई पेड़ काट दिया जाता है और उसकी विभिन्न शाखाएँ निकल आती हैं तो इसे मौलना कहते हैं। इस प्रकार मौलकर वृक्ष अपना विस्तार करते हैं ।

जब चूड़ी टूट जाती है तब भी स्त्रियाँ उनके लिए टूटना शब्द का प्रयोग नहीं करतीं अपितु मौलना ही शब्द कहती हैं । क्योंकि यदि वस्तु टूटती है तो दुबारा नहीं बनती । इसलिए टूटने के स्थान पर मौलने का प्रयोग किया जाता हैं क्योंकि साधारण स्थिति में तो चूड़ी टूटने पर फिर भी पहनी ही जाती है । चूड़ी टूटना अशुभ अर्थ में प्रयुक्त है । जब विधवा की चूड़ियाँ समाज के द्वारा तोड़ी जाती हैं और वह भविष्य में सदैव के लिये वंचित कर दी जाती है—इसलिए चूड़ी बदलने से सुहाग की आयु और मौलती है ।

अगर त्यौहार के दिन किसी की मृत्यु हो जाती है तो यह 'खोटी' हो जाती है और कई चीजों की बनने व खाने की आन हो जाती है। पर फिर वर्षों बाद अगर कभी उसी दिन कुटुम्ब में किसी के भी घर पुत्र-जन्म होता है तो वह आन खुल जाती है और त्यौहार ठीक तरह से मनाया जाने लगता है । नये घड़े का पानी सबसे पहिले किसी पुरुष को पिलाना चाहिये नहीं तो पानी में से नयेपन की सुगंध नहीं आती ।

बघरे (जिला मुजफ्फरनगर) में एक मौलवी हैं जो अगर कचहरी में जाकर भभूत उड़ा देता है तो हाकिम पक्ष में हो जाता है । आँख में डालनें का सुरमा भी देते हैं जो वशीकरण का काम करता है तथा अँगूठी ताबीज़ आदि भी सिद्ध कर के देते हैं । अपनी छींक भी शुभ होती है । यह विश्वास होता है कि छींकने-वाला आदमी अभी नहीं मरेगा । जब एक व्यक्ति को छींक आती है तो उसके हितैषी प्रसन्न होकर कहते हैं 'छत्रपति' । चकपदी (छत्रपति) एक देवी मानी

जाती हैं जो ब्रह्मा जी के छींकने पर मक्खी के रूप में उत्पन्न हुई थीं। छींकते समय उसी का नाम लिया जाता है।

बाल बनाते समय हाथ से यदि कंघा गिर जाये तो वह अतिथि के आगमन का सूचक होता है। 'सोना' खोना या पाना, दोनों ही अशुभ माने जाते हैं। उल्टी खाट खड़ी करना अशुभ होता है क्योंकि जब कोई व्यक्ति मरता है तो उसकी खाट उल्टी कर दी जाती है। शाम को झाड़ू लगाना अशुभ माना जाता है। लोक विश्वास है कि सन्ध्या समय लक्ष्मी स्वयं द्वार पर आती हैं, अतः उस समय झाड़ू देना लक्ष्मी का अपमान करना है और उस समय काले कुत्ते का आगमन मना होता है। दोनों समय मिलने पर (संधि काल) लेटना बुरा होता है। सन्ध्या समय भजन-पूजन का होता है इस समय वृद्ध या रोगी लेटते हैं। कड़ाही में खाने वाले के विवाह में वर्षा होती है। मूर्तियों का स्वप्न में रोना देश के ऊपर आफ़त का द्योतक होता है। सोते समय जाँघ पर तेल लगाने से डर नहीं लगता। 'हनुमान-चालीसा' पढ़ कर सोने से भूत-प्रेत स्वप्न में नहीं दिखायी पड़ते।

लोक-विश्वास है कि यदि सोते समय तकिये से प्रातः उठाने के लिये कह दिया जाय तो उसी समय नींद खुल जाती है। सिर में तेल डालते समय पानी नहीं पीते, नहीं तो सिर में जूँ हो जाती हैं। टेढ़ा टीका लगाने से टेढ़ा दूल्हा मिलता है। जिस स्त्री के हाथ में मेंहदी अच्छी रचता है उसको सास बहुत प्यार करती है। जिस स्त्री के पान अधिक रचता है उसके पति अधिक प्यार करते हैं। ५, ७, ११, २१, ५१, १०१ ये शुभ संख्यायें मानी जाती हैं। इसी कारण शुभ अवसर पर पाँच सुहागिनें हाथ लगाती हैं। पाँच मेवा होते हैं, सात नाज होते हैं तथा लेन देन में भी ११, २१, ५१, १०१ रुपये का ही चलन है। ३, १३ संख्या अशुभ मानी जाती हैं। इनका सम्बन्ध अशुभ दिनों से है।

चोर का पता लगाने के लिये जूता घुमाते हैं और जिस व्यक्ति का नाम लेने से जूता नाचने लगता है, वही चोर समझा जाता है। चोर को चोरी करने जाते समय यदि कोई टोक दे तो उसका सगुन खराब हो जाता है। घरों में हर काम करने के लिये 'सगुन विचरवाने' का प्रचलन होता है।

चोर पकड़ा जाने पर उससे एक लोटा पानी में नमक डलवाते हैं। वह नमक डालते समय कहता है कि यदि कभी कोई चोर उस घर में फिर आया तो मैं इसी प्रकार से नमक की तरह गल-गल-कर मरूँगा। चोरी करने जाते समय चोर को बिल्ली का मिलना शुभ है और कुत्ते का अशुभ। रात को खाट कसने से लड़कियाँ ही लड़कियाँ होती हैं, अतः रात में खाट कसने का निषेध है। घर से

निकलने पर सबसे पहिले किसी स्थान पर खाना मिलने पर मना नहीं करना चाहिये नहीं तो दिन भर खाना नहीं मिलता ।

कहते हैं, जाड़े की एक टाँग मकर संक्रान्ति को टूट जाती है और दूसरी वसन्त के दिन, अतः उसके बाद जाड़े की शक्ति समाप्त हो जाती है और जाड़ा कम हो जाता है। कहा जाता है कि करवाचौथ के दिन जाड़ा करवे की टोंटी से निकलता है ।

मुसलमानों में मृत के लिये आवाज़ देकर नहीं रोते, क्योंकि उनका यह विश्वास है कि इससे रूह को तकलीफ़ होती है। खुरैरी (बिना बिस्तर वाली खाली खाट) पर सोने से व्यक्ति दिन भर चिड़-चिड़ाता रहता है यदि कोई व्यक्ति चिड़चिड़ाता है तो कहावत है कि "क्या खुरैरी खाट पर सोया था ?"

अक्सर पूछा जाता है कि किसका मुँह देखकर उठे—'सबेरे सर्वप्रथम किसका मुँह देखा है' इसका बड़ा महत्व होता है। शुभ का या अशुभ का। शुभ व अशुभ व्यक्ति अनुभव के आधार पर निश्चित किये जाते हैं । लोक-विश्वास है कि परिवार में नवागत व्यक्तियों जैसे बहू या नवजात शिशु का परिवार की सुख समृद्धि पर प्रभाव पड़ता है ।

तिल या जौ बोने से आपत्ति टल जाती है। जादू की कहानियों में जादू के लिये नीला डोरा अपेक्षित होता है। गाँव में जब कुँआ खोदा जाता है तो हनुमान जी की मढ़ी बनाई जाती है। विश्वास है कि ऐसा करने से समस्त कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाते हैं और पानी भी मीठा निकलता है । श्वसुर के शव के साथ जामाता का जाना ठीक नहीं समझते । इससे ससुर की गति नहीं होती । टूटता तारा देख लेने पर उसकी ओर थूक देने से उसका अशुभ प्रभाव समाप्त हो जाता है। सगाई तथा लगन लेकर आने वाले ब्राह्मण को नमकीन व खट्टी वस्तु अचार आदि नहीं खिलायी जाती । इससे सम्बन्धों में मिठास नहीं रहता ।

दक्षिण को यम दिशा कहा जाता है । यहाँ पर मृतात्मा निवास करती है । अतः चूल्हे का मुँह दक्षिण को नहीं बनाया जाता। सोने वाला दक्षिण को पैर करके नहीं सोता, मृत व्यक्तियों के पैर दक्षिण को कर दिये जाते हैं । एक ग्रामीण दूसरे साथी का तिल व तेल उपयोग में नहीं लाते । बनिया सर्वप्रथम-बोहनी के समय उधार नहीं देता ।

लाल तथा पीला रंग प्रधान माने जाते हैं । पीला हल्दी का रंग मांगलिक और विघ्नविनाशक माना जाता है। लाल रंग शक्ति तथा सौभाग्य का चिह्न है और जादू टोने में इसी रंग का विशेष प्रयोग होता है । मन्दिर पर लगाई जाने वाली पताकाओं और शक्ति विग्रहों के वस्त्र भी लाल रंग के ही होते हैं ।

अनिष्ट तथा भूत-प्रेत आदि व्याधि दूर करने के लिये घर के मुख्य द्वार पर

दायें-बायें दोनों कौलों पर पानी डाल कर 'कौले ठंडे' करते हैं। पानी पंचतत्वों में से एक है, अतः उसमें शक्ति का निवास मानते हैं।

गीत 'धरने' (आरम्भ करने) और गीत बढ़ाने (समाप्त करने) के दिन घी और गुड़ या बताशे तथा रोली और चावलों से ढोलक की पूजा की जाती है। ढोलक में कलावे का एक टुकड़ा बाँधते हैं और टका चढ़ाया जाता है। क्योंकि परिवार में ढोलक का बजना शुभ-सूचक माना जाता है। इसके पीछे यही भावना होती है कि ढोलक घर में सदैव इसी प्रकार बजती रहे। 'ढका दिन', त्योहार 'खोटा होना' उसे कहते हैं जिस दिन परिवार में कभी कोई दुर्घटना हो जाने के कारण स्त्रियाँ भविष्य के इस दिन कोई शुभ कार्य नहीं करतीं और यदि इस दिन को त्यौहार भी पड़ता है तो उसे नहीं मनातीं। यह दोष निवारण परिवार में उसी दिन पुत्रोत्पत्तिअथवा गाय के बछड़े के ब्याहने पर होता है।

विवाह के थापे के बीच एक सराई लगा कर सभी ऊख, सत्ती, जाहर आदि का नाम लेकर कलावे की माला लटकाई जाती है और घी का नाल दिया जाता है। यदि घी अलग-अलग दो नालों में बँट जाये तो सम्बन्ध ठीक रहते हैं और दोनों नाले (लकीरें) मिल जायें तो वर-वधू में संघर्ष हो जाता है।

छोटे-छोटे बालकों को वृद्ध-मृतकों के विमान अथवा अर्थी के नीचे से निकाला जाता है क्योंकि उनका विश्वास है कि ऐसा करने से वे दीर्घायु को प्राप्त होंगे। इसी विचार से बच्चों की टोपी अथवा कुर्ता बनाने के लिये लोग श्मशान से विमान का कपड़ा ले आते हैं।

सायंकाल यदि कोई स्त्री अपने मृतक बालक के लिये रोती है तो कहा जाता है कि माँ रोये तो बालक को कष्ट होता है क्योंकि यमराज के यहाँ छोटे-छोटे बालक पानी भरने का काम करते हैं। जब दिन भर पानी भर चुकते हैं तो शाम को एक दिवला भर पानी मजदूरी के रूप में उनको पीने के लिये दिया जाता है। यदि ऐसे समय बालक की माता रो पड़े तो जितने आँसू गिरते हैं उतना ही पानी बालक को नहीं मिल पाता और वह प्यासा रह जाता है, इसलिये उसकी माँ को कदापि नहीं रोना चाहिये।

शिवजी का पूजन करते समय सधवायें शिवलिंग का स्पर्श नहीं करतीं। कच्चा खाना (रोटी, दाल) जब तक कि उसमें नमक नहीं पड़ता, छूत नहीं मानते। प्रायः दाल कोई भी चढा सकता है पर नमक न डाले। नमक डालने के बाद उसको कोई छू नहीं सकता।

हिन्दुओं के कुछ व्रतों में नमक नहीं खाते हैं। उदाहरण के लिये इतवार और

एकादशी। लेकिन सेंधा नमक, नमक नहीं माना जाता और उसका प्रयोग अलोने व्रतों में भी करते हैं।

मृत्यु के ५ महीने पूर्व से ध्रुवतारा नहीं दिखता और नीम कड़वा नहीं लगती। अनार में एक ऐसा दाना होता है जो यदि अनार खोलते ही उसे उठाकर मृतक के मुँह में रख दिया जाय तो वह जी उठता है।

पौराणिक लोक-विश्वास—पौराणिक लोक-विश्वासों में वह सब लोक-विश्वास आ जाते हैं जिनकी आस्था को पुराण आदि ग्रन्थों से बल मिला है। लोकविश्वासों ने लोक-मानव के धार्मिक जीवन को प्रभावित किया है तथा जीवन के अन्य अंगों को अनुशासित किया है। इनके अन्तर्गत निम्नलिखित लोकविश्वास हैं—

शाप और वरदान का लोकजीवन में बहुत अधिक प्रभाव है। शाप से वह डरता है और वरदान पाने के लिए प्रयत्न करता है। उसका भोला विश्वास है कि भगवान भक्त के वश में होते आये हैं। पशु-पक्षी बोलते हैं तथा वह मनुष्य की आवश्यकता पड़ने पर सहायता भी करते हैं। कुछ पशु-पक्षी मनुष्य का रूप धारण कर लेते हैं तथा कुछ योगी पशु भी पक्षी का रूप धारण कर लेते हैं। सिद्ध लोगों में चमत्कार होता है, उनका यह अटल विश्वास होता है। नदी, पर्वत, वृक्ष आदि सभी शरीर धारण कर सकते हैं तथा शकुन-अपशकुन, लोक-मानव को दैनिक जीवन में उत्साहित तथा हतोत्साहित करते हैं।

वीर-पूजा और वीर में देवत्व का अंश होता है। लोग चरणधूलि से तर जाने में विश्वास करते हैं, इसी से गुरुजनों तथा साधु-संतों की चरण-रज लेकर मस्तक पर लगाते हैं। अवतारों व देवताओं के चमत्कार से मानव भलीभाँति परिचित होता है, उसका पुरोहित और गुरु में विश्वास होता है। मंत्र-शक्ति अद्भुतशक्ति है। यह मंत्र सब कुछ कर सकते हैं। उसमें लोकमानव पूर्ण विश्वास करता है। जड़ी-बूटी बोलती हैं तथा मुर्दों को देखकर ये जड़ी बूटी छिप भी जाती हैं। अमृत कूप दानव और देवताओं के वश में रहते हैं और मनुष्य अमृत पीकर अमर हो सकता है। भिन्न-भिन्न देवताओं की नगरी अलग-अलग थी—उदाहरण के लिये—अमरावती। अतिथि में देवता का वास होता है। राजा के पाप-पुण्य से प्रजा को दुख-सुख होता है—यथा राजा तथा प्रजा।

कलियुग के सम्बन्ध में जन-विश्वास है कि कल्कि अवतार होने पर ही पृथ्वी से पाप दूर होगा। कलियुग के सम्बन्ध में जन-विश्वास है कि कल्कि ६ वर्ष की कन्या के गर्भ से उत्पन्न होगा और इस युग में एक-एक फीट के आदमी होंगे। इसमें पण्डितों का निरादर होगा और मूर्ख पण्डित माने जायेंगे।

एक महीने में दो ग्रहण होना अशुभ माना जाता है। जब आठ ग्रह मिल

जाते हैं तो देश में भयंकर रूप से अव्यवस्था होती है। महाभारत के समय में तो केवल छः ही ग्रह मिले थे और परिणामस्वरूप इतना बड़ा युद्ध हुआ था।

मंत्र व टोने-टोटके––मंत्र, टोने-टोटके लोक-विश्वासों का अधिक व्यावहारिक और तामसिक रूप है जब कि पूजा-उपासना उसका अधिक मानसिक और सात्विक रूप है। मंत्र, टोने-टोटके लोक-जीवन के प्रमुख अंग बने हुये हैं और इनकी मान्यता तथा उपयोगिता हर क्षेत्र में स्वीकार की गई है। इनके द्वारा ओझे, स्याने, अघोरी, मौलवी, सिद्ध आदि अपना जीविकोपार्जन करते हैं।

लोक-साहित्य में संस्कृत के 'मंत्र' शब्द को मंतर कहते हैं। मंत्र का एक विशिष्ट रूप संकटमोचन का साधन है। जनजीवन में इसका प्रयोग कष्ट-निवारन के लिये ही विशेष होता है। 'मंत्र' शब्द रूप से प्रभाव करता है। मंत्र का अधिकांश प्रभाव उसके उच्चारण पर ही निर्भर रहता है। उपयुक्त व्यक्ति के द्वारा ठीक उच्चारण किए हुए मंत्रों से वांछित फल मिलता है पर साथ ही अशुद्ध उच्चारण से तथा अनुपयुक्त व्यक्ति के द्वारा किये जाने से न केवल उसका प्रभाव ही नष्ट होता है वरन् अनिष्टकारी भी सिद्ध हो जाता है, जैसा कि डॉ० सत्येन्द्र ने अपने लेख में कहा है कि––"समस्त वेदमंत्र, संस्कार-अनुष्ठान से सम्बन्ध रखते हैं। वे Ritualistic हैं। मंत्रों के साथ यह टोने-टोटके की भावना लगी हुई है कि यदि इनका उच्चारण हम सविधि करेंगे तो उनसे हमें अवश्य ही फल मिलेगा। मूलतः मंत्रानुष्ठान टोने के एक आवश्यक अंग थे।[1]"

वैदिक कर्मकाण्डियों के लिए मंत्र टोने के रूप में काम करते थे। इसी प्रकार लौकिक-जीवन में भी उनका महत्व है। इनकी प्रतिक्रिया विशेष रूप से दैनिक-जीवन पर ही आधारित होती है। लोकसमाज में मंत्रों का ज्ञान व उनका फल प्राप्ति के लिये उच्चारण करने का अधिकार, सबको नहीं होता। उसके लिये ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं है। किसी भी जाति का व्यक्ति विधिपूर्वक सिद्धि प्राप्त करने के बाद इनका प्रयोग कर सकता है।

मंत्र द्वारा जो जादू-टोने होते हैं, वे मंगलकारी हैं पर कभी-कभी विघ्नकारी होने के साथ ही साथ किसी दूसरे के लिये अनिष्टकारी भी होते हैं। सिद्धि प्राप्त कर लेने पर इनमें वह शक्ति आ जाती है जिससे इनका प्रयोग दोनों रूपों में कर सकते हैं––इष्ट के लिये तथा अनिष्ट के लिये भी। इनकी सिद्धि चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण के समय ही प्रायः की जाती है। इनका शिक्षित होना आवश्यक नहीं होता। ये

---

१. भारतीय साहित्य—डॉ० सत्येन्द्र, प्रथम अंक, जनवरी ५६, पृ० ४२-४३

प्राय: अर्थों से भी विदित नहीं होते, केवल कंठस्थ रहते हैं लेकिन वे उनका प्रयोग पूर्ण आस्था और विधि से करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये सिद्धियाँ परम्परागत हों। वे बेटे के काम नहीं आतीं। 'स्याने' लोग मंत्रों को अपनी विधि मानते हैं और उसको दूसरों को बताना भी उचित नहीं समझते। कुछ लोग तो यह निधि अपने साथ ही लेकर समाप्त हो जाते हैं।

"अंधविश्वास का दूसरा बड़ा वर्ग है मंत्र-तंत्र। इस वर्ग के भी अनेक उपभेद हैं। मुख्य भेद है—रोग-निवारण, वशीकरण, उच्चाटन, मारण आदि। विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मंत्र प्रयोग प्राचीन तथा मध्यकाल में सर्वत्र प्रचलित था। मंत्र द्वारा रोग-निवारण अनेक लोगों का व्यवसाय था। विरोधी व उदासीन व्यक्ति का अपने वश में करना या दूसरों के वश में करवाना मंत्र द्वारा संभव माना जाता था।[१]"

इसके पूर्व कि हम मंत्रों की विवेचना करें, यहाँ पर इस बात की ओर संकेत कर देना भी आवश्यक है कि इन मंत्रों का शाब्दिक रूप संस्कृत अथवा साहित्यिक भाषा-मण्डित नहीं है। इन भाषाओं का रूप भी लोक-भाषा से ही सजा-सँवारा मिलता है। यदि कोई कहीं ऐसा मंत्र देखने को मिलता भी है जो भाषा की दृष्टि से लोकभाषा से अलग है, ऐसे मंत्रों को लोक-समाज अपने ही उच्चारण से रंग लेता है। इसलिए जितने भी मंत्र इस समाज में दृष्टिगत होते हैं वे सब लोक-समाज तथा लोक-भाषा से ही अधिक प्रभावित हैं। इन मंत्रों में एक और विशेष गुण भी होता है कि यह तुकान्त और गेय होते हैं। इनमें किसी न किसी देवता या पीर-पैगम्बर का नाम भी होता है, जिसके प्रभाव से कार्यसिद्धि होती है। लोकमंत्रों में उन वृक्षों के नाम भी आते हैं जिससे उस व्याधि को लाभ होता है। साथ ही साथ ऐसे वृक्षों का प्रयोग भी किया जाता है जैसे नीम, इससे भी माता तथा स्याही को लाभ होता है।

यहाँ पर हम कुछ विशेष मंत्रों का उल्लेख करते हैं जो खड़ीबोली प्रदेश में भिन्न-भिन्न समय तथा स्थानों पर प्रयोग किये जाते हैं।

चूल्हा बाँधने का मंत्र—

'जल बाँधूं जलमाई बाँधूं जल की बाँधूं काई
चार खूंट चूल्हे की बाँधूं और बाँधूं अगनी माई
तले सूखे या उप्पर सूखे, भैरों जागे
हुक्म लगा हनुमान का हाँडी कूदे ना पक्के

१. हिन्दी शब्दकोष, पृ० ५७

मेरे बचनों से टले तो नवी कुण्ड में जले
दुहाई हनुमान महाराज की'

मोच उतारने का मंत्र—

'मोच मोच की पाल, भूमि का जाल
जाल सरकै मोच भड़कै, सुनो मियाँ सुनो माणा
मेरे गुरु का बचन साँचा'

यह मंत्र तीन बार पढ़ते हैं जिसकी विधि इस प्रकार है— राख से झाड़ते हैं और ७ बार लेकर छोड़ देते हैं। इसको ग्रहण के समय सिद्ध करते हैं। झाड़ने वाला और झड़ाने वाला दोनों ही मौन रहते हैं।

जानवरों के व मनुष्यों के घाव में कीड़े पड़ने पर—

'ओम नमो सात नारियाँ देशाधर को
झाड़ूं कीड़े बाँधूं स्याही
सुनो मियाँ, सुनो माणा
मेरे गुरु का वचन साँचा'

यह नीम की टहनी से, जहाँ पर घाव हो झाड़ते हैं। इससे कीड़े भी झड़ जाते हैं।

पीलिया तथा आँख के फोले झाड़ने का मंत्र—

'नदी पार दो हल चुगैं
कौन चुगावै गाय
हाँक मारूँ हनुमान को
नजर और फोल्ला भागा जाय'
काला भैरों काली रात, तुमैं बुलाऊँ आधी रात
हाड़ फूल की डंक री, सठफूल का बाण
भैरों बाबा मदद कर बकस बच्चे का प्रान'

झपटा, भूत प्रेत का असर तथा माता में भी इसी ऊपर लिखे दोहे को पढ़ कर बलिदान दें जिसमें प्रयोग में आने वाली सामग्री इस प्रकार है—

उबले चावल, बूरा और उसके ऊपर दही, यह बालक के ऊपर से उतार कर चौराहे पर रख दें। यह क्रिया बिना बोले करना चाहिये। यह दोपहर को या रात के १२ बजे के समय करे। इसको लगातार ३ या ७ दिन तक करे। लोक-धारणा है कि चौराहे पर रखी हुई इस प्रकार की सामग्री को लाँघने वाला व्यक्ति उन सभी कुग्रहों में पड़ जाता है। इसी से गर्भवती स्त्रियों को विशेषत: इसका निषेध है कि वह चौराहे पर न जाय वैसे तो साधारणतया सभी बच कर चलते हैं।

मसान––(यह बालकों का एक रोग विशेष है) इस रोग के अतिरिक्त बच्चों को पीलिया, हरे पीले दाँत या सूखा रोग हो तो भी यही मंत्र पढ़ा जाता है––

'लौटे संगली रूपै घड़ी, लैके तखमई, कालिखां चढ़ी
गुरु रत्ती गुर के ढाई बाण
बकसो लोहू भागो मसान'

यह भी ३ दिन या ७ दिन करते हैं। चूरमा की पिंडी, एक रोटी तेल में चुपड़े और उसके ऊपर उस पिंडी को रख दें। किसी भी तरह का फूल रखें या सरसों के दाने रखें। इस तरह इसको भी ३ या ७ दिन तक चौराहे पर बिना बोले हुए रखें। बालक स्वस्थ हो जायगा।

नजर उतारने का मंत्र––लगातार रोना, दूध न पीना, दस्त आना, नजर के विशेष लक्षण होते हैं। इसी समय इस मंत्र का प्रयोग होता है––

'दमादम मिटा सुतलतान अहमद कबीर, कुलाबे की जंजीर
जल बाँधो जल वायु बाँधो, बाँधो जल का नीर,
डंकनी कलिहारी की नजर को बाँधो तो हनुमन्ता बीर।'

इसकी सामग्री इस प्रकार है––आटे की चोकर, ७ या ५ डंठल समेत मिर्च, ७ कंकर नमक, राई, रास्ते की मिट्टी, ७ बार बालक के ऊपर से उतार कर आग में डालते हैं। माँ अपने हाथ से नजर कभी नहीं उतारती। बुआ, चाची, ताई, बहिन, आदि उतारती हैं। नजर उतारने के समय कहते हैं––'माँ बापकी, हलियाये झलियाये की, गली गलिहारे की, अड़ोस्सन पड़ोस्सन की। नजर उतारने के अन्य मंत्र भी हैं।

'आकू बाकू सान सवाकू,
गोरे लला को काला टीका,
नजर दे वाकै फोड़ूँ दीदा'

× ×

'शुक्र शनीचर मंगलवार टोना हिन
चलो बीर बरबार, झारझूर चंगा किया
टोनाहिन के मुड़वा पर पटक दिया'

इस मंत्र को सिद्ध करने की विधि इस प्रकार है कि शुक्रवार के दिन सवा हजार गोलियाँ मंत्र पढ़ कर आटे की बनावे, शनिवार को मंत्र पढ़ कर जल में मछलियों को डाले, सिद्ध हो जाय। फिर जिसकी नजर दूर करनी हो लेकर उसके ऊपर २१ बार मंत्र पढ़ कर बच्चे की माता को दे दे। बच्चे के मुँह, नाक,

पेट और मस्तक पर भभूती लगा दे। बच्चा अच्छा होकर दूध पीना आरम्भ कर देता है।

लोक विश्वास है कि निम्नलिखित मंत्र रक्तचंदन से भोजपत्र या कागज पर लिख कर बालक के गले में बाँधे तो नजर न लगे। यह इस प्रकार है :—

ॐ	ह्रीं	श्री
काली	ह	नु
म	ताय	नमः

बिच्छू, ततैया, साँप, पागल कुत्ता तथा कोई भी जहरीले जानवर के काटने पर——इस दोहे को पढ़ कर चाकू या लोहे से काटते हैं (चाकू कील या लोहे की पत्ती से)——

दोहा——'मूल कृत्तिका आर्द्रा, असलेखा, मघा, जान
बिसाखा भरणी, प्रान ले, काटे सर्प या स्वान'

इसके लिये झाड़ इस प्रकार है——

'काला बिच्छू कोतल हारा, हरीपंख सोने का डारा
चढ़े तो मारूँ उतरे तो उतारूँ'

इसको २१ बार पढ़ कर लोहे आदि से झाड़ते हैं। लाल या पीला ततैया काटने पर इस मंत्र के द्वारा भी झाड़ते हैं——

'लाल ततैया या पीला ततैया
विष का भइया, विष के बाँधू डोर
लाल ततैया की हनुमान जी महाराज
गरदन पकड़ कै तोड़'

यह भी २१ बार पढ़ कर झाड़ते हैं। बिच्छू की झाड़ इस प्रकार की भी है——

'काला बिच्छू कंकर माला हरी पूंछ सोने की माला
कोरा करवा जल भरा रे गौरा आगे धरा, गौरा माई
कर असनान उतर रहे बिच्छु सिर के तान'

इसके अतिरिक्त मुजफ्फरनगर जिले में इस प्रकार का मंत्र पढ़ कर झाड़ने की भी प्रथा है——

'काला बिच्छू कंकर याला, हरी पूंछ सोने की माला
काले बिच्छू कहाँ उपन्नासुर्री, गऊ के पट उपन्ना
छै काले, छै कबरे छै चले समुन्दर पार
मेरे झाड़े ना झड़े तो महादेव पारबती की आन'

सहारनपुर में इसी से संबंधित मंत्र ,इस प्रकार का मिला है । यह ततैया और बिच्छू दोनों ही के काटने पर झाड़ा जाता है——

'काला बिच्छू पोला बिच्छू, बिच्छू है सतरंगा
गल जनेऊ काठ का गल मुंगा की माला
बाबा काले, कालाधारी सत्तर बला पंजो से मारी
मार मार कर लहर उतारी
चल मेरे बिच्छू सिर के तान
जो इन बचनों से टले
तो दो ही हनुमान की पड़े'

बिच्छू उतारने का मंत्र——यह नीम की टहनी से झाड़ा जाता है।

'ओंम् नमो सात तारे, सास्तर तारे
काला बिच्छू धौला बिच्छू डंक डकीला बिच्छू
बिच्छू मैं जानूं तेरी जाँच, तू आवै मावस की रात
उतरे तो उत्तारूँ चढ़े तो मारूँ नीलकंठ मोर पुकार
सुनो मियाँ, सुनो माणा मेरे गुरु का मंत्र साँचा'

आंख दुखने पर (नरसिंह उतार)——

'महाबीर हनुमान, हाथ में लड्डू, मुख में पान
अंजनी के सुत, राम के प्यारे रे
रामचंद्र के काम सुधारे
निरभय हो लंका में कूदे दुष्ट काँप गये सारे'

इसको ७ या २१ बार नीम की टहनी से झाड़ते हैं। आँख दुखने पर अन्य मंत्र इस प्रकार है——

'काली कीकर काजल बट्टी
आँख मूल ना बाजे पट्टी
जिये बास्ते नूर मोहम्मद, उथे पीर बीछे नस्ती

आंख का फोला झाड़ने का मंत्र—
'इन्द्र तारा की सात बेटी, सातों काँधे कुदारी
सातों चलीं फोला काटने, फोला काटी
आखें राखो, दोहाई ईश्वर महादेव
नैना योगिनी कामरू काम या गौरा पारबती को'

छोटी माता, निमोनिया तथा खाँसी के झाड़ का मंत्र—
'कल कल करती कालका, धुक धुक करै मसान
ऊँचे खेड़े भूमिया, लोट रही चौगान'

यह मंत्र पढ़ कर २१ या ७ बार बच्चे के ऊपर गुड़ का शरबत करके कुत्ते को पिलाये और चौमुखा (जिसमें चार बत्ती हो) दीया तेल का हलुआ, ये चौराहे पर रख आये। यह सब एक सै (सौ) एक (मिट्टी की तश्तरी में रखें)

जच्चा के ऊपर का मंत्र—
'काली काली महाकाली, चारों हाथ बजावे ताली
तेरी चोट न जाये खाली बुआ की पुत्री इन्दर की साली
हमारे इलम को राजा मेटे, राज से जाये
प्रजा मेटे आस औलाद से जाये
हंस के वाचा मेरे गुरु का सब कुछ'

९ बार, १३ बार या १७ बार पढ़ कर फूंक मारते हैं। इसको चाबुक या चाकू से झाड़ते हैं।

जच्चा के पास नीम की खल, नीम की निबौली, धूनी जिसमें काला दाना अरमल, लोबान, गंधक, अजवायन, सब को एक जगह मिलाकर आग के पास रखते हैं—जच्चा के पास जाने से पहले यह धूनी दी जाती है, जिसके कारण फिर जच्चा पर कोई भी आशंका नहीं रहती।

लोहे की वस्तु से कहीं शरीर में कट जाने से अगर खून निकल रहा हो तो उसे इस मंत्र से झाड़ा जाता है जिससे खून का निकलना बंद हो जाता है—
'तत्ता लोहा गढ़े लुहार
मैं बांधूं लोहे की धार
धार धार सो महा धार
तीर की धार सौ कटार की धार
पक के ना फूटे निकतर न छूटे
यहीं खड़ा खड़ा सूखे

मेरा भगत मेरे गुरु की शपथ
जो इन बचनों से टले तो दो ही हनुमान पड़े'

अन्धासीसी (आधे सिर में दर्द होने पर)—
काली, चीचड़ी काले बन को जाये
उठो मोहम्मद झाड़ दो, फलाँ की आधा सीसी जाय'

दाढ़ के दर्द की झाड़—
काला कीड़ा कबरा कीड़ा, बत्तीस दांत चराय
दाढ़ झाड़ूं फलां की मेरे झाड़े ना झड़े तो
लूंना चमारी के जनम नर्क कुंड में जांय'

थनेला की जाड़—
'नदी पार हल चले, जाटनी छुटावन जाय
उठो मोहम्मद झाड़ दो, फलां का थनेला जाय'

मोहिनी मंत्र—
ओम नमो आदेश गुरु का राजा मोहूं परजा मोहूं
मोहूं ब्राह्मण कन्या, हनुमन्त रूप से जगत मोहूं
जो रामचन्दर परमानंद मेरी भक्ति गुरु की शक्ति
फिरो मंत्र ईश्वर बाचा'

बच्चों के मीठे की झाड़—
'ओंम हिरिंग शिलिंग क्लंक
असी आरप्पा नमः
स्वार्थ सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा'

बच्चों के डब्बे की झाड़—
१ समुद्र २ समुद्र ३ समुद्र ४ समुद्र ५ समुद्र ६ समुद्र ७ समुद्र
सात समुद्र पर कपला गऊ
कपला गऊ के पेट में बच्चा
बच्चे के चार खूरी, धरा कालजा बढ़ा सरु
मोरी भगती मेरे बचनों से
टले तो नर्क कुंड में जले
दुहाई गोरखनाथ की'

मवेशियों के घाव के कीड़े झाड़ने का मंत्र—
गंगा पार बूकल के गाद्दी, झड़े कीड़ा झड़े रसोई
ईश्वर महादेव, गौरा पारवती की दुहाई'

'ठः ठः ठः ठः स्वाहा' इस मंत्र को पढ़ कर मिट्टी के गोले से सात बार झाड़े तो कुत्ते के बाल मिट्टी के गोले के अन्दर आ जाते हैं। गऊ की रक्षा में इस मंत्र को सात बार जप कर गऊ पर हाथ फेरते जाते हैं, इससे सब प्रकार उसके सब रोग दूर हो जाते हैं। नारियल की गिरी, छोहारा, दाख, घी, शक्कर, मधु बारह हजार होम करने और इस मंत्र को अपने पास रखने से सब उपद्रवों की शांति होती है। पगड़ी के कोने में बाँध लेने और उस गाँठ को लटकाने पर दुर्जन व शत्रु वशीभूत हो जाता है। इसी मंत्र से सात बार फूंक देने से दाढ़ की पीड़ा दूर होती है। नौ कन्या के काते हुए धागे के सूत को सिर से पैर तक नाप कर उसमें सात गाँठ दें । इक्कीस बार अभिमंत्रित कर गुग्गुल की धूप देकर स्त्री की कमर में बाँधने से गर्भ-स्तंभन होता है । २१ बार मंत्र में फूंक देकर स्त्री को वस्त्र उढ़ाने से, उसका बालक होने से रुकता है। चन्दन को घिस कर जल में मिला दें और उस जल को अभिमंत्रित कर भूतभय पीड़ित को पिलाने से भूतभय दूर हो जाता है।

इन मंत्रों का प्रयोग करने वालों के लिये कुछ विधि व निषेध है जिनमें मुख्य है पवित्रता। मंत्रों का प्रयोग करने वाले को बहुत शुद्ध आचरण से रहना चाहिये। उसको प्रसूतिगृह में तथा रजस्वला स्त्री के पास नहीं जाना चाहिये।

मंत्रों से चल कर ही लोक मानव टोने-टोटके पर पहुँचा । मंत्रों के लिये सिद्धि तथा अनुष्ठान की आवश्यकता पड़ती है परन्तु टोने-टोटके कर्मकांड के अंग बन गये हैं। इनमें क्रिया की ही आवश्यकता होती है । कुछ विशिष्ट टोने-टोटके—जैसे हंडिया छुड़वाना आदि तो 'स्याने' ही करते हैं परन्तु वह सर्वसाधारण दैनिक जीवन में नहीं होते हैं। यहाँ हम साधारण और दैनिक जीवन संबंधी टोने-टोटकों का ही अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं।

टोने-टोटके की मान्यता—वास्तव में आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति से अनभिज्ञ लोक-समाज, आज भी टोने-टोटके में अपना संपूर्ण विश्वास तथा आस्था रखता है। वह इस बात से परिचित है कि बड़ों ने जो कुछ भी कहा है उसमें कुछ न कुछ सत्य अवश्य है, क्योंकि वे बहुत अधिक समझदार, बुद्धिमान् तथा दूरदर्शी थे। लोक-जन आधि-व्याधि के निवारण के लिए पूर्णरूपेण डाक्टर, वैद्य तथा हकीम पर निर्भर नहीं रहते हैं। उनके अपने आस्थानुसार भिन्न भिन्न उपचार हैं जो घरेलू हैं और सहज सुलभ हैं तथा तुरंत फलदायक होते हैं। वह साथ ही साथ अपने टोने-टोटके से ही व्याधि का उपचार कर लेते हैं। बीमार के ठीक हो जाने पर श्रेय इन्हीं को मिलता है।२० वीं सदी में भी इन टोने-टोटकों का पनपने का सबसे बड़ा कारण है कि लोक, मानव धर्म से इनका गहन संबंध मानता है। कोई भी कष्ट, आपत्ति, बीमारी अथवा सुख, देवी-देवता के प्रकोप तथा प्रसन्नता का फल होता है। यदि दुख है तो देवता

अथवा अन्य किसी अमानवीय शक्ति को प्रसन्न करने से ही दूर होता है और सुख के लिए उसे पत्र-पुष्प आदि अर्पण करने पड़ते हैं जिससे वह सदा अपनी प्रसन्नता बनाये रखै।

सत्य तो यह है कि टोने-टोटकों की इस दीर्घायु के पीछे, लोकमानस का धर्म-भीरु सरल, अविकसित तथा अनभिज्ञ अन्तरमन है, जो उसे समाज, बड़ों तथा अपनी भावनाओं से विरासत के रूप में मिला है। उसकी भोली भावना तथा उसका सीमित ज्ञान इन संस्कारों को तोड़ नहीं पाता। यह लोकविश्वासों का ही अभिन्न व्याव-हारिक पक्ष है जिसमें विधि-निषेध पर विशेष ध्यान दिया जाता है और 'टोकने से' उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। टोने-टोटके का टोकने से विरोध है। इसी से संभवतः इसका यह नामकरण हुआ। टोकने के भय के कारण ही यह एकान्त में किये जाते हैं। लोकविश्वासों का संबंध सरल हृदय से होता है, अतः तर्क बुद्धि से उसको समझने की चेष्टा करना भी निष्फल सिद्ध होता है। इनका अच्छा बुरा महत्व भी इन्हीं सरल हृदयों के लिये है। शंका का इसमें कोई स्थान नहीं और न शंका समाधान का ही प्रश्न उठता है। वह समाज में प्रतिदिन सुनता है कि अमुक व्यक्ति पर प्रेत का प्रभाव हो गया और उसको अमुक सयाने ने ठीक किया। उसी परिस्थिति के समान जब दूसरे के सामने कोई परिस्थिति आती है तो वह भी सम्भवतः वही उपचार करता है। अगर उस उपचार से भी वह किसी कारणवश ठीक नहीं हो पाता है तो भी वह अपनी आस्था नहीं छोड़ता अपितु यह विश्वास करता है कि संभव है उसके विधि-विधान में ही कहीं कमी रही है या भाग्य का दोष है। टोने-टोटके की जड़ें लोकमानव के मानस में बड़ी दूर तक पहुंची हुई हैं। यदि इन टोटकों की खोज की जाये तो दूब की नाल की भांति लोकजीवन में आदि से अंत तक इनका विस्तार है। साधन हीन तथा सरल मानव इनको अपने विश्वास से निरंतर सींच रहा है। यदि हम टोने-टोटकों का इतिहास खोजें तो हमको विशेष रूप से इसके प्रादुर्भाव का ऐसा प्रमाण नहीं मिलता। केवल इसके अस्तित्व मात्र का पता चलता है। यह आर्यकालीन पद्धति नहीं है, इतना निश्चित है। वेदों तथा शास्त्रों में इस प्रकार के उदाहरण नहीं मिलते। आर्यों का जीवन इतना अधिक बँधा हुआ नहीं था अपितु वह अधिक मुक्त था। यदि हम पिछड़ी हुई जातियों की ओर दृष्टि-पात करें तो हमें इस प्रकार की परम्पराओं की बहुलता आज भी देखनेको मिलेगी। टोने-टोटके तांत्रिक पद्धति के अधिक निकट हैं। इनकी उत्पत्ति भी उसी काल में हुई होगी, जैसा कि श्री जनार्दन मुक्तिदूत के इस कथन से स्पष्ट होता है—"इन दोनों शब्दों की उत्पत्ति का एकदम ठीक-ठीक अन्दाज़ लगाना ज़रा कठिन है फिर भी मोटे तौर पर हमें दोनों शब्दों का प्रचलन वेदों के अप्रचार और पुराणों की

प्रतिष्ठा के कई शताब्दी पश्चात् मंत्र युग में ही मिलता है । अथर्ववेद में वर्णित मंत्र-शास्त्र जिसमें यांत्रिक तथा केवल वैधानिक दोनों ही प्रकार के तंत्र हैं, धीरे धीरे भूला जाने लगा और मंत्रशास्त्र के नाम पर जो कुछ पुराण तथा परवर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध था उसे ही एकमात्र शास्त्रीय मान कर मंत्रशास्त्र के नाम पर अनेक लाभ-दायक तथा हानिप्रद प्रयोग चल पड़े । कालान्तर में इन्हीं प्रयोगों का उनकी उपयोगिता के आधार पर टोना या टोटका नाम पड़ा।[1]"

टोनें-टोटकों पर शास्त्रीय विधि-विधान तथा कर्मकाण्ड का भी प्रभाव देखने को मिलता है। शास्त्रीय विधि विधान का अनुष्ठान बहुत कष्टदायक तथा आडम्बर-पूर्ण हो जाने के कारण मनुष्य तांत्रिक विधियों की ओर बढ़ा था। यही कारण था कि धर्म के इतिहास में तांत्रिकों तथा कापालिकों का भी राज्य आ गया था। उस काल में कार्यसिद्धि, बलि देना, काय-कष्ट से इच्छित फलप्राप्ति के लिए अमानवीय शक्ति की ही सिद्धि करना बहुत प्रचलित हो गया। सयाने, ओझा आदि आज भी पाये जाते हैं । ये लोग भी अमानवीय शक्तियों को सिद्ध करते हैं तथा उचित अनुचित मनोरथों की सिद्धि का दावा करते हैं।

यहाँ पर हम कुछ बहुत ही लोकप्रचलित टोने-टोटके दे रहे हैं जो शिशु संबंधी ही अधिक हैं। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपने प्रिय के अनिष्ट की आशंका की कल्पना से भी सिहर उठता है और अपना बालक मनुष्य को, विशेषकर नारी को सबसे अधिक प्रिय होता है। इसीलिए उसके अनिष्ट निवारण के लिए नारी समाज ने अपनी तरह के अनेक समाधान निकाल लिए हैं जिनको आस्थापूर्ण हृदय से करके निश्चिन्त हो जाती है। यह क्रिया प्रसव से पहिले से ही आरम्भ हो जाती है। प्रसव से कुछ दिन पूर्व सौरगृह के बाहर की दीवार पर गोबर से चक्रव्यूह का आकार बना दिया जाता है । गर्भवती स्त्री की कमर से काले डोरे से लटका कर बहेड़ा या हड़ बाँध देते हैं । उसके सिरहाने सदैव ही तथा शिशु के जन्म लेने से कुछ घंटे पूर्व तो अवश्य ही खुला हुआ चाकू या तलवार रख दी जाती है। चाकू या तलवार रखने का क्रम बच्चे की एक वर्ष की आयु होने तक चलता रहता है । लोकविश्वास है कि सिरहाने चाकू होने से बच्चे या उसकी माता को किसी प्रकार की भूत बाधा नहीं होती और बच्चे सोते-सोते चौंकते या डरते नहीं।

अपने बच्चों को माताएँ सबसे सुंदर समझती हैं, इसी से अचानक कुछ भी शारीरिक रोग होने पर उनका ध्यान सर्वप्रथम नज़र की ओर ही जाता है। उनका विश्वास है कि अधिक सुंदर व अच्छे बालकों को कु-दृष्टि असर कर जाती है। वह

१. लोक संस्कृति अंक—सम्मेलन पत्रिका, पृ० ४६७

स्नान कराने के बाद बच्चे के काजल लगाने वाली उंगली पर बचे हुए काजल से उसके माथे पर डिठौना (चाँद, तारा) बना देती हैं तथा उसके हाथों व हथेलियों तथा पाँव के तलुओं पर काजल की रेखा बना देती हैं। गले में बजरबट्टू[1] बना कर पहनाती हैं। हाथों में काले डोरे या काले डोरे में पिरोई हुई काली तथा सफ़ेद पोत तथा कमर में काली करधनी भी पहनाते हैं। यह सब कुप्रभाव और मुख्यत: नजर लगने से बचाव के हेतु उपाय हैं। कभी-कभी इतने प्रबंध के बाद भी बालकों को नजर लग ही जाती है जिसकी पहचान है कि अच्छा भला, हँसता खेलता बालक अचानक बार-बार रोने लगता है, दूध पीना छोड़ देता है। तब वह नजर उतारने के लिए निम्नलिखित उपचार करती हैं—

गोधूलि के समय नज़र की सामग्री (राई, नमक, आटे की भूसी, साबित सात लाल मिर्च, झाड़ू का तिनका) हाथमें लेकर बच्चे के ऊपर से सात बार उतार कर टोटका करने वाली चूल्हे की ओर पीठ देकर टाँगों के बीच से हाथ की सब चीजों को चूल्हे में डाल देती है। अगर मिर्चों की बास जरा भी न आए तो समझ लो बहुत नजर लगी है। यह कार्य करते समय किसी को टोकना नहीं चाहिए।

माताएं अपने बच्चों को एकदम दूध पिलाकर बाहर खेलने नहीं जाने देतीं और उसे राख चटा देती हैं, इससे कुछ कुप्रभाव होने की आशंका नहीं रहती।

बच्चों को नहलाते समय भी माताएँ नजर उतार देती हैं। उस समय वह पहले जमीन की मिट्टी उठाकर बच्चे पर सात बार उतार कर माथे पर लगा देती हैं, बाद में स्नान कराती हैं।

जिन पुरुषों का विवाह अधिक अवस्था तक नहीं होता, उनके लिए यह विधान है कि वह कुम्हार का चाक फेरने की लकड़ी चुरा लाते हैं। उसे बृहस्पतिवार को घर लीप पोत कर लहँगा, दुपट्टा, बिंदी महावर लगा कर कोने में खड़ा करके और उसकी गुड़ चावल से पूजा करते हैं। सात बार सात लकड़ी चुराने के बाद जितना ही कुम्हार नाराज होगा और अपशब्द कहेगा उतनी ही जल्दी उसका प्रभाव होगा।

घरों में देवउठावनी एकादशी के दिन सोते हुए देव जगाये जाते हैं। कच और देवयानी की पूजा होती है। कच और देवयानी की मूर्ति ऐपन[2] या मिट्टी से बनायी जाती है और उसे पटरी से ढँक दिया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता

---

१. एक प्रकार की माला—जिसमें रुद्राच गुमची छोटा सा चांदी का चांद, तांबे का सूर्य, नीले गुरिय तथा शेर का नाखून होता है।

२. हल्दी और चावल का आटा पीस और घोल कर तैयार किया जाता है।

है कि सूर्य भगवान् देवयानी के पिता हैं और उनका कन्या तथा उसके पति का मुख देखना वर्जित है। द्वादशी के सबेरे ही घर के कुमार लड़कों या कुमारी कन्याओं को पटरे पर बिठा दिया जाता है। लोक विश्वास है कि एक वर्ष के अन्दर उनका ब्याह हो जाता है।

दिशा-शूल के लिए भी कुछ टोटके होते हैं। पंचाग के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को विशेष दिशा में जाने के लिए दिशाशूल हो तो इसके लिए प्रत्येक वार के लिए पृथक्-पृथक् टोटका होता है। जिस दिन जाना हो उस दिन कुछ खाकर जाने से दिशाशूल नहीं होता, उदाहरण के लिए—रविवार को पान खाकर जाने से, सोमवार को शीशा देखकर जाने से, मंगल को थोड़ी बायबिडंग खाकर, बुध को कहीं भी जाना वर्जित होता है। अगर जाना, फिर भी आवश्यक हो तो पेड़ा खाकर जाये। बृहस्पतिवार को राई खा कर, शुक्रवार को धनिया तथा शनिवार को माथे पर हल्दी का टीका करा कर जाने से दिशाशूल नहीं लगता। जाने के एक दिन पूर्व एक रूमाल में थोड़े से चावल, एक सुपारी, एक हल्दी की गाँठ, तथा दो पैसे बाँध कर घर से बाहर किसी मंदिर या घर में रखा देते हैं। हल्दी उस व्यक्ति की प्रतीक होती है। चावल उसके भोजन, दो पैसे राह का खर्च तथा रूमाल उसके कपड़ों का प्रतीक समझा जाता है। उसे एक दिनपूर्व कहीं और स्थान पर रखने का अर्थ है कि वह व्यक्ति एक दिन पूर्व ही यात्रापर चल पड़ा, इस प्रकार प्रस्थान हो जाता है। वह मानो मंदिर में विश्राम कर रहा है। ग्रहों का प्रभाव इस प्रकार नष्ट हो जाता है। इसको लौकिक भाषा में 'परस्थान' कहते हैं। यह सभी घरों में प्रचलित होता है।

हत्था-जोड़ी तथा सेई का काँटा—हत्था-जोड़ी गोहरे नामक जन्तु के पेट से निकलती है, एक छोटी सी हड्डी पर दो मिले हुए हाथ बने रहते हैं। उसे सिन्दूर में रखा जाता है और होली, दीवाली तथा सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण के पर्वों पर उसे धूप दी जाती है। इससे पति, दास की भाँति आज्ञापालन करने लगता है।

गोधूलि वेला में किसी के घर सेई का काँटा और चोटली (रत्ती) डालने से कलह होता है। किसी दुश्मन को मरवाने के लिए हंडिया छुड़वाते हैं। इसको 'स्याने' लोग ही करते हैं। हंडिया को मंत्र से बाँधते हैं। उसमें सामान रखते हैं तथा जिसका अनिष्ट करना हो, उसका नाम लेकर छोड़ते हैं। इसको 'मूठ' छोड़ना भी कहते हैं। यह प्रायः होली, दीवाली की रात को विशेष रूप से करते हैं। यदि कोई दूसरा 'स्याना' देख ले और हंडिया को पलट दे तो उसका छुड़वानेवाले पर ही सारा कुप्रभाव होता है। इसमें बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है तथा यह बहुत खतरनाक भी होता है।

इसके अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे टोटके भी होते हैं । किसी नव-विवाहिता की शादी की ओढ़नी में से चौकोर टुकड़ा काटना—इससे उसका अनिष्ट होता है। इसी प्रकार बच्चों के बाल काटना, तथा टोपी कुरता आदि चुरा लेना, किसी स्त्री के बीच माँग से बाल काट कर उसे बाँझ करना, चोटी काटना, किसी के बच्चे को दूध पिलाना, किसी के दरवाजे पर चालीस दिन तक शाम को दिया जला कर रखना तथा किसी के लिए चौराहे पर 'उतारे' रखना भी है।

काले तिल, सिन्दूर, तथा लौंग आदि का जादू करने के लिए विशेष प्रयोग करते हैं। आटे का पुतला बनाकर जलाना, तथा अनिष्ट कामना करना भी लोक समाज में प्रचलित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकसमाज में विशेषतया गृहस्थ-जीवन में टोने-टोटके भी उनके अन्य दैनिक कार्यों की भाँति ही जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। इसलिए वह किसी के कहने-सुनने की भी अपेक्षा नहीं करते हैं। यह स्वाभाविक और प्रथम प्रतिक्रिया होती है। मनुष्य का मन जन्म से ही आशावादी तथा शंकाशील प्रवृत्ति का होता है। वह अपनी, अपने निकटतम संबंधियों की तथा प्रियजनों की शुभ व सुरक्षा हर दृष्टि से चाहता है जिसके लिए अगर कभी किसी अन्य व्यक्ति का अनिष्ट भी करना पड़े तो वह पाप नहीं समझता और अपने स्वार्थ-हेतु उसे न्यायसंगत ठहरा लेता है। जहाँ टोने-टोटके, मंगलकामना सुरक्षा तथा इच्छाओं की पूर्ति के माध्यम हैं, वहाँ लोकमानव अपनी प्रतिशोधक भावना की पूर्ति के लिए भी उन्हीं का आश्रय लेता है।

यदि लोकजीवन का अध्ययन किया जाय तो हम पायेंगे कि टोने-टोटके लोक-मानव के जीवन में अच्छे-बुरे, मानवीय-अमानवीय, लौकिक-अलौकिक, साधारण, अद्‌भुत, सभी रूपों में दृष्टिगत होते हैं।

खड़ीबोली प्रदेश में धर्म का व्यावहारिक पक्ष : पूजा-उपासना—लोक-जीवन में धर्म का विशिष्ट सहयोग है। लोक मानव परिस्थितियों की क्रूरता से कभी इतना अधिक आक्रान्त हो जाता है कि वह अपनी सामर्थ्य तथा अन्य वाह्‌य शक्तियों में अधिक विश्वास नहीं कर पाता। उस समय वह ऐसी शक्तियों की ओर दौड़ता है जो अमानवीय तथा अलौकिक हैं जिनका संबंध किसी अद्‌भुत शक्ति अथवा देवी-देवता आदि से होता है। इन शक्तियों में देवी-देवता, वनस्पति, नदियाँ, पशु-पक्षी आदि सभी आ जाते हैं। इन सब की उपासना लोक-जन की दुर्बल मानसिक स्थिति को पुष्ट बनाने में सहायता देती है। लोकजन अपने किसी काम में विघ्न-बाधा नहीं चाहता। इसीलिए वह भूत प्रेत की पूजा भी करता है और उनकी पूजा में अनैतिक तथा तामसिक साधन भी अपनाता है।

यह सब वह इसलिए करता है कि उसका जीवन कष्टों से बचा रहे तथा उसके कार्यों में इन सब शक्तियों के द्वारा व्यवधान न पहुँचे। शास्त्रीय देवी-देवताओं को वह इसीलिए पूजता है कि उनके प्रभाव से उसको मनोवांछित फल मिल जाय। वह समझता है कि अगर देवी-देवता प्रसन्न रहेंगे तो दूसरी तामसिक शक्तियों का प्रभाव भी नहीं पड़ेगा। हनुमान उनके सबसे निकटतम देवता हैं जिनके प्रभाव से 'भूत-पिशाच निकट नहीं आवैं'।

वैष्णवों के पंच 'ग' कार (गंगा, गीता, गाय, गोविन्द, गायत्री) का यहाँ भी उतना ही मान है जितना कि अन्य कहीं देखा जा सकता है—

'कुरुधर्म यानी कुरुदेश के लोगों का चरित्र सारे भारतवर्ष के लिए एक आदर्श माना जाता था।[१]'

लोकमानव इतना सरल होता है कि उसे न तो अनुष्ठान की रीति ही मालूम है और न वह नवधाभक्ति ही जानता है। यज्ञ-हवन आदि से भी उसका विशेष परिचय नहीं है। उसके पूजन की विधियाँ बहुत सरल होती हैं और साधारण हैं। वह कार्यसिद्धि के लिये प्रसाद बोलता है। नियम से मंदिर जाता है, जल से स्नान कराता है, फूल-पत्र चढ़ाकर दीप जला देता है अथवा एक पैसा चढ़ा देता है। इतना ही करने से उसके मन को शक्ति मिलती है तथा उसकी आस्था को सहारा मिलता है। वह प्रकृति को भी ईश्वर का रूप समझता है। जो प्राकृतिक अंग उसके लिये लाभदायक हैं तथा उसकी जीवन यात्रा में सहयोगी हैं वह उनकी पूजा कर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। वनस्पति, नदियाँ, पशु-पक्षी आदि पूजन की लोक-विधियाँ हैं। इन विधियों की पृष्ठभूमि में कर्मकांड अथवा शास्त्रीय विधियाँ नहीं होतीं। इन विधियों में न मंत्रों की ही आवश्यकता होती है और न पंडितों की। लोक-समाज में पूजा-उपासना का यह घरेलू रूप अपना लिया गया है। इस उपासना का क्षेत्र बहुत व्यापक है। शाश्वत देवी-देवताओं के अतिरिक्त और भी अनेक देवी-देवता हैं जो इनके निजी देवी-देवता हैं जिनकी पूजा की विधि भी उसकी अपनी ही है। वह इन देवी देवताओं की पूजा घर में सहज उपलब्ध वस्तुओं से ही करता है। माता की पूजा वह दाल, बिनौले, दही तथा हल्दी आदि चढ़ा कर ही कर लेता है। यही उसकी पूजा है।

अब हम लोकमानव की पूजा उपासना के विविध पात्र तथा देवी-देवताओं का यहाँ पर उल्लेख कर रहे हैं जिनकी पूजा से लोकमानव अपने जीवन को सार्थक बनाता है इनको हम निम्नलिखित तालिका के द्वारा स्पष्ट कर सके हैं—

---

१. इतिहास प्रवेश—जयदेव विद्यालंकार, पृ० ४७

पूजा-उपासना

देवी: शाश्वत	देवी: ग्राम	देवता: शाश्वत	देवता: ग्राम	वनस्पति: पेड़-पौधे	पंचतत्व: जल-देवता	पशु: गाय	मिश्रित
दुर्गा	चंडीदेवी	शिव	हनुमान	पीपल	नदी-पूजा	गाय	चाकपूजना
सरस्वती	मनसादेवी	गनेश	भूमिया	नीम	गंगा	चामड़	कुआ ,,
पार्वती	बेमाता	राम	भैरो	आंवला	सूर्य-चंद्र	नीलकंठ	ढोलक ,,
लक्ष्मी	शीतला	कृष्ण	चामुंडा	बेल	धरती	कालाकौआ	कलम-दावात
	सत्ती		जाहर	केला	अग्नि	गरुड़	पुस्तकें
	सीकरीदेवी		बूढ़ेबाबू	तुलसी	तारागण	बंदर	स्वस्तिकी-चिह्न
	चामुंडा		उलग	बरगद	पर्वत-पूजा	कछूए	
	तुरकनमाता		(उग्रदेवता)	आक	गोवर्धन	मोर	चक्र पूजा
	मसानी		अत		शालिग्राम		
	बासन्ती		भैरो				
	महामाई						
	मोलमदे		मीरा				
	लमकड़िया		ख्वाजाखिजर				
	अगमानी		बालेमियां				
	छठीसतवाई		प्यारेजी				
	बाराही		तेजनाथ की पूजा				
	फुलको		सकट				
	लालता		बभ्रुवाहन				
	अगसदे						
	कंठी, खसूटा,						
	बुद्धो, अहोई,						
	सांझी, शाकम्बरीदेवी,						
	नरगरकोट की देवी						
	संदला, झुनकी, मिदला,						
	महकला, मंडला, अक्को-खक्को,						
	रेंटो-फेंटो,						
	हंसनी-खेलनी						

इन्हीं विभिन्न भागों के अन्तर्गत आने वाले पूजा-उपासना के आलम्बनों पर पृथक्-पृथक् विस्तार से विचार किया गया है । इस प्रदेश में शिव और शक्ति की उपासना का बहुत प्रचार है । शिव देवताओं में प्रमुख और सनातन हैं । इसी प्रकार शक्ति आदि देवी हैं । जिनके विभिन्न रूप सरस्वती, पार्वती तथा लक्ष्मी आदि शास्त्रों में भी उपलब्ध हैं । इनका पूजन विधि-विधान तथा अनुष्ठान द्वारा होता है जिसका अधिकार विज्ञ-पंडितों को होता है तथा उन्हीं के द्वारा सम्पन्न भी होता है । इन्हीं आदि शक्ति के लोक-जीवन में पारिवारिक तथा सुलभ रूप भी देखने को मिलते हैं जिनके विभिन्न नाम तथा विभिन्न शक्तियां हैं । यह स्थान विशेष से भी संबंधित होती हैं तथा प्रत्येक का भिन्न क्षेत्र भी होता है जिसके लिए वह पूज्य मानी जाती हैं । इन ग्राम देवियों के नाम इस प्रकार हैं—

चंडी देवी, मनसा देवी, शीतला, वैमाता, सत्ती, सांझी, सीकरी देवी, चामुंडा, तुरकन माता, वाराही, महामाई, भुस्सी, छठी, सतवाई, फुलको, लालता अगमदे, कंठी, खसरा, बुढ्ढो, मसानी, वासन्ती, पोलमदे, लकड़िया, अगमानी, शाकुम्बरी देवी, नगरकोट की देवी ।

इनमें से कुछ देवी का उल्लेख विस्तार से इस स्थान पर कर रहे हैं—

सरस्वती देवी—गढ़मुक्तेश्वर मार्ग पर मेरठ से २।। मील दूर है । इनकी पूजा रविवार को होती है । इनकी पूजा से मनोकामना पूर्ण होती है अतः जन-समाज में इनकी बहुत मान्यता है ।

चंडी-देवी—हरिद्वार में पहाड़ी के ऊपर चंडीदेवी का बहुत प्राचीन मंदिर है । चंडी चौदस के दिन यहाँ पर बहुत बड़ा मेला लगता है । इसकी बहुत मान्यता है । चंडी देवी शक्ति की प्रतीक मानी जाती है । किसी स्त्री को विकराल रूप में देख कर यही कहा जाता है कि चंडी सी बिखर रही है । इसी कारण लोकजीवन से चंडी का बहुत निकट का संपर्क है ।

शाकुम्बरी देवी तथा नगरकोट की देवी—इनकी पूजा चाणक्य के समय में भी होती थी । यहाँ जात देने के लिए तथा बालकों का मुंडन कराने के लिए प्रतिवर्ष बहुत से लोग दशहरे पर उसके थान पर जाते हैं । चैत्र तथा क्वार में मुहूर्त शोधकर जात के लिए प्रस्थान करते हैं ।

'शाकम्भरी देवी का मन्दिर स्रुघ्न देश का सबसे बड़ा तीर्थस्थान था। शिवालक की उपत्यका में स्थित यह मन्दिर उस युग में बड़ा पवित्र माना जाता था और भगवती शाकम्भरी के दर्शन के लिए लाखों यात्री वहाँ प्रतिवर्ष जाया करते थे । इस मन्दिर के चारों ओर घनघोर जंगल था और दिन के समय भी वहाँ आना-जाना भय से शून्य समझा जाता था । यही कारण है कि शाकम्भरी

के यात्री 'बृहदहट्ट' नामक नगर में ठहर कर दिन के समय टोली बनाकर शाकम्भरी के मन्दिर के दर्शन के लिए जाया करते थे । बृहद्हट्ट नगरी शाकम्भरी के मन्दिर से एक योजन की दूरी पर उस राजमार्ग पर स्थित थी, जो कुरुदेश से उत्तर की ओर जाता था ।[1]'

महामाई और अमरोह वाली देवी की पूजा चमारों में होती है । यह लोग थान पूजते हैं । महामारी को भी महामाई कहते हैं ।

सतवाई या छठी—यह एक निशाचरी है, जिसके संतुष्ट करने के लिए प्रसव के छठे दिन प्रसूता से यह पूजा कराई जाती है । गंदगी के कारण 'लाकजा' रोग हो जाता है । लोग इसी को प्रेत-बाधा मानते हैं जिसे दूर करने के लिए 'छठी' पूजन किया जाता है । इस प्रकार इस टेहले में आदि मानव के विश्वासों की छाया वर्तमान है । वाणभट्ट ने हर्ष-जन्म पर भी जातमातृदेवी की मूर्ति का बनाया जाना व पूजा जाना लिखा है । इस देवी का एक नाम चर्चिकादेवी भी है । पुत्रजन्म के छठे दिन 'बेमाता' की पूजा भी होती है । इसको देवी का विधाता रूप मानते हैं विशेषकर इनको बच्चे बहुत प्यारे होते हैं । यह उनका निर्माण करती है तथा रक्षा करती है । यह मातृका देवी कहलाती है । लोकविश्वास है कि अगर लड़की हो तो वह बुढ़िया है जो बत्ती सी बनाती है, गारे का खेल-खिलौना बनाती है तो लड़का बन जाता है और जो लड़की होती है तो जवान होती है और जल्दी से आकर थापा मार कर चली गई तो लड़की हो जाती है ।

सीकरी देवी—मेरठ में बहुत प्रसिद्ध है । इसे बकरा चढ़ता है ।

चामुंडा—यह हापुड़ में है । इसे कच्चा सीधा चढ़ता है ।

सांझी—की नवरात्र में यहाँ के ग्रामों में विशेषतया लड़कियाँ लीपपोत कर मिट्टी के गहनों को खड़िया व रामरज से पोत, गोबर की एक नारी-मूर्ति का शृंगार करती हैं । इसी को सांझी कहते हैं । यह दुर्गा का ही एक स्वरूप माना जाता है । मोहल्ले की सभी कन्याएँ संध्या को इकट्ठी होकर इसकी आरती करती हैं । इसका संबंध राम-विजय से भी है ।

भुस्सी माता—मेरठ में भैंसाली मैदान में इसकी पूजा के बाद हथेली पर गेहूँ की भूसी रखकर मुँह की फूँक से उड़ाते हैं । इसी से यह नाम भी पड़ा है ।

वाराही—यह सप्त मातृकाओं में से एक है । किशनपुर व फिटकरी में इसकी जात लगती है । इसका बिगड़कर 'बराई' हो गया है । फोड़े-फुंसी जैसे चर्म

---

१. आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य—डॉ० सत्यकेतु, पृ० १९५

रोगों के संबंध में पूजी जाती हैं। थान पर जाकर स्त्रियाँ मीठे पूड़े चढ़ाती हैं और जोत जलाती हैं।

लोकपूज्य इन माताओं की गणना करना दुष्कर है। नगर-नगर और खेड़े-खेड़े की माताएँ हैं और अनेक रोगों तथा दशाओं की भी अलग-अलग अपनी देवियाँ हैं, यथा हंसनी-खेलनी, अक्को-खक्को (खांसी की) रेंटो-फेंटो (सर्दी-जुकाम) आदि हैं। अन्य ग्राम देवताओं की तरह इन माताओं में भी कुछ विजातीय माताएँ आ गई हैं उदाहरण के लिए हरिद्वार की तुरकन माता ऐसी ही हैं। डब्लू-क्रूक के अनुसार यह किसी मुगल शहंशाह की हिन्दू पत्नी की संतान थी जो अपने पूर्व-संस्कारों के प्रभाववश बद्रीनाथ यात्रा के लिए गयी थी। उसे वहाँ स्वप्न हुआ कि उसे तुरंत वहाँ से लौट जाना चाहिए अन्यथा विधर्मी लोग उस स्थान पर जाकर उसे अपवित्र करेंगे। देवाज्ञा स्वीकार कर वह बद्रीधाम से लौट पड़ी और कनखल में निवास किया। उसे वरदान मिला था कि उसकी श्रद्धा के फलस्वरूप मृत्योपरान्त वह शिशुरक्षिका देवी के रूप में पूजी जायेगी। इसलिए उसकी समाधि पर मन्दिर बना दिया गया और लोग उसे तुरकन माता कह कर आज तक पूजते हैं।

मेरठ में चैत्र शुक्ला द्वितीया पर पड़ासौली और सरधने में जात लगती है। देवबंद (सहारनपुर में) बहुत प्रसिद्ध बालासुंदरी देवी का मंदिर है जहां पर जात लगती है। सूरजकुंड पर सती ज्ञानीदेवी की समाधि है।

चामंड—पशु-देवता के रूप में मेरठ में इसकी पूजा होती है। विशेषतया भैंसे की स्वामिनी कही जाती है। विवाह के उलगों में से यह एक है।

देवता—देवताओं में प्रमुख सनातन देव, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, राम, कृष्ण हैं, जिनका लोक समाज तथा समस्त आस्तिक हिन्दू समाज में पर्याप्त महत्व है। इनके मंदिर ग्राम-ग्राम में स्थान-स्थान पर मिलते हैं जिनमें विधि-विधान से पूजन होता है, लेकिन इसके अतिरिक्त कुछ लोक-देव भी हैं जो लोकजीवन के अधिक निकट हैं। इनका अपना-अपना विशिष्ट महत्व है। इनके नाम इस प्रकार हैं—भूमिया, भैरों, चामुंडा, हनुमान, जाहर, बूढ़े बाबू, उलग, (उग्रदेवता) ऊत, भैरो, मीरां, ख्वाजाखिजर, बालेमियाँ, प्यारे जी, तेजनाथ जी, वीर बभ्रुवाहन, सकट।

भूमिया—इनका एक थान होता है, यहाँ जाकर लोग होली खेलते हैं तथा दीवाली को दीपक रखते हैं। विवाह के बाद वर-बधू को संटी खिलवाने भी वहीं ले जाते हैं तथा पुत्रजन्म पर भी स्त्रियों को ले जाया जाता है। पशु के पहले ब्याने

पर दूध सर्वप्रथम भूमिया को भेंट किया जाता है । विवाह के अवसर पर 'दई' देवता के गीतों में इनका भी विशेष स्थान होता है । भूमिया ग्रामदेवता माना जाता है । ग्रामवासी की सुरक्षा तथा पालन भूमिया के द्वारा होता है ।

भैरों—मेरठ में सूर्यकुंड पर तथा काली पलटन के शिवमन्दिर में भैरों का थान है । यह भी सभी प्रदेशों में हर स्थान पर मिलते हैं । विवाह में गाये जाने वाले १६ उलगों में एक उलग भैरों के नाम का अवश्य होता है । कहा जाता है भैरों शंकर का कोतवाल होता है जो रात्री में कुत्ते पर चढ़कर पहरा देता है ।

हनुमान की मढ़ी—हर ग्राम में मिलती है । यह संकटमोचन हैं । अतः इनके आराधन पूजन से 'भूत, पिशाच निकट नहीं आते' अलाबला हनुमान का नाम लेने से टल जाती है । एसा लोक-विश्वास है कि हनुमान की पूजा—रात को १० बजे से सुबह चार बजे तक नहीं करनी चाहिए क्योंकि उस समय स्वयं हनुमान राम की सेवा मे रहते हैं उस समय पूजा करने से उनकी सेवा में विघ्न पड़ता है । पहलवान और अखाड़ेबन्द लोग हनुमान की पूजा करके तथा 'जय बजरंग बली' कह कर ही अखाड़े में उतरते हैं ।

जाहर—गूगा तथा जाहर पीर की भी मेरठ जनपद में बड़ी कामना की जाती है । छड़ियों का मेला इसी से संबंधित है । जाहर की छड़ी के ऊपर मोरछल बांधा जाता है । मोर सर्प का स्वाभाविक शत्रु है । स्त्रियाँ सावन में झूले पर गीत गाती हैं यह देवता सर्पों से रक्षा करता है । जाहर पूजा के लिए मुख्य वस्तुएँ आटा और गुड़ एक सराई में ले जाते हैं, एक टका और बाँस में बंधी एक सफेद कपड़े की झंडी लेकर आते हैं । 'जाहर का साका जोगी लोग गाते हैं, जो गुग्गे के सोहले भी कहलाते हैं । बच्चों का निशान भी जाहर पीर पर चढ़ाया जाता है । निशान के लिए एक बांस में पीला या नीला झंडा, पंखा बांध कर रखते हैं । गुड़-आटा आदि साथ ले जाते हैं । दीपक से जोत करते हैं । जोगी लोग मोर पंखों से बाछ्छि देते हैं । बाछ्छि 'वांछा' का बिगड़ा हुआ शब्द है ।

मीरां-डब्लू क्रूक के अनुसार बग़दाद के निकट जलगाँव के अब्दुल कादिल जिलानी ही मीरा साहब के नाम से उत्तर भारत में पूजे जाते हैं । यह एक महात्मा थे जिन्हें प्रेत सिद्धि थी । आज भी स्त्रियाँ बालकों का प्रेत-बाधा से बचाव करने के लिये मीरां की बड़ाई करती हैं और तेल के मीठे पूड़े (पांच पांच पूड़े सात ढेरियों में लगाकर मिनसने के बाद भिश्ती को दे देती हैं । विवाह में गाये जाने वाले दई-देवता में भी मीरां को लिया जाता है । स्त्रियां मीरां से सुख सौभाग्य और संतति की कामना करती हैं ।

बूढ़े बाबा—यह त्वचा रोग के देवता हैं। इनकी मीठे पूड़ों से पूजा करते हैं। इस दिन बच्चों को मीठे पूड़ों से अवश्य मुख बिटारना पड़ता है। इनको सृष्टिकारी ब्रह्मा भी माना जाता है। परन्तु इनकी पूजा बच्चों को फोड़े-फुन्सी से बचाने के लिए की जाती है।

ऊतों—इनको प्रसन्न करने के लिए बरुआ (अवविवाहित ब्राह्मण बालक व युवकों) को दूध पेड़े खिलाते हैं तथा बोल कबूल कर लेने पर वस्त्रादि तक देते हैं।

उलग—यह उग्रदेवता है जो अगर रूठ जाये तो मनाना कठिन हो जाता है किन्तु आरंभ में ही यदि उनकी पूजा कर दी जाय तो सहज प्रसन्न होने वाला तथा सिद्धिदायक भी है। ऊतों तथा उलग की पूजा विवाह के समय होती है।

बभ्रुवाहन—विवाह के मंडप में हलद के ऊपर रखे जाने वाले करुए को बभ्रुवाहन का शिर बतलाया जाता है। बभ्रुवाहन को श्रीकृष्ण जी का वरदान है कि वह कटे हुए शिर से सब कुछ देखेगा। इनके अतिरिक्त कुछ रोगों का देवता भी माना जाता है। निम्नजाति एवं असभ्य लोगों का विश्वास रहा है कि रोग और मृत्यु किन्हीं प्रकृत कारणों से न होकर क्रूर आत्मा भूत प्रेतादि अथवा जादू-टोने का परिणाम है। इसी हेतु कार्य-कारण के संबंध का निश्चय कर पाने में असमर्थ यह भोले-भाले लोग सहसा उत्पन्न होने वाले भयंकर रोगों के विविध देवताओं की कल्पना कर उन्हें नाच गाकर अपनी भेंट-पूजा से प्रसन्न कर अपनी सुरक्षा और कामनापूर्ति की याचना करते हैं।

शीतला माता, वाराही माता तथा बूढ़े बाबू इन्हीं के अन्तर्गत मुख्य रूप से आते हैं। झाड़-फूंक करने वाले, पीरों के उपासक 'स्याने' कहलाते हैं। ये लोग गाँवों में रोगों के चिकित्सक और प्रेत-बाधा निवारण करने वाले माने जाते हैं। यहाँ के गाँवों में चारों दिशाओं में देवता हैं। इनकी प्रशंसा में तथा स्तुति में योगी लोग 'साके' गाते हैं।

लोकविश्वास है कि देवी-देवता पितरों के रुष्ट हो जाने पर रोगों का डर रहता है उदाहरण के लिए—१आंख दुखना, २—बाय, ३—श्वेत कुष्ट, ४—मुख तथा गुदा मार्ग से रक्त गिरना, ५—पागलपन, ६—शरीर का पकना।

इसी कारण ग्रामीण नर-नारी अपने इन मान्य, पूज्य देवी-देवताओं को को किसी भी शुभकार्य से पहिले तथा किसी भी अशुभ की आशंका के अवसर पर सर्वप्रथम पूजा से संतुष्ट कर तथा स्तुति कर मन से निश्चिन्त हो जाते हैं। लोक-मानव उपचार अथवा चिकित्सा में इतना विश्वास नहीं करता जितना इसमें

विश्वास रखता है कि यदि देवी-देवता की पूजा यथासमय सुचारु रूप से करता रहेगा तो कोई कष्ट अथवा व्याधि उसे व्यापेगी नहीं।

वनस्पति पूजन—प्रकृति, जीवन से भिन्न नहीं है अपितु लोक-समाज में इसका जीवन से गहन संबंध है। लोक-जन का रहन-सहन, खान-पान, क्रिया-कलाप तथा कोई भी दैनिक कार्य प्रकृति विधान के विपरीत नहीं होता। उनके सब कार्य स्वाभाविक रूप से समयानुकूल होते हैं इसी से वे स्वस्थ रहते हैं। यहाँ मानव संपूर्ण प्रकृति की ही पूज करता है, मौसम, पर्वत, नदी, वनस्पति सभी में लोकमानव की आस्था रही है। स्त्री समाज में तो वनस्पति पूजन का बहुत महत्व है, यद्यपि इसका आधार वैज्ञानिक ही है पर स्त्रियाँ तो वैज्ञानिक पक्ष जानती नहीं और इसको परंपरागत आस्था के रूप में ही अपनाती रही हैं।

वनस्पतिजगत से मानव का संबंध उतना ही प्राचीन है जितनी यह सृष्टि। सभ्यता के आदिकाल से ही वृक्ष, लताएँ, पुष्प, घास, आदि मानव के सहचर रहे हैं। आदिम मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं, आवास, भोजन, वस्त्र की पूर्ति इन्हीं वृक्षों के द्वारा हुआ करती थी। इन्हीं कारणों से यदि उसने वृक्षों को देवता के रूप में पूजना आरम्भ कर दिया हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

वृक्षों के प्रति साधारण जनता में पूजा भावना का होना स्वाभाविक ही है। धीरे-धीरे लोगों में इन वृक्षों, लताओं तथा पुष्पों के प्रति अपने लोकविश्वास प्रचलित हो गए और उन्होंने रूढ़ियों का रूप धारण कर लिया। विशेष वृक्षों की पुत्र देने वाली, धन-धान्य प्रदान करने वाली अथवा मनोभिलाषा की पूर्तिकारक पूजा मानी जाने लगी। इन वृक्षों तथा पौत्रों में विशेष उल्लेखनीय हैं—पीपल, बड़, नीम, आम, आंवला, केला, बेल, आम, कीकर और कुशा घास। हर वृक्ष की अपनी आत्मा होती है अतः उसे चेतन की तरह समझना चाहिए।

पीपल—यह परम पवित्र वृक्ष माना गया है। इसके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश निवासा करते हैं। अनेक प्राचीन मन्दिरों के ऊपर यह वृक्ष उगता हुआ दिखायी पड़ता है। जहाँ इसकी जड़ें उस मंदिर की दीवाल में घुस कर अपनी स्थिति बना लेती है। मंदिर के पास पीपल के पेड़ को लगाने की भी प्रथा है। इसलिए देवी-देवताओं के मंदिरों से संबंधित होने के कारण भी यह पवित्र माना जाता है। इस वृक्ष को जलाया जाना निषिद्ध मानते हैं क्योंकि लोगों की ऐसी धारणा है कि इस वृक्ष पर देवताओं का निवास है और काटने से उन्हें कष्ट होता है। इसलिए कोई भी हिन्दू इसे काटना पाप समझता है। हर शनिवार को पीपल की पूजा इसलिए की जाती है क्योंकि शनिवार को सब देवताओं का वास पीपल के

पेड़ के नीचे होता है इसलिए जो लोग रोज़ पूजा नहीं करते वह भी शनिवार को पीपल की पूजा करके सब देवी देवताओं की पूजा करते हैं ।

स्त्रियाँ सोमवती अमावस्या को स्नान करके वासुदेव के रूप में इस वृक्ष की पूजा करती हैं । वे इसकी जड़ में जल चढ़ाती हैं, चन्दन, रोली और फूल से इसकी पूजा करती हैं । १०८ बार प्रदक्षिणा करती हैं । इस वृक्ष की पूजा दाम्पत्य प्रेम को बढ़ाने वाली मानी जाती है । लोगों का विश्वास है कि यह संतान को देनेवाली भी है । यह प्रेत-बाधा से रक्षा करता है । गुड़, चंदन, धूप, हल्दी आदि से इसका पूजन करते हैं । पीपल की लकड़ी केवल हवन के लिए प्रयोग में लायी जाती है ।

बरगद-वटवृक्ष—वटवृक्ष अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है । इसकी आयु बड़ी होती है । वाल्मीकि रामारायण तथा उत्तररामचरित में स्थित अक्षयवट का उल्लेख पाया जाता है । प्रलय के समय भी वह जल में निमग्न होने से बचा रहा । इसकी शाखा की पत्ती पर बालरूप में भगवान विराजते रहे । गया में बोधिवृक्ष के नीचे ही भगवान बुद्ध को बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी । इसीलिए वटवृक्ष को काटना निषिद्ध समझा जाता है । अनेक बीमारियों में इसका दूध प्रयोग में लाया जाता है ।

बड़मावस के दिन स्त्री समाज में बड़ की पूजा बहुत श्रद्धा से होती है । सती सावित्री जिस समय जंगल में थीं और यमराज उसके पति के प्राण लेने को आये उस समय वह वटवृक्ष के नीचे बैठी हुई अपने पति की सेवा कर रही थी । उसी पेड़ के नीचे उसके पति के प्राण यमराज ने ले लिए थे और सावित्री की पवित्रता व सत्य के बल पर उसके प्राण यमराज ने लौटाए । इसलिए स्त्रियाँ बड़ के पेड़ की पूजा करती हैं उनका विश्वास है कि यह सौभाग्य का देने वाला है ।

नीम—इस पेड़ को संस्कृत में 'निम्ब' कहते हैं । यह वृक्ष बहुत ही पवित्र समझा जाता है, क्योंकि शीतलादेवी का यह निवास स्थान माना जाता है । चैत्र मास में नवरात्र के समय इस वृक्ष की पूजा विशेष रूप से होती है । अगर इस समय इसकी पूजा न करें तो देवी रुष्ट हो जाती हैं । इसका वृक्ष बहुत विशाल होता है तथा इसकी छाल बहुत शीतल होती है । इसके फल को 'निम्बोली' कहते हैं । नीम के फूल व गोंद भी खाने के काम में लाये जाते हैं और वैद्यक शास्त्र में इसकी बहुत प्रशंसा है ।

लोकविश्वास है कि नीम पर शीतला माता का निवास रहता है और भक्त के द्वारा आवाहन करने पर यहाँ से जाती हैं । नीम की पत्तियों का उपयोग चेचक की बीमारियों में विशेष रूप से किया जाता है नीम की टहनी से 'झाड़ा'

जाता है और नीम की पत्तियों पर उसको सुलाया जाता है । इसके फूलों को रोगी की चारपाई के पास बिखेर देते हैं क्योंकि इसकी सुगंध उनके लिए हितकर होती है । इसकी हवा स्वास्थ्यप्रद होती है ।

नीम वृक्ष का संबंध सर्प से भी है । भूत भगाने के लिए भी नीम की पत्तियों का प्रयोग किया जाता है । नीम का वृक्ष अपनी उपयोगिता तथा शीतला एवं काली देवी का निवास-स्थान होने के कारण पवित्र माना जाता । सूर्य और शीतला के संबंध में इसे पूजते हैं ।

बेला—श्रीफल को संस्कृत में 'बिल्व' कहते हैं बेल उसी का अपभ्रंश है। इसकी बहुत-सी पत्तियाँ भगवान शिवलिंग के ऊपर चढ़ायी जाती हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन पत्तियों को शिव के ऊपर चढ़ाने से हलाहल (विष) के पान करने से उत्पन्न भगवान शिव की गर्मी शांत होती है । खंडित पत्तियों को नहीं चढ़ाया जाता। बहुत से लोग बेल की पत्तियों पर चन्दन को पीस कर, उसके द्वारा इसकी डंठल से राम-राम लिख कर शिव जी पर चढ़ाते हैं । ऐसा करना अत्यन्त पुण्य का देने वाला समझा जाता है । पूरे सावन के महीनें में ही विशेष रूप से बेलपत्र शिव जी पर चढ़ाय जाते हैं । इसी महीने में शिवरात्रि होती है ।

इस वृक्ष की लकड़ी पवित्र होने के कारण मृत व्यक्ति के जलाने के काम मे लाना अत्यन्त निषिद्ध है । इस वृक्ष के नीचे मलमूत्र त्यागना मना है । इस वृक्ष की पत्तियों का उपयोग अनेक प्रकार की औषधियों में किया जाता है ।

आंवला—यह बहुत पवित्र वृक्ष माना जाता है। कार्तिक मास में इस वृक्ष की (आंवला एकादशी के दिन) विशेष रूप से पूजा की जाती है । पुत्र की प्राप्ति के लिए इस वृक्ष की पूजा का विधान है । अक्षयनवमी को कार्तिक में इसकी पूजा का विशेष महत्व है । इस दिन इस वृक्ष के नीचे ब्राह्मणों को भोजन कराना बड़ा ही पुण्यदायक माना जाता है । इसको सुख, सौभाग्य, संतान देने वाला माना जाता है । आंवले के फल का उपयोग अनेक रोगों में किया जाता है । आंवला शीतल होता है । लोक-जीवन में आंवला भोज्य पदार्थ भी है ।

केला—'कदलीफल' बहुत पवित्र माना जाता है । कार्तिक मास में इसकी विशेष रूप से पूजा होती है । केले के एक ही चरखे पर अनेक फल लगते हैं अतएव यह सन्तानोत्पत्ति का प्रतीक समझा जाता है ।

लोक-सभाओं में इसका बहुत उल्लेख मिलता है । इसका पूजन स्त्रियाँ सौभाग्य तथा संतान की कामना के लिए हर बृहस्पतिवार को करती हैं । इसका पूजन चने की दाल, दूब तथा हल्दी के छींटों से किया जाता है । इस दिन व्रत रख कर पीला भोजन ही करती हैं ।

आम—हिन्दू संस्कृति में आम का बड़ा महत्व है। कोई भी मांगलिक कार्य आम की डाली के बिना नहीं होता परन्तु आम की पूजा नहीं होती। विवाह के समय आम की पत्तियों से तोरण बंदनवार बनाई जाती है। मंगलघट में इसकी पत्तियाँ लगाते हैं।

आम की लकड़ी का प्रयोग हवन की समिधा के रूप में होता है। विवाह तथा यज्ञोपवीत में हरी लकड़ी का पीढ़ा बनाया जाता है। आम के बौर को लोक मानव बहुत पवित्र समझता है। आम के बौर को जब वह पहली बार देखता है तो अपनी किसी इच्छा की पूर्ति की कामना करता है।

आक—आक की पूजा तीसरे दिन का बुखार दूर करने के लिए की जाती है तथा जिगर के लिए भी इसकी पूजा करते हैं।

तुलसी—यह परम पवित्र पौधा समझा जाता है। हर घर में तुलसीचौरा होता है। विष्णु जी की पूजा का इससे घनिष्ठ संबंध है। तुलसी की पूजा माता के रूप में की जाती है इसीलिए उसे 'तुलसीमाता' भी कहते हैं। कार्तिक मास में इसकी पूजा विशेष रूप से होती है। प्रातः संध्या समय स्त्रियाँ घी का दिया जला कर पूजा करती हैं तुलसी के थावले पर दीपक जलाते समय वह एक दोहा कहती हैं जो इस प्रकार है—

तुलसा माता मुक्ति की दाता
दिवला सींचूं तेरा कर निस्तारा मेरा'

कार्तिक मास में 'देवउठावनी एकादशी' तथा कार्तिक पूर्णिमा पर तुलसी-विवाह भी बहुत धूमधाम से शालिग्रास के साथ करते हैं। विष्णु भगवान की पूजा तुलसी-दल से ही की जाती है। तुलसी विष्णु भगवान की पटरानी मानी जाती है। तुलसी पूजन का सुख-सौभाग्य के लिए बहुत महत्व है। नारियाँ प्रतिदिन स्नान, पूजा के बाद तुलसी को जल से सींचती हैं तथा नमस्कार करती हैं और तुलसीदल प्रसाद स्वरूप ग्रहण करती हैं। तुलसी सींचते समय वह कहती हैं—

'धन धन तुलसा, धन धन राम
उज्ज्वल तुलसा तेरी जात
लिप्पूं पोत्तूं चौक पुराऊं
तुलसा रानी नौत जिमाऊं
जौ का खेत, चंदन की क्यारी
तुलसा सिच्चे श्रीकृष्ण जी की प्यारी'

तुलसीदल तोड़ने के समय वह इस प्रकार एक दोहा कहती हैं—जिसके द्वारा वह तुलसीदल ले लेने की आज्ञा लेती हैं तथा अपना आशय भी बताती हैं—

'तू क्यूं तुलसा हाल्ली डोल्ली, क्यूं झलोरे ले
हमें भेज्जी कृष्ण जी ने, दो दल मांग्गे दे'

रविवार और मंगलवार को तुलसीदल तोड़ने का निषेध है। उस दिन स्वाभाविक रूप से झड़ी हुई पत्तियों से ही पूजन करते हैं।

कुश—कुश की पवित्रता के कारण इसका उपयोग सभी मंगल-कार्यों में किया जाता है।

यदि कोई मनुष्य परदेस में मर जाता है और उसका अग्नि संस्कार नहीं होता तो कुश से उसकी प्रतिमा बनाई जाती है। उसे 'कुश पुत्रिका' के नाम से संबोधित करते हैं। इसका संबंध राम के पुत्र और लव के छोटे भाई कुश के जन्म की कथा से है।

दूध फट न जाए इसलिए उसमें कुश डाल देते हैं। कुश में भूत को भगानें की शक्ति मानते हैं। ग्रहण के समय यदि खाने-पीने की वस्तुओं में कुश रख देते हैं तो उसका सूतक नहीं लगता। कुश से जल छिड़क कर स्थान पवित्र किया जाता है। शिखा में भी कुश बांधते हैं तथा देवपूजन में कुश से ही स्नान कराते हैं। कहा जाता है कि सागर मंथन के बाद अमृत घट ले जाते समय कुश पर ही रखा गया था तब से कुश अत्यन्त पवित्र मानी जाती है।

दूब—सभी मंगलकार्यों में दूब का प्रयोग होता है। दूब सदा हरी रहती है। ऐसा कहा जाता है कि भगवान विष्णु ने अमृत का घड़ा एक स्थान पर रख दिया था। कौवे ने आकर उसे पी लिया और उसका कुछ अंश जमीन पर गिरा दिया जो दूब पर पड़ा। दूब स्त्रियों के सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती है। कुएं पर उगी हुई दूब अधिक पवित्र समझी जाती है।

दूब इसलिए भी पवित्र मानी जाती है कि वह सदा अपना वंश बढ़ाया करती है। दूब के नाल सदा फैलते रहते हैं। इसलिए समृद्धि शाली तथा दीर्घायु को भी प्रतीक है।

पंचतत्व पूजन—मनुष्य का यह पार्थिव शरीर 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा' से निर्मित है। ये जीवन के लिए आवश्यक तत्व हैं, अतः उनका उचित आदर होता है और इनको भी देवी-देवता का रूप दे दिया गया है। इसके अन्तर्गत जल देवता, अग्नि देवता, धरतीमाता, चन्द्र-सूर्य, नक्षत्र, पर्वत (गोवर्धन)

शालिग्राम का पूजन होता है। मिट्टी के गणेश बनाकर पूजन करने के पीछे धरती पूजने की ही भावना है।

नदी पूजन——नदियाँ जीवन की गति का प्रतीक हैं कि इसी प्रकार ये भी अवाधगति से प्रवाहमान है। भारत में गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू, गोमती, गोदावरी, नर्मदा का बहुत महत्व है। इस प्रदेश में गंगा लगभग हर ज़िले में बहती है अतः गंगा यहाँ के निवासियों के बहुत निकट है तथा अधिक पूज्य है। अनेक मान्यताएं, प्रथाएं, कहावतें गंगा से संबंधित प्रचलित हैं 'गंगाजली उठाना' 'गंगा चढ़ाना' आदि। गंगाजली उठाना——अर्थात् गंगा की कसम खा लेना। गंगाजली उठाने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य सत्य ही कहेगा।

जिन व्यक्तियों के बालक नहीं जीते वह बालक को गंगा में चढ़ाने की प्रथा करते हैं जो इस प्रकार होती है। सर्वप्रथम बालक का बाप बालक को गंगा की धारा में फेंक दता है और जब बालक जल में से उछल कर ऊपर आ जाता है तो लोग विश्वास करते हैं कि गंगा ने उसको बक्श दिया और इस प्रकार उसको उठा लेते हैं तथा गाते बजाते हुए घर लौट आते हैं। उस बालक का नाम भी गंगा से संबंधित होता है——गंगू, गंगादीन, गंगादास आदि।

अनेक बार बोल-कबूल कर लेने पर 'गठजोड़' से पति-पत्नी को गंगास्नान कराया जाता है। बेटी का विवाह करने के बाद या कोई कठिन कार्य सम्पन्न होने के बाद गंगा नहाने की प्रथा है। गुप्तदान का भी गंगा में बहुत महत्व है। गंगा स्नान से सब पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसके जल की शुद्धता और पवित्रता तो सिद्ध है। इसी से मृतक के मुंह में तथा अनेक पवित्र कार्यों में तथा शुद्ध करने के लिए गंगा जल का प्रयोग करते हैं। हर हिन्दू घर में गंगाजल और तुलसी अवश्य मिलते है।

लोग अपनी मनोकामना पूर्ति के लिये भी गंगा में दीपदान करते हैं। गंगा से संबंधित गीत तथा कथाएँ भी मिलती हैं, जिनको प्रबंध में यथास्थान दिया गया है। गंगा स्नान करते समय प्रायः महिलाएँ यह दोहा कहती हैं——

'गंगा बड़ी गोदावरी, तीरथ बड़े प्रयाग
महिमा बड़ी समन्द की, पाप कटे हरिद्वार'

तथा,

धोऊं सीस मिले जगदीस
धोउं नैन मिले सुख चैन
धोये कान मिले भगवान

धोये कंठ, मिले बैकुंठ
धोई काया, मिली माया'

यहाँ के प्रदेश के निवासियों के जीवन पर गंगा का बहुत ही सर्वव्यापी प्रभाव है। गंगा जी को शिवजी ने अपनी जटाओं में धारण किया और विष्णु जी के चरणों से उत्पन्न हुई। गंगाजल पंचतत्वों में से एक है और शरीर व आत्मा की शुद्धि करता है। गंगा में दीप-दान करते समय कहते हैं—

'गंगे माई की आरती, जै गंगे माई
सुरग लोक से गंगा आई
गंगा का दान, मैया का कल्यान
जै श्री किशन भगवान'

तथा, गंगा को माता, मइया के रूप में कल्याणकारी मानते हैं।

'गंगे माता, मुक्ति का दाता
विवला सीचूं तेरा, कर निस्तार मेरा'

नदियों के अतिरिक्त कुएं, कुंड, चश्मे आदि की भी पूजा होती है। इनमें मुख्य हैं नवलदे का कुआ (परीक्षित गढ़ में) गांधारी कुआ, सूर्यकुंड (मेरठ) सती कुंड (हरिद्वार), भीमगोडा (हरिद्वार) देवीकुंड।

अग्नि-पूजा—अग्नि को पवित्र मानते हैं उसमें अशुद्ध वस्तु नहीं डालते तथा भोजन बनाने पर सर्वप्रथम अग्नि जिमाते हैं। ऋतुकाल में स्त्रियाँ अग्नि का स्पर्श भी नहीं करती हैं। ब्राह्मण जिमाते समय तथा श्राद्धों में सबसे पूर्व अग्नि जिमाई जाती है। तब भोजन प्रारंभ होता है।

पृथ्वी—धरतीमाता के रूप में ही जन-समाज में पूज्य है। प्रातःकाल उठकर धरती को स्पर्श करक कहते हैं—

'धरती माता तू बड़ी, तुझसा बड़ा न कोय
तुझमें पांव धरूं, खूंट का बासा होय
गऊओं का फल होय'

अथवा,

'निर्मल धरती सीतल काया
उठ अधरमी पापी आया'

किसान जब धरती में बीज बोता है तो भी धरती तथा हल, बैल, की पूजा करता है। पीली मिट्टी के टुकड़े से गणेश जी बनाकर पूजा की जाती है, वह

भी पृथ्वी की पूजा होती है। हवन आदि भी एक प्रकार से पूजा ही है। हवन से पूर्व वेदी की पूजा करना भी पृथ्वी की पूजा ही है।

सूर्य—स्त्रियाँ स्नान करने के बाद सूर्य को अर्घ्य देकर ही अन्न-जल ग्रहण करती हैं। स्वस्तिक सूर्य का ही चिह्न है। किसी भी शुभ कार्य में रोली या हल्दी का स्वस्तिक चिह्न बनाया जाता है और उसका पूजन होता है। कसरत के रूप में 'दंड' यह सब आदिकाल में सूर्य पूजा के समय किया जाता था—वह आज भी उसी रूप में प्रचलित है। सूर्यग्रहण आदि पर दान-पुण्य करना भी सूर्य के संकट को टालने का उपचार है। सूर्य की धूप में ही आधा सीसी के दर्द को कीला जाता है।

चन्द्र—नारी समाज में कई व्रत ऐसे हैं जो वह सुख-सौभाग्य के लिए करती हैं तथा वह चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा को अर्घ्य देकर पूजन कर के सम्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिए करवा चौथ, अहोइ अष्टमी, चन्दनछठ, सकट चौथ तथा शरदपूर्णिमा। चन्द्रमा को अर्घ्य देते समय वह इस प्रकार कहती हैं—

'लिकड़ चंद्रमा बैठ सिंहासन
गल मोतियन की माला
थारे दरसन करके, जब करूं जलपान'

कुछ लोगों के यहाँ सकटचौथ तथा अहोइ अष्टमी को, गणेश-चतुर्थी को तारा देखकर पूजन व भोजन करने की प्रथा है। विश्वास है कि पूर्णिमा के दिन चंद्रमा अमृत की वर्षा करता है।

पशु-पक्षी—लोकमानव जहाँ देवी-देवताओं, पंचतत्व तथा अन्य शक्तियों की पूजा करता है वहाँ वह पशु-पक्षियों को भी अपनी पूजा-उपासना के घेरे में ले आता है। लोकमानव के जीवन में जो जितना सहयोग देता है वह उतना ही उसका पूज्य है। अधिकतर वे ही पशु-पक्षी पूज्य माने जाते हैं जिनका संबंध किसी देवी देवता से है अथवा शास्त्र पुराण आदि में उनका उल्लेख हुआ है। पशु-पक्षियों की पूजा के पीछे भारतीय संस्कृति का भी बहुत बल है। भारतीय संस्कृति पशु-पक्षियों को भी मनुष्य के समान जीवात्मा ही मानती है इसीलिए उनका अकारण बध नहीं किया जाता। हिन्दू धर्म ने यदि देवी-देवताओं तथा अन्य शक्तियों को पूज्य स्थान दिया है तो सृष्टि के अन्य अंग भी उसकी विशाल सहृदयता से वंचित नहीं रहे। इसीलिए प्रकृति, मानव, पशु-पक्षी सब को ही उनके अनुरूप स्थान मिला है। लोक मानव की पूजा में पशु-पक्षी भी पूज्य बन कर आए हैं। वे भी अपने देवताओं के वाहन हैं उदाहरण के लिए—हाथी, कुत्ता, उल्लू,

नीलकंठ, चूहा, बैल, भैंसा आदि। कुछ पशु-पक्षियों के धार्मिक तथा पौराणिक महत्व हैं जैसे गाय, कछुआ, शूकर आदि। इनमें गाय सब से अधिक पूज्य मानी जाती है। लोग गाय का पूजन करते हैं। गाय के पूजन के कई कारण हैं। सर्वप्रथम तो शास्त्रों के अनुसार गाय के विभिन्न अंगों में विभिन्न देवताओं का वास होता है। लगभग सब ही देवता गाय के शरीर में व्याप्त हैं। इसका कारण यह है कि पृथ्वी गाय के सींग पर टिकी हुई है। इसका सहयोग भी लोकमानव के जीवन से बहुत अधिक है। प्रातः उठकर गाय के पैर छूना बिस्तर से उठकर आँख बन्द कर गाय के पास जाकर नेत्र खोलना अर्थात् प्रथम दर्शन 'गऊमाता' के करना लोक-समाज में बहुत प्रचलित है। गाय ही की हर वस्तु, मल-मूत्र तक उपयोगी होता है। स्वस्थ गाय का पेशाब प्रतिदिन पीन से काया निरोग्य रहती है। बच्चों को जिगर की बीमारी में पिलाया जाता है। विवाह अथवा यज्ञोपवीत्त संस्कार के समय गाय का पेशाब तथा गोबर को प्रसादस्वरूप लिया जाता है। जिस घर में गाय रहती है वह पवित्र माना जाता है।

जब गाय घर में प्रवेश करती है तो उसकी पूजा की जाती है जब ब्याती है तब एक लड़का और एक लड़की जिमाते हैं तथा गाय के बच्चे की पूजा करते हैं। गाय को मारना पाप समझा जाता है। गाय को प्रथम रोटी खिलाने से दुष्ट-ग्रहों की शान्ति होती है। हिन्दू परिवार में गौ-ग्रास सदैव ही निकालने की प्रथा है। लोक-विश्वास है कि यदि मृत्यु से पूर्व ब्राह्मण को गऊदान कर दी जाय तो वह मृत्यु के बाद वैतरणी पार कराती है। वैसे धर्तीमानी व्यक्ति तो हर वर्ष ही एक गाय दान करते हैं। जो लोग गाय दान करने में आर्थिक दृष्टि से असमर्थ होते हैं यह ११ रु० २१ रु० आदि की संख्या में धनराशि ही गाय के नाम पर संकल्प करके दे देते हैं।

हाथी—हाथी भी लोकसमाज में पूज्य माना जाता है। हाथी का सम्बन्ध गणेश जी से जोड़ा जाता है। साथ ही यह इन्द्र का वाहन भी है। इसी से हाथी को देख कर वह नतमस्तक हो जाता है। जब हाथी किसी गाँव में जाता है तो ग्राम की स्त्रियाँ उसके पावों पर जल चढ़ाती हैं तथा फूल-पत्र आदि से पूजा करती हैं। दशहरे के दिन हाथी की पूजा रामचन्द्र जी की सवारी में जाते समय भी की जाती है। विवाह में दूल्हे की सवारी में चढ़त पर जाते समय भी हाथी की पूजा की जाती है।

घोड़ा—घोड़े को भी पूज्य माना जाता है। शास्त्रीय विश्वास के अनुसार घोड़ा कल्कि अवतार का वाहन होगा। लड़के के विवाह में घोड़चढ़ी के समय घोड़े की पूजा की जाती है। मुसलमानों में मोहर्रम के दिनों में हसन के घोड़े अर्थात् दुलदुल

करवा-चौथ
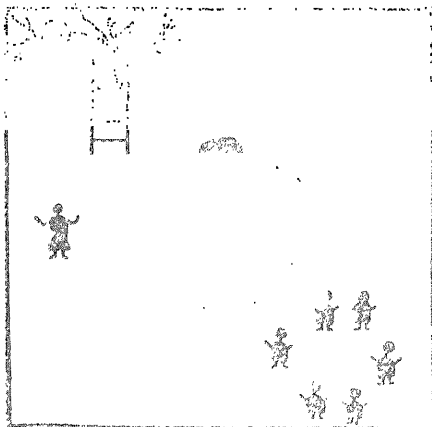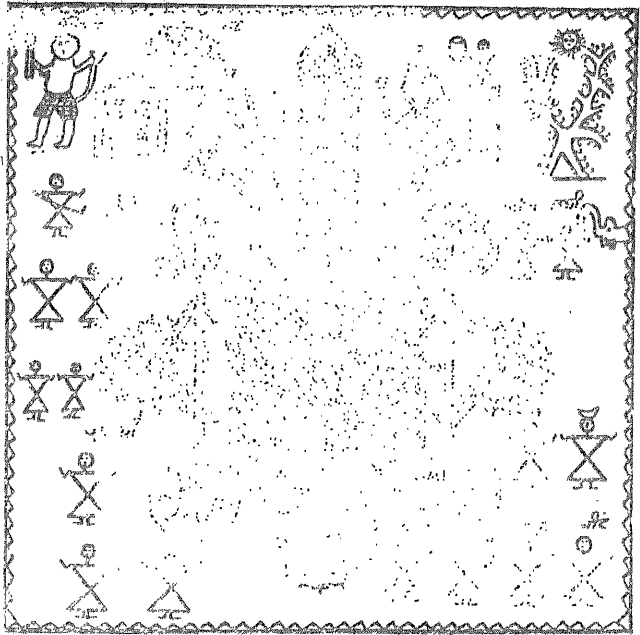
चित्र सं० ५

अहोई अष्टमी
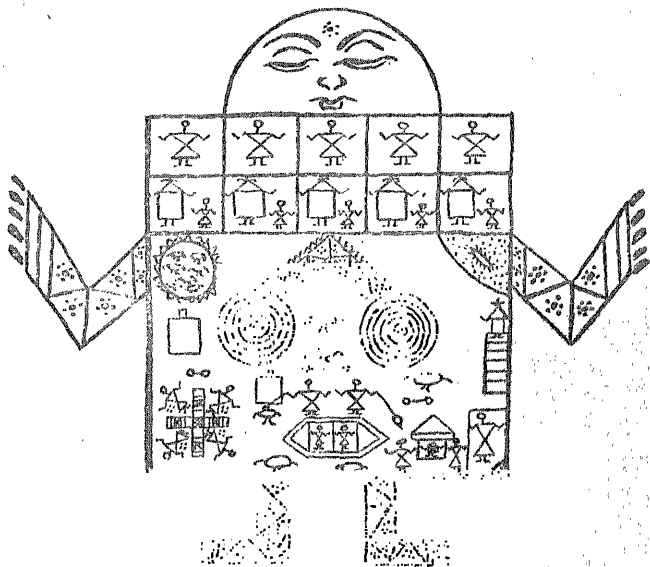
चित्र सं० ८
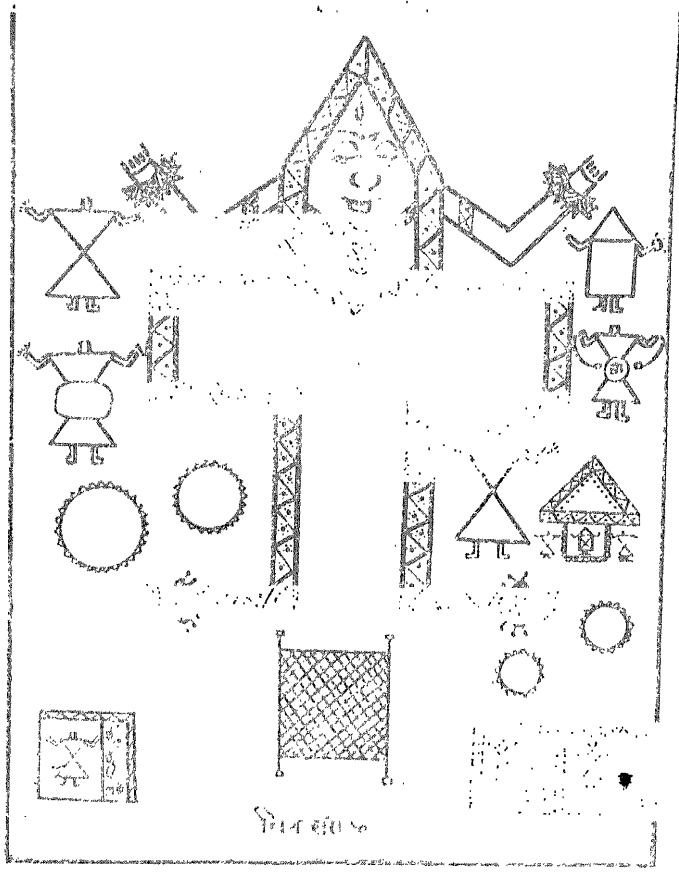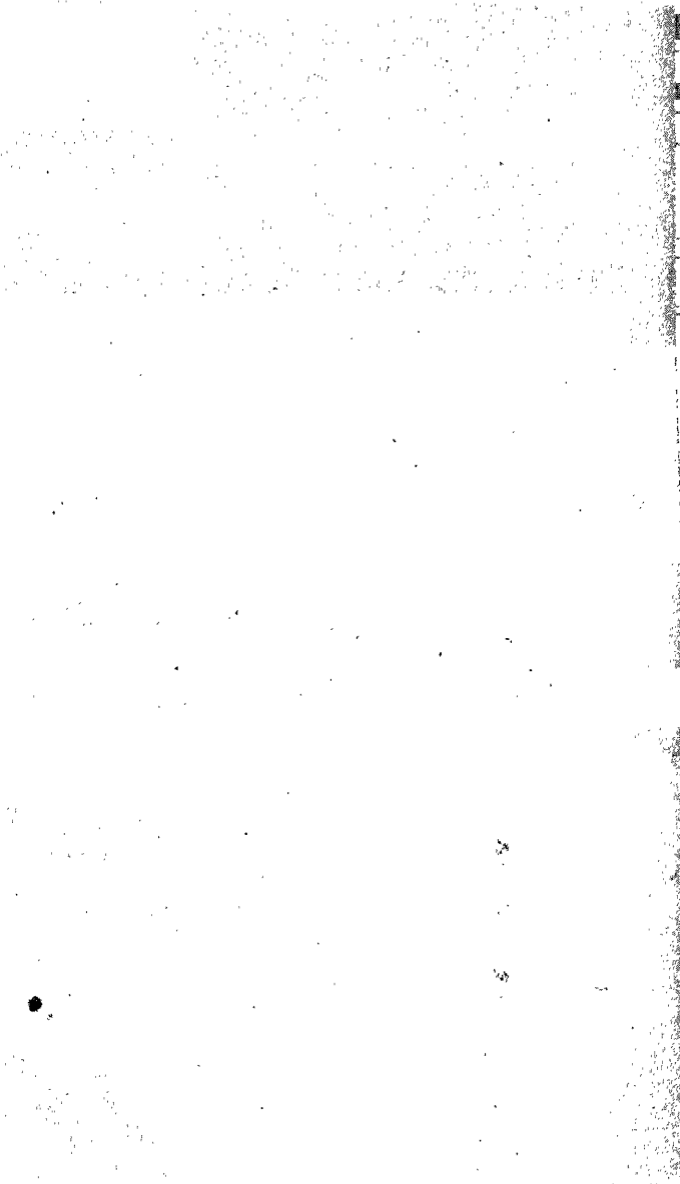
की लोबान आदि से स्त्रियाँ पूजा करती हैं तथा उस घोड़ के नीचे से बच्चों को निकालते हैं इससे बच्चों की आयु बढ़ती है । ऐसा लोक-विश्वास है ।

चामड़—मेरठ जनपद में इसकी पूजा होती है। कहा जाता है कि ये पशुओं की देवी हैं । विशेष रूप से इसको भैंसे की देवी माना जाता है । इसकी पूजा के पीछे पशुओं की सुरक्षा की भावना रहती है ।

काला कुत्ता—वैसे तो श्वान योनि सबसे कष्टदायक व बुरी मानी जाती है परन्तु उसकी भी पूजा होती है। कुत्ता भैरों का वाहन भी माना जाता है । जिस दिन माता की पूजा की जाती है उस दिन काले कुत्ते को जिमाया जाता है । साथ ही जब किसी बालक को माता निकल आती है तो कुत्ते को दही पेड़े से जिमाते हैं ।

नीलकंठ (गरुड़)—यह लोकमानव के लिये बहुत पूज्य है । यह विष्णु भगवान का वाहन माना जाता है। दशहरे के दिन लोग नीलकंठ के दर्शन करना पुण्य समझते हैं तथा नीलकंठ की खोज में मीलों तक निकल जाते हैं। नीलकंठ सर्प का शत्रु माना जाता है इसलिए उसको पाप तथा शत्रुनाशक भी माना गया है। कहा जाता है कि नीलकंठ भगवान का पटवारी है जो उन तक भगवान की सब सूचनाएँ पहुँचाया करता है। किसी व्यक्ति को शुभ कार्य के लिये जाते हुए यदि नीलकंठ के दर्शन हो जाएँ तो बहुत शुभ माना जाता है। यदि नीलकंठ दायें या बायें आ जाय तो भी शुभ माना जाता है ।

कौवा—पितृपक्ष में कौवा भी पूज्यनीय हो जाता है । इसको ग्रास देकर इसका मान किया जाता है। केवल पितृपक्ष में ही कौवे की पूजा होती है ।

हंस—पवित्रता तथा सत्य का प्रतीक माना जाता है। ये ब्रह्मा तथा सरस्वती का वाहन माना जाता है। ये पक्षी इस देश में उपलब्ध तो नहीं हैं परन्तु कहावतों में तथा अन्य कहानियों में श्रद्धा से हंस का नाम लेते हैं। हंस में दूध तथा पानी को अलग-अलग कर देने की क्षमता कही जाती है। वास्तव में सत्य दूध है और असत्य पानी है। हँस बुद्धि है इसलिए ब्रह्मा जैसे वृद्ध-ज्ञानी-देवता तथा विद्या की देवी सरस्वती का वाहन है। यह मानसरोवर में मोती चुगता है । मानसरोवर मनुष्य का मानस है मोती ज्ञान है। इसलिए लोकसमाज में यह पूज्य है ।

मोर—मोर स्वामी कार्तिकेय जी का तथा सरस्वती जी का वाहन है। यह साँप को मार डालता है। साँप अज्ञान के रूप में माना जाता है, मोर लोकमानव के सामने ज्ञान के रूप में आता है। मोर के पंख भी पवित्र मानते हैं। इसके पंखों की बाच्छी, बनाकर साईं अपने पास रखते हैं। जाहरपीर पर भी इसी से आशीर्वाद दिया

जाता है। मोरपंखों का सम्बन्ध कृष्ण भगवान से भी प्रत्यक्ष रूप से पाया जाता है।

इन पूज्य पशु-पक्षियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे पशु-पक्षी भी हैं। जिनकी पूजा तो नहीं की जाती पर उनका वध करने का निषेध है। इसके पीछे दो कारण हैं या तो इन पशु-पक्षियों का पौराणिक महत्व है अथवा वे बहुत उपयोगी हैं। पौराणिक महत्व वाले पशु-पक्षियों में शूकर, कछुआ, भैंसा, उल्लू, बन्दर, लंगूर, कबूतर, आदि है। कछुवे का सम्बन्ध भगवान के कच्छप अवतार से माना जाता है। भैंसा भी वाहन है। पहिले भैंसे को खेती के काम में नहीं लाया जाता था। शनिश्चर के दान में दिया जाता है। उल्लू लक्ष्मी का वाहन है। उल्लू का बध करने वाला पाप का भागी होता है। दिवाली के दिन कुछ जातियों में शराब पिलाकर इसकी पूजा की जाती है। कहा जाता है कि ये मनुष्य की बोली में बातें करने लगता है तथा छिपा हुआ धन बतला देता है। इसके शरीर के विभिन्न अंग भी बहुत उपयोगी होते हैं। उल्लू का नाम लेना, बोलना, तथा किसी भी घर पर बैठना बहुत अशुभ मानते हैं लेकिन फिर भी इसका वध नहीं करते हैं।

बन्दर तथा लंगूर का सम्बन्ध रामचन्द्र जी से माना जाता है। इन्होंने राम-रावण के युद्ध में सहायता की थी। मंगल के दिन बन्दरों को गुड़, चने खिलाते हैं विश्वास है कि इससे मनोकामना पूर्ण होती है।

कबूतर के पंखों की हवा बच्चों के लिये स्वास्थ्यप्रद होती है। यह वैसे भी पक्षियों में सबसे सीधा माना जाता है। बिल्ली को देखकर नेत्र बन्द कर लेता है समझता है कि मैनें आँखें बन्द कर ली हैं तो बिल्ली को दिखलाई नहीं देगा और वह चट कर जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक-समाज में पशु-पक्षी तथा अन्य जीव-जन्तुओं की पूजा की जाती है या मान्यता है। इस प्रदेश का लोक-मानव बहुत धर्मभीरु है तथा वह अहिंसा का पुजारी है। उसका हृदय सहृदय है इसलिये उसके जीवन में सब का ही महत्वपूर्ण स्थान है।

मिश्रित——इस वर्ग के अन्तर्गत कुछ ऐसे पूजा के अंग आते हैं जिनको लोक-मानव समय-समय पर पूजता है। यह न तो देवी-देवताओं के अन्तर्गत आते हैं और न पशु-पक्षियों में तथा वनस्पति में। यह जन-जीवन से सम्बन्धित तथा सहयोगी जड़ पदार्थ हैं उदाहरण के लिये——चाक पूजना, देहली पूजना, दीपक, कलम, तख्ती तथा पुस्तकें आदि पूजना।

चाक पूजना——कुम्हार का चाक लड़के तथा लड़की दोनों के विवाह में पूजा जाता है। चाक पूजने के पीछे धरती को पूजने की भावना रहती है। सृष्टिचक्र

पूजने का भाव भी इसके अन्तर्गत है। जिस प्रकार सृष्टि का क्रम अबाधगति से चलता रहता है, उसी प्रकार कुम्हार का चाक भी चलता रहता है।

चाक पर सतिया बना दिया जाता है एक करुवे के अन्दर मूषकारूढ़ गणेश की मूर्ति जमाकर रखी जाती है तथा लड़का अथवा लड़की की माँ रोली का छींटा देकर चाक पूजते हैं। अन्य स्त्रियाँ भी छींटे लगाती हैं। कुम्हारी की लटों में कलावा बाँधा जाता है। कुम्हारी के घर से चाक पूजने वाले पाँच या सात बर्तन अपने पल्ले में लेकर आते हैं, लाकर थापे के सामने रख देते हैं। साथ जाने वाली अन्य महिलाओं को भी रोली की बिन्दी लगाई जाती है तथा एक एक हंडिया दी जाती है। चाक पूजने के बाद लौटने के समय स्त्रियाँ बूढ़े बाबा का उलग गाती हैं।

ढोलक पूजना—वैश्य जाति में टेहले आरम्भ होने के दिन से ही गीत आरम्भ हो जाते हैं। जब-जब गीत आरम्भ होते हैं तो ढोलक की रोली-चावल से पूजा की जाती है तथा मीठा चढ़ाया जाता है। ढोलक पर चढ़ाया हुआ मीठा तथा पैसे नायन को दे दिये जाते हैं। ढोलक पूजने की भावना यही है कि यह गीत जो आरम्भ हो रहे हैं निर्विघ्न समाप्त हो जाये तथा सब प्रकार कल्याण हो। प्रायः नायन ही ढोलक बजाती है इसीलिये ढोलक पूजने का सामान व नेग उसी को देने की प्रथा है।

कुआँ पूजना—कुआँ विवाह के समय भी पूजा जाता है तथा पुत्र जन्म के १०-वें दिन भी तथा कुछ घरों में ४० दिन बाद। दसूठन के दिन बच्चे का नामकरण संस्कार के पश्चात् नवप्रसूता नहा धोकर कुआँ पूजने जाती। नवप्रसूता के सिर पर इंदुरी रख कर तथा उसके ऊपर लोटा रखा जाता है। उसमें आम की टहनी डाल दी जाती। स्त्रियाँ गीत गाती हुई उसको कुएँ पर ले जाती हैं। प्रसूता के आँचल में चावल बँधे रहते हैं। कुआँ पूज कर जब वह लौटती है तो कौले खींच कर अन्दर आती है। लौटते समय बच्चे के आँचल पर सतिया बना दिया जाता है। वह लौटकर अपने कपड़े आग के ऊपर झाड़ देती है तब अपने बच्चे के पास जाती है।

कुएँ का पूजना प्रसूता की मातृभावना से सम्बन्धित है। जिस प्रकार कुएँ में से सदैव जल निकलता रहता है, कभी जल विहीन नहीं होता उसी प्रकार माँ जलदेव से अपने नवजात शिशु के लिये प्रार्थना करती है कि उसके बच्चे की आयु भी इसी तरह कभी समाप्त न हो। जिस प्रकार कुएँ का जल सब को शीतलता प्रदान करता है उसी प्रकार उसका बालक भी सब को सुख पहुँचाता रहे। मंगल, कलश, नीम की टहनी, यह सब मंगल प्रतीक है इसीलिये शुभ-कार्यों के समय इनको साथ रखा जाता है।

कुएँ का विवाह भी किया जाता है। जब नया कुआँ बनता है तो पण्डित को

बुलाकर कुएँ की पूजा करते हैं, साथ ही एक पत्थर पर स्त्री का चित्र बनाकर कुएँ की मन पर लगा देते हैं, ऐसा करने से कुएँ का जल नहीं सूखता। कुएँ के विवाह के अवसर पर ब्राह्मण जिमाये जाते हैं तथा मिठाई आदि बँटती है।

चौराहा पूजना—माता निकलने पर चौराहे पर दीपक जलाया जाता है तथा उसकी पूजा की जाती है। टोना, टोटका करते समय भी चौराहे पर चौमुखा दीपक जला कर उर्द, दही आदि चढ़ाये जाते हैं।

कलम, खाता, पुस्तक तथा तराजू, हथियारों, दूध बिलोने की रई आदि की पूजा दशहरे के दिन होती है। उस दिन रामचन्द्र जी के 'पायते' की पूजा करते समय इन सब की पूजा भी करते हैं।

पट्टी पूजना—तख्ती कलम, पुस्तक की पूजा बच्चे की विद्या प्रारम्भ करते समय होती है। उस समय बच्चे को पीले कपड़े पहनाये जाते हैं। पण्डित पूजा कराते हैं तथा बच्चे का हाथ पकड़ कर तख्ती पर किसी देवता का नाम सबसे पूर्व लिखवाते हैं। फिर उससे दवात, कलम, तख्ती, पुस्तक की पूजा कराते हैं। पूजा कराने वाला पण्डित बच्चे को विद्वान होने का आशीर्वाद देता है तथा कामना करता है कि सरस्वती उस बालक पर सदा प्रसन्न रहे, फिर बून्दी के लड्डू बाँटते हैं। स्कूल में जाकर बच्चों को लड्डू बाँटे जाते हैं।

देहली पूजना—बेटी के विदा होते समय उससे घर की देहली पुजवाई जाती है। इसके पीछे यही आशय है कि जिस गृह में वह इतनी बड़ी हुई है उसकी देहली भी इसके लिये पूज्य है। देहली पूजते समय लड़की यह भी कामना करती है कि यह घर सदा धन-धान से पूर्ण रहे। देहली की पूजा पूरी-शक्कर से की जाती है तथा रोली या हल्दी का छींटा दिया जाता है।

दीपक पूजना—किसी भी अनुष्ठान के समय अथवा किसी देवता के पूजन करते हुए दीपक को चावल पर स्थित करते हैं। दीपक का पूजन किया जाता है। उस पर जल के छींटे दिए जाते हैं तथा रोली का छींटा दिया जाता है। आरती के पश्चात् लोग दोनों हाथों से आरती लेकर हाथ जोड़ते हैं तथा पैसे चढ़ाते हैं, ये पैसे ब्राह्मण को दे दिये जाते हैं। होई पर तेल का दीपक जला कर होई के सामने रखते हैं। छोटी दिवाली के पहिले दिन कच्चा दीपक जलाया जाता है। नरक चतुर्दशी (छोटी दिवाली) पर पितरों के नाम के दीपक मिनसे जाते हैं तथा हाथ जोड़े जाते हैं। बड़ी दिवाली को रात्रि भर घी का दीपक जलाया जाता है। यह लक्ष्मी का दीपक कहलाता है और इसे रात भर जलाते हैं। अगले दिन दरिद्र देवता के घर से भगाने की प्रथा है। इस दिन स्त्रियाँ प्रातः ही घर को बुहार कर कूड़ा पंखे पर रख

कर उस पर एक ही दीपक जलाते हैं तथा उस पर पैसा रख कर घर के द्वार के बाहर रख आती हैं। इस समय भी दीपक का महत्वपूर्ण योग होता है। दीपक दरिद्र को घर से भगाता है । हवन के बाद भी पत्ते पर चौमुखा दीपक रख कर जलाया जाता है। उस पर दही-बड़ा रखा जाता है तथा पैसा चढ़ाया करते हैं। सन्ध्या समय दीपक जलाते समय सब हाथ जोड़ते हैं । रात्रि के समय दिया बढ़ाते समय ये पंक्तियाँ कही जाती हैं—

'जा दिया घर आपने, तेरी मां देखे वाट
तेरी धनी (बहू) बिछावै खाट
अबेरा जाइयो, सबेरा आइयो
तू इस घर तैं कभी ना जाइयौ
लक्ष्मी लै कै अइयो'

दीपक बुझाना नहीं कहा जाता बल्कि दीपक बढ़ाया जाता है । बुझाने शब्द का प्रयोग मृत्यु-दीपक के लिये करते हैं। दीपक का लोक-जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। ये ज्योतिमय है। दीपक को ईश्वर का रूप मानते हैं ।

धान बोना—विदा के पूर्व कन्या पक्ष वाले वर-वधू की पूजा करते हैं। पहिले सब कन्या पक्ष वाले वर को तिलक लगाते हैं। कुछ विशेष सम्बन्धी कन्या को तिलक लगाते हैं। तथा दोनों वर-वधू के चरणों में सिर रखते हैं । उसके पश्चात् वधू के माता-पिता, भाई-भाभी फूफा-बुआ, मामा-मामी, बहन-बहनोई सभी गठबन्धन करके जोड़ से धान बोते हैं। वह पानी डालते चलते हैं तथा धान बोते चलते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि धान कन्या पक्ष के घर बोये गये हैं परन्तु इनका सुख दूसर के घर में उपजे। जिस प्रकार से धान पहिले एक स्थान पर बोये जाते हैं फिर उनकी पौध दूसरे स्थान पर लगायी जाती है तब ही धान के पौध फलते फूलते हैं। इस प्रकार से कन्या के साथ होता है। कन्या भी दूसरे के घर ही फलती फूलती है । धान बोते समय में यह दोहा कहा जाता है इसे पलंग-पूजना भी कहते हैं ।

'धान बोवै मेरी श्याम सुंदरी
धान बावै लाड्डो बावरी
उसके बाबुल के घर धान उपजे
सौरे के घर उपजे कांगनी'

मनुष्य पूजा—वर-वधू के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की भी भिन्न-भिन्न रूपों में भिन्न-भिन्न समय पर पूजा होती है। ब्राह्मण को भूदेव कहा जाता है। किसी भी

पूजा-पाठ के समय देवी-देवता के नवग्रह आदि के पूजन के तुरन्त पश्चात् भूदेव की पूजा होती है। तिलक लगाकर बाईं कलाई में कलावा बाँधा जाता है तथा हाथ जोड़ कर दक्षिणा दी जाती है। ब्राह्मण को श्राद्धों में अथवा अन्य अवसरों पर खिलाने के पश्चात् तिलक लगाया जाता है तथा दक्षिणा दी जाती है। चरण-स्पर्श भी किए जाते हैं। अतिथि भी पूज्य होता है। अब उसकी विधिवत् पूजा तो नहीं होती परन्तु हाथ जोड़ कर उसका सम्मान किया जाता है तथा भोजन कराने के पश्चात् कृतज्ञता प्रकट की जाती है।

विवाह के समय वर-वधू जब द्वार पर आते हैं तो उनकी आरती उतारी जाती है। वधू जब ससुराल पहुँचती है तब वर-वधू दोनों की आरती उतारी जाती है उस समय वधू को लक्ष्मी के समान माना जाता है।

क्वार में तथा चैत्र में देवी अष्टमी के दिन कुंवारी कन्याओं की पूजा होती है। कन्या को देवी का रूप माना जाता है। ग्राम में सर्वप्रथम प्रातः कन्या के दर्शन करते हैं।

झाड़ू व छाज पूजना—प्रायः झाड़ू बाँधते समय यह कहा जाता है—

'समन्दर की बेटी, बिसन्दर को व्याही'

इसके अर्थ हैं कि तू जल से उत्पन्न हुई है और तेरा संयोग पृथ्वी से हुआ है। उपरोक्त वाक्य को बोलते हुए झाड़ू के अग्नि से सात फेरे कराये जाते हैं इसके बाद ही उसको प्रयोग में लाया जाता है। विवाह में रोली या हल्दी से छाज भी पूजा जाता है। छाज पूजने के सम्बन्ध में यह भावना है कि छाज जिस प्रकार से कूड़े को अलग कर देता है उसी प्रकार हमारी बुद्धि की गन्दगी भी दूर कर दे। साथ ही यह अन्न पछोड़ने के लिए सदा घर में बना रहे। अतः घर धनधान्य से सदैव भरपूर रहे। झाड़ू दरिद्रता को घर से दूर करती है।

मूसल पूजना—लड़की के विवाह में मूसल की भी पूजा होती है। उसमें कलावा बाँधा जाता है।

लोकसमाज की पूजा व विस्तृत क्षेत्रकी विवेचना करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रारम्भ से ही लोकमानव इतना सरल तथा अन्धविश्वासी रहा है कि जिस वस्तु ने जिस प्रकार भी उसके जीवन को प्रभावित किया उसको उसी रूप में वह पूज्य मानने लगा। देवी, देवता, वनस्पति, पंचतत्वों के अतिरिक्त उसके दैनिक जीवन से सम्बन्धित अन्य साधारण वस्तुओं को भी वह प्रतीक के रूप में देखता है। धान बोने में उसकी कितनी गहरी कल्पना है तथा उसमें बेटी को कितने सांग-रूपक प्रतीक में बाँध कर खड़ा किया है। इसी प्रकार वह छाज की पूजा भी

कबीर के सूप के रूप में करता है। मूसल को पुरुष का प्रतीक माना जाता है। सूप, मूसल तथा झाड़ू इनका घर की समृद्धि से बहुत गहरा सम्बन्ध है। इस सब के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोक-मानव का जीवन कितना प्रतीकों में बंधा हुआ है। किसी भी वस्तु में वह कितनी शीघ्र किसी देवी-देवता तथा अन्य वस्तुओं को प्रतिबिम्ब देखने लगता है और उसको उसी रूप में सदैव पूजता आया है। यह शाश्वत परम्परा बन जाती है।

लोककला—लोककला मानव संस्कृति के प्रथम चरण, पाषाण युग, से लेकर आज तक एक ही लीक पर चली आ रही है। ये मानव प्रकृति रही है कि वह जिस समय जो कुछ अनुभव करता है उसको उसी प्रकार अभिव्यक्त कर देता है। प्राचीन काल में अपढ़ व्यक्ति भावनाओं को कविता, कहानियों के रूप में व्यक्त करने की क्षमता नहीं रखता था। उस समय वह जो अनुभव करता था उसी को पत्थरों पर खोद कर अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता था। उसी युग में लोककला ने जन्म लिया था। समय के साथ-साथ उसका रंगरूप अवश्य बदला परन्तु लोककला भावनाओं की वही भोली तथा सुगम अभिव्यक्ति है।

'लोककला उतनी ही प्राचीन है जितनी पुरानी है मानव सभ्यता। प्राचीन काल से ही मानव अपने हृदय की भावनाओं को रंग और रेखा का आकार देकर उसे साकार करने का प्रयत्न करता रहा है।

लोककला का सबसे बड़ा उद्देश्य है व्यक्ति के द्वारा जीवन में यथार्थ को स्वीकृति देना। इसमें जीवन के विभिन्न मूल्यों को प्रतीकों में छिपा लिया जाता है जिनका निरन्तर प्रयोग होता रहता है। वास्तव में लोककला समाज के दैनिन्दिक जीवन के कार्य-कलापों को सौन्दर्यमय बनाने का प्रयत्न है। लोककला के माध्यम की अपनी परम्परा होती है। ये माध्यम जीवन तथा वस्तु के अधिक निकट होते हैं।

लोककला की जड़ें लोकमानस में बहुत गहरी जमी हुई हैं। सम्पूर्ण सामाजिकता ही लोककला की आधार भूमि है। लोककला का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसके अन्तर्गत लोकमानव के सभी रचनात्मक कार्य आ जाते हैं। समस्त कला जो लोक द्वारा निर्मित होती है लोककला के अन्तर्गत आती है। इसकी विषय-वस्तु दैनिक जीवन से ही ली जाती है। इसके अन्तर्गत सभी सौन्दर्य प्रसाधनात्मक एवं व्यवहृत लोकाभिव्यक्ति के स्वरूप आते हैं।

लोककलाओं के अतिरिक्त कला का कोई रूप भावनाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं रखता। लोककला के माध्यम में मुख्य तत्व अनुकृति एवं अनुकरण का रहता है। यह अनुकरण कलात्मक प्रतीकों एवं अभिव्यंजनाओं का होता है।

समाज ने जिन तथ्यों को एक बार नैतिक मान्यता प्रदान कर दी है। लोक-कला विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में उन्हीं तथ्यों का अनुकरण करती है। कला के माध्यम से धर्म की अभिव्यक्ति भी सरलतम रूप में हो जाती है। यही कारण है कि साधारण कला की तुलना में लोककला अधिक स्थायी है।

मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि लोककला के माध्यम से उन दमित तथा अपूर्ण इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है जिनका संघर्ष समाज से निरन्तर चलता रहता है। वास्तव में जीवन-शक्ति ही हमारी क्रियाओं को प्रेरित करती हैं और कला में भी दो प्रकार की शक्ति होती है। वह एक प्रगतिशील और दूसरी प्रतिरोधक। कला की प्रगतिशील शक्ति ही वह है जो उत्साह-वर्द्धक है और जटिलता और संघर्ष से जूझने के लिये प्रेरित करती है।

प्रतिरोधक शक्तियाँ जटिलता और संघर्ष से हट कर सरलता और बचपने के संघर्षहीन और सुगम जीवन की ओर ले जाती है। लोककला की उत्पत्ति का कारण यही है इसीलिये इसको समाज का पूर्ण संरक्षण भी मिला है।

लोककला, जहाँ मनोरंजक है वहाँ उसमें नयी अभिव्यक्तियाँ भी हैं। लोक-मानव जीवन के आवेग इसमें मुखर हो उठते हैं। लोककला में सुगमता व सरलता होती है और सरलता से समानता मिलना सहज है। इसी कारण भिन्न-भिन्न देश की लोककलाओं में भी समान भाव-धारा ही प्रवाहित हुई है।

लोककला में अमूर्त, दुरूह रूप नहीं मिलता वरन् सरल और सहज रूप मिलता है जो शीघ्र ही समझ में आ जाता है। यह प्रत्यक्ष रूप में जीवन को समझती हैं न कि अप्रत्यक्ष रूप में। इसके द्वारा मनुष्य को रहन-सहन, रीति-रिवाज, रंग-रुचि आदि सभी का पूर्ण परिचय मिल जाता है। यह चेतन प्रयत्न नहीं वरन् स्वतः स्फूर्ति है। इनमें जीवन के गूढ़तम तथ्य उपलब्ध हैं। यह जनजीवन की स्वाभाविकता और आवश्यकता है।

ग्रामों में, जनजीवन में विशेषकर नारी संसार में आज भी लोककलाओं का शुद्ध रूप मिल जाता है। नारी के ऊपर लोककला का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। पुरुष के घर से निकलने के पश्चात् नारी ही घर में बैठकर उसकी सुरक्षा के लिये देवी-देवता मानती थीं। उसके भावुक हृदय में ही कल्पनाएँ उठती थीं। उसी को अधिक अभिव्यक्ति की आवश्यकता पड़ी। इसी से लोककला नारी-जीवन में व्याप्त हो गई। लोककला मानव-संस्कृति का मूल रूप है और नारी घरेलू जीवन की आत्मा। इसी से दोनों का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। नारी का तो सम्पूर्ण जीवन ही कलात्मक होता है। साधारण अर्थों में तो जीवन में सुचारु रूप से किया गया कोई भी कार्य कला के अन्तर्गत आ जाता है। स्त्री जीवन तथा कार्य की सुचारुता

(2)

पायता

चित्र सं०८९
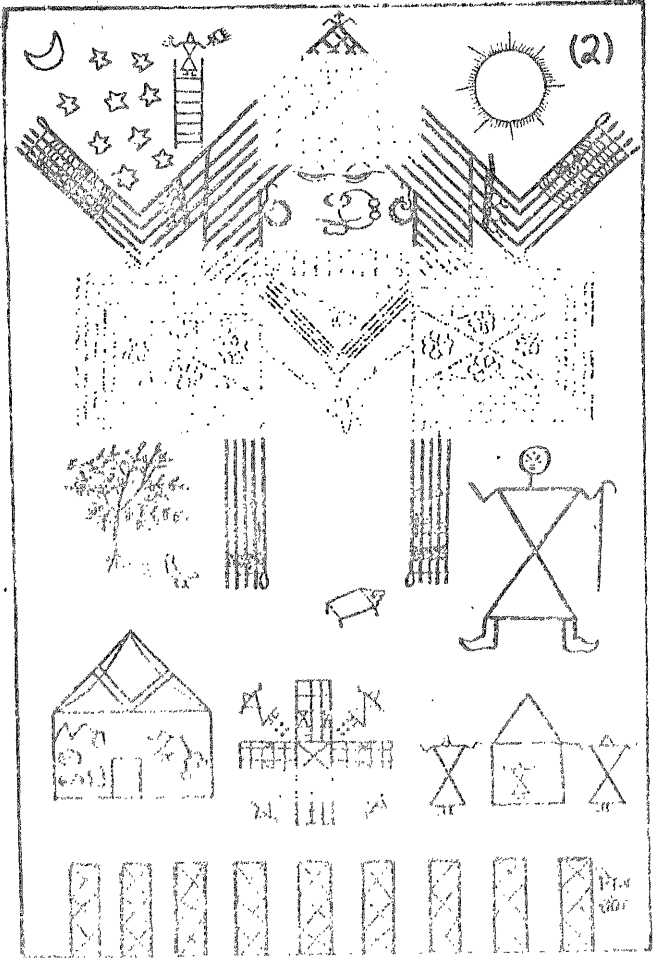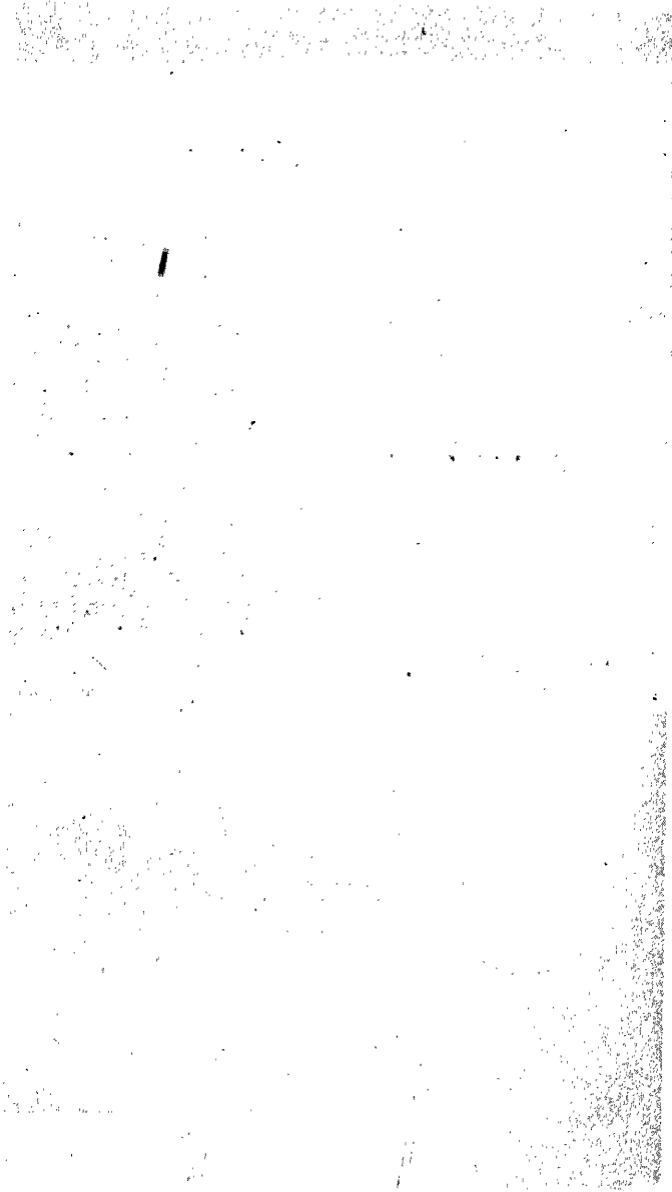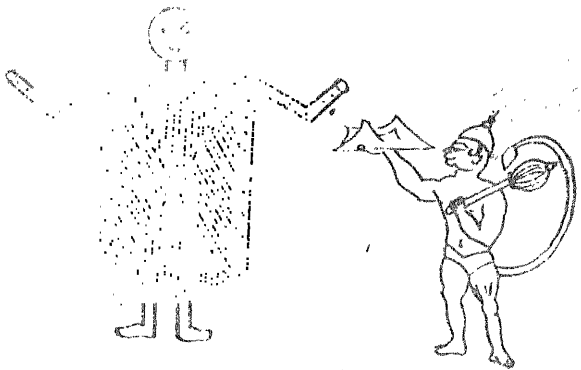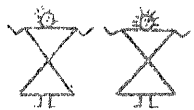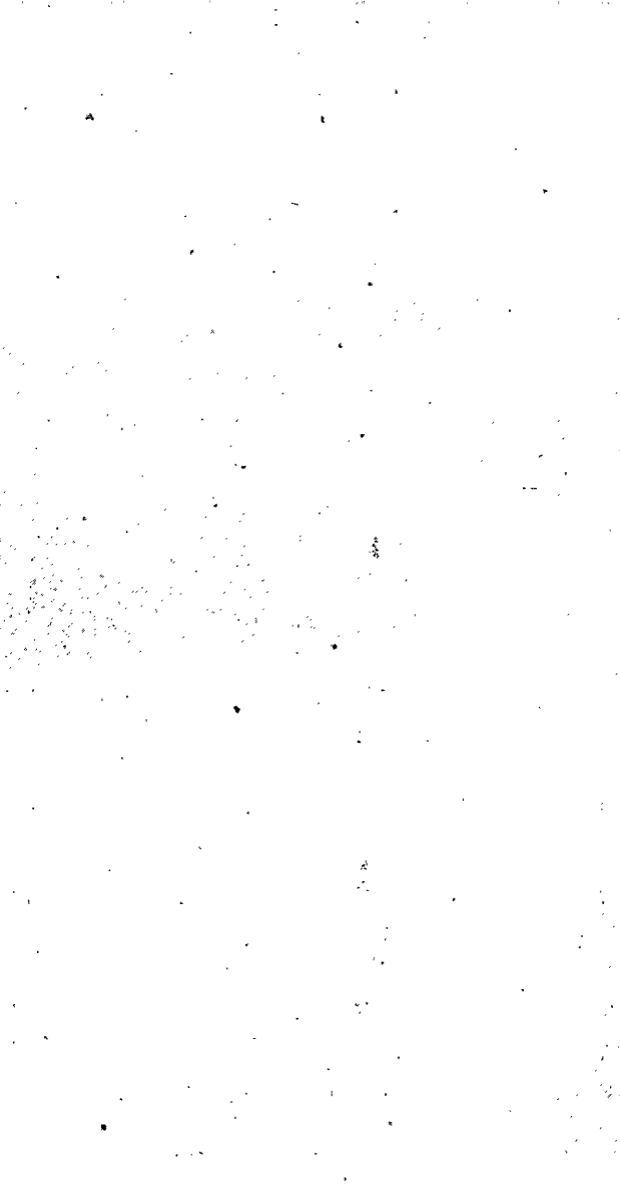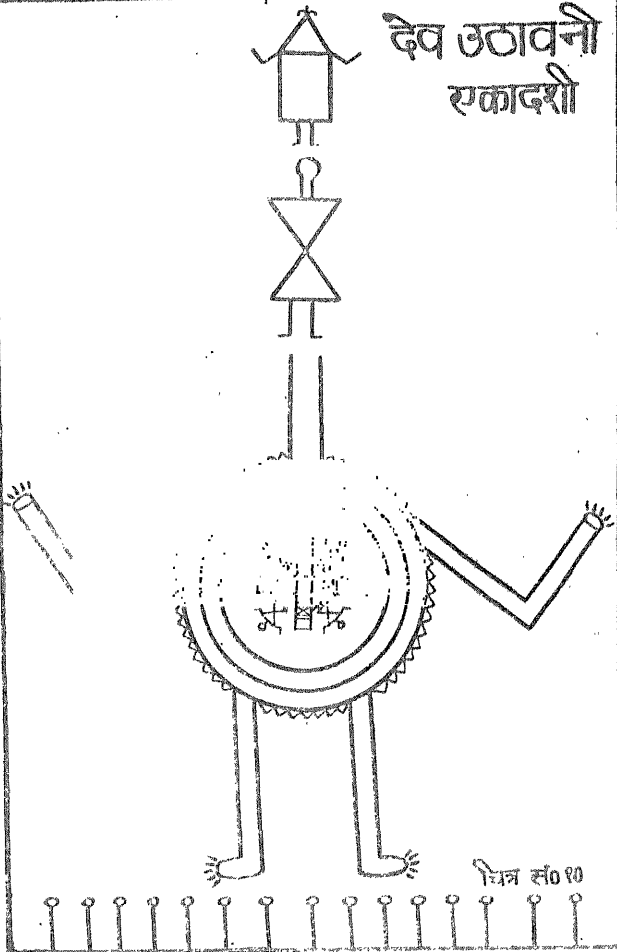
देव उठावनी
एकादशी
चित्र सं० १०
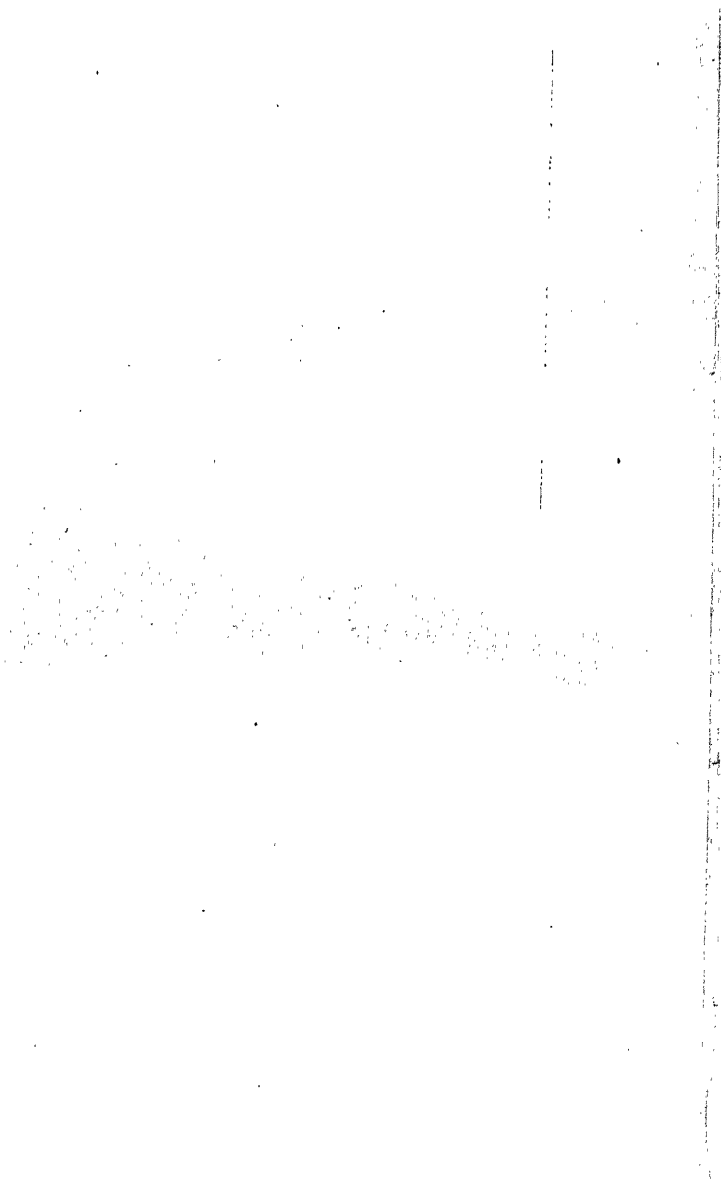
में सदा से ही पारंगत रही है। वैसे भी लोककला जीवन के प्रत्येक तथ्य का साधारणीकरण करने का माध्यम है।

नारी जीवन के सभी दैनिक कार्यों में सुचारुता रहती है, कलात्मकता दृष्टिगत होती है। खाना बनाना, पानी भरना, मिठाई बनाना, चक्की पीसना, त्यौहारों पर चित्र व मिट्टी की मूर्ति बनाना, खिलौने बनाना, सीना, चरखा-कातना, गीत गाना, नृत्य करना, रतजगे में तथा विवाह, होली आदि के अवसर पर स्वांग रचना, छन कहना तथा कहलवाना आदि नारी के जीवन को सुखी बनाने के प्रधान स्रोत रहे हैं। चौक पूरना, गोदना, मेंहदी लगाना आदि यही लोककलाएँ नारी-जीवन की कलात्मकता की अभिव्यक्ति है। इनसे जीवन परिष्कृत होता है तथा नैसर्गिक प्रवृत्तियों को उचित दिशा मिलती है। भारतीय लोककला के तीन भेद पाये जाते हैं—

१—**आनुष्ठानिक**—इसका प्रयोग विश्वासों और रहस्यात्मक विचारों पर आधारित संस्कारों को सम्पन्न करने में होता है।

२—**समाजोपयोगी**—सामाजिक रीतियों की पूर्ति के लिये आवश्यकता होती है और जिसके रूप का निर्धारण निर्माण प्रणालियों तथा भौतिक गुणों द्वारा होता है।

३—**व्यक्तिनिष्ठ**—इसी के द्वारा कलाकार की निजी अनुभूतियाँ तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है।

कला प्रकृति से स्पष्ट तथा भिन्न नहीं है। इन भित्तिचित्रों में जो अनुष्ठान के अवसर पर बनाये जाते हैं जीवन के किसी भी वाह्य रूप के साथ, किसी भी प्रकार की समानता रखने वाली, ज्यामितिय कला के प्रतिरूपण का दर्शन किया जा सकता है। इस प्रकार के चित्रों में न्यूनतम अनिवार्य आकृतियाँ मिलती हैं। दो अथवा तीन रेखाओं और एक वृत्त द्वारा किसी भी मनुष्य अथवा पशु की आकृति का प्रतिरूपण हो जाता है। तीसरा भेद अमूर्तवस्तु का प्रतिनिधित्व करता है। प्रतीकात्मक शैली का अमूर्त चित्र 'चौखटे' द्वारा अंकित किया जाता है तथा आलेपन कहलाता है। यह धार्मिक उत्सवों से सम्बन्धित होती है। ऐसी आकृतियाँ रूढ़िगत रेखाओं से निर्मित की जाती हैं जिनमें किसी भी प्रकार का कौशल अथवा सौन्दर्य प्रसाधनात्मक प्रयत्नों का अभाव होता है। प्रायः समस्त आकृतियों के विषय निश्चित होते हैं। कला में प्रतीकों का भी बहुत महत्व है। मानव प्रतीक सांकेतिक रेखाओं में ज्यामितिय शैली से बनाया जाता है। दो त्रिकोण एक दूसरे के सिरों को सीधे स्पर्श करते हुए बनाने से धड़ बन जाता है। उसके हाथ, पैर, मुँह आदि अक्षरों पर मात्राएँ लगाने की भाँति अंकित किये जाते हैं। इस प्रकार का सांकेतिक अंकन अभिव्यक्ति

की आदिम प्रवृत्तियों से सम्बन्धित है। लोककला में वस्तु के प्रत्येक अंग को मोटी और स्पष्ट रेखाओं में दिखाया जाता है। आँख, नाक, कान भी स्पष्ट हाथ, पाँव की उँगलियाँ भी स्पष्ट होती हैं। इनमें अनुपात का भी ध्यान नहीं रखा जाता। यद्यपि इनमें विशेष सौन्दर्य नहीं होता पर ये अवसर और प्रसंग के प्रतीक की तरह अपने महत्व को अवश्य सिद्ध करती है। इस कोटि के प्राकृतिक गति-विधि रहित साँस्कृतिक प्रतीक तथा संतति प्रदान करने वाली देवी आदि वर्ग के संक्षिप्त प्रतिनिधि हैं। इनमें कलात्मक उद्देश्य से भिन्न प्रतीकात्मक तथा धार्मिक उद्देश्य भी रहता है। इनकी रचना-विषय स्थानीय भेदों के रहते हुए भी प्राय: एक ही समान रहता है। विभिन्न कलाकृतियों में प्रधान विचार होते हैं। उनका ठीक-ठीक तात्पर्य जान लेना सुगम नहीं क्योंकि एक ही विचार की विभिन्न रूपों में व्याख्या हो सकती है और एक ही कल्पना को विविध रूपों में आवद्ध किया जा सकता है। आकृतियों का प्रतीकात्मक तत्व स्वयं इन बनाने वाली सरल स्त्रियों को भी स्पष्ट नहीं रहता। इनका यद्यपि कोई भी स्वतंत्र महत्व नहीं होता पर यही आलेपन जब स्त्रियों द्वारा व्रत आदि के निमित्त किसी उत्सव व त्यौहार के अवसर पर किया जाता है तो उसका धार्मिक महत्व हो जाता है।

भित्तिचित्र, जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है वे चित्र हैं जो केवल भित्ति पर अंकित किये जाते हैं जिनके द्वारा स्त्रियाँ कहानी सुन कर तथा अनुष्ठान आदि के बाद अपना व्रत सम्पन्न करती हैं। इस अवसर पर वे उस व्रत कथा में वर्णित देवी-देवता आदि से सम्बन्धित पौराणिक तत्वों को चित्र के रूप में अंकित कर उसका पूजन करती हैं और वह भित्ति चित्र एक वर्ष तक उसी स्थान पर बना रहता है, इस प्रकार के भित्ति चित्रों में प्रधान हैं। करवा चौथ, अहोई अष्टमी एवं दिवाली, साँझी देवी, विवाह का तथा पुत्रजन्म के अवसर पर थापा, रक्षाबन्धन के सौन भी बनते हैं। इनके चित्र हमने परिशिष्ट में दिये हैं।

अहोई अष्टमी में अहोई माता का चित्र अंकित किया जाता है। यह पुत्र तथा सुख समृद्धि को देने वाली मानी जाती है। इसी प्रकार करवा चौथ में पेड़, चाँद तथा भाई-बहन आदि चित्रित रहते हैं। साँझी देवी तथा दिवाली आदि का पूजन भी इन्हीं भित्तिचित्रों का पूजन करके होता है।

जिस स्थान पर यह चित्र बनाने होते हैं वहीं पर साफ करके गोबर से लीप लेते हैं। फिर भिगोए हुए चावलों को पीस तथा घोल कर उसके ऊपर दुबारा लीपा जाता है तथा गेरू के घोल से अनेक प्रकार की फूल-पत्तियाँ, बेल-बूटे बनाकर देवी-देवताओं के चित्र अंकित करते हैं। सूख जाने पर यह बहुत ही आकर्षक प्रतीत होते हैं। पहिले जब कच्ची मिट्टी के ही घर होते थे तब उन्हें सजाने का

यह ढंग कितना कलात्मक था, इसका अनुमान इन सब को प्रत्यक्ष देख कर सहज ही लगाया जा सकता है। कोई भी शुभ-कार्य लेपन के बिना पूर्ण नहीं हो पाता। कला को अक्षुण्ण बनाने का यह भाव ही आनन्ददायक है।

आकर्षक बेल-बूटे बनाकर दीवारों को भी सजाया जाता है। रंगों की विभिन्नता से चित्रों की आकर्षक शैली देखते ही बनती है। युग-युग से प्रचलित इस कला को देख कर मन मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

जब आधुनिक शिक्षा का इतना प्रभाव नहीं था और न इतने साधन ही सुलभ थे, तब चित्रकला का यह ढंग बहुत ही सुन्दर था। चित्रों द्वारा कहानियाँ समझा कर शिक्षा देने का प्रयत्न भी बुद्धिमत्ता पूर्ण था।

यह भित्तिचित्र बहुत टिकाऊ होते हैं। पर्व-त्यौहार, विवाह आदि के अवसर पर दीवारों पर या भूमि पर मंगल चिह्न अंकित करना बहुत पुरानी प्रथा है। भारतवर्ष के किसी भी भाग में चले जायें, हिन्दुओं के घरों में ऐसे चित्र अवश्य अंकित मिल जायेंगे। अब भी इन चित्रों में अपने भावों को प्रकट करने की शक्ति है लेकिन उनकी कला का ह्रास, लोगों की कला के प्रति रुचि और अरुचि के अनुसार कम और अधिक देखने में आता है।

"भिन्न-भिन्न जातियों और जनपदों के थापों की तुलना से इन थापों के ही संबंध को नहीं, बल्कि उन लोगों के संबंध में भी कुछ-कुछ जान सकते हैं, जिनके यहाँ यह प्रचलित हैं। थापों के चिह्न-संकेत हमें प्रागैतिहासिक काल में ले जाते हैं जिस तरह गोदने और दूसरे संकेत। कोई आश्चर्य नहीं यदि इनमें से कुछ हमारे पुराने पंचमार्क सिक्कों से होते सिन्धु-उपत्यका के संकेतों तक पहुँच जायें।[१]"

हाथ की उंगलियों का थापा या ठापा मार कर जो चित्र दीवार पर अंकित किये जाते हैं, उन्हें 'थापा' कहते हैं। विवाह के अवसर पर लड़की से मण्डप के बाँसों पर लगवाते हैं तथा विदा से पूर्व पिसी हुई मेंहदी या गेरू का थापा कमरे के दोनों ओर लगवाते हैं। वैज्ञानिक उन्नति से पूर्व जब फोटो का विकास नहीं हुआ था, तो पुत्री की स्मृति-स्वरूप उसके हाथ की छाप माँ दीवारों पर लगवा लेती थी और उसे देख कर संतोष कर लेती थी। इस प्रकार हम दखते हैं कि उनके भित्ति-चित्रों के पीछ मानव तथा स्त्री-समाज की कलात्मक भावना के साथ ही साथ उनकी सहज भावुकता भी छिपी रहती थी। दिवाली पर लक्ष्मी प्रवेश के अवसर पर, पुत्र जन्म के अवसर पर, लड़की को ससुराल भेजने के लिये मिट्टी के कलशों में

१. लोक संस्कृति अंक—सम्मेलन पत्रिका, 'थापे' राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३०३

मिष्ठान्न भर-भर कर भेजते हैं, उनमें भी थापा लगाते हैं। ये थापे तथा सतिये (स्वस्तिक) सरलतम शुभ संकेत की आवश्यकता की पूर्ति के लिये होते हैं।

प्रत्येक मांगलिक अवसरों पर 'अल्पना' बनाने की बहुत ही प्राचीन तथा पवित्र प्रथा है। इसको लोक-भाषा में 'चौक पूरना' कहते हैं। किसी भी मंगल अवसर पर स्त्रियाँ सूना आँगन या सूनी देहरी नहीं रखतीं। वे अपने भाई, पति और पुत्र के लिए परम्परागत मंगल-कामना करती पाई जाती हैं। हर घर में हल्दी, आटा व रोली तो उपलब्ध होते ही हैं, इन्हीं तीनों के मिश्रण से यह विविध आकार-प्रकारों के फूल तथा स्वस्तिक चिह्न आदि बनाकर मंगल-कामना करती हुई पाई जाती हैं। विवाह के अवसर पर जब बारात लड़की वाले के घर पर होती है उस समय गृह के प्रधान द्वार पर सामने थोड़ी-सी ज़मीन को गोबर से लीप कर देहली सजाते हैं। यह प्रायः नायन या घर की कोई भी स्त्री या लड़की कर देती है। इसको सूखे गेहूँ के आटे से, हल्दी, रोली या सूखी मेंहदी आदि से चुटकी के द्वारा पूरा जाता है। उन्हीं की सहायता से वह बहुत सुंदर बेलबूटे व डिज़ाइन बना लेती हैं। यह रचना प्रायः चौरस या वर्गाकार होती है। चौक-पूरना किसी भी अनुष्ठान, पूजा तथा मंगल-कार्य के समय जैसे—तिलक, विवाह, यज्ञोपवीत, भइयादूज, सत्यनारायण की कथा तथा यज्ञों आदि के अवसरों पर प्रचलित हैं। हवन के समय मिट्टी की वेदी पर विभिन्न रंगों से अल्पनाएँ बनायी जाती हैं जो नवग्रहों तथा अन्य देवी-देवताओं की प्रतीक होती हैं।

काठ की पटड़ी के ऊपर भी विभिन्न रंगों से अल्पना बनाते हैं। चावल तथा चोकर को विभिन्न रंगों से रंग कर भी बड़ी सुन्दर अल्पना बनायी जाती है। इस पर वर-वधू को बिठाते हैं तथा भाई को उसी पर खड़ा करके भइयादूज का टीका करते हैं।

भारत में सगुणोपासना के लिए मूर्तिपूजा का विशेष महत्व है। स्त्रियाँ व्रतों आदि के अवसर पर मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसका विधिवत् पूजन करती हैं और फिर उसे जल में सिला देती हैं। यह सर्व-सुलभ है। प्रायः इन अवसरों पर होली, दशहरा, सांझी, गनगौर, कार्तिक स्नान, देवउठावनी एकादशी, करवाचौथ, अहोई अष्टमी, संकट चौथ तथा गुहगुग्गा की मिट्टी की मूर्ति बनाने का विशेष प्रचलन है। इनको रोली और हल्दी से सजाते हैं तथा फूलों के गहने पहनाते हैं और नया रंगीन रेशमी कपड़ा उढ़ाते हैं। इनका अपना सौंदर्य अनूठा होता है। देहाती कुम्भकारों के द्वारा यह कला आज भी सुरक्षित है।

मिट्टी के अतिरिक्त कपड़ों के खिलौने भी बनाये जाते हैं जो पुराने व नये कपड़ों के टुकड़ों को बड़ा सुन्दर आकार देकर बनवाते हैं। इनमें पशु-पक्षी के

अतिरिक्त गुड़िया का अपना विशिष्ट स्थान है। गुड़िया का कलाओं में तथा जीवन में बहुत ही उपयोगी स्थान है। इनके द्वारा वह नारी-जीवन संबंधी, खान-पान संबंधी, सिलाई, कढ़ाई-बुनाई, विवाह, पुत्र-जन्म आदि की सभी प्रथाओं की कला संबंधी और सामाजिक, सांस्कृतिक जानकारी पा जाती हैं। गुड़िया अनेक प्रकार से और बहुत ही सुन्दर तथा आकर्षक बनती हैं।

कसीदा काढ़ना, नारी जगत् की बहुत प्रसिद्ध कला है। इसमें वह पशु-पक्षी, देवी-देवता, फूल-पत्ती तथा पेड़-पौधों को बहुत ही सुन्दर रंगों से काढ़ती हैं। इनके नमूनों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि मनुष्य का प्रकृति से बहुत ही अभिन्न साहचर्य है। वनस्पति, पशु-पक्षी तथा मनुष्य—सभी का इसमें उल्लेख मिलता है। चादर, मेजपोश, साड़ी, पेटीकोट, तकिये के गिलाफ़ आदि चीजों पर वे इन्हें काढ़ती हैं। इसमें इनका रंगों का चयन बड़ा मनोहारी होता है। भारतीय संस्कृति में, विशेषकर नारी के जीवन में, रंगों का विशेष महत्व है।

नारियों की हथेलियाँ भी चित्रों को स्थान देती हैं, ये चित्र मेंहदी द्वारा बनाये जाते हैं। नारी के सौंदर्य प्रसाधनों में मेंहदी अथवा महावर का सौभाग्य एवं मांगल्य की दृष्टि से विशेष महत्व है। मेंहदी के हरे ताज़े पत्तों को बहुत बारीक पीस कर 'सींक' के द्वारा स्त्रियाँ अपनी हथेलियों पर विभिन्न रूपों में लगाती हैं और ये फूल-पत्ती, पशु-पक्षी, गोलाकार, त्रिकोण, पंचकोण तथा विविध ज्यामितीय रेखाओं को बिंदियों की सहायता से आकर्षक शैली में बनाती हैं। हथेली पर स्थान की कमी के कारण वे बहुत बारीकी से और साथ ही स्पष्टता से बनाती हैं। सावन के महीने में हरियाली तीज पर तथा अन्य सभी आवश्यक त्यौहारों पर व विवाह के अवसर पर मेंहदी लगाती हैं। मेंहदी को अधिक तेज़ रंग की करने के लिये यह उसमें खटाई और सरसों का तेल भी मिला लेती हैं।

आरती का थाल सजाने की कला भी नारियों में बहुत पायी जाती है। आरती उतारना अथवा आरती करना, मंगल अवसरों पर तथा किसी भी शुभ-कार्य की सिद्धि के बाद विजयसूचक एवं मंगलमय है। कन्या के विवाह में जयमाला से पहिले कन्या की बड़ी बहिन या भाभी लड़के की 'आरती'[1] करती हैं। 'भैयादूज' पर भी बहिन, भाई की आरती करती है। इन अवसरों पर आरती का थाल बहुत सुन्दर सजाया जाता है। गीले आटे से चौमुखा दीपक बनाकर चारों ओर रखते हैं तथा बीच में सब से बड़ा दीपक बनाकर रखते हैं। इसको आटे से ही संबंधित रखते हैं। उस पर फूल की पत्ती, पन्नी आदि तथा आकर्षक रंगों को भी

---

१. बड़ी आरती।

लगाकर सुन्दर बनाते हैं। खाना बनाना, मिठाई बनाना यह भी अपने में पूर्ण कला है, जिसका स्वरूप हमें विवाह के पकवानों में तथा त्यौहार की मिठाइयों में मिलता है।

गोदना की प्रथा भी बहुत प्राचीन है। अंगों को विभिन्न डिज़ाइनों के द्वारा सुन्दर बनाना ही इसकी अन्तर्निहित भावना है। प्राचीन समय में बिना गुदा अंग, स्त्रियों के लिये लज्जा का विषय था। इसके अतिरिक्त गोदना गुदवाना एक धार्मिक अंग माना जाता था। नारी-समाज में, विशेषकर निम्न जातियों में लोक-विश्वास था कि ऐसा न करने से अगले जन्म में हिन्दू-परिवार में जन्म नहीं होता, नीच योनियों में जन्म लेना पड़ता है। विवाह के बाद हर स्त्री बहुत श्रद्धा से गोदना गुदवाती थी। गोदने के चिह्न को वस्तुओं के प्रतीक रूप में लाया जाता रहा है। अंगों पर प्रायः वही वस्तुएँ अंकित की जाती थीं जिनका जीवन से सीधा संपर्क है। यह गोल, आयताकार, त्रिभुजाकार होते हैं तथा विभिन्न पशु-पक्षी, जीव, फूल-पौधे आदि सुन्दर-सुन्दर आकार के बनाये जाते हैं। स्त्रियाँ अपने पति का नाम व भगवान् का नाम भी गुदवाती हैं और मुँह, ठोढ़ी, हाथ, पैर तथा पेट पर गुदवाती हैं।

लोक-कला के द्वारा लोक-समाज में, विशेष कर नारी-समाज में उनकी स्वाभाविक सौंदर्य-वृद्धि की प्रवृत्ति को भिन्न-भिन्न रूपों में प्रोत्साहन मिला है।

स्त्रियों की कल्पना बहुत सजीव होती है तथा उनमें दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तुओं को मोड़ने के साथ संकेत रूप में उत्कीर्ण करने की अपार क्षमता होती है। वे अपनी कल्पना को मूर्त्तरूप प्रदान करने में प्रवीण होती हैं। इनसे जीवन में प्रफुल्लता और दीर्घता आती है, मानवता का जागरण होता है और कलात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है एवं उनका परिष्कार भी होता है।

यद्यपि आधुनिक काल में लोक-कला ड्राइंगरूम सजाने का साधन बन गयी है, परन्तु इसका इतिहास परम्परागत मानव के साथ ही नहीं समाप्त हो सकता अपितु वह आनेवाले आधुनिक मानव को भी परम्पराओं की मुखर कला के प्रति जाग्रत रखेगा।

खड़ीबोली-प्रदेश के लोकनृत्य—मनुष्य अपने गहनतम मनोभावों को शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा व्यक्त करता है जिसके अंतर्गत सभी रसों का समावेश हो जाता है। इन्हीं शारीरिक चेष्टाओं को सौंदर्यपूर्ण तथा मनोहारी ढंग से, परिष्कृत रूप में व्यक्त करने को नृत्य कहते हैं। यह भावाभिव्यक्ति सामाजिक जीवन का बहुत महत्वपूर्ण अंग है तथा स्वाभाविक कला है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव में भावप्रदर्शन की आकांक्षा स्वाभाविक तथा जन्मजात होती है। लोक-नृत्य बहुत सरल होते हैं और इनमें किसी भी शास्त्रीय बंधन को नहीं माना जाता है। अतः इनमें मानव की साधारण से साधारण रागात्मक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जो हर देश, काल, समाज व जाति में समान रूप से उपस्थित रहती हैं। इनके लिये बौद्धिक यत्न की कोई आवश्यकता नहीं होती, कोई भी सहृदय संवेदनशील मानव इसका आनंद उठा सकता है। नृत्य का संबंध मनुष्य जीवन से प्रत्यक्ष रूप में है। यह जीवन के सहज उल्लास व उमंग को व्यक्त करता है, इसमें कृत्रिमता का अभाव होता है।

"आदिकाल से ही मनुष्य ने अपने गीतों को श्रम और नृत्य के साथ जोड़ा है। कुरु प्रदेश में गीतों के साथ होने वाले अनेक नृत्य हैं। पुरुषों की होली, नृत्य योद्धाओं के रण-कौशल की पुनरावृत्ति मात्र है। बड़े लाघव के साथ उधर से इधर बढ़ना, उछलना, कूदना, बैठ जाना, घूम जाना, पुरातनकाल की सामुहिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा वीरपुरुष अपना बचाव और प्रतिद्वन्दियों पर धावा किया करते थे। इस नृत्य में बड़ा ज़ोर लगाना पड़ता है। शास्त्रीय अंगों की भाँति अंग-संचालन की विविध मुद्राएँ तो नहीं हैं परन्तु कभी-कभी प्रबल आवेगों को अनगढ़ रीति से ही सही, प्रकट अवश्य किया जाता है।"

यद्यपि खड़ीबोली प्रदेश के लोक-नृत्यों का कोई विशिष्ट रूप नहीं है, फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिये हम लोक-नृत्यों का इस प्रकार वर्गीकरण कर सकते हैं—
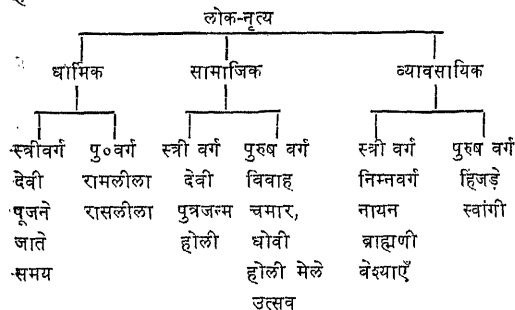
धार्मिक लोक-नृत्य—भारत धर्मप्रधान देश है। यहाँ पर प्रत्येक कला को धार्मिक दृष्टि से देखा जाता है। नर-नारी धर्मभीरु होते हैं, अतः देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वह उनके सम्मुख विभिन्न रूप से शारीरिक भाव-भंगिमाओं के माध्यम

से स्तुति करते हैं। हमारे लोक-नृत्य अधिकांशतः धार्मिक ही हैं। जो सामाजिक हैं, उनकी भावभूमि भी धार्मिक ही हैं।

धार्मिक-नृत्यों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं––स्त्रियों तथा पुरुषों के। देवी शीतलामाता पर नारियों की विशेष आस्था होती है और बालकों की तथा सुख-सौभाग्य की शुभकामना के लिये वह इनकी स्तुति करती हैं तथा मनौती मानती हैं। देवी की पूजा का बहुत महत्व और प्रचार है। इसके लिये स्त्रियाँ सामूहिक रूप से गीत गाती हुईं जाती हैं तथा वहाँ पर मन्दिर में जाकर देवी की भेंट गाते समय नृत्य भी करती हैं। जात पूजने जाते समय भी इसी प्रकार गीत गाती हैं व नृत्य करती हैं। इन नृत्यों की भाव-भंगिमाओं का अर्थ, प्रार्थना पूजा ही होती है।

इसी प्रकार पुरुषों की टोलियाँ भी देवी की भेंट गाती हैं तथा नृत्य करती हैं। यह अधिकांश निम्नवर्गों के ही होते हैं। देवी के भक्त बहुत तन्मय होकर यह नृत्य करते हैं तथा अनेक बार ऐसे अवसरों पर उन्मत्त भी हो जाते हैं। तब कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति पर देवी आई है। देवी तथा जात में नृत्य करने के अतिरिक्त पुरुष तो रामलीला तथा रासलीला में भी नृत्य करते हैं। ये दोनों राम और कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित होती हैं तथा भक्तिभाव से ओत-प्रोत रहते हैं। इनमें शान्त-रस होता है जिससे दर्शकों में सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं। स्त्री तथा पुरुषों को कीर्तन में नृत्य करता हुआ पाया जाता है। ये नृत्य, व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही रूपों में होते हैं। ये धुन के साथ भावपूर्ण नृत्य करते हैं।

सामाजिक लोक-नृत्य––सामाजिक नृत्य, हर्ष-उल्लास तथा उमंग के अवसरों पर व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से नृत्य करना स्वाभाविक है। इसी के द्वारा सामाजिक भावों का आदान-प्रदान होता है। समाज में उमंग के अवसर पर होने वाले नृत्य मुख्य रूप से दो-तीन ही हैं जिनमें विवाह प्रमुख है। विवाह में निकट सम्बन्धी महिलाएँ तथा अन्य परिचित आगन्तुक नाच उठते हैं। इसका असली रूप बारात जाने के अगले दिन होने वाले समारोह में दृष्टिगत होता है जिसे इस प्रदेश में 'खोड़िया' कहते हैं। यह नाचने-गाने का सामूहिक अवसर होता है। इस अवसर पर स्त्रियाँ वेश बदल कर स्वाँग भी करती हैं। इसी प्रकार पुत्र-जन्म के बाद दशूठन पर नामकरण के बाद गाना-नाचना होता है। पुत्र-जन्म हिन्दू परिवारों में चरमहर्ष का अवसर होता है।

होली के अवसर पर ऋतु के प्रभाव से स्त्री-पुरुष सभी में अजीब प्रकार का उत्साह व उन्माद आ जाता है। यह स्फूर्ति मादकता ला देती है जिससे अंग-अंग थिरक उठता है, नाच उठता है। इस अवसर के नृत्य व गीत, श्रृंगार रस

विवाह का थापा
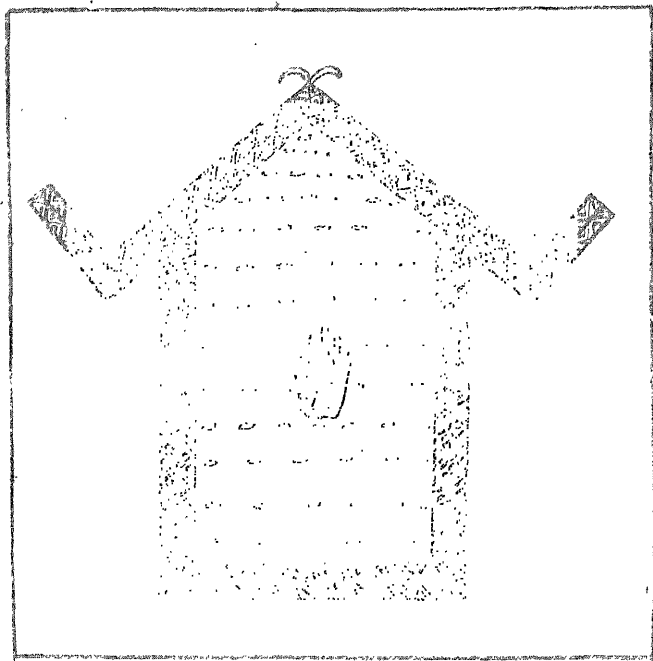
चित्र सं० ११

सीतिया

(पुत्र जन्म के अवसर पर)

चित्र सं० 12

सोन

(श्री अंबन परवनोटि)
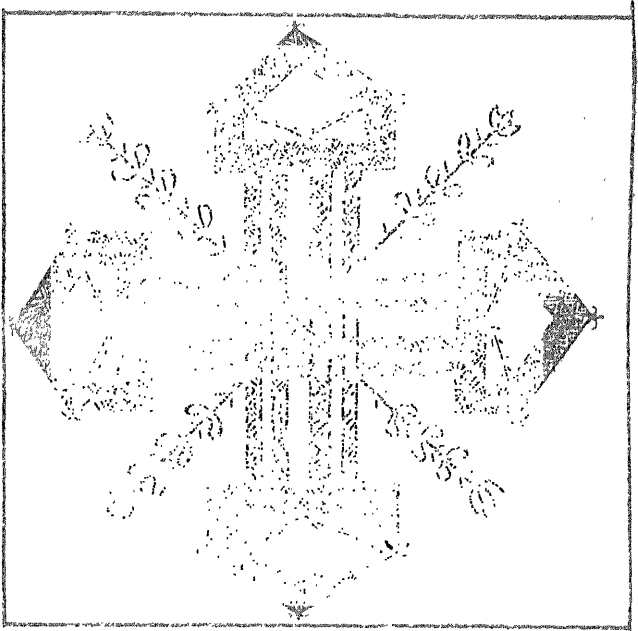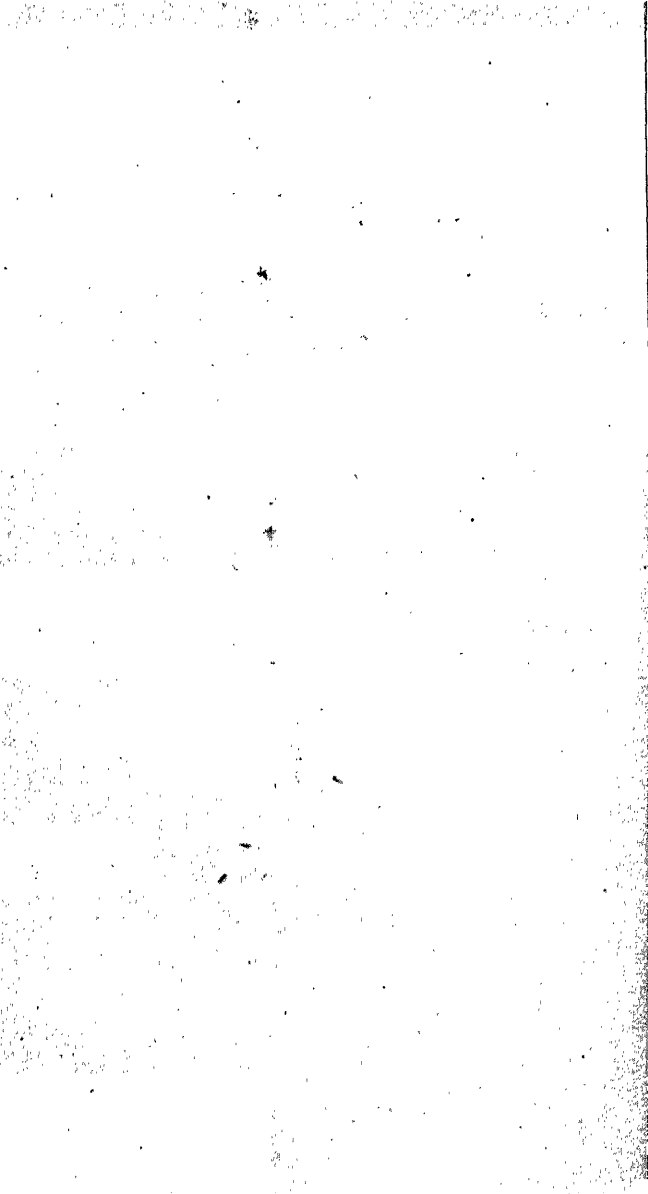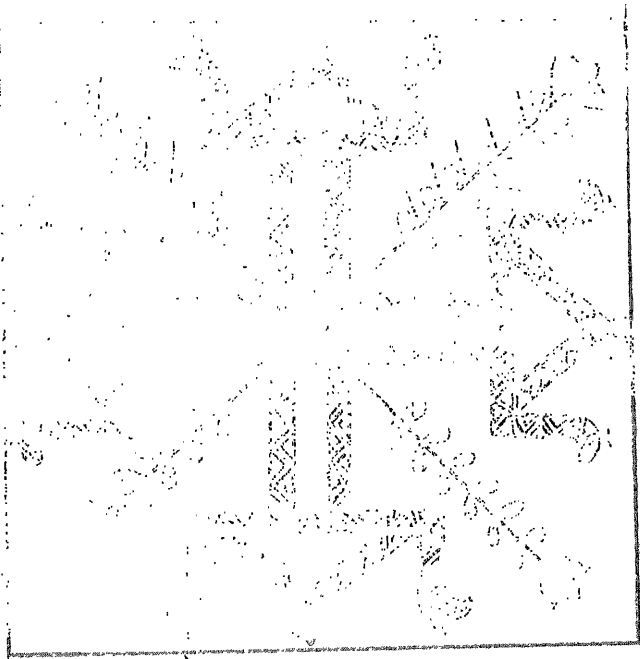
चित्र सं०१२
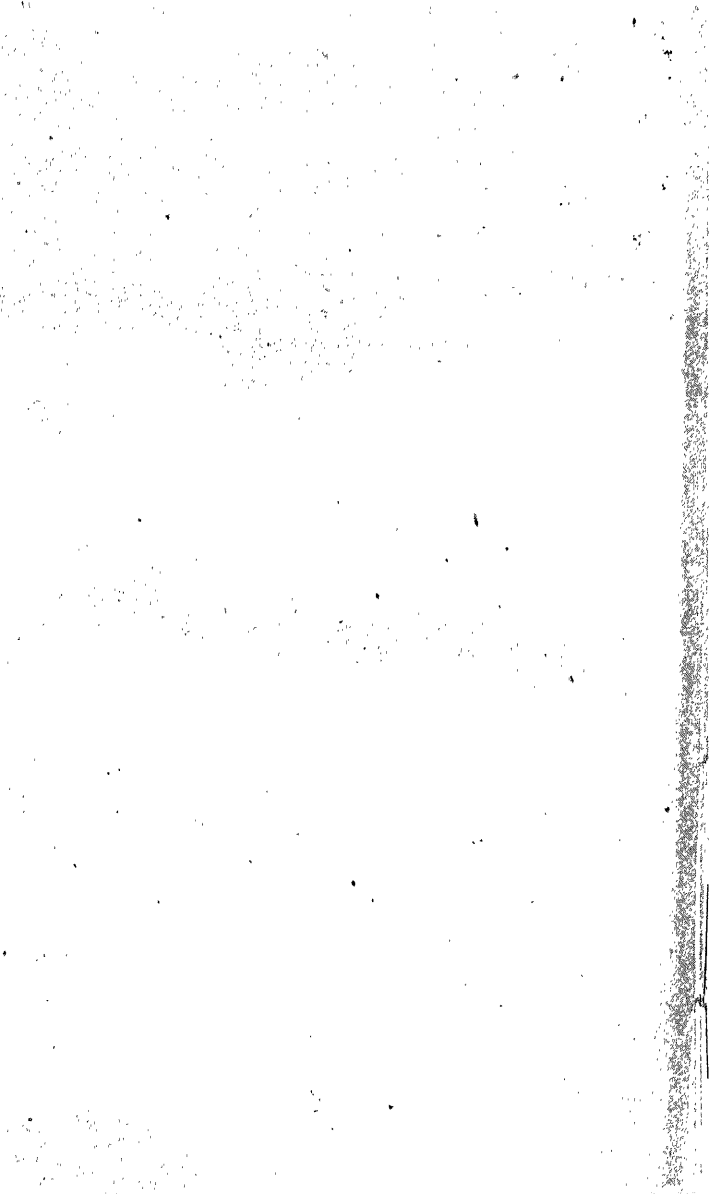
पूर्ण होते हैं तथा उनमें हास्य, व्यंग्य का भी बहुत योग रहता है। इस समय यह मंडल बनाकर नाचती हैं जिसे 'झाबूके' कहते हैं।

इस प्रदेश की स्त्रियों का नृत्य बहुत स्वाभाविक और प्राकृतिक है। यह अधिकतर धीरे-धीरे नृत्य करती हैं, अधिक गतिवती नहीं होतीं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये अपने अंग-प्रत्यंग को मटका रही हैं। कभी-कभी अवश्य वे ढोलकी की टेक पर जोर-जोर से नृत्य करती हैं। इनमें स्त्रियोचित कोमल भावाभिव्यंजना रहती है।

गूजर और जाट जाति की स्त्रियाँ बहुत लम्बी और सुडौल शरीर की बलिष्ठ महिलाएँ होती हैं। इनमें कोमलता के स्थान पर पौरुषता अधिक होती है। इसका कारण उनकी जाति ही है। इनके नृत्य में कूद-फाँद, आंगिक क्रियाओं की तीव्रता और गति ही अधिक रहती है। गति बहुत बुलन्द आवाज में टेर-टेर कर गाती हैं। उनको इसके लिये ढोलक की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। इनके पहरावे में जो बहुत अधिक घेर के, ऊँचे-ऊँचे लहंगे होते हैं, नृत्य करते समय बहुत अच्छे प्रतीत होते हैं। इनका नृत्य व गान अपना विशिष्ट ही होता है जिसका साथ देना भी साधारण स्त्रियों के वश की बात नहीं होती। यह सामूहिक कम, अधिकतर व्यक्तिगत ही होता है।

पुरुष-वर्ग के सामाजिक नृत्यों के अन्तर्गत होली के नृत्य मुख्य हैं। ये नृत्य मुख्यतः निम्नजाति के लोग चमार-धोबी ही करते हैं। ये होली पर घोड़े का नृत्य करते हैं जो इस प्रदेश का मुख्य नृत्य माना जा सकता है। इनमें पुरुषोचित भावनाओं का चित्रण रहता है तथा ये द्रुत-लय वाले होते हैं। ये उत्सवों तथा मेलों के अवसर पर भी नृत्य करते हैं। इनके नृत्य अधिकतर सामूहिक होते हैं। इनमें ताल व लय का कोई विशेष ध्यान नहीं होता। इस नृत्य में घूमना, घुंघरूवाले पैर से ठुमके लगाना तथा किसी लोक-कथा-गीत के ऊपर राजा अथवा रानी का अभिनय करना होता है। इस नृत्य में अधिकतर एक व्यक्ति पुरुष का अभिनय करता है, दूसरा स्त्री के वस्त्र पहन कर उसकी भावभंगिमा से पुरुष के वाक्-बाणों का उत्तर देता है। कभी-कभी इस नृत्य में अश्लीलता भी आ जाती है।

व्यावसायिक नृत्य—इस तरह के नृत्य करने वाले भी होते हैं, जिनके जीवन-यापन का साधन ही नाचना-गाना होता है। ये व्यवसाय के रूप में इसको अपनाते हैं, अतः नाचने में सिद्धहस्त भी हो जाते हैं। स्त्री-वर्ग में तो नायन, ब्राह्मणी ही मुख्य हैं जो हर शुभ अवसर पर नृत्य करती हैं तथा गीत गाती हैं। इस प्रकार कोई भी 'टेहला' गूंगा नहीं होता। ढोलक मधुर लयपूर्ण ध्वनि के साथ बजती है तथा

नाच-गाना भी होता है। इस प्रकार मोहल्ले भर को पता चल जाता है कि अमुक व्यक्ति के यहाँ कोई समारोह है और ढोलक बजी या खड़की है।

पुरुष-वर्ग में भंडेले, सांगी लोग खूब नाचते गाते हैं। इनको नृत्य, विवाह आदि किसी भी अवसर पर बुलाया जा सकता है। ये उत्सव में चार चाँद लगा देते हैं तथा मनोरंजन के प्रमुख साधन होने के कारण जनता का आकर्षण केन्द्र होते हैं।

वेश्याएँ––इनका तो व्यवसाय ही गाना और उसके अनुरूप नृत्य करना होता है।

इन सबसे पृथक् एक और जाति है जिनका समाज में पृथक् और विशिष्ट स्थान है––वह है नपुंसक-लिंग में आने वाली हीजड़ा जाति। यह स्वयं सम्मानित जाति नहीं मानी जाती है पर इनको शुभ अवसरों––विवाह, पुत्रजन्म आदि पर अवश्य बुलाया जाता है या स्वयं पता लगाकर आ जाते हैं। हर सम्भ्रान्त परिवार में इनका परिचय रहता है व पहुँच भी।

खड़ीबोली-प्रदेश में स्त्री-पुरुषों के सामूहिक नृत्यों का प्रचलन नहीं है। स्त्रियों और पुरुषों के नृत्य भिन्न-भिन्न होते हैं। कहीं-कहीं वेश बदल कर भी करने की प्रथा अवश्य प्रचलित है। उदाहरण के लिये विवाह आदि के अवसर पर 'खोड़िये' में स्त्रियाँ पुरुषों का वेश धारण कर गाती, नाचती हैं जब कि पुरुष होली पर तथा सांग आदि में अनेक अवसरों पर स्त्रियों का वेश धारण कर नाचते हैं।

जैसा कि हम स्वभाव बतलाते समय कह आये हैं कि इस प्रदेश का लोक-मानव अधिक गम्भीर है, अतः यही कारण है कि यहाँ के लोग नृत्य के प्रति भी उदासीन हैं, और इस प्रदेश का अन्य प्रदेशों की भाँति कोई भी विशिष्ट नृत्य नहीं है।

खड़ीबोली प्रदेश की वेशभूषा तथा खान-पान––विचारों की भाँति पहरावे में भी यहाँ के लोग सरल हैं। जैसा कि हम पहले कह आये हैं, इस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति के कारण विभिन्न सभ्यताओं का प्रभाव लोक-मानव के जीवन के हर अंग पर पड़ा है। परन्तु फिर भी खड़ीबोली प्रदेश के वासियों का एक सबसे बड़ा गुण यह रहा है कि उन्होंने हर प्रभाव को अपने स्वभाव तथा परिस्थितियों के अनुसार ही अपनाया है। इनके वाह्य जीवन पर चाहे किसी सभ्यता का प्रभाव पड़ा हो परन्तु जब जीवन के आन्तरिक तथा धार्मिक पक्ष पर आघात होने लगा है तो लोक-मानव सजग हो उठा है।

यदि हम वेशभूषा तथा खान-पान के ऊपर दृष्टिपात करें तो ऊपर कही गई बात की पुष्टि हो जायगी। पहिले हम वेशभूषा को ही लेते हैं। ग्रामीण जीवन में वेशभूषा का परिवर्तन जाति के अनुसार भी पाया जाता है। किसान, विशेषरूप से चमार, गड़रिए, धीवर तथा अन्य जाति वाले लोग धोती, कुरता, टोपी पहनते

हैं। ग्राम से बाहर जाते समय ये लोग चमड़े का देशी जूता पहन लेते हैं जिसे चमरौंधा भी कहते हैं। ये आगे से चौड़े पंजे का होता है। इसको ये लोग तेल में भिगोकर तैयार करते हैं अथवा इसमें मट्ठा भी भरते हैं।

भंगियों की वेशभूषा सब लोगों से भिन्न होती है। ये कुरता, धोती, तो पहनते ही हैं लेकिन उनकी धोती शलवार की भाँति बनी होती है तथा घुटनों तक नीची होती है। यह ऊँची कुरती पहनते हैं तथा कमर पर चादर अथवा अन्य कपड़ा कस कर लपेटे रहते हैं, अधिकतर इनकी धोतियाँ चौड़ी किनारियों की होती हैं।

जाट, गूजर तथा अन्य लोग सफेद पगड़ी भी बाँधते हैं। ये आकार में बहुत बड़ी होती है, इसलिए इसको पग्गड़ भी कहा जाता है। कुछ ऊँचा कुरता तथा लाँघदार धोती भी पहनते हैं। ये धोती घुटनों से कुछ ही नीची होती है। समृद्धि-शाली लोग घुटनों से नीचे तक बन्द गले का खद्दर का कोट भी पहनते हैं तथा कंधे पर चादर रखते हैं।

वैश्य जाति के लोग टोपी, कुरता तथा बनियाइन के स्थान पर जवाहर जाकेट की भाँति बनी हुई 'बंडी' पहनते हैं। इसमें पैसे आदि रखने की सुविधा रहती है। ये भी ऊँची धोती बाँधते हैं लेकिन इनकी धोती घेरदार होती है तथा नीचे को ढलकी रहती है। इनका जूता भी देसी ही होता है लेकिन ये जाटों तथा निम्न जातियों के जूतों की भाँति भारी तथा अधिक चौड़े पंजे का नहीं होता है। ये लोग पहनावे में सीधे और सरल हैं। बनियों के सम्बन्ध में कहावत है—'बनिये का छैला, आधा उजाला, आधा मैला।'

पगड़ी ग्रामीण ब्राह्मण भी बाँधते हैं। कहीं-कहीं पर ऐसा भी होता है कि सिवाय चोटी के उनका सिर घुटा हुआ होता है। ये लोग गले में रामनामी या सफ़ेद चादर भी डालते हैं।

बड़े-बूढ़े अंगरखा तथा धोती पहनते हैं। आजकल अचकन भी पहनी जाती है। धनी बनिये जो शहर के आस-पास रहते हैं, अचकन तथा पाजामे भी पहनते हैं, यद्यपि इस वेशभूषा पर मुसलमानी प्रभाव भी देखने को मिलता है परन्तु उस प्रभाव ने लोक-जीवन को पूर्णरूप से आच्छादित नहीं किया केवल स्पर्श किया है। आधुनिक युवक समाज पर पाश्चात्य वेशभूषा का अधिक प्रभाव है, परन्तु लोक-जन इतना अधिक किसी भी सभ्यता से प्रभावित नहीं हुआ। धोती-कुरता जो युगों से भारत का पहनावा रहा है, लोक-जीवन में आजकल भी उसी प्रकार सुरक्षित है।

महिलाओं की वेशभूषा—महिलाओं की वेशभूषा में भी जातिगत भेद मिलता है। निम्न जाति की महिलाएँ टुकड़ी पहनती हैं तथा यह बहुत ऊँची होती है और ऊँचे-

ऊँचे कमीज़ पहनती हैं। उनके पावों में चाँदी अथवा गिलट के जेवर रहते हैं, बिछुवे, लच्छे, तथा पिंडलियों में भिन्न प्रकार के कड़े रहते हैं । छोटी लड़कियाँ भी इस प्रकार की वेशभूषा पहनती हैं। हाथों में भी ये लोग कड़े पहनती हैं। कोहनी के ऊपर भी एक प्रकार के कड़े पहनते हैं, ये भी चाँदी के ही होते हैं।

जाटिनियों का ऊँचा घूम-घाघरा कानों की बाली और गले का कंठा, उनके दैनिक व्यवहार की प्रसिद्ध चीजें हैं । ये कमीज ऊँची-ऊँची पहनती हैं तथा पैरों में जूता भी पहनती हैं जो मर्दों के जूतों की भाँति भारी होता है। ये पावों में कड़े पहनती हैं, गले में रुपयों का तथा सोने के दानों का हार पहनती हैं। सिर पर जूड़े के स्थान पर भी एक जेवर पहनती हैं, जो ऊपर को उठा हुआ होता है। हाथों में तथा कोहनियों के ऊपर भी वह एक विशेष प्रकार के कड़े पहने रहती हैं। ये सिर में एक प्रकार का आभूषण और भी पहनती हैं जिसे माँग कहते हैं और जो सारे जेवरों को कसे रहता है ।

वैश्य तथा ब्राह्मण महिलाएँ धोती और कमीज पहनती हैं। ये पावों में पायजेब पहनती हैं। कहीं-कहीं पर लच्छे भी पहने जाते हैं। हाथों में दस्तबन्द, छन, पहुँची, आरसी, अँगूठी आदि पहनती हैं। कोहनी के ऊपर बाज़ूबन्द पहनती हैं। गले में फूलदार, मटरमाला, लड़ियों की जंजीर तथा हँसली, कालर, झिलमिली आदि पहनती हैं। यहाँ तगड़ी पहनने की भी प्रथा है। यह प्रायः चाँदी की होती हैं पर अमीर लोग सोने की भी पहनते हैं । पावों में सैंडल तथा चप्पल पहनती हैं। इनके दावन अधिकतर बहुत कीमती और रेशमी होते हैं तथा लम्बाई में नीचे होते हैं। धींवर आदि जाति में शलवार तथा कुर्ती भी प्रचलित है ।

इस प्रदेश में स्त्री-पुरुषों दोनों ही की पोशाक में गाढ़े (खद्दर) का बहुत प्रयोग होता है—पुरुष सफेद गाढ़े (मोटा खद्दर) का कुर्ता, धोती पहनते हैं और स्त्रियाँ लहँगा, कुर्ता ओढ़नी आदि गहरे लाल पीले रंगों की पहनती हैं।

खान-पान—इस प्रदेश का खान-पान अधिकतर शाकाहारी तथा सात्विक है। केवल वही जातियाँ सामिष हैं जो धार्मिक रूप अथवा जातीय कारणों से पहिले ही से सामिष रही हैं। इन जातियों में मुसलमान, ईसाई, सरदार, मछवे, धींवर आदि आते हैं। मछवे, धींवर आदि अधिकतर जल-जन्तु ही खाते हैं, अन्य जातियाँ पूर्णतया निरामिष हैं। ये लोग अधिकतर बाजरा, चना तथा मक्का खाते हैं। गेहूँ का प्रयोग केवल विशेष त्यौहारों तथा अवसरों पर ही किया करते हैं। रोटी के साथ ये लोग अधिकतर मूँग तथा उड़द की दाल, मट्ठा, मक्खन आदि का प्रयोग करते हैं। इस प्रदेश का लोकजन अधिकतर खेतिहर है और समृद्धिशाली है। इसीलिये यहाँ पर दूध के जानवर पालने का बहुत प्रचलन है। शहरों में भी लोग गाय-भैंस

रखते हैं, इसलिये ये लोग मट्ठे तथा मक्खन का प्रयोग करते हैं तथा गन्ने की खेती के कारण गुड़ शक्कर का भी बहुत प्रयोग होता है। इस प्रदेश का खाना बहुत पौष्टिक होता है। यहाँ पर दूध-दही का खाना है। बेला भरा दूध, रस की खीर, चावल, उड़द की दाल, गेहूँ के फुलके तथा मक्की की रोटी और चने का साग यहाँ का विशेष खाना है। यहाँ पर जिनके घर मट्ठा होता है वह मट्ठे को खूब बाँटते हैं। किसी को मट्ठा के लिये मना करना कमबख्ती की निशानी समझी जाती है। अधिकतर हरे साग ही खाये जाते हैं—उदाहरण के लिए सरसों की गाँडल, चने का साग, बथुआ, सींगरे, पालक, कचनार, ग्वार की फली आदि।

मीठे में खीर, मेवे तथा हलवे का अधिक प्रचलन है। कढ़ी चावल भी यहाँ का विशेष खाना है। कढ़ी अवकाश के समय अथवा विशेष अवसरों पर ही बनती है। पक्का खाना त्यौहारों पर तथा अन्य विशेष अवसरों पर बनता है। कचौरियाँ यहाँ पर अधिक प्रचलित हैं।

इधर के बनिये, ब्राह्मण विशेष शुद्धि से खाते हैं। इन लोगों की रसोइयों में चौके होते हैं तथा कच्चा खाना चौकों में ही खाया जाता है। ब्राह्मण अधिक शुद्धि रखते हैं। ये दूसरी जातियों के घर कच्चा खाना नहीं खाते, खीर भी भुने हुए चावलों की ही खाते हैं, ऊँची जातियों में छुआछूत बहुत प्रचलित है।

यहाँ के लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि भोजन और स्थान का व्यक्ति के मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है, इसीलिये दूसरों के घर भोजन करने में यहाँ के व्यक्ति बहुत कम विश्वास करते हैं।

इस प्रदेश के सभी पुरुष धूम्रपान करते हैं। ये अधिकतर हुक्का और चिलम पीते हैं। खेतों में काम करने वाले प्रायः नारियल पीते हैं। हुक्का जातीय रूप से अलग-अलग होता है, कहीं-कहीं व्यक्तिगत रूप से भी हुक्का अलग रखा जाता है। हुक्का जातीय एकता का प्रतीक माना जाता है। हुक्का पानी बन्द हो जाना—कहावत इसी बात की पुष्टि करती है। 'पक्का-खाना', 'पक्की पक्की हवेली' यह लौकिक समृद्धि की पराकाष्ठा समझी जाती है।

लोकसाहित्य के कथा-गीतों में आने वाले शब्दों से यहाँ की सम्पन्न खान-पान की प्रथाओं का आभास होता है—उदाहरण के लिए—'सोने का गडुवा, गंगाजल पानी, दूध कटोरा, धौली गाय तले बछरवा चूंखता, हाथ रकेबी तत्ती जलेबी आदि। इस प्रकार खान-पान की दृष्टि से यहाँ पौष्टिक पदार्थ खाये जाते हैं, जो प्रदेश की सुख-समृद्धि के द्योतक हैं।

भाषा और लोकशब्द—इस प्रदेश की लोक-भाषा का अध्ययन करना, भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित अपने में पूर्ण विषय है। परन्तु खड़ीबोली प्रदेश ही मेरा कार्य-

क्षेत्र रहा है तथा उसकी लोक-भाषा से मेरा हर समय का सम्बन्ध रहा है इसलिये इस प्रदेश में प्रयोग किये जाने वाले लगभग ६०० शब्दों का संग्रह किया है, जिसको कि परिशिष्ट में दिया है। ये शब्द वहाँ की अभिव्यक्ति के साधन हैं तथा इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण लोकसाहित्य ने यह रूप पाया है। इन शब्दों का व्याकरण की दृष्टि से भी बहुत महत्व है। आज की हिन्दी का उद्गम तथा उसका अपभ्रंश रूप दोनों ही इन शब्दों में है। कुछ शब्द अजमत, अल्लाबेली, आदमजून, आला, इकला, इमाण, खबोई, गाद्देहराम, गुमान आदि उर्दू से सम्बन्ध रखते हैं। आदमजून में आदमशब्द उर्दू का है यथा जून, योनि का बिगड़ा हुआ रूप है इस प्रकार गाद्दे-हराम शब्द का भी उर्दू से सम्बन्ध है। इसमें भी 'हराम' शब्द उर्दू से ही आया है। शिवाल्ला, कौत्तक, पड़वा, आट्ठे आदि शब्द साहित्यिक हिन्दी के बिगड़ेरूप हैं। वास्तव में खड़ीबोली ने अनेक शब्दों को साहित्यिक भाषाओं से लेकर अपने रंग में रँग लिया है। सामाजिक शास्त्र की दृष्टि से भी इनका बहुत महत्व है, इन शब्दों से उनकी सुचारुता तथा उनके जीवन के ढंग का भली प्रकार से पता चलता है। साधारणतः सामाजिक शब्दों का प्रयोग सामाजिक परम्परा के अनुसार किया जाता है। खड़ीबोली के बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग सामाजिक परम्परा के अनुसार किया जाता है। जैसे—'टूटना' शब्द चूड़ी टूटने के लिये प्रयुक्त नहीं होता अपितु उसके लिये 'मौलना' अथवा 'बिसमना' शब्द का प्रयोग होता है क्योंकि चूड़ियाँ उस समय टूटती हैं जब पति की मृत्यु होती है, अन्यथा तो चूड़ियाँ नये पेड़ की भाँति मौलती हैं।

खड़ीबोली लोक-भाषा में कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो अन्य किसी और स्थान में नहीं मिलते, उदाहरणार्थ—छीड़, ओच्छा, समावका, ये शब्द भीड़, ऊपर तक भरा हुआ, अन्धे शब्दों के उल्टे हैं। इस प्रदेश की शब्दों की परम्परा अपनी ही प्रकार से अनोखी है। इन शब्दों के अतिरिक्त हमने उस प्रदेश में प्रचलित स्त्री-पुरुषों के कुछ विशेष रूप से प्रचलित नाम दिये हैं। स्त्रियों के नामों की संख्या ५० है तथा पुरुषों के लगभग ९० नाम हैं। ये नाम भी इस प्रदेश की अशिक्षितता तथा अन्धविश्वासों के प्रतीक हैं। कुछ नाम जैसे चूहड़, कल्लू, रोड़ा आदि उन बच्चों के रखे जाते हैं जिनके बच्चे जीते नहीं। कुछ शब्दों को बिगाड़ भी दिया जाता है जैसे किसना (कृष्ण), बिरमा (ब्रह्मा), ओम्मी (ओम) आदि।

वास्तव में इस प्रदेश की सभ्यता यहाँ की भाषा तथा शब्दों में प्रत्यक्ष देखने को मिलती है। ये प्रदेश का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि इन शब्दों से ही भाषा-विचार तथा व्यक्तित्व बनते हैं। इसीलिये लोकशब्दों की उपेक्षा करना

हमारे लिये कठिन था। यद्यपि समय तथा विषय की व्यापकता के कारण मैं इन शब्दों के साथ न्याय नहीं कर सकी।

खड़ीबोली-प्रदेश के लोगों का स्वभाव—प्रायः यह देखा जाता है कि मनुष्य की परिस्थितियों पर उसके जीवन-दर्शन तथा भौगोलिक स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है। हमारे इस कथन की पुष्टि खड़ीबोली प्रदेश के रहनेवालों के स्वभाव पर दृष्टिपात करने से उचित रूप से हो जायेगी। यहाँ के निवासी समृद्धशाली हैं। उनकी खेती के लिये जमीन उपजाऊ है, जल का बाहुल्य है तथा वे पढ़े-लिखे हैं। अधिकतर खड़ीबोली प्रदेश से सम्बन्धित लोग आधुनिक प्रगति से भी अपना सम्बन्ध बनाये हुए हैं। खेती करने वाले लोगों ने अपनी सुगमता के लिये यंत्रों को भी बहुत जल्दी तथा अधिक मात्रा में अपनाया है। खेतिहर लोगों के घरों पर ट्रैक्टर, कल्टीवेटर आदि सब काफी मात्रा में देखने को मिलते हैं। अधिकतर किसान इन यंत्रों का उपयोग स्वयं ही करते हैं। ये लोग गन्ने की खेती करते हैं, इसलिये यहाँ पर चीनी की मिलें भी बहुत हैं। छोटे-छोटे गाँवों में भी क्रैशर बहुतायत से मिलते हैं जिन्होंने इनको और भी समृद्धिशाली बना दिया है। यही कारण है कि खड़ीबोली प्रदेश के निवासियों में एक प्रकार की आत्म-निर्भरता है, आर्थिक सुरक्षा है। इसीलिये वे निडर हैं तथा आन-बान की भावना भी उनमें बहुत अधिक है। वे झगड़ालू प्रकृति के हैं तथा सहनशक्ति भी कम है। मुकदमे-बाजी का भी बहुत शौक है। इनके व्यवहार में एक प्रकार का अक्खड़पन उभर आया है। किसी के सामने झुकने में इनको अपमान का अनुभव होता है। यह अक्खड़पन वास्तव में इनके स्वाभिमान का द्योतक है। अच्छा खाने-पीने के कारण इनमें बल होता है जिसके कारण वे साहसी रहते हैं। इतना सब होते हुए भी इनमें एक गुण बहुत बड़ा है कि ये आतिथ्य-सत्कार हृदय खोल कर करते हैं। इन लोगों के जीवन में कोई ऐसी चीज ही नहीं जो अतिथि के लिये उपलब्ध न हो सके। जिन स्थानों पर मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव पड़ा है, वहाँ पर उनके व्यवहार में एक अजीब प्रकार की लोच तथा कोमलता आ गयी है परन्तु उस कोमलता में भी उनकी स्पष्टवादिता उग्ररूप से छलक पड़ती है।

ये लोग बहुत धर्मभीरु हैं, इसलिये इनके घरों में धर्म-कर्म बहुत अच्छी भाँति सम्पन्न किये जाते हैं। शिक्षित व्यक्ति भी लौकिक-अलौकिक शक्ति से डरता है। खड़ीबोली प्रदेश में अपने सम्मान के लिये भी बहुत से धर्म-कर्म किये जाते हैं। विवाह-शादी में भी वे लोग खुले हाथ से खर्च करते हैं परन्तु खर्च करने में सुचारुता नहीं होती अपितु समाज को एक प्रकार की चेतावनी-सी होती है। इनके स्वभाव

की परुषता इनके सामाजिक क्रियाकलापों तथा संस्कारो में दृष्टिगोचर होती है। स्वभावत: ये गम्भीर और चिन्तनशील हैं। इनमें जीवन उतने उत्कृष्ट रूप से नहीं छलकता, जितना पंजाब के भांगड़ा तथा राजस्थान के नृत्यों में।

उत्तरप्रदेश के लोग व्यावहारिक हैं तथा अपने कार्य को पूरी सफलता से करने में विश्वास करते हैं। यहाँ के वासियों में अड़ जाने की बहुत प्रवृत्ति पायी जाती है, ये बात पर अड़ते हैं, काम पर अड़ते हैं तथा अपने विश्वासों पर अड़ते हैं। इस प्रदेश के लोग धर्म व समाज को अधिक मानते हैं उसके प्रति उपेक्षा का भाव रखना उनके लिए असम्भव है। जीवन की साधारणतया सभी सुख-सुविधाएँ प्राप्त होने के कारण यह मसखरे और प्रत्युत्पन्न-मति के देखे जाते हैं। इनकी बोली में तथा जीवन में हास्य और व्यंग्य तो मानों पुंजीभूत हो गया है।

मनोरंजन तथा मेले—प्रतिदिन के मनोरंजन पर यदि दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि इस प्रदेश के मनोरंजन अधिकतर परुष हैं। यहाँ के मुख्य मनोरंजनों में अखाड़ेबाजी ही आती है। ये अखाड़े, कुश्ती, पटा, लाठी आदि चलाने के होते हैं। अखाड़ा उस्ताद के नाम से चलता है। ये उस्ताद अपने चेलों को विभिन्न फ़नों में माहिर करते हैं। कुश्तियों के लिये बड़े-बड़े दंगल होते हैं जिनका उत्तरप्रदेश में बहुत महत्व है। ये दंगल सरकारी तथा व्यक्तिगत दोनों ही स्तरों पर होते हैं। इसी प्रकार पटा चलाने का भी अखाड़ा होता है। इसमें विचित्र प्रकार के अस्त्र चलाये जाते हैं जिनमें तलवार चलाना, पंजा लड़ाना, लाठी घुमाना आदि मुख्य हैं। अधिकतर ये कार्य कहार, सयाने आदि जाति के लोग करते हैं। पटे का प्रदर्शन जुलूसों में ही किया जाता है।

लाग—लाग भी लोक-समाज की मुख्य कला है। लाग के भी अखाड़े होते हैं। कहा जाता है कि यह बड़ा कठिन कार्य होता है। जीभ को बींध कर सलाई पिरो देना, मोरध्वज के दृश्य का सिर काट कर प्रदर्शन करना, आदमी के पेट से तलवार पार कर देना आदि लाग के मुख्य अंग हैं। लाग से लोकमानव को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। कहा जाता है कि ये जादू का काम है यदि 'लाग' को कोई बीच में तोड़ दे तो लाग वाले मनुष्य की मृत्यु होने का डर रहता है। इनका प्रदर्शन धार्मिक जुलूसों तथा अन्य जुलूसों में किया जाता है।

सांग—सांग भी इस प्रदेश के मुख्य मनोरंजनों में से एक है। सांगियों के भी अखाड़े होते हैं। इस प्रदेश के प्रसिद्ध सांगी बुलाकी, मुसद्दी आदि हैं। ये लोग गद्य तथा पद्य में विभिन्न ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक गाथाओं एवं अलिफ-लैला के किस्सों को ग्रामवासियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। साधारणतया सांगों में हजार दो हजार आदमी इकट्ठे हो जाते हैं। बीच-बीच में ही दर्शक किसी

कलाकार-विशेष से प्रभावित होकर रुपये देते रहते हैं । सांगियों का नक्कारा विशेष प्रकार का होता है । इसकी गूँज मात्र से ही ग्रामवासियों को ज्ञात हो जाता है कि अमुक स्थान पर स्वांग हो रहा है । इनकी भाषा लोकभाषा ही होती है । यदि साहित्यिक भाषा का कोई शब्द आ भी जाता है तो उसको भी वे अपनी तरह से तोड़-मरोड़ कर ठीक कर लेते हैं । सांग में महिलाएँ अधिक नहीं जातीं । इनका विस्तृत उल्लेख हम लोकनाट्य वाले अध्याय में कर आये हैं ।

मेले—इस प्रदेश में मेलों की भी बहुलता है । वर्ष में कितने ही मेले ऐसे होते हैं जिनकी प्रतीक्षा में लोक-मानव आँख बिछाये रहते हैं । इन मेलों का विस्तृत उल्लेख हम आगे करेंगे । इन मेलों की सजावट कम से नहीं होती और न ही इन मेलों में अधिक मूल्यवान् वस्तुएँ ही आती हैं अपितु जनोपयोगी वस्तुएँ ही अधिक होती हैं उदाहरणार्थ—मिट्टी के बर्तन, बैलगाड़ी आदि के उपयोग की वस्तुएँ, ग्राम-परिधान, लोक-खिलौने तथा उसी प्रकार के खेल जैसे हिंडोला, रेलगाड़ी, भागदौड़, घोड़ों का चक्कर तथा मौत का कुंआ, आदि इन मेलों की विशेषता होती है । मिठाई के नाम पर भी तेल की जलेबी, खजला, नुगदी के लड्डू, चीनी के बताशे तथा थोड़ा सा खोया मिले हुए पेड़े आदि ही होते हैं । फलों में बेर, कैत, लौकाट, आम आदि मौसम के फल ही मिलते हैं ।

ये तो विशेष मेले होते हैं, इनके अतिरिक्त सप्ताह में एक दिन या दो दिन पैंठ भरती है । यद्यपि ये उस समय की याद दिलाती है जिस समय बड़े-बड़े बाजारों का अभाव था । ग्रामवासी अपना-अपना सामान सप्ताह भर बनाते थे और एक दिन निकट के कस्बे या शहर में बेचने जाते थे । लोग पैंठ में अपना-अपना सामान बेंच कर अपनी आवश्यकता का दूसरा सामान ले जाते थे । इसी बहाने पैंठ में दूसरे ग्राम के लोगों से भी मिलना हो जाता था । लोग अपने सम्पर्क बढ़ाते थे ।

यदि अब हम घरेलू मनोरंजनों पर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि उनमें विशेषतः चौपड़, जुआ तथा शतरंज ही है । ताश भी खेला जाता है, किन्तु शतरंज और ताश अधिक नहीं खेला जाता । समाज में शतरंज को इतना भी महत्व प्राप्त होने का कारण मुसलमानी प्रभाव ही है । ताश के खेलों में तिपत्ती, पत्ता माँग, कोट-पीस, दो-तीन-पाँच, चौकड़ी, लाँघ, लक्कांड़ी तथा अन्धा-साझ्झी ही अधिक प्रचलित है ।

बच्चों के मनोरंजन में चोर-सिपाही घाई-मिच्चा, तड़ीमार, कबड्डी, कोड़ा जमालशाही, अट्टी बट्टी टीलो आदि ही आते हैं । बड़ों के खेलों में कबड्डी, रस्सा-कशी, लाठी चलाना, घुड़सवारी करना आदि है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि

इस प्रदेश के मनोरंजन गिनती में बहुत अधिक नहीं हैं, परन्तु उनके जीवन तथा स्वभाव के समान सहज और सरल हैं।

मेले, त्यौहारों तथा अन्य उत्सवों का जितना धार्मिक महत्व है उतना ही ये लोक-मानव के लिए मनोरंजन के माध्यम भी हैं। ये लोकमानव की संस्कृति की स्वांस हैं तथा उनकी आस्था के स्तम्भ हैं। खड़ीबोली प्रदेश के अतिरिक्त यदि हम भारत की अन्य संस्कृतियों पर भी दृष्टिपात करें तो भी हम इस कथन को अक्षरशः सत्य पायेंगे। सबसे पूर्व हम खड़ीबोली प्रदेश में होने वाले मेले का विवेचन करेंगे। इस प्रदेश में विभिन्न त्यौहारों तथा अवसरों पर अनेक मेले हुआ करते हैं जिनसे लोक-समाज का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। इन मेलों में इस वर्ग की धार्मिक भावनाएँ, विश्वास तथा सिद्ध पुरुषों के प्रति अपार आदर की भावना समाहित रहती है। गजेटियर के अनुसार हम खड़ीबोली प्रदेश में होने वाले मुख्य मेलों का उल्लेख जिलों के अनुसार ही कर रहे हैं :—

मेरठ जिला—

मेला	*स्थान*	*समय*
नौचन्दी (घोड़ों का मेला)	मेरठ	चैत्र की दोइज से अथवा होली के बाद दूसरे इतवार से आरम्भ होता है।
तिलहैंड़ी (घाट का मेला)	मेरठ (सूरजकुंड के पास)	होली के बाद
रामलीला	मेरठ हापुड़ और सब जगह	पितृपक्ष के बाद क्वार में दशहरे तक
छड़ियों का मेला	सब जगह	सावन
शिवरात्रि का मेला	पुरा ग्राम (मेरठ) (परसराय का मन्दिर हिंडन नदी पर)	फागुन
बूढ़ा बाबू	खेकड़ा, सरधना	चैत्र सुदी २-६
जैनियों का मेला	(हस्तिनापुर मेरठ)	कार्तिक
फीसा सन्त	बाग़पत (मेरठ)	फागुन
कालिका देवी	गाज़ियाबाद	चैत्रबदी ७ से १० तक
सती पूजा	"	बैसाख सुदी ५

देवी पूजा	सब स्थान पर	चैत्र तथा क्वार में (नवरात्रि में)
गंगास्नान	गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ)	कार्तिक पूर्णिमा
रथयात्रा	मेरठ	भादों सुदी १४

मुजफ़्फ़रनगर ज़िला—

मेला	*स्थान*	*समय*
घाट का मेला	मुज़फ़्फ़रनगर	चैत्र बदी २ से ९ तक
"	(बभनौली गाँव) श्यामली	" "
"	जौली जानसठ	" "
छड़ियों का मेला	मुजफ्फरनगर	भादों बदी—१
"	चरथावल	भादों बदी—८
"	पुरथापुर	भादों बदी—८
"	पुरकाज़ी	" "
"	कैराना	
"	खतौली में सबसे बड़ा	" "
गुग्गापीर	बुधई कलां, थाना-भवन	" "
"	थाना भवन	" "
सरवर	चर थावल	जेठ के हर बृहस्पतिवार को
मुस्तानशाह		
जाहर दीवान	दूधी हैवतपुर	जेठ का पहला इतवार
बूढ़ा बाबू	बघरा (अमीरनगर)	चैत का पहला इतवार
जटाशंकर महादेव	गोरधनपुर दयालपुर	फागुन बदी —१४
ख्वाजा जिश्तः	कैराना	" " —१
देवी	कैराना	चैत बदी—९
चेहलम	जानसठ	
उर्स हजरतशाह	झिंझाना	
उर्स इमाम साहब	बनत	मोहर्रम—११
उर्स जनत शरीफ़	जलालाबाद	
पीर बहरम	बिदौली	जेठ-असाढ़ का बृस्पतिवार
निसार अली मेला	जौली जानसठ	जेठ का दूसरा शुक्रवार
उर्स गरीब शाह	कांधला शिकारपुर	
पियारे जी	बुढ़ाना	चैत्र बदी—६

ऊँचे सरावगियों का	खतौली	चैत्र
कार्तिक मेला-गंगास्नान	शुक्रताल	कार्तिक पूर्णिमा
जेठ का दशहरा	शुक्रताल	जेठ की दशमी
शाकुम्बरी देवी	जौली जानसठ	अषाढ़ सुदी—१
रथयात्रा	"	भादों सुदी—१४

सहारनपुर जिला—

मेला	*स्थान*	*समय*
गुग्गापीर	सहारनपुर	भादों बदी—१०
शाकुम्बरी देवी	मुजफ्फरबाद	क्वार सुदी—१३
चौदस	देवबन्द	चैत सुदी—१४
पिरान किलयार	सड़की	
उर्स कुतुबआलम अब्दुल	गंगोह	
गुग्गापीर (छड़ियों का मेला)	मानकमाऊ सहारनपुर के पास (बनियों-अग्रवालों का खास संत)	भादो में
बाबा कालू (नीच जाति का सैनी चमार-कहार-गूजर)		
घाट का मेला	देवबन्द	अप्रैल में
देवी का मेला	"	चैत्र में
मकर संक्रान्ति	हरिद्वार	१४ जनवरी
सोमवती अमावस्या	हरिद्वार	माघ
कातकी गंगास्नान	"	कार्तिक पूर्णिमा
जेठ का दशहरा	"	जेठ
बैसाखी	"	बैसाख
चंडी चौदस	"	"
कुम्भ, अर्द्धकुम्भ	"	बैसाख में छठें और बारहवें वर्ष
जैनियों का मेला अनन्त चौदस	ज्वालापुर	

बिजनौर जिला—

मेला	*स्थान*	*समय*
बूढ़ा बाबू	बिजनौर	भादों बदी २
गंगास्नान	दारानगर गंज	कार्तिक पूर्णिमा
नेजा वाले सलर	"	चैत का आखिरी बुधवार
छीपियों का मेला	मंडावर	चैत शुदी ७-८
देवी का मेला	अफजलगढ़	क्वार बदी ७
बलदेव का मेला	"	क्वार बदी ६
छड़ी जाहर दीवान	धामपुर	सावन सुदी ७

इन मेलों के अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे मेले समय-समय पर होते रहते हैं। ऐसे मेलों में मुज़फ्फ़रनगर का डल्लू देवता का मेला भी आता है। जो कुछ ही वर्षों से नागपंचमी पर होने लगा है। यह मुजफ्फ़रनगर के पश्चिम में काली नदी के पार एक टीले पर होता है।

घटलूनी के मेले के नाम से एक चूड़ियों का मेला भी यहाँ पर होता है। यह भी अपनी ही तरह का होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर मासिक, पाक्षिक तथा साप्ताहिक पैंठ होती है। हमने यहाँ पर मुख्य मेले दिये हैं। जो मेले हैं उनमें दशहरा, गंगास्नान, नौचंदी, शाकुम्बरी देवी, कुम्भ, पुरा का मेला तथा चंडी चौदस आदि के मेले कुछ जातिगत तथा स्थानीय त्यौहारगत भी हैं। उदाहरण के लिए—मंडावर का छिपियों का मेला, देवबन्द का चौदस (चमार चौदस) का मेला, सहारनपुर का गुग्गापीर का मेला, अग्रवाल बनियों का मेला (बाबा कालू का मेला)। यह निम्नजाति चमार, कुम्हार, गड़रियों आदि का मेला है। इसी प्रकार खतौली मे चैतबदी को सरावगी बनिये (जैनियों) का मेला होता है। ये सब मेले जातिगत मेलों के अन्तर्गत आते हैं। स्थानीय मेलों में तो मुसलमानों के जितने भी मेले हैं वो सब स्थानीय ही हैं। इन मेलों का मुख्य ध्येय स्थानीय लोगों के द्वारा सिद्ध पुरखों के प्रति सम्मान प्रकट करना ही है। ऐसे मेले में पिरान-किलीयर का मेला, गंगोह का उर्स, कैराने झिझाने, जौली जानसठ आदि के उर्स आते हैं। प्रान कलियर के पीर की मान्यता भी बहुत दूर-दूर तक है। इसको हिन्दू भी समान रूप से मानते हैं। नौचन्दी भी इसी प्रकार के मेले में है। नौचन्दी का मेला हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों ही की धार्मिक भावना का संधिस्थल है। दोनों संस्कृतियाँ किस प्रकार समानान्तर रूप में विकसित हुई हैं, इसका प्रतीक है। हिन्दू इसे युगों-प्राचीन चण्डीदेवी के मन्दिर के उपलक्ष्य में मानते हैं और मुसलमान बाले-मियाँ के मज़ार के कारण पाक मानते हैं। हजारों वर्ष पूर्व ये नवचन्डी का

मन्दिर था किन्तु ११९१ में मेरठ पर आक्रमण के समय में कुतुबुद्दीन ऐबक ने उसे तुड़वा दिया। कुछ वर्ष बाद अकबर के शासन काल में उसकी रानी जोधाबाई ने मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया। तत्पश्चात् यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगने लगा। मुसलमान गाजी सलार मसूद की याद में इस मेले को मनाते हैं। गाजी-सय्यद सलार मसूद जिन्हें बाले मियाँ भी कहा जाता है, एक मुस्लिम जनरल थे। संयोग से बाले मियाँ की पुण्य-तिथि भी चैत्र के नवरात्र में पड़ती है। इस प्रकार भगवती चण्डी का पूजा उत्सव तथा बाले मियाँ की पुण्यतिथि का समारोह एक ही स्थल पर हजारों हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक साथ एकत्र कर देता है। मेला क्षेत्र में एक विशाल मैदान में घोड़ों का भारी मेला लगता है। किसी समय में नौचन्दी मेला घोड़ों के लिये देश भर में प्रसिद्ध था।

हिन्दुओं के धार्मिक मेले भी हैं। हिन्दुओं के भी कुछ मेले इस प्रकार के हैं जो ग्राम तथा उस स्थान के पवित्र सन्त तथा सिद्ध पुरुष के सम्मान में मनाते हैं। इस प्रकार के मेलों में बुढ़ाने का पियारे जी का मेला, सहारनपुर का बाबू कालू का मेला तथा बागपत के फीसा संत का मेला आता है।

गुग्गापीर, बूढ़ाबाबू, छड़ियों का मेला, उछाव, घाट का मेला तथा देवी के मेले इस प्रदेश में सब ही स्थानों पर होते हैं। इन पंक्तियों में यद्यपि हमने मेलों का यथा-सामर्थ्य वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है परन्तु फिर भी यहाँ की मिश्रित लोक-संस्कृति के समान यहाँ के मेले भी मिले-जुले हैं। इन मेलों को अलग-अलग पंक्तियों में खड़ा करके प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अलग-अलग पंक्तियों में भी कोई-कोई मेला फिर-फिर आ गया है क्योंकि उसका स्थान उस पंक्ति में उतना ही महत्वपूर्ण है।

परिशिष्ट
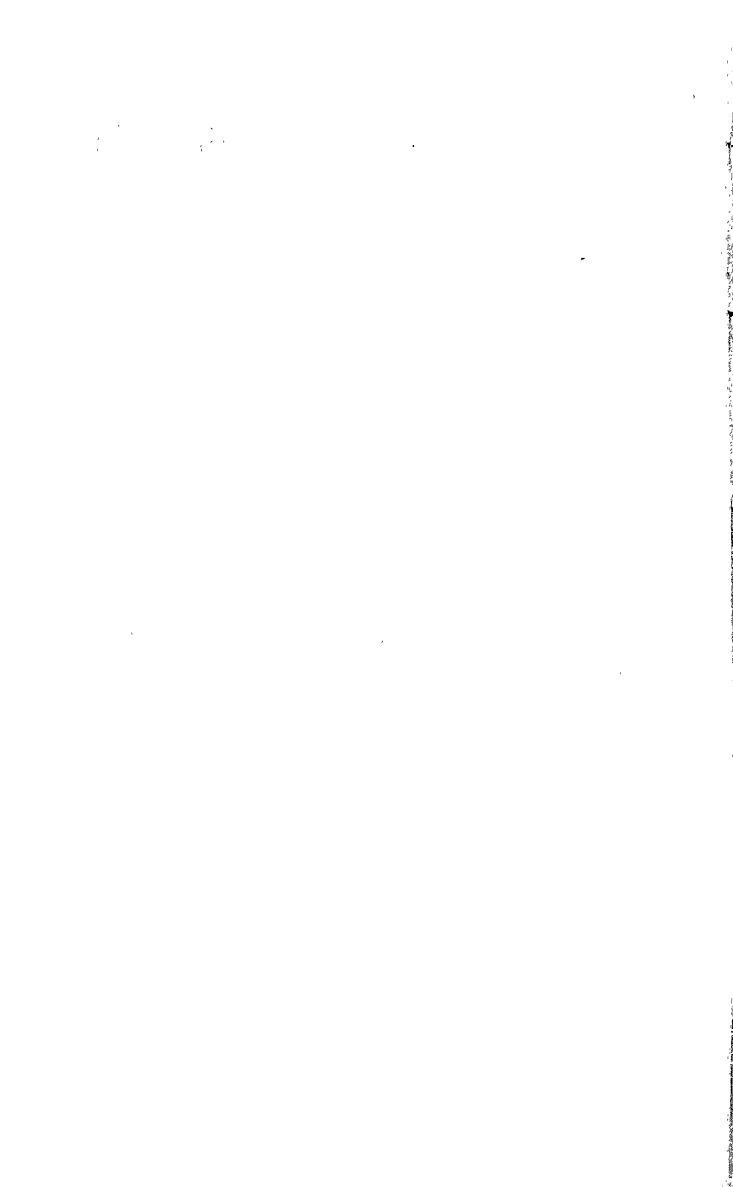
सहायक-ग्रन्थसूची

हिन्दी

१. **अवधी लोकगीत और परम्परा** : इन्दुप्रकाश पाण्डेय, रामनारायणलाल,प्रयाग, १९५७

२. **आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें** : राहुल साँकृत्यायन, राहुल पुस्तक-प्रतिष्ठान, पटना, १९५२

३. **ईसुरी की फागें** : ईसुरी कवि (भाग १) संपादक—कृष्णानन्द गुप्त, टीकमगढ़

४. **उत्तरप्रदेश के लोकगीत** : भगवती सिंह बधौतिया, ओंकार प्रेस, प्रयाग, १९५८

५. **उत्तरप्रदेश के लोकगीत** : संपादित—उत्तरप्रदेश, सूचना विभाग, लखनऊ १८८१ शक

६. **उत्तरभारत की लोक-कथाएँ भाग—१, २, ३** : सावित्री देवी वर्मा

७. **कनउजी लोकगीत** : संतराम अनिल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ १९५७ ई०

८. **कविता कौमुदी, भाग ५** : रामनरेश त्रिपाठी

९. **कविता कौमुदी : भाग ३ (ग्राम-गीत)** : रामनरेश त्रिपाठी, नवनीत प्रकाशन, बम्बई १९५५ ई०

१०. **कहावतों की कहानियाँ** : महावीरप्रसाद पोद्दार, सत्साहित्य-प्रकाशन, १९५५ ई०

११. **कांगड़ा के लोकगीत** : एम० एस० घावा, अतरचन्द एंड क० दिल्ली, १९५६ ई०

१२. **कुल्लू के लोकगीत** : एम० एस० धावा, दिल्ली, १९५५ ई०

१३. किस्सा तोता मैना :

१४. खड़ीबोली का आन्दोलन : शितिकंठ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

१५. गढ़वाली लोक-भाषाएँ : गोविन्द चातक, मोहिनी प्रकाशन, देहरादून, १९५८ ई०

१६. ग्राम-साहित्य : रामनरेश त्रिपाठी, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, १९५२ ई०

१७. ग्रामगीतों में करुणरस : सीतादेवी, युगान्तर प्रकाशन, दिल्ली, १९५४ ई०

१८. ग्रामीण हिन्दी : धीरेन्द्र वर्मा, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९३६ ई०

१९. गौने की विदा : शिवसहाय चतुर्वेदी, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली

२०. चन्द्रसखी के भजन और लोकगीत : प्रभुदयाल मीतल, लोकसाहित्य समिति, उत्तरप्रदेश, १९५७ ई०

२१. चौबोली : सम्पादक—कन्हैयालाल सहल, सस्ता-साहित्य मंडल, नई दिल्ली

२२. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय : श्यामाचरण दुबे, ज्ञानमंदिर, छत्तीसगढ़

२३. जब निमाड़ गाता है : रामनारायण उपाध्याय, उषा प्रकाशन-गृह, इन्दौर, १९५८ ई०

२४. जातक : भदन्तआनन्द कौसल्यायन, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९४१ ई०

२५. धरती गाती है : देवेन्द्र सत्यार्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९४८ ई०

२६. धूल-धूसरित मणियाँ : सीतादेवी, दमयन्ती और लीला, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, १९५६ ई०

२७. धीरे बहो गंगा : देवेन्द्र सत्यार्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९४८ ई०

२८. निमाड़ी-लोकगीत : रामनारायण उपाध्याय, जबलपुर, १९४९ ई०

२९. निमाड़ी लोककथाएँ भाग १, २ : कृष्णलाल हंस

३०. पंजाब की प्रीति कहानियाँ : हरिकृष्ण प्रेमी, आत्माराम एंड संस, १९६० ई०

३१. पृथ्वी पुत्र : वासुदेवशरण अग्रवाल, सस्ता साहित्य-मंडल प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०

३२. पाणिनिकालीन भारत : वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, २०१२ सं०

३३. पाषाण नगरी : शिवसहाय चतुर्वेदी

३४. प्राचीन ब्राह्मण कहानियाँ : राँगेयराघव, किताबमहल, दिल्ली १९५९ ई०

३५. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद : हजारीप्रसाद द्विवेदी , हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर, बम्बई, १९५२ ई०

३६. पुतली की कहानी : कवीन्द्र बेनीप्रसाद बाजपेयी 'मंजुल', जाफरी ब्रदर्स, अनवर अहमदी प्रेस, इलाहाबाद

३७. पोद्दार अभिनन्दन-ग्रंथ : संपादक——वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मंडल, मथुरा, २०१० वि०

३८. ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली : कपिलदेव सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९५६ ई०

३९. ब्रज-लोकसाहित्य का अध्ययन : डा० सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भंडार, आगरा, १९४९ ई०

४०. ब्रज की लोककहानियाँ : डा० सत्येन्द्र, ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा, २००४ वि०

४१. ब्रज-लोकसंस्कृति : संपादित——ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा, २००५ वि०

४२. ब्रज का लोकसाहित्य : पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ——सत्येन्द्र

४३. ब्रज की लोककथाएँ : आदर्श कुमारी

४४. बाजत आवै ढोल : देवेन्द्र सत्यार्थी, एशिया प्रकाशन, नई दिल्ली, १९५२ ई०

४५. बाँसुरी बज रही : जगदीश त्रिगुणायक, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, १९५७ ई०

४६. विन्ध्यप्रदेश के लोकगीत : श्रीचन्द्र जैन, राजपाल एंड संस, दिल्ली, १९५५ ई०

४७. विन्ध्यभूमि की लोककथाएँ : श्रीचन्द्र जैन, अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, १९५५

४८. बुंदेलखण्ड के लोकगीत : उमाशंकर शुक्ल, इंडियन प्रेस, प्रयाग १९५३ ई०

४९. बुंदेलखण्ड के लोकगीत : वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी, १९५७ ई०

५०. बेला फूले आधी रात : देवेन्द्र सत्यार्थी, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, १९४८ ई०

५१. भारत की मौलिक एकता : वासुदेवशरण अग्रवाल, २०११

५२. भारत की लोककथाएँ (धूमिल फूल) : सीतादेवी नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

५३. भारतीय लोकसाहित्य : श्याम परमार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५४

५४. भारतीय रीति-रिवाज : रत्नभानु सिंह नाहर

५५. भारतीय प्रेमाख्यानक परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी

५६. भारतीय संस्कृति का इतिहास : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद

५७. भारतीय नाट्य-साहित्य : संपादक—नगेन्द्र, सेठ गोविन्ददास हीरक जयंती समारोह समिति, नई दिल्ली

५८. भोजपुरी भाषा और साहित्य : उदयनारायण तिवारी

५९. भोजपुरी ग्रामगीत : कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, २००० वि०

६०. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन : कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९६० ई०

६१. भोजपुरी लोकगीतों में करुण-रस : दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

६२. भोजपुरी लोकसाहित्य : एक अध्ययन : बैजनाथ सिंह विनोद, ज्ञानपीठ, प्राइवेट लि०, पटना, १९५८ ई०
६३. भोजपुरी लोकगाथा : सत्यव्रत सिन्हा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, १९५७ ई०
६४. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन : सत्येन्द्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६० ई०
६५. मध्यदेश—ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन : धीरेन्द्र वर्मा, राष्ट्रभाषा परिषद्, बिहार, पटना १९५५ ई०
६६. माता-भूमि : वासुदेवशरण अग्रवाल, चेतन प्रकाशन, हैदराबाद, २०१०
६७. मानव और संस्कृति : श्यामाचरण दुबे, १९६०
६८. मैथिली लोकगीत : रामइकबालसिंह राकेश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९९८
६९. राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन : कन्हैयालाल सहल, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, १९५८ ई०
७०. राजस्थानी लोकगीत : सूर्यकरण पारीक, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, १९९८
७१. राजस्थान के लोकगीत : संपादक—ठा० रामकरण सिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमस्वामी, रिसर्च-सोसायटी कलकत्ता, १९३८ ई०
७२. राजस्थानी लोकगीत : लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत, राजस्थानी सं० पं०, जयपुर, २०१४ वि०
७३. रामचरित मानस में लोकवार्त्ता : चन्द्रभान
७४. रूसी लोककथाएँ—दो भाग : श्यामू सन्यासी
७५. लावनी का इतिहास : स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, ज्ञान-मन्दिर कानपुर, १९५३
७६. लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या : श्रीकृष्णदास, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, १९५६ ई०
७७. लोक-कला निबन्धावली : संपा०—वासुदेवशरण अग्रवाल, भा० लो० क० मं०, उदयपुर, १९५४ ई०
७८. लोकसाहित्य की भूमिका : सत्यव्रत अवस्थी, रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग, १९५७ ई०

७९. लोक-रागिनी : सत्यव्रत अवस्थी, पीयूष प्रकाशन, प्रयाग, १९५६ ई०
८०. लोकधर्मी नाट्य-परम्परा : श्याम परमार, हि० प्रचा० पु० वाराणसी, १९५९ ई०
८१. लोकसाहित्य की भूमिका : कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९५७ ई०
८२. सांस्कृतिक भारत : भगवतशरण उपाध्याय
८३. सोहाग-गीत : विद्यावती 'कोकिल', ज्योति प्रकाशन, प्रयाग, १९५३ ई०
८४. विचार-धारा : धीरेन्द्र वर्मा, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, २००५ वि०
८५. विस्मृत यात्री : राहुल साँकृत्यायन, किताब महल, प्रयाग, १९५६ ई०
८६. हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव : मन्मथराय, साहित्य भवन लि०, प्रयाग १९५३ ई०
८७. हमारे लोकगीत : पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, रामरतन लाल, फर्रूखाबाद, २००७ वि०
८८. हमारी लोककथाएँ भाग १, २ : हंसराज रहबर,
८९. हरियाना के लोकगीत : एम० एस० धावा, अतरचंद कपूर, एंड संस, दिल्ली, १९५८ ई०
९०. हरियाना प्रदेश का लोक-साहित्य : शंकरलाल यादव, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९६० ई०
९१. हरियाना रंगमंच की लोक-कथाएँ : राजाराम शास्त्री
९२. हिन्दी लोकगीत : रामकिशोर श्रीवास्तव, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद १९४६ ई०
९३. हिन्दी भाषा और लिपि : धीरेन्द्र वर्मा
९४. हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार : रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, किताब महल, इलाहाबाद, १९५७ ई०
९५. हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार : कुँवर कन्हैया, हिन्दी प्रकाशन मन्दिर, १९५६ ई०

९६. हिन्दी साहित्य-कोष : ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, २०१५
९७. हिन्दू सभ्यता : राधाकमल मुकर्जी, अनुवादक—वासुदेव शरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५५ ई०
९८. हिन्दी-शब्दानुशासन : किशोरीदास बाजपेयी
९९. हिन्दी प्रेमाख्यान-काव्य : कमल कुलश्रेष्ठ
१००. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकार : शम्भूनाथ सिंह,
१०१. हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास : दशरथ ओझा
१०२. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, १६वाँ भाग : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी १९६१ ई०

शोध-प्रबन्ध

१. गढ़वाली बोली की 'रवाल्टी' उपबोली, उसके लोकगीत और उनमें अभिव्यक्त लोकसंस्कृति : गोविन्द चातक (अप्रकाशित) १९५८
२. मेरठ जनपद के लोकगीत : कृष्णचन्द्र शर्मा (अप्रकाशित) १९५८

पत्रिकाएँ

जनपद, मधुकर, ब्रज-भारती, भारतीय साहित्य, प्रतीक, त्रिपथगा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, लोकवार्त्ता, सम्मेलन पत्रिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, हंस ।

अंग्रेजी-पुस्तकें

1.	An Introduction to Social Anthropology	Ralph Piddington, Vol. one
2.	A Dictionary of Hindustani Proverbs.	S. W. Fallon.
3.	Ancient Ballads and Legends of Hindustani.	Toru Dutta.
4.	Arts and Social Life.	G. V. Plekhanov.
5.	Behar Proverbs.	Christian John Kegan Paul London 1891.
6.	Burmese Proverbs and Maxims.	James Gray.
7.	Customs and Myths.	Lang (A)
8.	Dances of India.	Projesh Banerji.
9.	Eastern Proverbs and Emblems.	Lang (J) London 1881.
10.	Elements of Folk-Psychology.	W. Wundt.
11.	English and Scottish popular Ballads.	F. J. Child.
12.	Encyclopedia Britannica.	
13.	Encyclopaedia of Religions and Ethics.	
14.	Epics, Myths and Legends of India a comparative	Thomas (P)

	Survey of the Sacred Lore of Hindus, Buddhists and Jains.	
15.	Faith, Fairs and Festivals of India.	Buck (C. H.)
16.	Folk-tales of Mahakoshal.	Elwin (V.)
17.	Folk songs of Maikal Hills.	Elwin (V.)
18.	Folk Songs of Chhatisgarh.	Elwin (V.) Oxford University Press, 1946.
19.	Folk Songs of Garhwal.	Gairola (T.)
20.	Folk Element in Hindu Culture.	Sarkar (B. K.)
21.	Folk-literature of Bengal.	Sen (D. C.) Calcutta, 1920.
22.	Faith, Hope and Charity in Primitve Religion.	R. K. Marett.
23.	Folk-lore as an Historical Science.	Gomme.
24.	Great Folk-tales of wit and Humour	James. R. Foster.
25.	Hand-book of Folk-lore.	Burne C. S. Jackson London, 1914.
26.	Hatim's Tales.	Stein (A)
27.	Himalayan Folk-lore.	Oakley and Gairola (T. D.) Allahabad, 1935.
28.	Hindi Folk Songs.	Sherif (A. G.)
29.	Hindu Samskaras.	Pandy (R. B.)

30.	Hindu Manners, Customs and Ceremonies.	Dutrios and Beauchamp, Oxford Clarendon, 1953.
31.	History of Indian Art.	Coomaraswamy.
32.	Introduction to the Science of Comparative Mythology and Folk-lore	Cox (G. W.)
33.	Introduction to Folk-lore.	Cox (M. R.)
34.	Indian Serpent-lore.	Vogel.
35.	India in Kalidasa.	B. S. Upadhyaya.
36.	Jatak Tales.	Francis and Thomas.
37.	Legends of Vikramaditya.	Calcutta Oriental Publishing Co.
38.	Marxism and Poetry.	George Thomas.
39.	Meet My People.	Devendra Satyarthi.
40.	Motif Index of Folk-Literature.	Stith Thompson.
41.	Myths of Middle India.	Elwin (V.)
42.	Mythology of Aryan Nations.	Cox (G. W.)
43.	Primitive Art.	Boys (F.)
44.	Primitive Culture.	Tylor.
45.	Proverbs and Folk-lore of Kumaun and Garhwal.	Ganga Dutt Upreti.
46.	Pocket Treasury of American Folk-lore.	Botkin B. A., Pocket Book, N. Y. 1950.
47.	Popular Religion and Folklore of Northern India.	Crooke (W.) G. Press, Allahbad 1894.

48.	Psychology of the Emotions.	Thomas Ribott.
49.	Psychology and Folk-lore	R. R. Merett.
50.	Race, Language and Culture.	Franz Boas.
51.	Russian Folklore.	Sokolov.
52.	Sacred Tales of India	Dwijendra Nath Neogi.
53.	Superstition.	Ganga Prasad Upadhyaya.
54.	The Emotions.	James Mac.-Cost.
55.	The Folk-tale.	Stith Thompson
56.	The Folk Dance of India.	Projesh Benarji
57.	The Keys of Power—A Study of Indian Rituals and Belief.	Abbot (S.)
58.	The Mind of Primitive Man.	Franz Boaz.
59.	The Mythology of the Aryan Nations.	2 Vols. Cox. (G. W.)
60.	The People of India.	H. H. Risley.
61.	The Philosophy of Proverbs.	Disraele.
62.	Tree Worship and Ophiolatry.	Pillai, G. S. Annamalai Uns. Pubs. 1948.
63.	The Standard Dictionary of Folk-lore, Mythology and Legend.	Maria Leach. 2 Vol.
64.	Theatre of the Hindus.	Wilson. Vol. I.
65.	The Ocean of Story.	N. M. Penzer.

66. The Social Function of Art. — Radha Kamal Mukerji.
67. Tales of Punjab. — Steel (F. A.)
68. The Types of the Folk-tales. — Stith Thompson.
69. Totemism. — Frazer.
70. Village Folk of India. — Boyd.

JOURNALS.

Indian Antiquary, Folk-lore Journal, Indian Folk-lore, Indian Historical Quarterly, Man in India. The Modern Review, Indian Folk-lore, Journal of Royal Asiatic Society.

पुत्र-जन्म संबंधी एवं विवाहादिक अन्य गीत

मनरंजना

ऐरी ननद भावज पाणी को चालली मनरंजना
ऐरी नणदल मुखड़ा देक्खे, अहो मनरंजना
जो भाबो तुम ललना जनमोगी, अहो मनरंजना
तो हमें क्या दोग्गी नेग, अहो मनरंजना
कोई देंग्गे गले का हार, अहो मनरंजना
कोई देंग्गे गले की तिलड़ी, अहो मनरंजना
कोई पनिया भर घर को आई, अहो मनरंजना
कोई होय पड़े नन्दलाल, अहो मनरंजना
कोई हौले से गाओ बियाही, अहो मनरंजना
कोई नणद सुन दौड़ी आवै, अहो मनरंजना
बाजन का बाज्जा सुनकै, नणदल आई
कोई ल्याओ हमारी होड़, अहो मनरंजना
कोई कैसी तुम्हारी तिलड़ी, कोई कैसा गले का हार
अहो मनरंजना
कोई पलड़े में झूल्ले अहो मनरंजना
कोई ललना को लेआ खिलाय---अहो मनरंजना
कोई ले गई हठीली ललना, घर आँगन ना सुहाय
दे जा दे जा हठीली ललना, कोई ले जा गले का हार
अहो मनरंजना
कोई हलकी गढ़ा दो तिलड़ी, कोई हलका गले का हार
अहो मनरंजना
पहर ओढ़ अंगना ठाढी, कोई मुख भर दे आसीस
अहो मनरंजना

पैरों पड़ती के तोड़ लई तिलड़ी, मिलती का तोड़ लिया हार
अहो मनरंजना
राजा देखी हमारी चतुराई—पंचों में नाक कटाई
अहो मनरंजना
राजा देखी हमारी चतुराई, पैरों पड़ती का तोड़ लाई हार
अहो मनरंजना
गोरी कुछ ना करी चतुराई, पंचों में नाक कटाई
अहो मनरंजना
भाब्बो तुम भी पीहर जाना, कोई लाना बैल का सींग
कोई तुम भी गधे चढ़ जाओ, अहो मनरंजना

बूढ़े बाबा

[यह विवाह, शादी, पुत्रजन्म आदि मंगल अवसरों पर गाया जाता है]

स्यामी स्यामड़ा रंग लावै बूढ़ा बाबू
स्यामी काहे का पोलड़िया (रोटी) काहे का साग्ग (साग)
स्यामी मँहूा की पोलड़िया, बथुये का साग्ग
स्यामी है कोई जोगीड़ा, जो हिरना मारे मिडासे
एक में आखत, एक में बाखत एक में बूढ़ा बाबू
स्यामी जो की पोलड़िया, हिरने का मांस
ऐ परोस्से मेरी सदा रे सुहाग्गण जी मैं बुड्ढा बाबू
मेरी सासू ननद, मेरी बगड़ पड़ौस्सन
नू उठ बोल्ली तैं यू पंथ धाया चोरी
मैंने पूत बहू के कारन, मैंने धीय जमाई के कारन
भइया भतीज्जों के कारन, सिर साहब के कारन
मैंने यो पंथ चोरी धाया, घर भीतर मैंने आवत देक्खी
धीय बहुओं पूत बहुओं की जोड़ी
चौबारे मैंने चढ़ती देक्खी, धीय जम्माइयो की जोड़ी
मेरी सास ननद मेरी बगड़ पड़ौस्सन पड़ी झक मारो
मैंने यो पंथ धाया चोरी, धीय जम्माइयो के कारन

इसी अवसर पर 'भूमिया' का गीत भी गाते हैं—

लीप्पी पोत्ती गोबरी खेड़े की भूमिया
ऐरी कोई चन्दन जड़े हैं किवाड़ खेडे की भूमिया
गले जनेऊ पाटका ऐजी कोई मस्तक तिलक चढ़ाय
हो जग साँचे भूमिया
गले जनेऊ पाटका, खेडे की भूमिया
पावों चित्ती पाँवरी खेडे की भूमिया
ऐजी कोई सोरठ री तलवार——खेड़े की भूमिया
जिन खेडों पै तुम फिरो, खेड़े के भूमिया
ऐजी कोई व्हाँ क्यूँ चौकीदार जी
जिन खेडों पै तुम फिरो ऐ खेडे के भूमिया
धीयों का माई बाप, ऐजी कोई बहुओं का लगवाड़
खेडे की भूमिया
धीय रंगाओं चूंदड़ी, ऐजी खेडे के भूमिया
ऐजी कोई बहुओं के दक्खन चीर, हो जग साँचे भूमिया

महामाई का गीत

महामाई तू मेरी जगतार
आनन्दी माई तू मेरी जगतार
रानी जोहड़ पै घर तेरा
रानी ठंडे झौल्ले दीजै, महामाई
रानी आँबो तले घर तेरा, रानी सब डाली फल दीजै
महामाई तू मेरी जगतार
रानी थाली में एकमेली, महामाई की बाँकी हवेल्ली
रानी की थाली मेरे बतास्से, महामाई के वे हो तमास्से
रानी थाली में एक अध्धा महामाई का फिरै पियाद्दा
महामाई तू मेरी जगतार

चावण

चवन्डा दूध बिलोवे री चवन्डा
काहे के तेरा रही सै कड़ा
काहे को तेरा हंडा री चवन्डा

अनन्द छन्द के रही सँ कड़ा, मा ी की तेरी हाँडी चवन्डा
चवन्डा दूध बिलौवे री
अनन चनन के तेरे हेरे
सुरही गऊ का दूध री चवन्डा
चवन्डा दूध बिलौवे जी

[भूमिया पर जाकर तीनों साथ पूजे जाते हैं—चावण को बहन मानते हैं, भूमिया को भइया तथा महामाई को अगवानी।]

इसके बाद विवाह के अवसर पर ही सत्ती के गीत भी गाये जाते हैं जो इस प्रकार है :—

बड़े बगड़ से सत्ती निकली भैरों रे
भरे गोबर की हेल,
गोबर छिटका भूँ पड़ा, सो धरती ने लिया है सिंभाल
चौथ्ये, पाँचवे बगड़, से सत्ती आई,
आग छिटकी भूँ पड़ी, आग मेरी जी
कोई धरती ने लिया है बिजोख,[1]
छठे बगड़ से, सातवें बगड़ से अपने पुरखन के साथ
मेंहदी, बिछी, रोली, चुन्दड़ी, स्याही,
सुरमा कलावे बिछुवे, अनवट सब रंग लाई
उठो जी बहु बेटियों माँग लो, तुमारा सत्ती ने भरा है सिंगार
भैरों ने भरा है सिंगार

दूसरे गवाँ के गोहरे, भैंस्सें
भूरी भस बिकऊ
उठो जी मोल करो, तुम्हारी सत्ती रक्खा सौ
जिनके सौसठ घी चुवै कोई वो क्यूं रुक्खो खाय
मेंहदी, बिन्दी कलावे, सब रंग दियो जी
मेरे भइया ग्वाललिया दो लकड़ी चुग दे
मेरी मैंन महासती, दो ही चार जो ले
सारा बनखंड तेरे बावल का देस

---

१. चमक कर बुझाना।

मेरे भइया ढोलिया, गुहरा ढोल बजाय, मघरा[1] ढोल बजी
माय कहै धी सासरे, कोई सास कहै पीसाले[2]

हनुमान जी का जागरण-गीत

हनुमान हर के प्यारे
कौन तेरी माता, कौन पिता है, किन तेरा नाम धरा है
अंजनी माता, पवन पिता है, उन मेरा नाम धरा है
मैं तुझे बुझूं हे हनमन्ता क्या तुम्हारी बल भेंट
सवा मन का सवा रोट हमारा सवा गज का लंगोट्टा
सवा रुपया बल भेंट का, इक्कीस पान्नों का बीड़ा
इक्कीस लौंग का जोड़ा
जिनमें इतना न होवै हनुमन्ता वे कैसे संवारे
जिन पै इतना ना हो मेरी सखिया
हाथ जोड़ो विनती करो
सवा पाँच सेर का रोट तुम्हारा
सवा पैसा बलभेंट, एक पान का बीड़ा, एक लौंग का जोड़ा
सवा पाव का रोट तुम्हारा, सवा पैसा बलभेंट
एक पान का बीड़ा, एक लौंग का जोड़ा
सवा मुट्ठी का रोट तुम्हारा, सवा पैसा बलभेंट
एक पान का बीड़ा, एक लौंग का जोड़ा

दई देवता का जागरण-गीत

क्या तू बाम्मन क्या तू बनैनी
क्या तू बेट्टी राव की री
ना मैं बाम्मन, ना मैं बणेनी, ना मैं बेट्टी राव की री
घुरमल मल्याणे[3] की सकल बड़ाई
छज्जो बैठी तप करूँ जी

---

१. धीरे से । २. पीहर—माँ के घर । ३. शरदपूर्णिमा से पहले मेरठ जिले के पास एक जात लगती है, दंत कथा प्रचलित है कि एक अविवाहिता कन्या सती हो गई थी ।

एक दमड़ी का मैंने घिरत मँगाया
आई कढ़ाई सो किये जी

भात

[यह बड़ा भात कहलाता है और सब से पहिले इसे गाते हैं]

दो जने मेरे पिया मत आँवें,
धन मोढ़े पिया पालने
थारा खता होना मेरे पिया हमें ना सुहावे
म्हारा पीहर दूर बसे
थारे पीहर मेरी धन लिख भेज्जुं
राजदुलारे तेरे भातिये
थारो चिट्ठी मेरे पिया रही डाल
म्हारा संदेशा दूर गया
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
सुनरा को गहना गढवात्ता
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
बजाज्जे मे कपड़ा सिलवात्ता
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
ठठेरे के बरतन बिसवात्ता
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
जड़िये के गहना जड़वात्ता
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
पटवे के गहना बिलवात्ता
इब आये भाई जो ठीक दुपहरी
तम्बू ताने मेरे बड़ तले
क्या तोरे भाई मुगल पठान
क्या बनजारे उतरे
ना हम मेरी बोब्बो मुगलपठान
ना बनजारे उतरे
हम कहिये ऐ बोब्बो 'सुलक्षणा' के बीर
'बेदमित्र' के बड़े भातिया

'धर्ममित्र' के बड़े भातिया
'विश्वामित्र' के बड़े भातिया
'शकुन्तला' के बड़े भातिया
इब लूंगी रे भाई जाय ढोल बजाय
अपना परियर[1] जोड़ के
इब पहले रे मेरा सुसर पहरा
ससुर समेत्ती सास को पहरा
इब दुज्जै रे मेरा जेठ पहरा
जेठ जिठानी जिठौत को. . .
इब तिज्जै रे मेरा देवर पहरा
देवर दुरानी देरौत को. . .
इब चौत्थे मेरा नन्दोई पहरा—
नन्दोई, नन्द, नन्दौत को. . .
सबसे पिच्छे रे अपणी बैहण पहरा
बैहण बहनोई अपने भान्जे को. . .
इब पहरा रे मेरा सब परवार—
खडी लखावै मेरी गोतना
इब जाऊँ बोब्बो बजाज्जे की दुकान
आऊँ पहराऊँ तेरी गोतना
इब जिम्मो तेरी गोतना
इब जिम्मो रे मेरे देवर जेठ
पत्तल चाट्टे मेरे भातिए
इब भाग्गो रे, मेरे भाई जावें आध्धी रात
मुस्सल दे लिया काँछ में
मेरा मुस्सल माई जाये देता जा
दुरानी जिठानी का साम्नला

सीठने

"तू तो 'प्रेम' पतला, तेरी जोरू मोट्टी
आप खावें घी चूरमा, तुझे जौ की रोट्टी

१. परिवार।

आप सोवे सुख सेज पै, तुझे टूट्टी खटोल्ली
ऐसा काला तू बना रे प्रेम, जैसी उड़द की दाल
दाल हो तो धोय लूं, तेरा रंग न धोया जाय रे

बरातियों पर व्यंग्य

हमने बुलाये सुथरे सुथरे, मुंडे मुंडे आये री
हमने बुलाये लम्बे लम्बे, मोटे नाटे आये री
हमने बुलाये बड़े घरों के, ओच्छे ओच्छे आये री
हमने बुलाये गोरे गोरे, काले काले आये री
हमने बुलाये हाथी के हौद्दे, गधे चढ़ के आये री
छाज का चेवर डुलाया, झाड़ू का है सेहरा जी

बरातियों को खिलाते समय

माँ तुम्हारी नटनी, बाप तुम्हारा नटुआ जी
तुम सारे भाई बनजारे, बहन तुम्हारी बाँदियों सी जी

लड़की के बिदा का गीत

जिद्दिन लाड्डो तेरा जनम हुआ है, जनम हुआ है
हुई है बजर की रात
पहरे वाले लाड्डो सो गये, लग गये चन्दन किवाड़
टूट्टे खटोल्ले तेरी अम्मा पौढ़े, बावल गहर गम्भीर
गुड़ की पात तेरी अम्मा पीवे, टका भी खरचा ना जाय
सौसठ दिवले बिटिया बाल धरे हैं,
तब भी तो गहन अंधेर
जिस दिन लल्ला तेरा जनम हुआ है, हुई है सुरन की रात
सूतो के पलंग लल्ला अम्मा भी पौदे, सुरभि का घिरत मंगाय
बूरे की पात तेरी अम्मा तो पीवै, बाबल लुटावै दाम
एक दिवला रे लल्ला बाल धरा है, चारों ही खूंट उजाला
जिद्दिन लल्ला तेरा जनम हुआ है, हुई है सुरन की रात
पेट भी सून्ना, आँगन भी सून्ना लाड्डो, चली बावल घर त्याग
घर में तो उसके बाबल रोवैं, अम्मा बहन उदास

कोठे से निकली पलकिया, निकली पलकिया
आम नीचे से निकला डोला, भइया ने खाई है पछाड़
कोयल शब्द सुनाई
खेल क्यूं ना ले लाड्डो, कौले की गुड़िया
मिल क्यूं ना ले संग की सहेली
कैसे खेलूं रे बाबा कौले की गुड़िया
अब कैसे मिल लूं संग की सहेली
सासू के जाये ने झगड़ा है डाला, अब नहीं मिलनहार जो
माय कहे बेटी नित उठ आइयो, बाबल कहै छठे मास
भइया कहै बीबी, काज परोजन, या भतीजे के काज
क्या आई रे बाबा काज परोजन या भाभी के जाये
क्या आई रे बाबा सावन की तीजो,
क्या रे भतीज्जों के ब्याहें
डोले के पीछे बाबा भी चलिया, रथ पकड़ा है डाँड
मेरी तो बेटी रे समधी के महलों की बाँदी,
हम बंदे तेरे गुलाम
ऐसा बोल ना बोल मेरे लायक समधी
तुम्हारी तो बेटी मेरे महलों की रानी,
तुम हमारे सिर के ताज
लटुआ खेलत बीरन छोड़े, अब भैय्रा भई पराई रे
महल तले तें निकली पलकिया, तो कोमल शब्द सुनाये रे
अब काहे बोले बन की कोयलिया,
मैंने छोड़ा बाबल का देस रे
हे अंगुलिया पकड़ छोटा बीरन रोवे,
अब भैय्रा भई पराई रे
जा सिदरा[१] के कारन बाबल, छोड़ा देस तुमारा रे
भैय्रा भई...
धनवाला दीन्हा, दहेजवाला दीन्हा,
दीन्हीं बच्छा संग गाय रे
बाबल ने दीन्हा अन्धड़ सोन्ना, अम्मा ने दीन्हा अन्धड़ दहेज

१. सुहाग।

एक न दीन्हीं बाबल गंगाजल झारी
रूठा जाये दामाद रे—भैन्ना. . .
जा सिंदरा के कारन बाबल, छोड़ा देस तुमारा रे
अब भैन्ना भई पराई रे,
धनवाला दीन्हा, दहेजवाला दीन्हा,
दीन्हीं बच्छा संग गाय रे,
बाबा ने दीन्हा अन्धड़ सोन्ना
अम्मा ने दीन्हा अन्धड़ दहेज़. . .
एक न दीन्हीं बाबल सिर की जो कंघिया
सास ननद के सहे बोल रे,
जा सिंदरा के कारन बाबल, छोड़ा देस तुमारा रे

बधावा [बेटी विदा के बाद यह गाते हैं]

बधावा 'सरवती' की कोख
बधावे रे मैं बेल गई
जिसने जाया 'बेदमित्र' पूत
बधावा रे. . .

इसी प्रकार सभी बेटे, बहुओं का तथा लड़कियों का नाम लेते हैं तथा सब टेहले बन्द होने के समय बड़ाई गाते हैं जो इस प्रकार है—

सोन्ने की म्हारे 'वेदमित्र' थारी कलम
रुप्पे[1] की दबात
लिक्खा करो बादसाहो, उमरावो सा
धन्नि जननी थारी माँ
[जितने लड़के हों उनके नाम लेना]

बड़ाई [यह आशीर्वाद का ही एक रूप है]

थारे म्हारे चन्द्रभान बार[2] में
बेदमित्र-धर्ममित्र बार में
नीम झलारे ले

१. घर में। २. चांदी।

आँगन डौल खटौलना तपै
बेट्टों पोत्तों का सुख देख

चौरा सिलाने जाते समय

[लड़की के विवाह के पश्चात् सब टेहले बन्द करते हैं तथा मंडप के नीचे की हवन की राख आदि सब वस्तुएँ ले जाकर—जोहड़ या नदी में सिला देते हैं। इसी समय स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं]

खड़ी महल पै कोड्डा सिवारूँ थी—
राजा जी का पाला तोत्ता जुग जुग देक्खे जी
उड़ जा रे तोत्ते राजा धोरे जइयो
मेरे मरम की तोत्ते राजा को सुनाइयो रे
खड़ी महल पै बिछी संवारूँ थी

[नेकलिस, घड़ियाँ, पायल, चुन्दरी आदि सभी आभूषणों का नाम लेते हैं]

धूप पड़े री मेरा कोड्डा तपै
चिरे वाले असल डुपट्टे की छां करै
छाँय करै री हमें जाड्डा लगै
दिल्ली में लड़े अंगरेज—मेरठ में मेरा जेठ लड़े
छज्जों पै लड़ै छोटी सौंक, हजारी रे बलमा बणज करै

[बिंदी, टीक्का, आदि सभी आभूषणों का नाम लेते हैं]

गौना संबंधी गीत

मेरी काली चोट्टी ऊण की धरी पुरानी होय
जिब देक्खूं जिब रोय पड़ूं मेरा कद मुकलावा होय
मेरे साथ की छोरियाँ गोड्डो में लाल खिलावें
जा मेरे बेट्टा, जा मेरे बेट्टा, सासरे की राणी
दाल राँधी फुलने पोये, आल्लू की तरकारी
ओ आज्जा जिज्जा जीमने, जिमावें छोट्टी साली
ताई चाच्ची तीहल दिखावै, मा दिखावै टूल
बड़ी भावज नै चाव लग रह्या, बन्दरवार संवारे
जा मेरी बेट्टी जा मेरी बेट्टी, सासरे की राह
दरवाज्जे में यू रथ थमा, देक्खे मेरा बाप जिमाई
सारी छोरी कट्ठी होय के, गई सीम के भार
कौल्ली भर के रोवण लाग्गी, म्हारा कदी कदी का प्यार

रोया नीं करते, रोया नीं करते
जा मेरी बेट्टी, जा मेरी बेट्टी, रोया नीं करते
माँ बाप्पों का लीया दीया खोया नीं करते ।

जवानी सनन न सन्नावै जैसे अंगरेज्जों का राज
लिख लिख चिट्ठि सुसरे पै भेज्जू सुनो सुसर मेरी बात—जवान्नी. . .
गौने का गुड़ जल्दी भेजो पीहर डटा ना जा—जवानी. . . .
सुनो बहुअल मेरी बात, बेटा मेरा पढ़े फारसी
चार महीने गम खा, जवान्नी सनन न. . .
लिख लिख चिठिया जेट्ठा पै भेजती—सुनो बहुआ. . .
लिख लिख चिठिया सइयां पै भेजती—सुनो सइयाँ. . .
हम तो पढ़े हैं इसकूल में,
तुम और क्या कर लो—जवान्नी. . .

वृद्ध की मृत्यु पर उलाहणी

अए हए बड्ढे का मरना, हरी हरी बोल
तेरे बेट्टे मूंड मडाइयो, बुड्ढे का मरना
बहुआं खेस खिडाइयो री, के हरी हरी बोल
पोत्ते चंवर ढुलाइयो धेवते संख बजाइयो
बुड्ढे का मरना—
बेट्टी सीस धुनाइया नीं
बागों बीच उतारियाँ, बुड्ढे का मरना. . .
ए कौन परी परमात्मा रे, हरी हरी बोल
गऊओं दान कराइयाँ
सुरग बिमान चढ़ाइयाँ, बुड्ढे का मरना. . .
चन्दन चिता चढ़ाइयाँ गंगाजल ले नहलाइयो री,
हरी हरी बोल
फूलों का हार चढ़ाइयो, गुलाल अबीर उड़ाइयो,
बुड्ढे का मरना. . .

इसी समय का एक अन्य गीत :—

अर धुर दिल्ली से आइयो वै, झमक रही फौजें
अर काहै का तेरा साँतरा वै, झमक रही फौजें
ऐ फूल्लों का मेरा साँतरा वै, झमक रही फौजें

[जिसका पति मरा है, उसी स्त्री का नाम लेते हैं।]

ए काट्टों का मेरा साँतरा वै, झमक रही फौजें
ए काहे बाड़ बंधाइय वै, झमक रही फौजें
ए लोग्गो बाड़ बंधाइयो वै, झमक रही फौजें
ए पान्नों छप्पर छवाइया वै, झमक रही फौजें
ए मखमल दरी मगाइयो वै, झमक रही फौजें
ए सात्तो बाज्जे बाज्जैं रे, झमक रही फौजें
ए भरे बजारो निकले वै, झमक रही फौजें
ए लोग महाजन बूझें वै, झमक रही फौजें
ए कौण मरा धर्मात्मा वै, झमक रही. . .
ए कौण हत्यारी री, झमक रही. . .
ए गोड्डा देकर मारिया रे झमक रही. . .
ए गंगा किनारे तारियाँ रे ––झमक रही. . .
अरे जल का लिया अधार––झमक रही. . .
ए मोत्ती का दान कराइया रे––झमक रही. . .
ए सोन्ने ताँब्बे का दान कराइया रे. . .
ए गईएँ दान कराइया रे––झमक रही. . .
ए भूक्खा करके मारा रे. . .
ए बहुओं खेस खिडाइयाँ रे
ए बहुओं को रोना ना आवै
ए बेट्टो मूंड मुंडाइयो रे
तेरी बहुओं की रोवै बलाय
एक पोत्तों चँवर डुलाइयो
धेवतों संख बजाइयो

भजन––गंगा का

गंगे तू मोहे मिल ले, मोहे मिल ले मेरी माँ
गंगा तू मोहे. . .
हाथ में लोट्टा, बगल में धोत्ती, सखियाँ बुलावन जायें
मोहे मिल ले. . .
कपड़े उतार धरे री पाल पै, जल में डोब्बा है पैर
गंगे तू मोहे. . .

पहली गुचकी मारी गंगे मइया, कटे जनम के पाप
गंगे तू मोहे. . .
दूज्जी गुचकी मारी गंगे मइया झड़ झड़ पड़े हैं
गंगे तू मोहे. . .
तीज्जी गुचकी मारी गंगा मइया
पितरों की मीत, सखी सहेलियों की मीत
गंगा तू मोहे. . .

देव उठावनी एकादशी

उठ नारायण बैठ नारायण
चल चने के खेत नारायण
मैं बोऊँ तू सींच नारायण
मैं सींच्चू तू गोड़ नारायण
मैं गोड़ूं तू ढो नारायण
मैं काट्टूं तू ढो नारायण
मैं ढोऊँ तू गहाये नारायण
मैं गहाऊँ तू उड़ाये नारायण
मैं उड़ाऊँ तू ठाये नारायण
कोरा करवा ठंडा पानी
उठो देव पियो पानी

एकादशी

बरतों में भारी एजी इकादसी
जिसके री अंगना सुच्च संगम
नित उठ आवै री गिरधारी एकादशी, सब बरतों में. . .
जिसके री अंगना नेम धरम नीं
उस घर नी आवेंगे मुरारी, सब बरतों में. . .
जिसके री गंगा बहत है नाहने को मीरा
आवै, गिरधारी अरि एकादशी, सब बरतों में. . .
जिसके री अंगना में तुलसी का बिरवा
सिच्चन को मीरा आवेंगे मुरारी अरि
गिरधारी—बरतों में. . .

जिसके री अंगना गऊँ का खुंटा
अरि बुलाने को मीरा आवै गिरधारी---बरतों में. . .
जिसके री अंगना सिव का सिवाल्ला
अरि पूजा को आवै गिरधारी---बरतों में. . .

इतवार का गीत [उद्यापन करते समय]

क्या तून्ने पग से पग मलि धोया
बैठ के गंगा जी के पाले[1] मेरे राम
क्या तून्ने उपले से उपला फोड़ा---बैठ रसोई के बीच मोरे राम
क्या तून्ने फूट्टि थाली में भोजन दिया, बैठ रसोई के बीच
क्या तून्ने सास ननद सताई, क्या जिठान्नी रहौवकी[2] मोरे राम
या तून्ने अपना पुरख उनींदा[3], बैठ सहेलियों के बीच मेरे राम
क्या तून्ने बासनी[4] बत्ती बाल्ली, सूरज कुंड गये मेरे राम
क्या तून्ने मलिया के बैंगन चरोये, क्या पनवाड़ी के पान मोरे राम
क्या तैन्ने चोखती गऊ बिदासी[5] चौखती बछड़ा हटाया मेरे राम

एकी परछाछती हमको लाग्गा
गऊ साल में होई मेरे राम
पंड्या-पंडत बेगी बुलाओ,
इनका अरथ बताओ मेरे राम
सुरभी गऊ की गऊ मंगाओ,
नीचे बच्छा चूक्खे मेरे राम
सोने की सींग चाँदी की खुरियाँ,
उप्पर पिताम्बर उढ़ाओ मेरे राम
कांसी कटोरा लोहा झारी, अन्न का पुन्न कर दिये दान
सागर ताल खुदाये सपुत्ती ,
तेरा पुन्न ले झिलोरे मेरे राम
राजा रानी दे परिकरमा, पोकरी जल भरि आया मेरे राम

---

१. किनारे। २. मारी। ३. बुराई की। ४. दिन छिपे। ५. हटाई।

बसौड़ा—माता पूजने का

आया है चैत सुहावना, मेरे मन को लगा उम्हाओ
मैं तो जाऊँगी, ललता की जात को
ललता का बाग़ सुहावना और लटक रहे नींबू अनार
माली गूंद रहे हार और जातियों के गले में पहरा
ललता का ताल सुहावना और हंसा करें हैं किलोल
मैं तो जाऊँगी, ललता की जात
और जाति ये मल मल न्हाय री
ललता की कूवट सुहावने और झमक रही पनिहार
और जाति ये पीवें ठंडा नीर मैं तो जाऊँ. . .
और दोघड़ करवा हाथ
मैं तो जाऊँगी ललता की जात को
ललता का नगर सुहावना और बसैं छतीसों जात री
आधे में बाम्भन बाणिये और आधे में महाजन लोग रे
मैं तो जाऊँगी ललता की जात को
ललता का भवन सुहावना
चौरासी घंटा बाज्जे री मैं तो जाऊँगी, ललता की जात को
और गोद झंडोले पूत री और पंडों की ललकार री
और पंडों की ललकार री, और नारियल बतास्से चढ़ाई री
और छतर पंजी (पाँच पैसे) चढ़ाऊँ री
मैं तो जाऊँगी ललता की जात
खोलो हो चंदन किवाड़ जी, और जाति ये खड़े तेरे बार जी
और गोद झंडोले पूत रे—मैं तो....
परस रही परसाय रही, और लो पुत्तर घर आओ री
दूध अर पूत तुमैं भौत री

भजन—चन्द्रहास

जल्लादों के हाथ सौंप दिया, घणा करम का हेट्टा करके
बिना खोट क्यूँ मारण लाग्गा, बेवारस का बेट्टा करके
जो होत्ता मैं साहूकारों का बालक, तुम कौण थे हाथ उठावणवाले
तड़प तड़प के मरा करते, गरीब्बों का बंस मिटावणवाले
हिरनाकुस अर कंस कहाँ गये, कहाँ गये बेट्टे रावणवाले

साठ हजार सरग के मर गये, अपने को बड़ा बतावणवाले
आनंदपाल खटपाल चले गये ले गयी मौत समेट्टा करके
गरीब आदमी जीओ जाओ, पर दुनिया में आराम कहाँ है ?
एक बात माता जिब नूँ पुच्छेगी, मेरा चन्दरहास गुलफाम कहाँ है
ऊँची पड़ पड़ पुच्छेगी बच्चे तेरी हड्डी चाम कहाँ है
मेरी माँ को मेरी ल्हास दे दिये, दिल अपणे नें ढेट्टा[1] करके
दुनिया धोखे की टट्टी, प्रानों का एक बहान्ना रहग्या
मारणवाले हाथ थामले, एक काम बतलाणा रहग्या
नौ महीने रह्या माँ के पेट में, उसका जबर उलाहणा रहग्या
इकलौत्ता जिब बेट्टा मरजा, माँ का कड़े[2] ठिक्कान्ना रहग्या
जिब काली बदली उठा करे थी, मन्ने घर में लकोवै[3] थी जेट्ठा[4] करके
बिना खोट क्यूँ मारण लागा, बे बारस[5] का बेट्टा करके
जल्लादों के हाथ सौंप दिया, घणा करम का हेट्टा करके
मारणवाले हाथ थाम ले, आँख काढ़ कै तू मुझे डरा रह्या
मैं तो भाई आदम देई—पर कीड़ी नै भी जी है प्यारा
मेरी खबर वो लेगा जिसने हिरनाकुस को मारा
एक भजन में 'नत्थू' लिख दे, शंकर ने शंकर को तारा
कहै 'बलवन्त' ध्यान हरी का धरले काय कमा लिया मेट्टा करके
बिना खोट क्यूँ मारण लागा, बे वारस का बेट्टा करके
जल्लादों के हाथ सौंप दिया, घणा करम का हेट्टा करके

पूरन भगत

आज तो रे पूरण मासी के बलाव
आजा रे पूरण हाथ मिला ले
तें तौं री मास्सी धरम की री माता
माता तो पूरण उसने कहै रे
जिसने पेट पाड़ कै जनमें
चलते का साफा उतार लिया
आवण दे उस पिता तेरे ने दो झुट्टी दो साच्ची रे लाई

---

१. कठोर। २. कहा। ३. छिपाती थी। ४. सबसे बड़ा लड़का होने के कारण (जनविश्वास है कि सबके बड़े लड़के पर बिजली गिरने का डर रहता है)। ५. बिना माँ-बाप का।

आज तो जी पूरन महलों में आये
तौं तू तिरिया झूठ बोलती
लाल मेरे के दोस लगावै
कोरा रे कागद महल मँगाया
लिख कर खुट्टी पै रख दिया तौ
पूरण मल ने ओ बाँच लिया अक री मासी राम दिया चारा
पूरनमल का मूं कर दिया काला
आग्गे आग्गे डोला झूट परी का, पिच्छे री घोड़ा पूरन मल का
चिर भर उँगली मूंगफली से पतली रे पतली हूर परी सी
मोही रे मोरी आँख डली सी
लम्बी रे लम्बी नाक सुआ सी

गोपीचंद

बगड़-बिचाल्ले[1] चंदण चौक्की
गोपीचंद न्हाण संजोया हो राम
छज्जो बैठी अम्मा रोवै उसके आँसू गिरे हैं राम
ना कहीं घटा ना कहीं बदली बूंद कहाँ से आई हो राम
आगम छोड्या पाच्छम छोड्या, देस बैहण कै पौंहचा राम
जाये दुआरे अलख जगाई ला माई भिच्छा की जल्दी हो राम
लै कै भिच्छा बाँदी आई, ले रे जोगी तू भिच्छा हो राम
तेरे तो हाथ हरगिज भी न लूंगा
लूंगा बैहण चन्दरावल हो राम
उल्टी फिरकै बाँदी भिच्छा ले गई
मेरे हाथ की ना लेत्ता राम
भर कै थाली कौली चन्दरावल रोई, किसपै छोडे बालक नन्हे
किसपै कँवारी कन्या हो राम
घर में छोड्डे बालक नन्हें महलों में कँवारी हो कन्या हो राम
किसपै छोड्डी सोड़स राणो, किस पै बुढ़िया सी माता हो राम
कपड़े पाड़ूं केस खिड़ाऊँ मैं बण में ले जाओ
जो भैया घर में केस खिड़ाऊँ मैं बण में ले जाऊँ
जब वो भैया महलों में आई, बीरा रमते हो गये हो राम

1. आंगन के बीच में।

कोट्ठे चढ़ कै देक्खण लाग्गी कहीं ना दिक्खे गोपीचन्द बीर
निच्चे गिर के मर गई है, सहरों में पड़ी है दुहाई

अमर कथा

[यह सबेरे के समय कभी भी गाया जाता है।]

कहे गबरजा हमें सुना दो अमरकथा सिव मेरे पती
सैल करन को चली गबरजा रस्ते में मिल गए नारद मुनी
तेरे पती पै अमर कथा है
सुनती क्यूं ना पारबती
व्हाँ से चल कै आई गबरजा
शिवशंकर ज्ञानी धोरे कहे गबरजा
सिव जी बोले पारबती से
ज्ञान तुझे किसने दीना
कहे गबरजा सिवसंकर से
ज्ञान मेरे गुरु ने दीना
बारा बरस तैं इन्हीं बनो में
आज हुई तम परबीना
हमी तो रह गये मरन जीवन को
आप पती तम अमर भये
अमरनाथ ने अमरकथा की
अपने दिल में ठहराई
शेर का रूप धरा सिव जी ने
दिल भर कर गये मैंमाने[1]
एक हाथ त्रिशूल लिया है
जनवर सब उड़ा दीन्हें
कैलाशी काशी के वासी
उतराखंड बासा छाया
लगा कै आस्सन बैठ गये हैं
उत्तराखंड दरम्याने

---

१. आश्चर्यचकित।

पारबिरम का खेल हुआ
जब पारबती को जगवाई
आलस भर के उठी गबरजा
नाथ मैं सुनने नहीं पाई
इन बनों में हम तुम दोनों
हुँकारा किसने दीन्हाँ
ध्यान लगाकर देक्खा शिवजी
इक तोत्ते की बड़ी रती
पलक उठा कै देक्खा सिव जी ने
क्रोध भया सिव जी के मन में
एक हाथ त्रिसूल लिया
तीनलोक में फिरै है तोत्ता
कहीं ठिकाना नहीं पाया
अपने कोट्ठे व्यास की पत्नी
उसके मुंह में समाया
बारा बरस की लगी समाधी
तोत्ता लिकड़न नहीं पाया
व्यासदेव घर पुत्र हुए हैं
पुत्र हुए बड़े जती सती
अमरकथा का बड़ा महात्तम
जो नारी सुनले पावै
आप तरैं और कुल को तारै
फेर जनम नहीं आवै

झुलने का गीत

चन्द्रावल (सावन)

ननद भावजिया का प्यार, दोनों पाणी को निकली जी
अब रुत आई मारू बीजण
बिब्बी कुए पै घड़ला उतार, फौज पड़ी बारे मुगलों की
बिब्बी चन्द्रावली हुसनदार थी,

दे लई तम्बुओं के बीच वारे मुगल के न
हार बेच्चूं अपणा जो छुड़ाऊँ बिब्बी चन्द्रावली
जैसे केले की गोब
हार म्हारे घर घणे, बिब्बी ना छूटै चन्द्रावली
जैसे केले की गोब

अब रुत आई मारू बीजण
जाओ भाब्बो घर आपने थारी कुछ ननीं बिसात
खाना ना खाऊँ वारे मुगल का——
अब रुत. . .

घर पहुँची भावजिया सास से करै विचार
फौज पड़ी रे वारी मुग़लों की, बिब्बी लई तम्बुओं के बीच
बाबल सुन कै रो पड़े, भइया ने खाई है पछाड़
बेटी छुड़वाऊँ चन्द्रावली, जैसे केले की गोब
अब रुत. . .

सोहरा सुनकै रो पड़ा, जेट्ठा ने खाई है पछाड़
बहू छुड़ाऊँ चन्द्रावली, जैसे केले की गोब
वे राजा बेदरदी सुन कर हंस पड़े जी
ऐसी लाऊँ दोय चार, जैसे केले की गोब
अब रुत . .

बाबल बेच्चे जौ चने, भइया बेच्चे अलड़ी जुनार
बहण छुड़ावै चन्द्रावली, जैसे केले की है गोब
अब रुत. . .

सोहरा बेच्चे बाग बगीच्चा, जेट्ठा बेच्चे कुए ताल
राजा बेच्चे कड़े हंसली, छुड़ाऊँ राणी चन्द्रावली, जैसे केले की गोब
अब रुत. . .

बाप बोल्ला अरथ दूंगा, डेढ़ से गड्डियों का ओढ़
बेट्टी बहण छुड़ावै चन्द्रावली जैसे केले की गोब
अब रुत आई. . .

बहली[1] दूंगा डेढ़ सौ घोड़ी दूंगा सौ साठ
वइ छुड़ाऊँ चन्द्रावली, जैसे केले की गोब
अब रुत...
राजा कहै राणी दूंगा डेढ़ से, रण्डियों का ओढ़ नाछोड[2]
राणी छुड़ाऊँ जैसे केले की गोब, अब रुत ..
अरथ म्हारे हैं घणे, गड्डियों का ओढ़ न छोड़
बेटी बहन ना छुटै जैसे केले की गोब
अब रुत...
बहली म्हारे सौ डेढ़ से, घोड़ों का ओढ़ न छोड़
बहु छुटै न चन्द्रावली—जैसे केले की गोब
अब रुत...
राणी म्हारे है घणी, रण्डियों का ओड़ न छोड़
राणी चन्द्रावली ना छुटै, जैसे केले की गोब
अब रुत...
जाओ बाबल भइयाँ घर आपणे जी
थारी कुछ ना बणै बिसात
लाज रक्खूं टोप्पी की जी, खाना ना खाऊँ वारे मुगल का जी
जाओ ससुर जेट्ठा घर आपणे,
थारी कुछ न चले बिसात
लाज रक्खूं चौध्धर पटवारी की जी,
खाना ना खाऊँ वारे मुगल का जी.
जाओ कन्था जी अपने देस लाज रखूं थारी टोपी की
खाना न खाऊँ वारे मुगल का
जाओ रे मुगल के पाणी भर के लाए
प्यासी मरे चन्द्रावली अब रुत आई...
मुगल का छोकरा डोलची ढाप कै चल दिया
गया कुये के धीरे, कुये के घोरे
तम्बुओं में दे लई आग चन्द्रावली, अब रुत आई...
तम्बुओं में लग गई आग, खड़ी जलै चन्द्रावली

१. छोटे रथ के समान सवारी जिसका प्रयोग अब भी गावों में होता है। बहू-बेटियाँ पर्दे के साथ इन्हीं में बैठ कर आती-जाती हैं। २. कोई अभाव नहीं, बहुत अधिक है।

जैसे केले की गोब
पाणी लाया मुग़ल का, गया खाय पछाड़
क्या हुई मेरे ख़ुदाय
देखी ना भाल्ली, देखी थी चाखी नहीं
ये जले चन्द्रावली, जैसे केले कैसी गोब

सावन

कचेरी बैठन्ते म्हारे ससुरे भले जी,
के आई रुत सावन की
हम क्या जाणे म्हारी बाली बहू री
अपने जेट्ठा जी से पूच्छो के आई...
भूरी बुहात्ते म्हारे जेट्ठा भले जी, के आई...
भइया-जाये आये लेणेहार, कहो तो भइया संग जाऊँ
के आई रुत सावन की
मैं क्या जाणूं मेरी छोटी भावज, के आई रुत...
छोटे जी से, अपणे देवरा जी से पूच्छो, के आई रुत...
गेंद्दो खेल्लें म्हारे देवरा भले,
के आई रुत सावन की
कहो तो भइया संग जायें, के आई...
हम क्या जाणे म्हारी बड़ी भावज जी, के आई...
अपणे नणदोइया जी से पूच्छो के आई...
गद्दे बैठ्ठे वे, म्हारे नणदोइया भले जी, रुत...
कहो तो भइया संग जायें, के आई...
हम क्या जाणे म्हारी बाली सलज, के रुत...
अपणे राजा जी से पूच्छो, के आई...
चौप्पड़ खिलन्ते म्हारे राज्जा भले, के आई...
जितणा कोठ्ठे में का नाज, भला जी रुत सावन की
सारा तो पीस के जइयो, के आई रुत...
जितणे अम्बर में तारे, भला जी रुत सावन की
इतणी कचौरी बणा के जइयो, के आई रुत...
जितणे पिप्पल के पात, इतणी रोट्टी पोके जाइयो, के रुत...

फागन

कच्ची अम्बली गदराई रे फागन में
राँड लुगाई मस्ताई फागन में
कहियो रे उस ससुर भले से, चाल्ला लेकर आ फागन का
बिना मुकलाई ले जा फागन में, कच्ची कली. . .
कहियो री उस बहू भली से, चार महीने गम खावै पीहर में
कच्ची अम्बली. - .
कहियो री उस बहू भली से,
चार महीने गम खावै पीहर में, कच्ची. . .
कहियो री उस जेठ भले से
चाल्ला ले करवा फागन का
बिना मुकलाई ले जा फागन में—कच्ची. . .
कहियो री उस बहू भली से,
दोय महिन्ना गम खावै रे पीहर में—कच्ची. . .
कहियो रे उस देवर भले से,
चाल्ला ले करवा फागन का—बिना. . .
कच्ची रे. . .
कहियो रे उस बहू भली से,
एक महीना गम खा रे पीहर में
कच्ची. . .
कहियो रे उस राजा भले से,
चाल्ला ले करवा फागन का
बिन मुकलावा ले जा फागन में,
कच्ची. . .
कहियो रे उस गोरी रे भली से,
ठाड़ा खसम कर लेगी पीहर में. . .
कच्ची. . .

चरखे का गीत [क्रिया-गीत]

मैं बाणो को जाऊँगा मैं चंदन रूख कटाऊँगा
मैं चरखा बनवाऊँगा
मेरी पतली गोरी, कात्तेगी अक ना

कात्तूंगी दिन रात, मेरे तकवा तो ना
बिजनौर को जाऊँगा, मैं तकवा वहाँसे ल्याऊँगा
मेरी पतली गोरी, कात्तेगी अक ना
मेरे अच्छे राज्जा जी, मैं माल बटवाऊँगी
मैं तेरे धोरे ल्याऊँगी
मेरी पतली गोरी कात्तेगी अक ना
मेरे अच्छे राज्जा जी कात्तूंगी दिन रैन
इसमें चकमक तो है ई ना
मैं जंगल कू जाऊँगा, मैं चकमक बनवाऊँगा
मेरी पतली गोरी कात्तेगी अक ना
मेरे अच्छे राज्जा जी कात्तूंगी दिन रैन
मेरे पै पीढ़ा तो है ई ना
मैं बाढ़ी पास जाऊँगा मैं पिढ़ला बनवाऊँगा
मैं तेरे ताई लाऊँगा
ऐ मेरी मिज्जाजन गोरी, नखरों कात्तेगी अक ना
कात्तूंगी दिन रात, मेरे पै रुई तो है ई ना
मैं धुने पास जाऊँगा
मैं रुई पिनवाऊँगा, मैं पूनी बनवाऊँगी
मेरी अच्छी गोरी, मेरी पतली गोरी कात्तेगी
मेरे सुध्धे राज्जा, मेरे अच्छे राज्जा मुझपै कात्ता भी ना जा
मैं पीहर जाऊँगा, मैं तुझे लखाऊँगा
तेरी नाड़ काट्टूँगा, तेरा चुड्डा पाड़ूँगा
गाँ के चारों तरफी फिरवाऊँगा

चक्की का गीत

चक्की पै धरा पीसणा रे पत्थर फिरताणी
मेरी सास बड़ी जल्लाद री, मैंन्नें ठावै आध्धी रात
कोरा सा कागद लाओ लिख्ख भेज्जूं पती के पास
सबेरा घर को अइयो री, म्हारी रात्तों ना लगती आँख
मेरी बैहण भनेल्ली पूछ रीं, कैसे थारे भरतार
टसरी की धोत्ती कर रहे री, जिण के गल में हरा रुमाल
गोरी सच्ची बात बता दे रे, तुम पै क्या आई जवाल
थारी अम्मा बड़ी छिनाल पिसावै आध्धी रात

सामयिक एवं समाज संबंधी गीत

हिन्दू-मुसलमान संबंधी [पाकिस्तान के संबंध में]

टेसन ऊप्पर छोरी रोवै मुसलमाण की
बाबूजी मेरा टिकस काट दो पाकिस्तान की
ना तेल्ली, ना धोब्बी की, असल पठान की
दोधड़ ठावके पाणी नै चाल्ली तेरा कब्जा ढ़िल्लाए
किस आसिक को मोहेगी, ए तेरा बोल रस्सिल्ला ए
मेरे महल में अइयो रे देवरा बात बताऊँगी
जो तुझे लाग्गे प्यास मैं बोत्तल ल्या दूंगी
मिट्ठी मिट्ठी बोल री भाब्बी तू मुझे बुलावेगी
चन्दा बरगी सान के तू साही लावेगी
महल तले ने राज्जा जा रह्‌या पतंग उड़ा रह्‌या
पतंगा नै क्या फूक जला, क्या करावै
चलो छोरियो छोरा नाट[1] रह्‌या
बौरा[2] नीं कद आवेगी या जोड़ा पाट लिया
क्या कह रही तू जिज्जा जिज्जा—लाग्गूं लोग तेरा
आज्जा चंदा बैठ पिलंग पै, काट्टूं रोग तेरा

शराब के विरुद्ध

बिन्दी ल्याऊँ धड़ाकै ऐजी दारू के नसे में
दारू में लगियो आग,
ऐजी दौड़े अइयो महलों में
मैं बेट्टी साहूकार की, बोल्ली बोल्लो सहज में
मैं बेट्टी थाणेदार की, संटी मारो सहज में
पतली कमर लंबे खेस, संटी. . .
पतले पलंग के सार, एड्डी रखो सहज में
नकलिस ल्याऊँ घड़ा के, जी दारू के नसे में

---

१. मना कर रहा। २. पता नहीं।

गौवध के विरुद्ध

सहर सड़क पै कसाई सांड्डा ले रह्या री
उसके धरी चरख पै गाँ, गऊ ने टेर सुनाई
कोई हो हिन्दु का जाया, गऊ की टेर सुने
अरी मैंन्ने दे दिया गले का हार, गऊ की जाण बचाई
मैं गई सास दरबार सास मूढ़ा बिछा गई
मैं धरा कुरसी पै फेर, नजर छतियन पै पहुँची
मेरी भले घरों की जाई हार कहाँ पै धर भूल्ली
सुन सास मेरी बात, हार का हाल सुनाऊँ
एक सहर सड़क के बीच, कसाई खांडा ले रह्या
उन्ने धरी चरख पै गाँव--गऊ. . .

राशन संबंधी

कैसा काल पड़ा है दुनिया में मैंन्ना सुना ना देखा है
घर के बच्चे खाना माँगै, गेहुँओं में कनटरोल
घर की लुगाई खस्ता माँगै, रोज लड़ाई हो
घर के बच्चे बगड़ की रोट्टी चावल माँगै
चावल पै कनटरोल
घर की लुगाई चावल माँगैं, चावल पै कनटरोल
घर के बच्चे कपड़ा माँगैं, कपड़े पै कनटरोल
घर के बच्चे पैसा माँगैं कागज के चले नोट
कैसा काल. . .
घर की लुगाई जेवर माँगै अरी चाँदी सोन्ने पै है दाम--
कैसा काल. . .

लोक-गाथा

सेवा--गुरु गुग्गा की

बाछल ले कै थाल राणी अर चल पड़ी वा चतुर नार
बाछल रे एक ड्यौढी लख दूसरी लखै थी--
अर तीसरी ड्यौढ़ी पै तेरी नणद मिली थी जी
अर भाई मेरा रे भोला सा बीर दे बचन

सुनाय कहती बाछल राणी से
अर भावज मेरी ए क्या किसी देवताकी तारी बावड़ो
क्या पूजने चली है भूमिया को
क्या किसी देवता का गेरा बधावा झूम
अर भाई मेरो रे बाछल बचन सुनावै री——
कहै थी नणदल अपनी से
अरी नणदल री किसी देवता की तारी बावड़ी,
ना किसी भूमिया को पुज्जन लगी
ना किसी देवता का गेरा बधावा
अर दाता री मेरा भोला सा बीर बचन सुनावै
वा कौरारी पाल की
अर नणदल री ले जोगी-सरूपी एक लाल साहब का
वो म्हारे बागो पै आ उतरा उसकी मैं सेवा कर दूँगीं
अर मुझे कुछ फल मिलेगा री बागों में
अरे नारायण प्यारी, मैं सेवा करूँगी
मुझे फल मिलेगा, हमें मिलेगा नाम दुनिया में
अरी नणदल री म्हारा दुणिया में साझा रहैगा
अरे मेरा रे भोला सा बीर दिये बचन सुनावे तू
कौरा रे पाल राजा की
अर भावज मेरी पहली सेवा तेरे खेल्ले है
महल में बाहर ड्यौढ़ी के
अर भावज ए सम्पत लइयो महलों में
नी साथ जाइये नागों में
अरी नणदल तैं नीं कहीं, मेरे सब नेकु हायी
मेरी करमों में रे नूं ही रे लिखा था
सम्पत ल्याऊँ थारे आउँ री महल में,
अर नीं नागों के साथ चली जाऊँ री
तैं इतनी कहकै व्हाँ तै चल दी
बाछल री व्हाँ से चल आवै री हरियल बागों में
अर दाद्दा ने मेरे रे हरियल बाग की रे परकम्मा
अर खोल्ले किवाड़ दरवाज्जे
खोल किवाड़ दरवाज्जे बड़ी थी बागों में

अर कभी मारे थी हाँक जोग्गी कू
अर गुरुजी भोजन लाई मेरा लिइयो जी नाथ
अजमत के पूरे
अर भोली मइया जौन सा चेल्ला री
गया बाग्गों में वो ही मिल गया री महलों में
जब चेल्ले ने की भोली बचन सुण रख्या जी
अर भोली मइया ले म्हारे सेवे से
म्हारे गुरु की सेवा लगाओ
अर भोली मइया म्हारे गुरु की सेवा करे
ले लाल हरियल बागों में
तेरी सेवा भगवान पूरेंगे
अर गुरुजी लें चाँद-सा चेल्ला एक सूरत का
मैं क्या जानूं तम में गुरु कौन सा
अर भोली मइया खारा कुआ पेड्डा चन्दन का
जहाँ तणे रे तम्मोटे गुरुवा के
भगवी तम्मोटी रे जरद किनारी,
खिची थी डोर रेशम की
वहाँ सोन्ने की मेख लगी हुई
गुरु गोरख की कला जाग रही
अर वहाँ से इतणी सुण चली रे राणी
आवै थी गोरख गद्दी पै
दादा मेरे रे आती के बाछल देक्खी नाथणे
नाथ सो रह्या तम्बू में
सवा पहर की ताली लगा ली
अर बाछल डोर पकड़ के तम्बू हलावै थी
मारे थी हाँक गुरुवा नै
अरी गुरु जी मैं भोजन लाई रे
मेरा भोजन लइयो रे नाथ अजमत के पूरे
यो भोजन चेल्लों में बरता दो
दाता मेरा जी सवा पहर, जब बोच लिया था
जाग उठै गद्दी पै,
अर भोली मइया थारा तो भोजन मेरा काम का नहीं है

अर बाछण राणी तीन जात की मैं भिच्छा नीं लूंगा
सकल दुनियादारी में
अर भोली मइया छिप्पन धोबन बाँझ जनम की
इन तीनों की भिच्छा ना लूंगा
अर भोली मेरी मइया तीन जात की जो
भिच्छा लूंगा दुनियादारी में
तो करै तीरथ म्हारे हल हो जांगे
गुरुजी छिप्पण जोणी ना धोब्बन जोणी
मेरा बाँझ्झो का क्या पिछाण
बाँझ जनम की ऐड्डी चोंचली, मात्था धमकनी
यही बरन तेरा बाझझों का
गुरुजी मेरे बेट्टों की अर पोत्तों की कमी ना
मेरे कमी नहीं महलों में
भोली मइया बेट्टे पोत्ते जो होते महलों में
तो तू क्यों आत्तीरे बाग्गो में
गुरुजी मेरे बेट्टे पोत्तों की कमी नहीं
पर राज करनवाला दूसरा नी है
तू पिछले जनम की माली की है बेट्टी
तूने बिरवै नुराये बाग्गों में
तेरे बाग में कोतरी ब्याही
तैं कोतरी के अंडे फोड़े,
कोतरी अपने अंडों को फुट्टे देख निढ़ाल होकै गिर रे पड़ी
उसका चोला हंस छूट गया
हंस दरगाह में पौंच गया
तो उसकी फरयाद लगी री ताला के
तो इस गुन तुझे सात जनम ऊतनी लिखी
तेरे मुकद्दर में सम्पत नी मैं लाऊँ कहाँ से
दो चार चेल्ले यहाँ से लेजा, महलों में राज करेंगे
गुरुजी बिगाझो पुत्तों कौन सपुत्ता
सकल दुनियादारी में
एक बार होकै चाहे मर जा,
पर होवै जरूर, जिससे बाँझ नाम छुट्टे

बगड़ पडोस ने आग पानी लेना छोड़ दिया मेरे महलों से
तम रमतों ने छोड़्डी है भीख
एक बर हो कै धी हो या पूत गुरुजी
बाँझो का नाम छूट जा
स्यालकोट में पूरनमल दिया तमने रानी इच्छरा के
उस दिन से मैं थारी आस में लग रह्यी
के मेरा दुणिया में साझ्झा रख देंगे
गुरुजी रानी इच्छरा ने बाराबरस तक सेवा करी थी
चेल्लो को भोजन खुवावै, बस्तर दिये
चाँद्दी सोन्ने के पात्तर, बनवाये नाथ घड़वाये
गुरुजी तम बारा बरस तक आसन थमाओ बाग्गो में
बारा बरस थारी सेवा करूँगी बाग्गों में
चौदासौ चैल्लों के धुने सिलगाऊँगी
आस्सन झाड़ के बिछाऊँगी
और थारी सेवा करूँगी, भंगड़ को भांग दूंगी
सुलफइये को सुलफा पोस्ती को पोस्त फिम्मी को फीम
थारी बाग में सेवा करूँगी
गुरु ने छोटा सा पत्तर, काढ़ धरा बाच्छल के आग्गे
भोल्ला री मइया भोजन इसमें भर दो
गुरुजी पत्तर तो है छोटा अर भोजन घनेरा
सारा इसमें आने का नीं
गुरु ठा ठाकै तुम पत्तर में भरो और मैं घर को जाऊँ
वो जो ठा ठा कै भोजन उस पत्तर में भरने लगी
भोजन सारा सपड गया, पत्तर ना भरा गया
तो जिब गुरु जी ने कहा, पत्तर भरो अर घर को जाओ
गुरुजी जो पत्तर होत्ता तो मैं भर देत्ती
यो अजमत ना भरी जात्ती
अच्छा एक साफा पत्तर के अपर गेर दो
साफा पत्तर में गेरतो ही
चेल्लो को अवाज लगाई, भोजन पै बैठा दिया
चेल्लो को परोस्सो, ए कारा रे पाल की
अरी चेल्ली री मइया भोजन जिमा दे री मइया

भाई मेरा रे ढावके भोजन चेल्लों को जिमावै
चौदहसौं चेल्ले सब जीम लिये
भोजन जिब भी ना सपड़ा उसमें तै
भोली मइया, भोजन जिमाइयो री घर को जइयो
अरी कौरा री पाल की
अर बाछल राणी ले जिमाय के भोजन चल पड़ी
आई घर पड़ कै सो गई
हुई सुबेरे धर के कढ़ाई भोजण बनाया
फेर इसीतराँ भोजन जिमाया
अर भोली मइया तेरी भी सेवा पूरी हुई
हर बाछल रानी पेली फटेगी फजल होगी
उस बखत फेर अखाड़े में अइयो
अर भाई मेरा बाछल की बाँद्दी
थोरे खड़ी सुनै थी, हरे हरे बाग्गों में
हुआ राणी से पहले री बाँद्दी आवै महल में जी
अरी कहै थी बाँद्दी काछल रानी से
राणी ले वा तेरी बैहण की सेवा पूरी हुई
बाछल री अरी पेली फटेगी, दिण लिकड़ेगा
सकल दुनियादारी में
सेवा का फल उसे मिलेगा
फेर आध्धी रात पै अपणी बैहण पै भेजी
अरी बाँद्दी री ले सेवा के कपड़े
अर मुझे ला दे बाँछल मेन्ना पैसे
अरी मैं भी सेवा कर जाऊँगी री
अर दाता मेरे इतना सुण के चल पड़ी थी
अर आवै थी वो बाछल राणी पै
जब बाछल से बाँद्दी बचन सुनावै
हे रानी जी वो तेरी बैहण ने कपड़े माँगे
रंग महलों में
अरी सेवा के बस्तर माँग रही थी री
अर भाई मेरा भोली अद्भुत जमान्ने की
नहीं जाने थी छल दुनिया के

अर भाई सेवा के बस्तर दे दिये थे
उस काँछल की बाँद्दी को
लेकर बस्तर बाँद्दी आवै महल में
अर बाँद्दी आध्धी रात को चल पड़ी
थी कौरा रे पालकी
लेकर भोजन
आई गोरख के धोरे
आध्धी रात पै सोत्ते में जगावै
अर गुरुजी ले मैं भोजन लाई
मेरा भोजन जीमो री अजमत के पूरे
अर भोली मइया रे जुल्म करे, बड़े चाल पड़े
आई नांगों के अखाड़े में, आध्धी रात में
कैसे आई, तुझे तो पेले फट बुलाई
भोली मइया आध्धी रात आकै मेक जगा दिया
आकै हरियाल्ले बाग्गों में
अरी गुरुजी मुझे कुछ भी खबर ना रही थी
अजी अजमत के पूरे
अजी मैं जाणा गुरु जी दिण लिकड़ आया जी॰
अर भाई मेरा री ले कै भोजन गुरु ले बैठ गया
अर दाता मेरा ठा कै झोल्ली रे बैठ गया
रात अजमत का पूरा
अर जोग्गी बाबा दो जौ काढ़े झोली से
नाथ गोरख नाथ जोग्गी ने
अर जब काँछल के रे दिये उसने हाथ जी
अर भोली मइया री ये जौं ले के तू जइये
अपने रंग महलों में
न्हा धोकै जीमियो,
इनके खाये से तुझे आस रहेगी
दो जुड़वा पैदा होंगे
उरजुन सुरजुन इनका नाम होगा
अर भोली मइया लेकै जा चल पड़ी थी
आवै महलों में

अर भाई ले सेवा के बस्तर तार लिए
काछल राणी ने
अर जब बाद्दी के हाथ में दिये
बाछल को दे आ
पेली फटी बाछले ले कै अर चल दी

● ●

लोक-शब्दावली

लोक-शब्द	शब्दार्थ
अंघाई	पेट भरे पर मस्ती आना
अन्टी	धोती की फेंट में पैसे लगाने का स्थान
अक	संबोधनवाचक शब्द
अकड़ू	अकड़नेवाला
अंकूर	अक्षर
अछवाई	अच्छा
अजमत (उर्दू शब्द)	शान, इज्जत
अटकल	अन्दाज
अड़ियल	अड़ने वाला
अतलाड्डो	अत्यन्त लाड़ली
अतेकसा	थोड़ा-सा
अधबिच	बीच में, आधे में
अनभी-पनभी	ऐसे भी, वैसे भी, हर तरह से
अनाप-सनाप	ऊँटपटाँग, अनर्गल
अफारा	पेट फूलना
अबरन-सबरन	आभूषण
अबेर-सबेर	देर, जल्दी, अनिश्चितता
अमरौती	अमर फल
अल्ला बेली	ईश्वर ही रक्षक है
अलसेठ	आलस्य के कारण देर या टाल
आवाज्जें	आवाज
आट्ठे	अष्टमी
आदमजून	मनुष्य की योनि

आध्धोआध	आधा
आध्धी पिछली रात	रात्रि का पिछला पहर
आन्सु	आँसू
आप्पा	अपना शरीर
आरबल	आयु
आरता	बड़ी आरती
आला	दिवारों में बनाया हुआ स्थान
आसन्नपाट्टी	रूठने का प्रतीक
ओंघना	ऊँघना
ओच्छा	कम भरा हुआ, छिछोरा
ओड़ बड़ी	इतनी बड़ी
ओपरा	ऊपर का
औपरी असर	ऊपरी प्रभाव (भूत-प्रेत आदि का प्रभाव)
ओरे धोरे	आस-पास
औकलू, औकल	बेचैनी, न सुहाना
औगण	अवगुण
केल्ला	अकेला
इकलौत्ती	एक मात्र
इकावसी	एकावशी
इंघै	इधर, यहाँ
इतबार	एतबार, विश्वास
इतणा	इतना
इतराना	शेखी में आना, बनना
इमाण	इमान
इबजा	अब
उरे	इधर या पास
उघाड़ना	खोलना
उड़काना	थोड़ा बन्द करना, बिना कुंडी लगाए ही
उर्नोह्वा	बुराई करना
उठाईगिरा	चलता जाता या महत्वहीन आदमी
उत्ता	जिसके आगे पीछे कोई न हो
उत्ती का	गाली-विशेष

उद्दापण	उद्यापन
उम्हाना	उत्साह
उमर-पट्टा	जीवन भर का अनुबन्धन
उलखना	लाँघना
एल्लेले	यह देखो (आश्चर्यवाचक भाव)
ऍट्ठू	ऐंठने वाला
एंड लगाना	टाँग फैलाकर आलस्य में लेटना
ऐंड्डा-टेढ्ढा	तिरछा—बिंका
कंजरी	जाति-विशेष, गँवार, शोर मचाने वाली
कचेहड़ी	कचहरी
कटखना	काटने वाला
कट्ठा	इकट्ठा
कदी-कदाक	कभी-कभी
कद्दू दाना होना	लुढ़क जाना
कढ़ाना	औटना
कनकी, कन्नो उँगली	सबसे छोटी उँगली
कनखियों से	तिरछी नजर से
कनागत	श्राद्ध
कमचोट्टा	काम करने से मन चुरानेवाला
कमेरा	काम करने वाला
कमीण	नीच जाति का
करेक	थोड़ा-सा, तनिक-सा
कलखोरा	अकेलापन पसंद करने वाला, कलह करने वाला
काँवर, काँछ	बगल
काढ़ना	निकालना, कसीदा करना
काढ़ा	अत्यधिक औटाई हुई वस्तु
काँधा	कंधा
कान्नाफुस्सी	कान में बात करना
किधँ	किधर
किच्चड़	कीचड़
किचकिचाना	दाँत भींचकर गुस्सा करना

किनचना	जोर लगाना
कीच	कीचड़
कुक्कर	क्योंकर, कैसे
कुचाल	बुरे तरीके से
कुंचा देना	आग लगाना, नष्ट करना
कुंडा	साँकल, दही के लिए मिट्टी का खाली बर्तन
कुसैनी	कमबख्त
कुहाना	कहलाना
कुणबा	कुटुम्ब
कूड़ी	कूड़ा डालने का स्थान
कूल्हना	कराहना
कैड़ी	सख्त
कोट्ठा	घर के अन्दर का सामान रखनेवाला कमरा, छत, वेश्या का चौबारा
कोसना	गाली देना
कौत्तक	कौतुक, घृणास्पद कार्य
कौल, करार	बातचीत पक्की करना
कौली भरना	हाथों से बाँधना
क्यनै	शायद (विस्मयादिबोधक)
खटोल्ला	छोटी चारपाई
खरसा जा खरसाव	गर्मी
खवा	कंधा
खसबोई	सुगन्ध
खस्सी	कमरे के अन्दर की नाली
खांडा	तलवार
खात्तर	लिये, वास्ते
खिंडाना	गिराना
खुदाण	कुम्हारों के मिट्टी खोदने का स्थान
खोऊबखेड़ू	खोने, बखेरनेवाला, नष्ट करने वाला
खोड़िया	बारात जाने के बाद होने वाला नाचगान
खोंसना	छीनना
खोंप्पें	काँटे

गट्ठड़	बड़ी गठरी
गडूलना	बच्चों का खड़े होकर चलानेवाला लकड़ी का खिलौना
गड्डी	बहुत सी चीजों का एक जगह बंधा समूह
गद्दर	मोटा, आधा पका
गजबण	गजगामिनी नारी
गदबद भागना	उलटे-पुलटे भागना
गद्देसी	एकदम
गाड्डन जोग्गा	जमीन में गाड़ने योग्य 'एक प्रकार की गाली'
गाँड्डा	गन्ना
गाह्वी	मन
गाहेहराम	कमचोट्टा, आलसी
गाम	गाँव
गाबरू-गबरू	पुष्ट युवक
मल्हीर-गाहा	मल्हीर, पल्हाया, दोहा-विशेष
गिरे पड़े	अनावश्यक वस्तु या व्यक्ति
गुन्ठी	अँगूठी
गुचकी	डुबकी
गुद्दी	गर्दन के पीछे का भाग
गुमसुम	चुपचाप
गुमान	घमण्ड
गू	पाखाना
गूनमथून	कुछ न कहनेवाला
गेरना	गिराना, डालना
गेल्लोगैल	साथ-साथ या हाथ के हाथ
गोड्डा	घुटना
गोत्तीभाई	एक ही गोत्रवाले व्यक्ति
गोस्सा	उपला, कंडा
गौनियाई	गौने में आयी हुई वधू
ग्यारस	एकादशी
घणी	अधिक
घड़ौंच्ची	घड़ा रखने के लिए लकड़ी की बनी तिपाई

घालना	डालना
घालमेल	गड़बड़ करना, मिलावट करना
घुंट्टी	बच्चों को जन्म देने के समय व बाद में दी जाने वाली औषधि विशेष ।
घुन्ना	मन में बात रखनेवाला व्यक्ति
घूरा	कूड़ा डालने का स्थान
चंग्गी	अच्छी
चंदा	चाँद
चंबोली	एक छंद विशेष
चकचाल	चालबाज
चम्मासा-चौमाम्सा	बरसात के चार महीने चातुर्मास
चटोरा	चटपटी वस्तुओं में रुचि लेने वाला
चिचराड़ा	झगड़ा, रोने रोना
चमक नींद	जल्दी खुल जाने वाली नींद
चड्ढी गाँठना	कमर पर चढ़ कर सवारी करना, (मुहावरा)
चाम	चमड़ी
चाव	शौक
चार खूंट	चारों दिशाएँ
चाल्ला	गौना, आश्चर्यजनक कार्य, कौतुक
चाहना	आवश्यकता, इच्छा, प्रेम
चिक्कट्ट	चिकनाई से गंदी हुई वस्तु
चिकनी-चुपड़ी	चापलूसी की बात
चिट्टा	सफेद
चिड़ा-चिड़ी	नर, मादा चिड़िया
चित्त भी, पट्ट भी	हर प्रकार से
चिलत्तर	बनावटी व्यवहार, चरित्र
चुंडा पाड़ना	चोटी खींचना, लड़ना (मुहावरा)
चुम्बा	चुम्बन
चुमकारना	पुचकारना, प्यार करना
चुबारा	चौबारा, सड़क के ऊपर का कमरा
चून माँडना	आटा गूंदना

चूरमा	रोटी या परांठे का चूरा करके उसमें घी और चीनी डाल कर बना व्यंजन
चूढ़ा	भंगी
चैत्ती	चैत्र से सम्बन्धित
चोक्खा	साधारण अच्छा
चोचले	नखरे, स्वयं को आराम देने के लिए अनावश्यक काम एवं दिखावा करना
चोल्ला	शरीर, ऊपर से नीचे तक एक ही ढीलाढाला वस्त्र
चौक पूरणा	त्यौहार आदि पर आटे या रोली से जमीन पर अल्पना बनाना
चौरा	विवाह मंडप में वेदी के पास वाली यज्ञ की राख आदि
चौथ	चतुर्थी
चौदस	चतुर्दशी
छकना	पेट भरना, तृप्त होना
छक्कड़	चपत
छड़ी-छटाँक	अकेली
छठ	षष्ठी
छठे-छमास्से	कभी-कभी
छाप्पा	छपा हुआ, छाप
छिक्कल	छिलका
छिनाल	गाली-विशेष
छीड़	जहाँ भीड़ न हो
छेतना	मारना
छोरियाँ	लड़कियाँ
छोह	क्रोध
जकड़ी	विवाह से पहले रात्रि को गाया जाने वाला गीत-विशेष
जग-जुनार	प्रीति-भोज
जद	जब
जनो	मानो
जलगा	जलनेवाला, ईर्षालु, गाली-विशेष
जली मिराड़	क्रोधी, ईर्षालु

जवाल	मुसीबत
जावखत या जात्तक	बालक
जाड्डा-पाला	जाड़ा, बहुत सर्दी
जान-लेवा	प्राण लेनेवाला, दुख देनेवाला, गाली-विशेष
जाम्मे	पैदा हुए, जन्म लिया
जिज्जा	बड़ी बहन के पति—जीजा
जिजमान	यजमान
जिब	जब
जिभी	जब भी
जिवाना	जीवित करना
जीमना	भोजन करना
जीम्मन	दावत
जुगत	युक्ति
जुनार	३६ जातियों को भोजन कराना
जुलम	जुल्म करना—आश्चर्यजनक कार्य करना
जेट्ठा	सबसे बड़ा बेटा
जेवड़ी	रस्सी, जकड़नेवाली
जोक्खो	भय, खतरा
जोग्गा	योग्य
जोट	जोड़ी
झटदेसी	तुरन्त
झबरझल्लो	जल्दी-जल्दी में उल्टा-सीधा काम करने वाली
झिंगला	ढीली खाट
झुरना	तिल-तिल करके कमजोर होना
झुलसा	गाली-विशेष
झूलणी	झूलते समय हाथ से झुलाना, झूला
झोट्टा	चोटी, झूले पर बैठे व्यक्ति को हाथ से बढ़ाना
टंडीरा	सामान
टका	दो पैसा, अधन्ना।
टपका	टपकने वाला आम
टहल	सेवा
टाँय-टाँय फिस	हारने पर बच्चों द्वारा चिढ़ना
टिक्कड़	मोटी रोटी

टुंड्डा	एक हाथ वाला आदमी
टुस्सी	फुनगी, सबसे ऊपर का भाग
टेहले	विवाह में होने वाला लोकाचार
टेवा	लग्न
टोन्टा	नुकसान, कमी
ठकुरसुहाती	मालिक को अच्छी लगने वाली
ठलुआ	बेकार आदमी
ठाके	उठाकर
ठाढ़ा या ठाड्डा	मजबूत, तगड़ा
ठाल्ली	खाली
ठौर	जगह
ढब	ओर, हाल
ढाल	तरीका
ढिमकाना	अमुक
ढीड	आँख में आनेवाला मैल
ढुंग्गे	कुल्हे ढेर
ढुकाना	दरवाजा आधा बन्द करना
ढू-पड़ना	गिर पड़ना
ढेट खुलना-पड़ना	हिम्मत बढ़ना
ढेर सारा	बहुत सा
डंगर-ढोर	जानवर
ढोना	सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना
डाँगर	पशु
डार	डाल, हिरनों का झुंड
डोबना	डुबोना
डौल	मौका
तइया	तीसरे दिन का बुखार
तत्ता	गर्म
तड़के	बहुत सुबह
तनक मनक	तनिक सा
तलकाट	कटुता

तागड़ा	साधुओं द्वारा बाँधी जाने वाली मूँज की तगड़ी
तायस	पति की ताई
तावली या तावल	जल्दी
तिरोदसी	त्रयोदशी
तिसाल्ला	तीसरे साल में
तिस	प्यास
तिसाना	प्यासा होना
तीज	तृतीया
तीजन	तीजों की
तीहल	तीन कपड़ों का जोड़ा
तैंन्ने	तूने
थान	सती या देवता का पवित्र स्थान
थारा	तुम्हारा
थूथड़ी	मुँह
थोथ्था	बीच में से खाली, खोखला
थोबड़ा	विकृत चेहरा
दड़बड़ाना	धमकी देना, रोब देना
दर में	दरवाजे में
दसमी	दशमी
दसोहा	घर से निकाल देना
दात	दहेज
दिक होना	तंग होना
दिकै	देख (सम्बोधन)
दिद्दे	आँख
दिद्दा	मन
दिलद्दर	दरिद्रता
दुक्खे	दुखना
दीवा	दिया, दीपक
दुत्तेखाना	शिकायत करना, चुगली करना
दुल्हेंडी	फाग का दिन
दुत्ती	इधर की उधर लगाने वाली

बुबकना	छिपना
दुहाग	जान बूझकर वियोग कराना
दूजा	दूसरा
देहली	दरवाजे की चौखट का निचला हिस्सा
दोहता	लड़की का लड़का
दौज	दोयज
धन	गाय-भैंस आदि दूध देने वाले जानवर
धनी	पति या पत्नी का संबोधन
धरम भैंन	मानी हुई बहिन
धरमी	धार्मिक
धरमाप्पा	धरम सम्बन्ध स्थापित करना, धर्म-बहन
धग्गा	धागा
धाड़ मारना	जोर-जोर से रोना, फूट-फूट कर रोना
धिकपड़ना	भीड़ का एकदम से आना
धिगामस्ती	जोर, जबरदस्ती
धी, धीम	बेटी
धियाना	जहाँ लड़की या ननंद का विवाह हुआ हो
धोरे	पास
धौले	सफ़ेद
नक्कू बनना	हर बात में आगे बढ़ कर बदनाम होनेवाला
नक्को	नखरों वाली, नाक चढ़ाने वाली
नदिद्दा	जिसकी नियत खराब हो
नन्दोत	नन्द की लड़की
ननसाल	नाना का घर
नाज्जो	नखरेवाली
नवा	नया
नाटना	मुकरना, बात से हटना
नस्सो	दूल्हा
नाड़	गर्दन
नाड़ा	कमरबन्द
नावा	धन
नासपिट्टा	गाली-विशेष, नाश करनेवाला

निखट्टू	काम न करनेवाला
निखालिस	शुद्ध
निगोड़ा	गाली-विशेष
निचलवाई या निचलाई	निश्चल, स्थिर
निठल्ला	बेकार
निपुत्ती	पुत्र-विहीना
निफराम	निश्चिन्त
निमाना धन	अग्राह्य धन
निवाया	कम गर्म
निवाच	हल्की गर्माई
निसाखातिर	निश्चिन्त
निरनो	बिना कुछ खाए-पिए
निर-भाग	भाग्यरहित, अभागी
नुकस निकालना	दोष निकालना
नूं या नू	इस तरह
नून	नमक
नेट्ठम	बिल्कुल या पूरी तरह
नेड़े	पास
नेज्जू	रस्सी
नेग	विवाह आदि शुभ अवसरों पर व्यक्तियों को उनका भाग देना
नियम-धरम	नियम-संयम
नौआ	नाई
नौतना	निमन्त्रण देना
नौनी	मक्खन
नौम्मी	नवमी
नौरते	नवरात्र के नौ दिन, या उस समय पर उगने वाले जौ के छोटे पौधे
न्हुलाना	नहलाना
परके	पिछले साल
परारके	पिछले साल से पहले साल
पत	लाज, विश्वास

पचपात्तर	पूजा का बरतन
पड़वा	प्रथमा
पड़ना	लेटना
पड़िया	श्राद्ध आदि लेने वाले ब्राह्मण या बछिया
पट्टी पढ़ाना	सिखाना, बहकाना
पाँच्चे	पंचमी
पाड़ना	उखाड़ना, फाड़ना
पायतं	चारपाई का निचला हिस्सा, पैरों की ओर
पाल्लर	राई के पानी में डाले गए बड़े-पकौड़ी
पाहुना	अतिथि
पिछान	पहचान
पिरोह्त	पुरोहित
पितसरा	पति का चाचा
पीहर	बहू के माता-पिता का घर
पुआ	मीठा पूड़ा
पुन्न	पुण्य
पुन्नो	पूर्णमासी
पुजाप्पा	पूजा में चढ़ाई गयी वस्तुएँ
पुरखा	पूर्वज
पूत	पुत्र
पुरमपूर	सम्पूर्ण
पेला	पीला
पेलना	कोल्हू में लगाकर निकालना (तेल या रस)
पैड	नामोनिशान या पाँव का निशान
पैड़ी	सीढ़ी
पैर भारी होना	गर्भवती होना
पोत उतारना	बारी उतारना
पोना	रोटी बनाना
पोटली	छोटी गठरी
पोतड़े	छोटे बच्चों के नीचे बिछाने के कपड़े
पोत्ता	पौत्र, पोता
पौ	प्याऊ

फलाने	अमुक
फुआ	बुआ, पिता की बहन
फूल	मिश्रित धातु
फैल भरना	अपनी बात मनवाने के लिये बहाना करना
फोकट	मुफ्त में
फोल्ला	छाला
बझौटी	बाँझ
बगड़-बिचाल्ले	आँगन के बीच में
बजरकिवाड़	मजबूत किवाड़
बदकार	बदमाश
बणैनी	वैश्य-स्त्री
बटले	इकट्ठे होना
बटियामार	ठग
बरजना	मना करना
बन्नो	कन्या–जिसका विवाह होने वाला हो
बरत	व्रत
बरती रहना	व्रत रखना
बलाय	बाहरी प्रभाव, भूत-प्रेत से सम्बन्धित
बरदा	आदमी
बरी	लड़के के विवाह में लड़के के घर से आनेवाली सामग्री
बाँछा	इच्छा
बाड़ना	घुसाना
बामनी	ब्राह्मणी
बाय	वायु (रोग)
बायना	व्रत-त्योहार आदि पर अपनी पूज्य स्त्रियों को मिनसकर वस्तुएँ भेंट करना
बार-द्वारी	द्वार पर दूल्हे की पूजा करना
बारजा	सड़क की ओर निकला हुआ ऊपर का तीन खिड़कियों वाला कमरा
बालना	दीपक आदि जलाना
बाली उमर	कम अवस्था

बावला	पागल, भोला, प्यार में कहा जाने वाला शब्द
बास्सण	बर्तन
बास्सी	पहले दिन का बचा हुआ भोजन
दिन बाहुड़ना	अच्छे दिन लौटना
बिगान्ना, बिराणा	पराया, बेगाना
बिलौट्टा	बिल्ली का बच्चा
बिनारना	काटना
बिरमा	ब्रह्मा
बिरादरी	जाति
बिसात	सामर्थ्य
बिसनी	वैश्य उपजाति
बिजार	छोड़ा हुआ बैल
बिसभना, मौलना	चूड़ी टूटना
बीच-बिचाल्ला	बीच में पड़ कर फैसला कराना
बीर	भाई
बीस्सें	वैश्य अग्रवाल
बुक्कल	पृथ्वी की माप, रजाई लपेट कर बैठना
बुड़क मारना	काट खाना
बुहारी	झाड़ू
बुहारना	झाड़ू लगाना
बुसना	रात के रखे भोजन में दुर्गन्ध आने लगना
बूझ	पहेली, पूछना
बूरा	साफ की हुई खाँड़
बेड़	मोटी, बड़ी रस्सी
बेल्ला	काँसी का बड़ा कटोरा-विशेष
बेसबरा	धैर्यहीन
बैड़ देना	होनेवाली बात का इशारा देना, अललटप्प बात करना
बैयरबान्नी	स्त्री या महिला
बैहली	बैलों का रथ
बोहिया	सींक से बनी हुई छोटी टोकरी, जिसमें शादी में मिठाई आदि दी जाती है
बोई आना	दुर्गन्ध आना

बोचना	बन्द करना या दबाना
बोद्दा	कमजोर
बोब्बो	बड़ी बहन
बौंत	सामर्थ्य, अवसर, मौक़ा
ब्याहना	बच्चा देना
ब्याही	पुत्र-जन्म के अवसर पर गाया जानेवाला गीत
ब्यौरा लाना	समाचार लाना
भकाना	बहकाना
भणेली, भनेल्ली	सखी
भड़वा	गाली-विशेष
भतेरा	बहुत-सा
भरपाया	उबना
भरतार	पति
भांडे	बरतन
भांजी मारना	किसी के बनते हुए काम में उल्टी-सीधी बात कहकर रुकावट पैदा करवा देना
भाजना	छोड़ कर भागना
भाज्जी	सब्जी, विशेष अवसरों पर एक दूसरे के यहाँ भेजना
भात	लड़के-लड़की के विवाह में मामा की ओर से दी जाने वाली वस्तुएँ
भातई, भात्ती	भात देनेवाला
भिड़ना	टक्कर होना
भिनकना	गन्दगी होना
भींचना	कस कर दबाना
भोनाजी	बड़ी बहिन के पति, जीजाजी
भुंडा	गन्दा
भुज्जी	पत्तों की बनी हुई सब्जी
भूट्टू	बेवकूफ़
भूमिया	ग्रामदेवता
भेल्ली	गुड़ का पाँच या ढाई सेर का टुकड़ा
भैन्ना	बहन
भैमारा	भयभीत

भैंकड़ा	मुँह फाड़ कर रोना
मंगता	भिखारी
मढ़ा	बारात के जाने के एक दिन पहले एक प्रकार का लोकाचार
मलंगा	उदंड
मत	बुद्धि, नहीं
मतइ	विमाता
मनरा	मनिहार
मरद-मानस	पुरुष
मरजानी	एक प्रकार की गाली
माँ-जाया	सगा भाई
माड़ा	कमज़ोर
मातबरी	विश्वास
मालमता	धन
मारू	मारने वाला
मावस	अमावस्या
मिंगन	बकरी का पाखाना
मिट्ठो, मिट्ठी	बच्चे का चुम्बन
मिम्मा, मिम्मी	छोटा लड़का, लड़की
मियाँ मिट्ठू	अपनी तारीफ करना
मिनसना	मनः संकल्प करके किसी को देना
मिसरानी	ब्राह्मणी--रोटी बनाने वाली
मिस्सर	रोटी बनाने वाला ब्राह्मण
मिस्सी-कुस्सी	रूखी-सूखी
मींडना	गोदना
मीं	वर्षा
मुई	गाली-विशेष
मुकलावा	गौना
मुलक	मुल्क
मूंझौंसी	मुँहजली
मूतना	पेशाब करना
मूं बिटलाना	त्यौहार आदि पर मीठी वस्तुओं से मुँह जूठा करना

मोरी	खिड़की, कमरे की एक अन्दर की नाली
मोतीझड़ा	बढ़िया चावल
मोड़	दूल्हे के सिर पर बाँधा जानेवाला विशेष प्रकार का मुकुट
याणी	छोटी अवस्था की
याणपत	बचपना
याणा	कम अवस्था का
रबत	आदत
रवा	सूजी, दाना
राँधना	पकाना
राड़	झगड़ा
रांड-रोना	दुनिये की बुराई-भलाई करना, या अपना दुख रोये जाना
राजी	राजी-खुशी, इच्छा
रावला	होशियार
रुक्के मचाना	शोर मचाना
रिजक	रोटी
रेवड़	भेंड़-बकरियों का झुंड
लखाना	देखना
लंगोटिया यार	अभिन्न मित्र
लच्छन	लक्षण
लपालपी	बेकार की बातें बोलना
लपड़धोंधों	फूहड़
लम्डा	लड़का
लत्ते	कपड़े
लाड्डो	प्यारी बेटी
लाद्दी	बोझ
लाम	युद्ध
लाल	प्यारा लड़का, सम्बोधन
लाल्ला	छोटा भाई, देवर का प्यार भरा सम्बोधन या बच्चा
लुकना	छिपना

लुगाई	पत्नी
लुभाव में	मुफ़्त में
लौंडो-लारे	लड़के-लड़की
लौंवडा	लड़का
वारी	सम्बोधन का शब्द, (लड़कियाँ आपस में इसका प्रयोग करती हैं)
शिवाल्ला	शिवालय, मन्दिर
सकेरना	इकट्ठा करना, साफ करना
संजोग	संयोग
संजोना	सजा कर रखना
संतोखी	संतोषी
समाक्की	दोनों आँख वाली
सच्चोसच्च	वास्तव में सत्य
सत	सत्य की शक्ति
सदरोई	सदा रोनेवाली
सपड़ना	समाप्त होना
सपुत्ती	पुत्रवती
सरावगी	जैन वैश्य
सरना	काम चलना, गुजारा होना
सलज	साले की पत्नी
साँझ	शाम
साढ़	आषाढ़
साढ़सती	शनि की साढ़े-सात वर्ष की दशा
साढ़ढ़ू	साली के पति
सासरे	ससुराल
सास्सू	सास
सिंगवाना	सम्भाल कर रखना
सिट्ठा	स्वादहीन या फीका
सिद्धा देना	ब्राह्मण को खाने की बनी हुई सामग्री दान देना
सिंवारा	लड़की को भेंट भेजना, सावन या तीजों आदि पर एक लोकाचार
सिमरक	सिंदूर

सिनक	नाक की गन्दगी
सिलगना	जलना
सीठने	विवाह के अवसर पर गीतों में मजाक में गाली देना
सीत	ठंड
सुवाना	सिलवाना
सुड्डा	स्त्रियों के धोती के सामने की चुन्नट
सुड़कना	आवाज करके पीना
सुथना	गरारे की तरह लड़कियों की पोशाक
सुथरा	साफ़
सुदा	साथ
सुध्धी ढ़ाल	सीधी तरह
सुल्टा	सीधा
सुल्लो	सीधी तरह से
सुसरा, सौरा	ससुर
सुहाग पिटारी	सुहाग सम्बन्धी आवश्यक वस्तुएँ
सुंआ	तोता
सूंठिया सर्राफ	अपने आपको अमीर समझने वाला
सेत्ती	साथ
सेल्ला	स्त्रियों द्वारा ओढ़ी जानेवाली चादर
सँड़देसी	तीर की तरह निकलना
सैल सपाटा	बिना ध्येय के घूमना
सोट्टा	हाथ में रक्खा जानेवाला डंडा
सोब्बा	शोभा, विवाह आदि में दी जानेवाली वस्तुएँ
सोबता	फुरसत
सोरनकाया	स्वर्ण की काया
सौण कुसौण	शकुन-अपशकुन
सोणा	सुन्दर
सोहणा	सुन्दर
सोहिले	पुत्र-जन्म के अवसर पर गाये जानेवाले गीत
सौक	शौक
सौकार	साहूकार, धनी जो रुपया सूद पर चलाते हैं
सौड़ बिछाने	लिहाफ़, गद्दा

सयाऊ	साँप के बच्चे
स्याणा	बड़ी अवस्था का—समझदार
हगना	पाखाने जाना
हड़कल	शरीर में दर्द होना
हड़फुटनी	हड्डियों में दर्द होना
हड्डे, हाड़	हड्डियाँ
हटकै	दुबारा
हबेल्ली	हवेली
हलहल	बहुत जोर से
हाँक मारना	आवाज देना
हाँकना	जानवर को चलने के लिये टिटकारना
हाली	हल चलाने वाला
हिल्लेसिर	कार्य से लगे हुए होना
हिरस	नकल
हिरसल्ला	नकल करने वाला
हीनमत	दुर्बुद्धि
हुड़क	तलब लगना, इच्छा होना
हूर	सुन्दरी
होल्लर	छोटा बच्चा
हेकड़ी	शेखी
हेट्टा	कमजोर

● ●

स्त्री-पुरुषों के प्रचलित नाम

स्त्रियों के नाम

अनारो, असरफी, इमरती, कटोरी, कबूल्ली, कसमीरी, किरनो, कैलासो, ग्यानो, गिग्गी, गेंद्दो, गुलाब्बो, चन्दो, चम्पा, चमेल्ली, छीमा, छोट्टी, जनको, बुल्लो, परकासो, परेम्मो, फुल्लो, बुध्धो, बिरमो, बिल्लासो, बिसम्बरी, मनसा, मिन्नो, मुकन्दी, मुल्लो, कटोरी, रामकली, रामप्यारी, रिसाल्ली, रतनो, रूप्पो, लक्खो, लच्छो, साम्मो, सन्नो, सरबती, सत्तो, सुक्को, सुरजो, सोभ्रा, हंसो ।

पुरुषों के नाम

अतरा, अमीचन्द, अमोलक, अल्लारखा, अलगू, ओम्मी, कबुल्ले, कयुम रोड़ा, काल्लू, किसना, केसो, खिलाड़ी, गफूरा, गुलमा, गेंद्दा, चूहड़, चौहल, छंगा, छंगू, छज्जू, छेदी, जग्गू, जादो, जाहना, जुम्मन, टेक्कु, तिरखा, दरबा, दिवल्ला, धन्नु, फरमा, फरमी, नकली, नत्थू, नूरा, निहाल्ला, फत्तू, पुद्दन, बदलू, बन्ने, बखतावर, बाँक्के, बल्लू, बिरमा, बिसनू, भुल्लू, भुल्लन, भीक्खन, भैरो, मक्खन, मलखान, मिट्ठन, मितरू, मिसिरी, मुकन्दा, मुख्तयारा, मुन्नन, मूंगा, मूला, मोट्टू, मोल्हड़, रतनू, रहमत, रामखेलावन, रामरक्खा, रिसाल्ली, रोड़ा मल, लक्खी, लाल्लू, समसू, सलमू, सालग, सिमरू, सीतल, सुक्खन, सुक्खा, सुरजा, सुद्दू, सोल्हड़, हरदेवा, हरद्वारी, हरफूल, हुकमा, हुसियारा ।

● ●

प्रकाशित लोककथाएँ एवं अन्य सामग्री

१. भजन निर्गुन ब्रह्मज्ञान	ले०—चौधरी घीसाराम, भटीपुर प्रकाशक—घुरूसहाय व प्रभुदयाल बासदेव गोकुलचन्द बुक डिपो, गूदड़ी बाजार—मेरठ
२. भजन बभ्रूवाहन और अर्जुन-युद्ध	लेखक—शंकरदास ठाकुर प्रेमसिंह जिठौली, डा० मऊ, मेरठ
३. गजनागोरी—संगीत शाही	चन्द्रभार उर्फ बादीदत्त, नगर जवाहर बुकडिपो, गूदड़ी बाजार, मेरठ
४. गुरु-चेला संवाद (संसार चक्कर)	महात्मा गंगादास जी, गढ़मुक्तेश्वर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
५. ब्रह्मज्ञान—ज्ञान पकड़ (प्रश्नोत्तरी)	गंगादास जी, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
६. ख्याल—तर्ज शीशराम—दूसरा भाग	जवाहर बुकडिपो, मेरठ
७. साँगीत कृष्ण भात	सगुवासिंह, सिखैड़ा निवासी, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
८. फूला जाट नसीस	सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
९. भजन तरंग	लेखक—कालूराम, लोकनाथ, मेरठ
१०. पान की बेगम रागनियों का रसगुल्ला	लेखक व प्रकाशक—प्रभुदयाल, बुकसेलर, खतौली
११. हुकम का बादशाह रागनियों का गुच्छा	प्रभुदयाल बुकसेलर, खतौली
१२. चिड़ी का इक्का रागनियों का गुच्छा	प्रभुदयाल—बुकसेलर, खतौली

१३. नरसी का भाव	चौ० नत्थूदास, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
१४. साँगीत रूप-बसंत	गुरु बिन्दू मीर (खानपुर) जवाहर बुकडिपो, मेरठ
१५. साँगीत कृष्ण-सुदामा	रघुवीरशरण, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
१६. साँगीत नारसी भात	रघुबीरशरण, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
१७. सौदागर बच्चा प्रेमवती	नत्थूदास, मीराँपुर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
१८. आल्हा (खड़ीबोली में प्रसिद्ध) असली आल्हा-खंड बावनगढ़ की लड़ाई	एल० सी० मटरूमल, जवाहर बुक-डिपो, मेरठ
१९. संगीत लीलो चमन	सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
२०. झूलने कंवर निहालदे	मीरदाद (हापुड़) बासदेव गोलचन्द बुक डिपो, गूजरी बाजार, मेरठ
२१. झूलते लवकुश	सुल्लामल गाजियाबाद वासदेव गोकुलचन्द बुक डिपो, गूजरी बाजार, मेरठ
२२. शीलादे राजा रिसालू (४ भाग) (दीवान महतेशाह—१)	हरवंस लाल बिजरौल, जवाहर बुक-डिपो,मेरठ
२३. निहालदे परवाना	पं० रामशरन दीवानदत्त, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
२४. होली बहन भाव	हरवंशलाल (बिजरौल) दो भाग, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
२५. होली सीता बनोबास	हेमराज सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
२६. राजा रघुबीर सिंह	हरवंस लाल, जवाहर बुकडिपो, मेरठ

२७. कंवर निहालदे बाग	पं० रामसरन दिवानदास, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
२८. पूरनमल भक्त	वालकराम, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
२९. ढोला नरवर गढ़	ठा० गजाधरसिंह फतेहपुर निवासी, दीपचन्द बुकसेलर, नयागंज, हाथरस
३०. गोपीचन्द	बालकराम, शिक्षाग्रन्थागार, मथुरा
३१. महाराना प्रताप	महात्मा लटूरसिंह के शिष्य, खिम्मन सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३२. चत्तर बित्तर	अरजुन सिंह, बागपुर, प्रकाशक बुकडिपो, बुलन्दशहर
३३. जयमल फत्ता	कुन्दनलाल पाधा, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३४. साँगीत देवर-भाभी	सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३५. चन्द्रहास	बुन्दुमीर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३६. मोरध्वज	गुरु बुन्दू मीर (अंधे) जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३७. अमरछड़ी	गुरु बुन्दुमीर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३८. महाराज अशोक	गुरु बुन्दुमीर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३९. निवले का भाव	मशहूर साँगी, सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४०. साँगीत देवर-भाभी	सगुवा सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४१. होली लक्ष्मण मूर्छा	छज्जूमल, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४२. होली भानमती सती	हेमराज सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४३. महाभारत कर्णपर्व	हेमराज सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४४. होली द्रोपदी स्वयंबर	हेमराज सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४५. महाराज भीष्मपर्व	पं० रामसरन बैंढ, जवाहर बुकडिपो, मेरठ

४६. चन्द्रकिरन मदनसैन	सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४७. होली हीर राँझा	घीसाराम, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४८. असली बारहमासा रामायण	चौ० घीसाराम मटीपुर, वासदेव गोकुल-चंद बुकडिपो
४९. चन्दना	वासदेव गोकुलचन्द, गुजरी बाजार, मेरठ
५०. मदनपाल चन्द्रप्रभा	अखाड़ा——नत्थूलाल, गुजरी बाजार मेरठ
५१. बिल्व मंगल	नत्थूलाल, गुजरी बाजार, मेरठ
५२. होली जर्मन जंग (वसंत के गीत)	चौ० घीसाराम, मटीपुर, निवासी, गुजरी बाजार, मेरठ
५३. साँगीत कृष्ण-सुदामा	रघुबीर शरण गुजरी बाजार मेरठ
५४. होली लैला-मजनू	गुरु घीसाराम, गुजरी बाजार, मेरठ मटीपुर निवासी
५५. गुलजार सखुन तुर्रा (चार भाग)	मुंशी सुखलाल सिंह, शागिर्द लाला भैंरोसिंह, गुजरी बाजार, मेरठ
५६. भरतरी पिंगला	नत्थूलाल, जावली निवासी, गुजरी बाजार, मेरठ
५७. झूलने जाहर पीर	ला० सुल्लामल, गुजरी बाजार, मेरठ
५८. होली राजा कारक	पं० रामशरण, बेढ़े निवासी, गुजरी बाजार, मेरठ
५९. सुलतान निहालदे	रामकिशन व्यास, गुजरी बाजार, मेरठ
६०. वीर नाहरसिंह गूजर	(१८५७ की झांकी) चौ० बेगराज सिंह, गुजरी बाजार, मेरठ
६१. शाही वजीर	मोहना देवी, चन्द्रलाल भाट, गुजरी बाजार, मेरठ

खड़ीबोली प्रदेश के विभिन्न स्थानों का महत्व और संक्षिप्त तत्संबंधी दन्तकथाएँ

१	२	३	४	५
जिला	स्थान	विशेषस्थल	महत्व	तत्संबंधी दन्तकथाएँ
मेरठ	मेरठ	१. बाबा औघड़नाथ का मन्दिर-मैंसाली-ग्राउंड	पौराणिक	१. हस्तिनापुर के निर्माता मय दानव ने इसका निर्माण किया था, अतः इसका नाम मयराष्ट्र था, जो बिगड़ कर मेरठ हो गया है ।
		२. शाहजहाँ के गुरु का मकबरा	ऐतिहासिक	२. ३०० वर्ष ई० पू० अशोक ने एक स्तम्भ की स्थापना की थी, जिसको १२०६ में फिरोजशाह देहली ले गया ।
		३. नवचंडी का मन्दिर		३. १८५७ का स्वतन्त्रता संग्राम बाबा औघड़नाथ के मन्दिर से प्रारंभ हुआ ।
		४. बाले मियाँ का मकबरा		
		५. सरस्वती का मन्दिर (सूर्यकुंड)		
मेरठ	परीक्षितगढ़ या किला	१. गोपेश्वरनाथ का मन्दिर	पौराणिक	१. इसको पाण्डवों के वंशज महाराज परीक्षित ने बसाया था ।
				२. कौरवों से बात करने जाते समय जिस स्थान पर वे ठहरे थे तथा विदुर से गुप्त मंत्रणा की थी वही गोपेश्वरनाथ का मन्दिर है ।

१	२	३	४	५
जिला	स्थान	विशेषस्थल	महत्व	तत्संबंधी वन्तकथाएँ
मेरठ	परीक्षितगढ़	२. शृंगी ऋषि का आश्रम	पौराणिक	३. शृंगी ऋषि के आश्रम में ही लोमश ऋषि के गले में राजा परीक्षित ने मरा हुआ साँप डाला था।
		३. गांधारी कुंड		४. रण से भाग कर दुर्योधन ने गाँधारी तालाब में ही आश्रय लिया था।
		४. नवलदे का कुंआ तथा बरगद का वृक्ष		५. नवलदे के कुएँ में भीम ने पाताल से अमृत लाकर रखा था। वासुकी की पुत्री नवलदे ने यहीं से जल ले जाकर अपने पिता का कोढ़ ठीक किया था। लोकविश्वास है कि इस कुएँ के जल से स्नान करने से कोढ़ ठीक हो जाता है।
मेरठ	पुराग्राम	शिवमन्दिर	धार्मिक (शिवरात्रि के दिन लोग हरिद्वार से काँवरी में गंगाजल लाकर पुरा महादेव पर चढ़ाते हैं।)	रावण ने शंकर भगवान् को प्रसन्न करके अपने साथ चलने का वर मांगा था। शंकर भगवान् इस शर्त पर चलने के लिये तैयार हुए कि वह अपने हाथों पर ही उन्हें ले जायेगा। परन्तु इस स्थल पर आकर रावण को लघुशंका की आवश्यकता हुई और रावण प्रतिज्ञा भूल गया और शंकर भगवान् को पृथ्वी पर टिका दिया। तब से शंकर भगवान् का यहीं पर वास माना जाता है।

१	२	३	४	५
जिला	स्थान	विशेषस्थल	महत्व	तत्संबंधी दन्तकथाएँ
मेरठ	गढ़मुक्तेश्वर	१. राजा नृग का कुंड या नरक कुंड	पौराणिक	१. नारद जी द्वारा दिये गये शाप से शापित शिव के गणों की यहीं पर मुक्ति हुई थी ।
		२. अस्सी सतियों की लाट		२. राजा नृग को यहीं पर गिरगिट की योनि में रहना पड़ा था ।
		३. पंचमहादेव का मन्दिर		
मुजफ्फरनगर	मुजफ्फरनगर	डल्लू देवता का मन्दिर शुक्रताल	ऐतिहासिक	मुगल साम्राज्य के एक दस हजारीमनसब नवाब मुजफ्फर खाँ ने इसको बसाया था ।
मुजफ्फरनगर	शुक्रताल	शुकदेवजी का मन्दिर तथा गंगा घाट	धार्मिक	शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत का उपदेश यहीं पर ७ दिन तक दिया था ।
मुजफ्फरनगर	मोरना	मोरना	धार्मिक	जब राजा परीक्षित को तक्षक नाग डसने वाला था तो धन्वन्तरि उनको बचाने के इरादे से चले । इसी स्थल पर तक्षक ब्राह्मण का रूप रख कर उन्हें मिला । तक्षक के पूछने पर उन्होंने अपना उद्देश्य उसे बता दिया । तक्षक ने एक पीपल के पेड़ को अपनी फुंकार से भस्म कर दिया और धन्वन्तरि के हरा कर देने पर तक्षक ने 'होनी प्रबल है' की बात समझा कर उनसे लौट जाने की प्रार्थना की—धन्वन्तरि लौट गये । मोरना-मोड़ना से बना है ।

१ जिला	२ स्थान	३ विशेषस्थल	४ महत्त्व	५ तत्संबंधी दन्तकथाएं
सहारनपुर	देवबंद	१. पांडवों का किला २. बालासुंदरी का मंदिर ३. सिकन्दर लोदी द्वारा बनवाई गयी मस्जिद ४. अरबी विद्यालय ५. हितहरिवंशराधावल्लभ का मन्दिर	ऐतिहासिक धार्मिक ऐतिहासिक पौराणिक साहित्यिक	देवबन्द किले को पांडवों ने बनवाया था तथा प्रथम बनवास यहीं पर किया था । पहले इसका दूसरा नाम था– देवी बन ।
सहारनपुर	तल्हेड़ी बुजुर्ग	वाममार्गियों का मन्दिर बताया जाता है ।	धार्मिक	दिवाली की रात को वाममार्गी एकत्र होते हैं तथा पूजा करते हैं । इसके पश्चात् स्त्रियाँ अपनी-अपनी चोलियाँ एक कुंड में डाल देती हैं । एक-एक पुरुष एक-एक चोली उठाता है और जिस स्त्री की चोली जिस पुरुष को मिलती है वह उसी के साथ नृत्य करती है—कहा जाता है, भाई-बहन आदि का भी भेद नहीं रहता ।
सहारनपुर	पिरानकलियर	मरहूम पीर का मकबरा	धार्मिक	यहाँ पर मुसलमानों के सिद्ध पुरुष का मजार है । उनके संबंध में कहा जाता है कि वे खुदा के बंदे थे । यहाँ पर सब की मनोवाँछा पूरी होती है । दूर-दूर से इस्लाम देशों के लोग यहाँ आते हैं ।

१	२	३	४	५
जिला	**स्थान**	**विशेषस्थल**	**महत्व**	**तत्संबंधी दन्तकथाएँ**
सहारनपुर	शाकुम्बरी देवी	शाकुम्बरी देवी का मन्दिर	धार्मिक	कहा जाता है कि शाकुम्बरी देवी से मनोवांछित फल प्राप्त होता है ।
			ऐतिहासिक	यहाँ पर रह कर सम्राट चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने अपनी सेनाएँ एकत्र की थीं ।
सहारनपुर	हरिद्वार	१. हर की पैड़ी-ब्रह्मकुण्ड २. चण्डीदेवी ३. मनसा देवी ४. गंगा मन्दिर ५. प्रजापति दक्ष का मंदिर ६. भीमगोडा ७. सप्तसरोवर ८. सती कुंड ९. गुरुकुल काँगड़ी	धार्मिक	समुद्रमंथन के बाद ले जाते हुए एक बूंद अमृत यहाँ भी गिरा था। इसीलिए यहाँ पर हर १२ वें साल कुंभ होता है । यहाँ पर दक्ष प्रजापति ने यज्ञ किया था । दु:शासन का वध करके भीम ने जहाँ अपना गोडा टिका कर गंगाजल का आचमन किया था—उस स्थान का नाम भीमगोडा है ।
सहारनपुर	सरसावा	सरसावा	धार्मिक	गुग्गापीर का जन्म-स्थान यहाँ माना जाता है ।
बिजनौर	दारानगरगंज	दारानगर गंज विदुर-कुटी	पौराणिक	यहाँ पर मालिनी नदी के किनारे कण्व ऋषि का आश्रम था तथा शकुन्तला की दुष्यन्त से भेंट हुयी थी ।

१	२	३	४	५
जिला	**स्थान**	**विशेषस्थल**	**महत्व**	**तत्संबंधी दन्तकथाएँ**
बिजनौर	द्रारानगरगंज	विदुर-कुटी	धार्मिक	यहाँ पर विदुर जी की छोटी-सी कुटिया है। यहीं दुर्योधन के व्यंजन तज कर भगवान कृष्ण ने बथुए का साग ग्रहण किया था।
			पौराणिक	कुरुक्षेत्र-युद्ध के समय कौरवों और पाण्डवों की सब स्त्रियाँ सुरक्षा के हेतु यहीं पर रक्खी गयी थीं। इसीलिए इसका नाम दारानगर गंज पड़ा है।